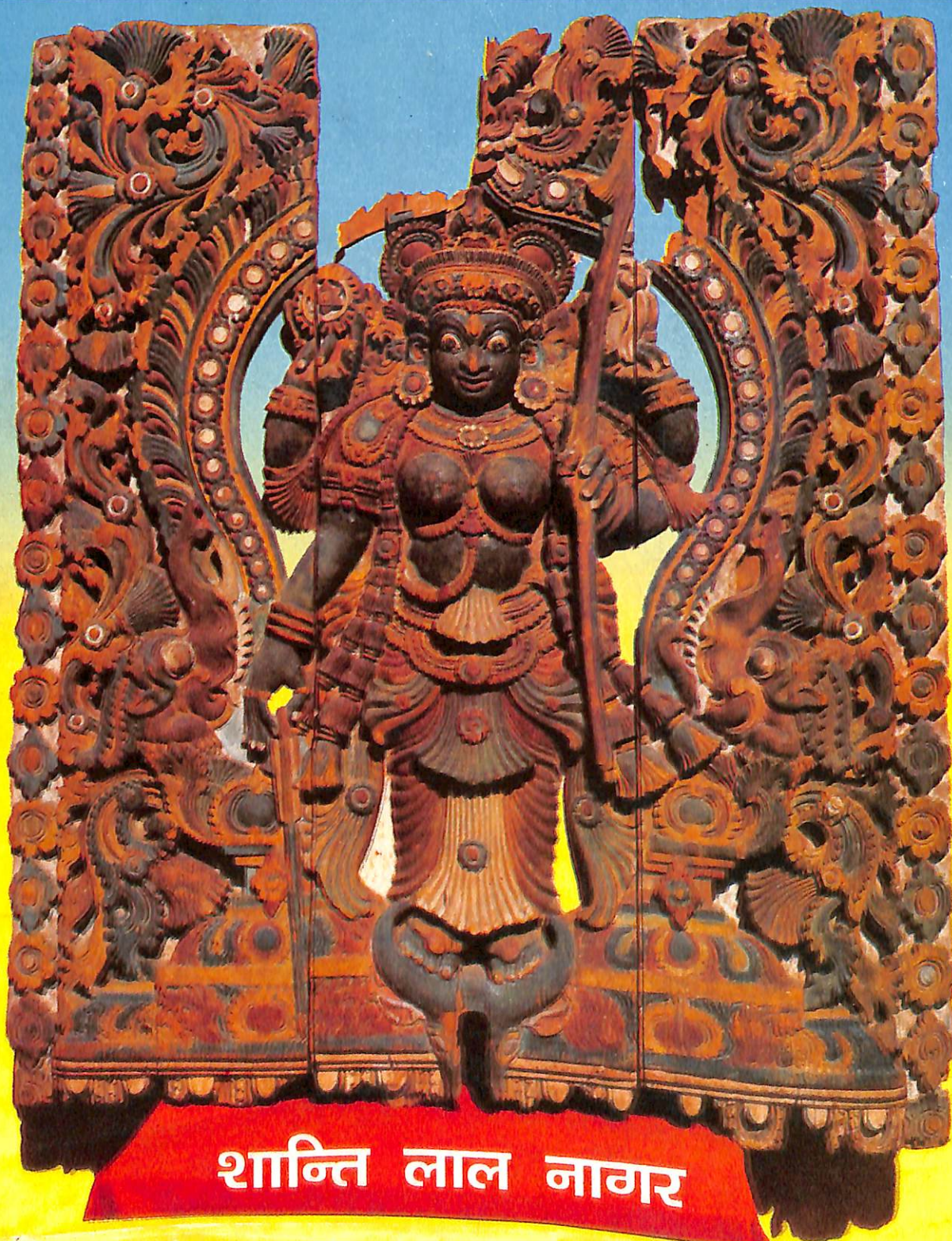


महिषासुरमर्दिनी

(साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं
राजनैतिक परिपेक्ष में)



शान्ति लाल नागर

ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦਿਆਂ

ਸ਼ਾਹਿੰਦ ਅਲ ਜ਼ਾਰ

EASTERN
BOOK
LINKER
FBI

शिवशास्त्रम्

शिवशास्त्रम्



महिषासुरमर्दिनी

(साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक
परिप्रेक्ष में)

शान्ति लाल नागर

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

दिल्ली : : (भारत)

प्रकाशक : ईस्टर्न बुक लिंक्स
५८२५, न्यू चन्द्रावल,
जवाहर नगर, दिल्ली-110007
दूरभाष : 2520287

© : सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण : १९९८

मूल्य 200.00 रुपये

ISBN : 81-86339-76-0

मुद्रक : आर० के० भारद्वाज लेजर एवं ऑफसेट प्रिंटर्स
शिवाजी पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032
दूरभाष : 2285124

समर्पित
स्नेह एवं वात्सल्य मूर्ति अपनी बहन सुशीला की
मधुर स्मृति को

प्राक्कथन

अक्षस्वक् परशुं गदेषु कुलिशं पदनं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं चर्म जलजं घण्टा सुरा भाजनम् ।
शूलं पाशं सुदर्शने च दधती हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिष भर्दिनीमिह महालक्ष्मी सरोजस्थिताम् ॥

(मै कमलासन स्थित प्रसन्न मुख वाली महिषासुरमर्दिनी भगवती महालक्ष्मी का भजन करता हूँ,
जो अपने हाथों में अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण वज्र, कमल, धनुष, कूण्डिका, दण्ड, शक्ति,
खड्ग, ढाल, शरंव, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश, और चक्र धारण करती हैं।)

अनादि काल से ही भारत एक धर्म प्रधान देश माना जाता रहा है जिसमें समय समय पर अनेक देवी देवताओं का प्रादुर्भाव होता रहा है। इन देवी देवताओं का प्रकट होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट रूप से कहा है कि “युग-युग में पृथ्वी पर अवतरित हो कर मैं धर्म की रक्षा करता हूँ”। (सम्भावामि युगे-युगे)। देवी महात्म्य में भी यही सिद्धांत देवी अम्बिका द्वारा प्रतिपादित किया गया है :—

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।

सम्भूय कुस्ते भूप जगतः परिपालनम्॥ (12.36)

(राजन् ! इस प्रकार भगवती अम्बिका देवी नित्य होती हुई भी पुनः पुनः प्रकट हो कर जगत की रक्षा करती है।)

अतः अनेक देवी देवताओं का प्रादुर्भाव समय-समय पर होता रहा है। इन में कुछेक शक्तियाँ ऐसी हैं जिन की मान्यता बहुत कम समय पर्यन्त ही रह पाई और कुछ की मान्यता कालान्तर में अदृश्य हो गई। उदाहरणार्थ, वैदिक देवता इन्द्र, पूषण, मित्र एवं वरुण आदि वैदिक कालीन भारत में बहुत ही प्रभुत्व का स्थान रखते थे परन्तु कालान्तर में उन की मान्यता जन साधारण के मस्तिष्क से लुप्त हो गई। भगवान् बुद्ध की मान्यता भी कई शताब्दियों तक सम्पूर्ण भारत ही नहीं, अपितु भारत से बाहर भी रही, परन्तु भारत में इस का हास मध्य युग के उत्तरार्ध में आरम्भ हुआ और कालान्तर में भारत भूमि से लुप्त प्रायः सी हो गई। इसी प्रकार के अनेको उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

परन्तु कतिपय देवी देवता ऐसे भी रहे हैं जिनकी मान्यता में भारतीय धार्मिक क्षितिज पर उदय के पश्चात् कभी भी हास नहीं हुआ और उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। इन में शिव, विष्णु, दुर्गा महिषासुरमर्दिनी, लक्ष्मी एवं सरस्वती मुख्य रूप से वर्णनीय हैं। इन सभी का भारतीय प्राचीन साहित्य में बार-बार उल्लेख मिलता है।

दुर्गा महिषासुरमर्दिनी के बारे में यह आम धारणा है कि उसकी मान्यता भारतवर्ष में गुप्त काल में लोकप्रिय हुई जबकि उसकी प्रतिमाएँ कुषाण काल में भी मिली हैं। वास्तव में पुरातत्त्व सामग्री इनकी मान्यता ईसा पूर्व की शताब्दियों पर्यन्त ले जाती है। एक बार धार्मिक क्षितिज पर महिषासुर मर्दिनी के प्रादुर्भाव के पश्चात् राजकीय एवं धार्मिक वर्ग में भी इस की मान्यता विशेष रूप से बढ़ी, साथ ही जन साधारण में भी इसके प्रति आस्था निरन्तर बढ़ती ही गई। इसका कारण स्पष्ट है क्योंकि भारतवर्ष ने अनेक बाहरी आक्रमण देखे हैं जिसमें जनसाधारण, शासक वर्ग एवं धार्मिक नेता समान रूप से प्रभावित एवं आतंकित थे। इन कठिन परिस्थितियों में महिषासुरमर्दिनी का प्रादुर्भाव सभी के लिए लाभप्रद था। सभी में सकंटपूर्ण परिवेश से परित्राण पाने की आस्था पलित्व हुई जो निरन्तर बढ़ती ही गई।

देवी की मान्यता का अनुमान इसी तथ्य से जाना जा सकता है कि समस्त भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों, तथा श्रीलंका में भी इसकी मान्यता स्थापित होने लगी। गुप्त काल में विशेष रूप से देवी का प्रभाव भारतीय मूर्तिकला में देखने को मिलता है। इन काल की देवी की प्रतिमाएँ अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न एवं दर्शनीय हैं।

पूर्व मध्यकाल का भारतीय इतिहास में इनका अपना अलग ही महत्व है। इस काल में तन्त्र विद्या का विशेष रूप से विस्तार हुआ। इस युग में यह ब्राह्मण एवं बौद्ध धर्मों में समान रूप से तान्त्रिक यह देवी मानी जाने लगी। फलस्वरूप अनेक तान्त्रिक मान्यताएँ एवं प्रथाएँ इस की पूजा से जुड़ गई। फिर भी उसका मातृशक्ति का स्वरूप बना रहा। साथ ही विभिन्न नामों से भी जानी जाने लगी। जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं :—

- | | |
|------------------|----------------------|
| (i) कात्यायनी | (ii) चण्डिका |
| (iii) काली | (iv) शताक्षी |
| (v) कौशिकी | (vi) महिषासुरमर्दिनी |
| (vii) शाकम्भरी | (viii) विन्ध्यवासिनी |
| (ix) महिषमर्दिनी | (x) महालक्ष्मी |
| (xi) महाकाली | (xii) महामाया |
| (xiii) महागौरी | (xiv) कालरात्री |
| (xv) महादुर्गा | |

देवी के सम्बन्ध में अनेक आख्यान कई पुराणों एवं अन्य संस्कृत साहित्य में भी मिलते हैं। जिन का मूल रूप मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में निहित है। उसी का रूपान्तर कुछ कमी बेशी के साथ देवी भागवत्, वामन, पद्म, कालिका, वराह एवं देवी पुराणों में मिलता है। परन्तु इन सभी पुराणों में से मार्कण्डेय पुराण ही अधिक महत्व रखता है क्योंकि उसमें देवी की अनेक युद्ध क्रीड़ाएँ, जो राक्षसों के साथ हुई, विस्तार में दर्शाई गई हैं। कुछेक पुराणों में महिषासुर के देवताओं के साथ भी अनेक युद्धों का वर्णन है। जबकि कुछ उसके महिषी से जन्म को विस्तार से वर्णित करते हैं।

मार्कण्डेय पुराण स्थित देवी माहात्म्य दुर्गा महिषासुरमर्दिनी को समर्पित है। ऐसी धारणा है कि इसकी रचना महिषमती नगर में हुई थी जिसकी पहचान आधुनिक स्थल ओंकारेश्वर मान्यधाता (मध्यप्रदेश) से की जाती है। डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल के मतानुसार ऋषि मार्कण्डेय ने देवी माहात्म्य की रचना प्राचीन लोक कथाओं के आधार पर की थी जो तत्कालीन समाज में अत्यन्त लोकप्रिय थीं। पार्सीटर के मतानुसार नर्बदा घाटी विशेष रूप से राक्षस गाथाओं के लिए काफी चर्चित रही है। जिनमें त्रिपुरासुर एवं महिषासुर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। तेवर एवं महेश्वर नगरों की स्थापना इन्हीं दोनों असुरों के नाम से मानी गई है। इसी प्रदेश के साथ ही नागदेश भी स्थित था। अतः ओंकारेश्वर मान्यधाता देवी माहात्म्य काव्य का रचना स्थल हो सकता है।

तान्त्रिक धारणाओं के अन्तर्गत मुख्य शैव स्थल शक्ति आराधना के भी स्रोत बन गए। शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से कम से कम छः तो पश्चिम भारत में स्थित हैं जिन में ओंकारेश्वर-मान्यधाता, उज्जैन स्थित महाकालेश्वर, नासिक का त्र्यम्बकेश्वर, एलोराका घृष्णोश्वर, अहमद नगर का नागनाथ भीमा नदी के तट पर स्थित भीमशंकर उल्लेखनीय हैं। एक अन्य ज्योतिर्लिंग जो अमरेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है वह भी ओंकारेश्वर के समीप ही नन्दी के दक्षिण तट पर स्थित है। मार्कण्डेय पुराण का रचना स्थल ओंकारेश्वर ही माना जाता है और उसी पावन स्थल के आस-पास ही पूर्वोक्त ज्योतिर्लिंग अनादि काल से स्थापित हैं। इन सभी स्थानों में ओंकारेश्वर ही एक ऐसा स्थान है जहाँ पर शिव और शक्ति (दुर्गा) की विधिवत समान रूप से अर्चना होती है। इस तथ्य द्वारा भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देवी माहात्म्य की रचना यहीं हुई थी।

देवी माहात्म्य जैसे उत्कृष्ट काव्य का रचना काल मार्कण्डेय पुराण से सम्बद्ध है जिसका वह एक अभिन्न अंग है। यद्यपि देवी माहात्म्य मार्कण्डेय पुराण का क्षेत्रक रूप भी माना जाता है परन्तु फिर भी इसकी प्राचीनता में कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। यह पुराण चतुर्थ शताब्दी में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल की रचना माना जाता है।

देवी माहात्म्य हिन्दू धर्म की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसमें भगवती की कृपा के सुन्दर इतिहास के साथ-साथ गूढ़ साधन-रहस्य भी वर्णित हैं। भक्तिपरायण जन समूह के लिए यह कल्पतरु है जो ज्ञान की त्रिविध मन्दाकिनी अवरल बहाने वाला है। इसके मनन से सकाम एवं निष्काम भक्तजन अपनी सिद्धि को प्राप्त करने में संलग्न रहते हैं। इस ग्रन्थ में देवी की अनेक प्रकार की भक्ति और आराधना का उल्लेख है जो अद्वितीय काव्य सौन्दर्य का प्रतीक है। मूलतः यह वेदोक्त वाक् एवं त्रयीविद्या को विशेष महत्व देता है। सांख्य योग की मूल प्रकृति एवं उसके तीनों गुण-सत्त्व, रज एवं तमस, इसमें विद्यमान हैं। (हेतु समस्त जगतां त्रिगुणैरपिदोषैः)। वेदान्त की परमाविद्या जो मुक्ति का माध्यम मानी जाती है तथा जिसे योगी जन सदैव मनन करते हैं इसमें सविस्तार वर्णित है। इस रचना में देवी का प्रादुर्भाव ब्राह्मण विष्णु एवं शिव तथा अन्य देवताओं के समावेश से ही दर्शाया गया है। यह देवी मूलतः लक्ष्मी सरस्वती एवं दुर्गा तथा सप्त मातृकाओं का ही संयुक्त रूप है जिन की आराधना भारत में प्राचीन काल में ही प्रचलित थी।

देवी की आराधना का एक और ढंग भी है जो तत्कालीन प्रचलित स्थानीय धारणाओं पर आधारित है। इन सभी की एक सूची देवी भागवत्-पुराण में 108 देवी पीठों के रूप में उपलब्ध है। देवी भागवत् (7.38) में ही भीमा देवी, शाकम्भरी, शताक्षी एवं भ्रामरी आदि देवियों का समुचित उल्लेख है। क्योंकि माहात्म्य के रचयिता अद्भुत दार्शनिक एवं प्रकाण्ड विद्वत्ता के प्रतीक रहे होंगे। क्योंकि उन्होंने इस आदि शक्ति का विष्णु माया के रूप में भी आराधना की है। (या देवी सर्वभूतेषु, विष्णुमायेति शब्दिता)। यही विष्णु माया समस्त प्राणियों में चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति (क्षमा), जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ, भ्रान्ति आदि रूपों में विराजमान है। वही सर्व शक्ति सम्पन्न देवी समस्त ज्ञान एवं कर्मन्द्रियों को मानव शरीर में नियन्त्रित करती है। इसी कारण उसे व्यष्टिदेवी भी कहते हैं। वह चित्ति रूप में भी संसार में व्याप्त है। (चित्ति रूपेण या कृत्स्न मेतद् व्याप्त स्थिता जगत्)। अतः देवी रहती माहात्म्य ऐसी रत्नजटित पिटारी की भांति है जिसमें अनेको रंगों के हीरे जुड़े हों जो अपनी अद्भुत छटा से विश्व को आलोकित कर रही है।

देवी माहात्म्य का विषय सात सौ श्लोकों में लिपि बद्ध किया गया है। वास्तविक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इस में श्लोकों की संख्या सात सौ से कहीं कम बैठती है क्योंकि ऋषिरुवाच, राजोवाच, माण्डेय उवाच, देव्योवाच आदि शब्दों को भी अलग श्लोकों में सम्मिलित किया गया है। सम्भवतः यह इसी कारण किया गया कि इस रचना को भगवत् गीता, जिसमें भी सात सौ श्लोक हैं, के साथ समीकरण किया जा सके। मार्कण्डेय पुराण की इस कृति को विशेष रूप से 'देवी माहात्म्य' कहा गया है (एतत्ते कचितं भूप देवी माहात्म्यमुत्तमम् 13.1)

सभी पुराणों में मार्कण्डेय पुराण ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें देवी महिमा का सर्वप्रथम वर्णन है। इस पुराण के अनुसार इसका कथानक महर्षि भृगु द्वारा च्यवन ऋषि को प्राप्त हुआ जिसने उसे दक्ष को सुनाया। मार्कण्डेय ऋषि को इसका ज्ञान दक्ष से प्राप्त हुआ, परन्तु इस पुराण का अंश जो देवी माहात्म्य के रूप में उपलब्ध है उसके वास्तविक वक्ता मुनिवर मेधा थे जिन्होंने यह कथा मार्कण्डेय ऋषि को सुनाई।

मध्यकाल में तन्त्र विद्या के विस्तार के साथ देवी माहात्म्य तान्त्रिक अनुयायियों का अति महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाने लगा। काली पूजा का विस्तार उत्तर भारत में इसी ग्रन्थ के अधीन हुआ जिस में बंगाल का विशेष स्थान है जहाँ दुर्गा पूजा आज भी बहुत धूम-धाम से मनाई जाती है। देवी माहात्म्य में जिस देवी का वर्णन है उसका प्रादुर्भाव, जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है। मुख्यतः ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं अन्य देवताओं के तेज द्वारा हुआ कहा जाता है। जिन्होंने उसे अपने अपने आयुध भी प्रदान किए। वह आदि शक्ति महामाया, चण्डिका, अम्बिका, भद्रकाली एवं महाकाली आदि अनेक नामों से जानी जाती है। यद्यपि इसी देवी की तुलना श्री (लक्ष्मी) से भी की गई है परन्तु मूलतः उसका मनन शिव की शक्ति दुर्गा, गौरी प्रादुर्भाव तथा काली के रूप में भी किया जाता है ! वास्तव में काली का जो चामुण्डा भी कहलाती है अपना एक अलग अस्तित्व है क्योंकि उसका प्रादुर्भाव देवी चाण्डिका के मस्तक से हुआ कहा जाता है। यह नाम चण्ड एवं मुण्ड दैत्यों के संहार के उपरान्त दिया था। इसकी सत्यता का प्रमाण नहीं हो

सका है। मार्कण्डेय पुराण ने एक ऐसी परम्परा का श्रीगणेश किया जिसमें प्रत्येक देवता की शक्ति को मातृक्राओं में सम्मिलित कर दिया गया। देवी माहात्म्य इस लिए वास्तव में दुर्गा देवी के उग्ररूप की स्तुति ही तो है और काली उसका एक अन्य रूप मात्र ही है।

अपने प्रादूर्भाव के समय देवी के दो हाथ ही थे। परन्तु धीरे-धीरे उसे चतुर्भुज, षट्भुज, दशभुज, द्वादश, अष्टादश भुजाओं सहित भी माना जाने लगा। महाकवि बाण की कल्पना तो पराकाष्ठा पर जा पहुँची गई जब उन्होंने देवी को 'भुजवन' अर्थात् अनगिनत भुजाओं वाली देवी के रूप वन्दना की। यही नहीं देवी को अन्य देवताओं द्वारा अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किए गए जिन का प्रयोग दुष्टों एवं दानवों के संहार में किया जाना था।

देवी माहात्म्य के बारे में एक धारणा यह भी है कि यह केवल दन्तकथा, लोक कथा अथवा किंवदन्ती पर आधारित है जिसे काव्यरूप में प्रस्तुत किया गया। मेरा निजी विश्वास है कि इस काव्य का कथानक उसी प्रकार किसी वास्तविक युद्ध पर आधारित है जैसे रामायण अथवा महाभारत ग्रन्थों की रचना में हुआ। परन्तु साक्ष्य के अभाव के कारण जिसे जुटाने के लिए मैंने भरसक प्रयत्न किया, कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी जो कुछ भी सामग्री इस सम्बन्ध में मैं जुटा पाया हूँ उसे ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अध्याय में मैंने पाठकगणों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। इस सम्बन्ध में देवी का चरित्र तथा महिषासुर की राजनीति एवं दूत की नियुक्ति, उसका अपने सेना नायकों से परामर्श, उसका अपने उच्च सेनापतियों एवं अन्य मुख्य अधिकारियों की सभा बुलाना, उसमें रखे गए प्रस्ताव पर वहस होना, युद्ध के समय शस्त्रास्त्रों का प्रयोग, तथा महिषासुर द्वारा अपने सैन्य बल की परेड का निरीक्षण करना, एक ऐसा घटनाक्रम है जो कल्पना मात्र नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह सब कुछ आधुनिक युग में भी होता है और यदि हम इन सब की इसलिए अनदेखी कर दें अथवा इन्हें तथ्य रहित माने क्योंकि यह प्राचीन काल में हुआ कहा जाता है तो वास्तविकता से मुँह मोड़ना होगा। अतः मेरे लिए यह मानना कठिन हो रहा है कि देवी माहात्म्य की कथा एक कोरी कल्पना मात्र थी।

इस सम्बन्ध में एक और बात विचारणीय है। इससे पूर्व कहा जा चुका है कि डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल यह मानते हैं कि महर्षि मार्कण्डेय ने इस काव्य की रचना तत्कालीन जन श्रुतियों अथवा लोक कथाओं के आधार पर की प्रतीत होती है। जैसे वाल्मीकि ने रामायण तथा व्यास देव ने महाभारत की रचना की थी। इस सम्बन्ध में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि सभी जन श्रुतियाँ अथवा लोककथाएँ सदैव काल्पनिक नहीं होती हैं। कभी-कभी तो इन के पीछे कुछ ऐसी अविस्मरणीय एवं अद्भुत साहस पूर्ण घटनाएँ होती हैं जो जनसाधारण के मस्तिष्क को झंझोड़कर रख देती हैं और वह इन्हें किसी न किसी रूप में अपनी आने वाली सन्तानों को गर्व से सुनाते हैं तथा यह क्रम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलता रहता है। इस सम्बन्ध में भविष्य में यदि सविस्तार खोज की जाए तो उसके सुखद परिणाम हो सकते हैं।

देवी माहात्म्य में देवी की आराधना कई एक नामों से की गई है, परन्तु महाभारत एवं अन्य ग्रन्थों में असुरों के भी कई नाम दिए हैं। महाभारत में तो असुरों के 47 नाम दिए गए हैं जिन का समुचित विवरण पुस्तक में यथा स्थान दिया गया है।

देवी महिषासुरमर्दिनी की आराधना भारत में सर्वत्र ही होती आई जबकि उत्तर भारत तथा बंगाल में विशेषरूप से इसकी अनेकों प्रतिमाएँ नवरात्रों में दशहरे के पर्व के समय बना कर नदियों अथवा समुद्र में विसर्जित की जाती है। मैसूर में तो इसकी आराधना विशेष रूप से होती है और इसकी प्रतिमा प्रतिवर्ष विशाल शोभा यात्रा के रूप में नगर में राजकीय ढंग से निकाली जाती है। देवी में आस्था रखने वाले भारत में ही नहीं अपितु भारत से बाहर देशों में प्रचलित रही है। इन देशों में अफगानिस्तान, श्रीलंका, कम्बोडिया तथा जापान आदि सम्मिलित हैं। इसी देवी से मिलती जुलती आराध्य देवियाँ पश्चिम भी एशिया के देशों में भी मिलती हैं। सिंधुघाटी सभ्यता के अवशेषों में भी इसके कुछ साक्ष्य मिलते हैं।

देवी का मुख्य रूप मातृशक्ति है। विभिन्न सांस्कृतिक इकाइयों के सम्पर्क में आने के कारण शक्ति उपासना में विविध पक्षों का विकास हुआ है। वह पहले एक माँ के रूप में कल्पित की गई। उसे ही संसार की उत्पत्ति का कारण माना गया उससे उसके सौम्य रूप का प्रचलन हुआ पश्चात् उसे सृष्टि की संरक्षिका स्वीकार किया गया और यथासमय उसे आसुरी शक्तियों की विनाशकारिणी भी माना जाने लगा। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व में एक भयानक रूप की भी कल्पना की गई और उमा तथा पार्वती के साथ साथ उसे दुर्गा, काली, कराली, महाकाली, चण्डिका तथा महिषासुरमर्दिनी आदि नाम भी दिए गए। बाद में उसके इन रूपों की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। विद्वानों का मत है कि देवी की इस प्रकार की कल्पना में विभिन्न लोगों एवं पर्वतों घाटियों तथा वनवासी आदि जातियों के धार्मिक विश्वासों और क्रियाओं ने अधिक योगदान दिया और उसकी पूजा विधियों और साधनाओं में उन के रूढ़िवाद ने अपना-स्थान बना लिया। धीरे-धीरे वे शक्ति-उपासना के अभिन्न अंग बन गए।

मेरी पहली पुस्तक महिषासुरमर्दिनी को 1988 में अंग्रेजी में प्रकाशन के पश्चात् ही मेरे अनेक मित्रों का यह आग्रह रहा है कि मैं उसका हिन्दी संस्करण भी निकालूँ जो कि सर्व साधारण के लिए भी उपयुक्त हो। उसी परामर्श को ध्यान में रखते हुए मैंने यह प्रयास किया है। इस पुस्तक को पूर्ण रूप से तो अंग्रेजी संस्करण का हिन्दी रूपान्तर नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस में कई स्थानों पर परिवर्तन एवं अभिवर्धन किए गए हैं तथा अनेकों अधिक तथ्य जोड़े गए हैं। आशा है यह पुस्तक भी सभी को समान रूप से रुचिकर लगेगी।

सर्व सत्त्व हिते देव सर्व सत्त्वमये ध्रुवे।

विद्या पुराण शिल्पानां जननी भूत धारिणी॥

वराह पुराण—94.58

(हे देवि ! आप सभी प्राणियों का हित करने वाली सर्व सत्त्वमयी, ध्रुवस्वरूपिणी, विद्यापुराण एवं शिल्पों की जननी तथा प्राणियों को धारण करने वाली हैं।)

नई दिल्ली

5, सितम्बर, 1995

शान्ति लाल नागर

आभार

किसी भी लेखक के लिए उसकी रचना के पूर्ण होने पर आभार प्रकट करना एक अत्यन्त सुखद अनुभूति है। कारण यह कि किसी भी रचना को करते समय एक लेखक को अनेक सम एवं विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है ! कई बार विषम परिस्थितियाँ जिन्हें वह वाञ्छित समझता है वह उस के लिए वरदान बन कर प्रेरणा का स्रोत सिद्ध होती है जबकी बाह्य रूप से मम देखने वाली परिस्थितियाँ साधक न बन कर बाधक सिद्ध होती हैं। यह मेरे ही साथ नहीं अर्थात् अनेक ऋषियों, मुनियों तथा देवताओं के साथ भी हो चुका है : उदाहरणार्थ आदि कवि महर्षि वाल्मीकि, पहले व्याध का कर्म करते थे ! अनेक जीवों का घात किया करते थे जिसमें उनके कुटुम्ब का पालन होता था ! एक बार सप्तऋषियों ने अकस्मात् मार्ग में भेट हुई। उनकी हत्या के लिए व्याध तत्पर हुआ, तब सप्तऋषियों ने उस व्याध से कहा कि जिन कुटुम्बियों के लिए वह पाप कर्म करता है वह उसके पाप के भागीदार कभी नहीं होंगे। जब कुटुम्ब जनों से व्याध ने पूछा कि क्या वह उनके पाप के भागीदार बनेंगे तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस मानस आघात ने उस पापी व्याध को एक तपस्वी के रूप में परिवर्तित कर दिया तथा कालान्तर में वही व्याध एक महर्षि के रूप में उभर कर सामने आया। जन साधारण को हत्या करने में जिस मानव को तनिक भी संकोच नहीं था वही एक दिन व्याध द्वारा एक क्रौञ्च पक्षी की निर्मम हत्या से द्रवित होकर चीत्कार कर उठा ! उससे उस पक्षी का करुण क्रन्दन न देखा गया और पीड़ित मन से उसने उसे श्राप दिया।

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमा शाश्वती समा ।

यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधी काम मोहितम् ॥

वाल्मीकि रामायण

(निषाद ! तुझे नित्य निरन्तर - कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तू ने इस क्रौञ्च के जोड़े में से एक की जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के हत्या कर दी !)

इसी प्रकार वाल्मीकि ऋषि का व्यक्तित्व दोनों विषम परिस्थितियों से उजागर हो गया। पहली, वह स्वयं व्याध था तथा सप्त ऋषियों के वध हेतु जब वह तैयार हुआ तो उसे वास्तविकता का बोध हुआ ! दूसरी विषम परिस्थिति क्रौञ्च पक्षी का वध। इन दोनों विषम घटनाओं ने महर्षि की अन्तरात्मा को झकझोर कर रख दिया तथा उनमें उस महान् आत्मा का स्वरूप उजागर हुआ कि वह आदि कवि होने का श्रेय प्राप्त कर सके ! कुछ ऐसी ही विषम अवस्थाओं से हो कर व्यास, मार्कण्डेय, सूरदास, तुलसीदास आदि अनेकों देव पुरुषों को निकलना पड़ा !

तुलसीदास की कथा इस सम्बन्ध में विशेष महत्व रखती है ! विवाह के पश्चात् गोस्वामी जी अपना पत्नी से बहुत आसक्त हुए एक बार जब वह उनकी इच्छा के विरुद्ध अपने मायके चली गई तो उनसे यह वियोग सहा न गया और अभी राम को ही अपने ससुर के घर चल दिए ! मार्ग में यमुना नदी की बाढयुक्त तीव्र तरंगों से युद्ध कर जब गोसाई जी का साक्षात्कार अपनी पत्नी से हुआ तो वह उन्हें प्रताड़ना करती हुई बोली।

धिग धिग धिग तोहि प्राण पियारे ।

चाम हाड़ अति निरल हमारे ॥

ऐसो मन जो लागत रामै ।

तौ सुधरत तिहरे सब कामै ।

(हे प्रीतम तुम को धिक्कार है जो मेरा चाम हाड़ का बना शरीर है और उसमें आपकी ऐसी आसक्ति है ! यदि ऐसी ही प्रीति श्री राम में करते तो आप के सब कार्य सिद्ध हो जाते !)

इन वचनों का गोस्वामी जी की अन्तरात्मा को झकझोर कर उन की जीवन धारा ही बदल दी तथा राम भक्त हो कर उन्होंने रामचरितमानस रूपी पवित्र एवं महान् ग्रन्थ की रचना समाज को दी। जिससे लोग युग युगों तक लाभान्वित होते रहेगे।

अपना अस्तित्व तो उन भारत की परमपावन महान् विभूतियों को चरण रज की भी समता नहीं कर सकता। परन्तु उनकी जीवनियों से प्रेरणा अवश्य प्राप्त कर सकता है। जो अधिक परिश्रम उन्होंने अपनी कृतियों को संजोने में किया। तत्कालीन समाज में तथा विद्वद्वर्ग में उन्होंने अपना स्थान कैसे प्राप्त किया, तथा उस उच्च स्थान की प्राप्ति में उन्हें किन किन यातनाओं का सामना करना पड़ा अथवा आत्म परीक्षाओं को पार करना पड़ा वह जन साधारण के लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा ! ऐसी ही कुछ विषम परिस्थितियों का अनुभव जीवन में कई बार होता है परन्तु एक ऐसी घटना से मुझे उस समय साक्षात्कार हुआ जब अपने ही स्वजनो को जिन्हें मैं बाल्यकाल से ही ईश्वर के समान बन्दनीय मानता रहा तथा जिनका मैं ने कभी स्वप्न में भी अनिष्ट नहीं सोचा जिन्होंने उन्होंने ने अपने ही स्वार्थ के कारण इतना अपमान एवं निरादर किया जिसने मुझे पूरा रूप से झकझोर दिया। इस परिस्थिति की पराकाष्ठा उस समय हुई जब अपने ही एक स्नेही ने यह कह दिया कि जितनी पूजा अर्चना तथा सम्मान आपने अपने स्वजनो को बाल्यकाल से दिया यदि भगवान् की इतनी पूजा करते तो वह कभी के प्रकट हो कर आप को सब दुखों से निवृत्त कर परम सत्य की प्राप्ति करा देते ! बात अक्षरशः सत्य थी ! इसी से मन क्षुब्ध हो लिखने की ओर प्रेरित हुआ तथा अनेक रचनाओं का कारण बना ! अतः मैं सर्वप्रथम उन सभी को नतमस्तक हूँ जिन्होंने मेरे लिए अत्यन्त विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कीं जिन्होंने मुझे लेखनी उठाने को विवश कर दिया वास्तव में उन बन्धुओं का अत्यन्त आभारी रहूँगा, जिन्होंने परम आक्रोश की स्थिति में अपने धीरे धीरे चरणों की रज से मेरे मस्तक को सुशोभित कर मुझमें एक ऐसी चेतना जगाई जो मरणात् की भाँति मुझे जीवन पर्यन्त प्रेरणा देती रही है। मैं उनकी चरण रज पा कर धन्य हो गया। इसमें कोई अचरज की बात नहीं है क्योंकि परम श्रद्धेय गोस्वामी तुलसी दास जी ने भी अपनी अमृतमयी वाणी में तो ऐसे जनों को सादर नमस्कार करते ही रामचरितमानस की रचना की :-

बहुति बंदि खगण सतभाए, । जो विनु काज दिहिनेहु बाये ॥
परहित हानिलाभ जिन्हु करे । उजरे हर्ष विषाद बसेरे ॥

(अब मैं उन अशुभजनों के गुणों की वन्दना करता हूँ जो बिना प्रयोजन ही दाहिने से बाएँ हो जाते हैं। जो असज्जन पुरुष हैं वह पराए हित की हानि में अपना लाभ समझते हैं विनाश से प्रसन्न तथा समृद्धि से दुखी होते हैं।)

इस कृति की रचना में मेरी परम पुनीतात्मा, अत्यन्त वात्सल्यमयी माँ की शुभाशीष भी एक प्रेरणा का सजीव स्रोत रहा है! आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनकी अदृश्य अनुकम्पा बनी रहेगी! वास्तव में माँ के वात्सल्य की तुलना संसार में किसी से भी नहीं की जा सकती। इसीलिए तो कहा गया है।

नास्ति मातृ समा छाया नास्ति मानृ समा गति।

नास्ति मातृ समं त्राणं नास्ति मातृ समा प्रभा॥

इसके अतिरिक्त इस कृति की रचना में आदरणीय जगतपति जोशी, नरेश चन्द्र अग्रवाल तथा बी. एन. टण्डन की शुभ कामनाओं का विशेष स्थान है। मैं उनका इसके लिए सदैव आभारी रहूँगा।

डा. एच. एन. सिंह का योगदान इस कृति की रचना में कम सराहनीय नहीं है। उन्होंने अपना मूल्यवान समय देकर न केवल समय-समय पर मेरा मार्ग दर्शन किया बल्कि इस कृति का सूक्ष्म रूप से अध्ययन कर उसे उचित दिशा प्रदान की। मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। मैं अपने परम स्नेही रमाकान्त पाण्डेय का भी ऋणि हूँ। जिन्होंने निस्वार्थ भाव एवं लगन से इस रचना की पूर्णता में मेरी सहायता की। पूर्णिमा रे ने भी हर पग पर इस कृति के संयोजन में मेरी जो सहायता की उसके लिए वह श्रद्धा की पात्र है।

इस कृति के चित्र भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, अमेरिकन इन्स्टीट्यूट फार इन्डियन स्टडीज, वाराणसी तथा मथुरा संग्रहालय से प्राप्त हुए हैं। मैं इन सभी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

नई दिल्ली।

५, सितम्बर, १९९५

शान्ति लाल नागर

विषयानुक्रमणिका

१. प्रारम्भिक स्वरूप :-		१२-१७
२. पूजा परम्परा :-	ऋग्वेद, यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक साहित्य, उपनिषदों, गृह एवं श्रौत सूत्रों, पतञ्जलि आदि ग्रन्थों का साक्ष्य; पुरातत्व अवशेष, मूर्ति निर्माण परम्परा तथा उनका वर्गीकरण-चित्रजा, लेम्यजा, पाकजा, शस्त्रोत्कीर्णा आदि।	१८-२३
३. मातृ शक्ति :-	उसकी प्राचीनता एवं विकास; प्राचीन साहित्य तथा पुरावशेषों का साक्ष्य-नारी पूजा तथा कुमारी पूजा का महत्त्व।	२४-२९
४. देवी-महिषासुरमर्दिनी (प्रादुर्भाव दिव्य रूप में तथा देवताओं के तेज से) :-	देवी का प्रकट होना : केन उपनिषद्, रामायण, देवी भागवत, मार्कण्डेय, वामन, वराह, मत्स्य, शिव, आदि पुराणों का साक्ष्य; वस्त्राभूषण, सिंह वाहन, परिचारिकाएँ शास्त्रास्त्र, देवी के सौन्दर्य का वर्णन, देवी का विराट स्वरूप।	३०-४६
५. ऐतिहासिक पर्यवेक्षण :-	वामन पुराण का साक्ष्य, विन्ध्य पर्वत श्रृंखला का महत्त्व, महर्षि अगस्त्य का विन्ध्याचल को पार करना, महिषासुर एवं महिष्मती, प्राचीन लोक कथाओं का देवीमहात्म्य के आख्यान परप्रभाव, देवी का शिव दूती स्वरूप, वैप्रचित्त दानवों का अस्तित्व देवी का रक्तदन्तिका एवं शाकम्बरी शताक्षी तथा अयोनिजा स्वरूप, देवी प्रतिमाओं का कुषाण काल में महत्त्व, देवी का भ्रामरी स्वरूप तथा उसका ऐतिहासिक महत्त्व देवी महात्म्य का गुप्त कालीन होने की सम्भावना बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान का साक्ष्य, हरिवंश प्रद्वन पुराण एवं महाभारत के साक्ष्य आदि।	४७-५२
६. देवी महात्म्य :-	महिषासुरमर्दिनी के सन्दर्भयुक्त अध्यायों की विवेचना तथा अन्य पुराणों में वर्णित देवी चरित का तुलनात्मक अध्ययन।	५२-५७
७. आसुरी शक्तियाँ असुर, दैत्य, दानव तथा राक्षस :-	आसुरी शक्तियों का उद्गम एवं विकास, विभिन्न सूत्रों का साक्ष्य, महाभारत में वर्णित असुर, दैत्य एवं राक्षस आदि।	५८-६३
८. महिषासुर-उत्पत्ति, चरित तथा विनाश :-	जन्म, विभिन्न पुराणों का साक्ष्य, दनुवंश तपस्या, सन्देश वाहक दूत, राजनैतिक प्रतिष्ठा, आपत्कालीन बैठक, शास्त्रास्त्र, युद्ध के वाहन, वाद्य यंत्र, युद्ध की तैयारी, युद्ध स्थल, दैत्य सेना का विनाश, असुर सेनापतियों का विवेक, महिषासुर का विवेक, महिषासुर वध, महिष्मती तथा उसकी वंशवली,	६४-७४
९. संस्कृत साहित्य की देन :-	विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों में देवी का स्वरूप-अर्थशास्त्र, मृच्छकटिकम्, कुमारसम्भव, रघुवंश, विक्रमोर्वशीयम्, चारुदत्तम्, स्वपनवासवदत्ता, दशकुमारचरित, नागानन्दम्, हर्षचरित, कादम्बरी, मालतीमाधव, उत्तररामचरित, प्राकृत गौड़वहो, द्वयाश्रय माहकाव्य, विक्रमांकदेवचरित, राजतरङ्गिणी, पृथ्वीराजविजय, भोजप्रबन्ध, कीर्तिकौमदी तथा साहित्यदर्पण।	७५-७७
१०. प्राचीन लेखों में देवी का स्वरूप :-	ई० १७८ से बारहवीं शती तक के अभिलेखों में देवी की प्रस्तुति।	७८-८३
११. अन्य धर्मावलंबियों की दृष्टि में :-	ग्रीक साहित्य, अर्द्धनारीस्वरूप में शिव शक्ति की पूजा, चीनी यात्री फाह्यान तथा ह्युनत्सांग का साक्ष्य, अल्वेरूनी, अलउत्वी, जैनुद्दीन बर्नी, अबुल फजल, तथा अन्य मुस्लिम विद्वानों के साक्ष्य।	८४-८५
१२. प्रतिमालक्षण :-	मुखाकृति, मस्तक एवं केश सज्जा, नेत्र, केश, आभूषण एवं अलंकार, परिधान, वर्ण, शारीरिक लक्षण, आयुध एवं हस्त मुद्राएँ, भुजाएँ, आसन वाहन,	८६-९४
१३. भारतीय कला में प्रस्तुति	देवी की मृण्मयी, धातु, प्रस्तर, काष्ठ, हाथी दांत तथा अन्य धातुओं से बनी प्रतिमाएँ, उनका प्रारम्भिक स्वरूप तथा विकास।	९५-१०२
१४. भारतीय सिक्के एवं मुद्राएँ	देवी की प्राचीन भारतीय सिक्कों तथा मुद्राओं में प्रस्तुति एवं विभिन्न स्वरूपों का दिग्दर्शन।	१०३-१०४
१५. जैन धर्म में देवी का स्वरूप	विभिन्न जैन ग्रन्थों का साक्ष्य	१०४-१०६
१६. बुद्ध धर्म में देवी का स्वरूप	विभिन्न बौद्ध साहित्य एवं साहित्यकारों का साक्ष्य।	१०६-१०७
१७. विलक्षण एवं विकृत आकृतियाँ	विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों, देश एवं विदेशी कला का साक्ष्य	१०७-१११
१८. ऋषियों की भूमिका	कात्यायन, अगस्त्य, मेधा एवं मार्कण्डेय आदि ऋषियों द्वारा देवी का चरित उजागर करने की भूमिका	१११-११३
१९. विदेशों में देवी की प्रस्तुति	फ्रांस, नूबिया, उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त, अफगानिस्तान, श्रीलंका, इन्डोनेशिया, बङ्गलादेश नेपाल तथा जापान में देवी की उपस्थिति।	११३-११५
२०. सिद्ध पीठ एवं शक्तियाँ	सिद्ध पीठस्थलों का भारत में उद्गम एवं विकास।	११६-११९
२१. शक्ति उपासना में जन्म, मन्त्र एवं यन्त्र/चक्र की भूमिका	शक्ति, तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र/चक्र की व्याख्या तथा देवी पूजा में इन सभी का स्थान।	११९-१२५

२२. उपसंहार	१२६-१२७
२३. परिशिष्ट	
१. देवताओं के तेज से देवी के विभिन्न अंगों का प्रादुर्भाव-	१२७-१२८
२. विभिन्न देवताओं द्वारा देवी को शत्रास्त्र प्रदान-	१२८
३. पुराणोक्त असुर सेनापतियों की सूची।	१२८-१२९
४. (क) (ख) देवी भागवत में वर्णित सिद्धपीठ एवं शक्तियाँ	१३०-१३२
५. पीठ निर्णय एवं महापीठ एवं उपपीठ।	१३३-१३५
६. शिव चरित में वर्णित शक्ति पीठ।	१३५-१३७
७. तन्त्र चूड़ामणि में वर्णित शक्ति पीठ।	१३७-१३९
८. यन्त्र :-	
(१) काली यन्त्र	१४१
(२) श्रीयन्त्र	१४२
(३) अन्तिचक्र से प्राप्त एक चान्त्रिक मुद्रा	१४२
(४) बंगला यन्त्र	१४२
९. तन्त्र :-	
(१) अकडमचक्र	१४३
(२) कुलाकुल चक्र	१४४
(३) राशि चक्र	१४५
(४) कूर्म चक्र	१४६
(५) शिव चक्र	१४७
(६) विष्णु चक्र	१४८
(७) ब्रह्म चक्र	१४९
(८) दैव चक्र	१५०
(९) उल्का चक्र	१५१
(१०) वाला चक्र	१५२
(११) चतुश्चक्र	१५३
१०. अन्दामंगल ग्रन्थ में वर्णित शक्ति पीठ स्थल।	१५४
११. बृहन्नील नामक बंगला ग्रन्थ में वर्णित शक्ति पीठ।	१५५
१२. पीठ निर्णय (महापीठ निरूपण) के शक्ति पीठ स्थल।	१५६
१३. पीठनिर्णय का संशोधित स्वरूप।	१५७
१४. देवी के पुराणों में वर्णित देवी के १०८ नाम।	१५९
१५. विभिन्न ग्रन्थों में दक्ष प्रजापति के आख्यान का विकास।	१६०
१६. विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित-देवी प्रतिमालक्षण।	१६२
१७. कालिका पुराण में वर्णित देवी पूजा विधि।	१६६
१८. तन्त्र विज्ञान-भाग-२, में वर्णित देवी पूजन विधि।	१७१
१९. सैयद अहमद खान द्वारा दिल्ली के कालका देवी मन्दिर की व्याख्या	रेखाचित्र (क), (ख)
20 Bibliography.	173

प्रारम्भिक स्वरूप

सा नित्या सर्व दैवास्ते देवकार्यार्थं सिद्धये।
नाना रूपा त्वेक रूपाजायते कार्य गौरवात्॥
तथ नटो रंगगता नाना रूपो भवत्यमौ।
एक रूप स्वभावोपि लोक रञ्जन हेतवे॥
तथेशा देव कार्यर्थमरूपाऽपि ग्वलीलया।
करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च॥

देवी भागवत पंचम स्कन्द-अध्याय-२

(वह अनादि शक्ति एक रूपा होकर सभी देवताओं की भीषण कार्यसिद्धि के लिए अनेक रूप धारण करती है। जिस प्रकार स्वाभाव से जड़ का एक रूप होने पर भी वह मान को प्रसन्न करने के लिए अनेक रूप धारण करता है उसी प्रकार स्वभाव से एक रूपा हो कर भी वह निर्गुणा देवी अरूपा होकर भी देवताओं के कार्यसिद्धि के लिए अपनी लीला द्वारा सत्त्वादि गुण युक्त अनेक रूप धारण करनी है)।

नितांत एवं अविरल संघर्ष का नाम ही मानव जीवन है। यह संघर्ष मनुष्य के जन्म लेने के साथ ही आरम्भ होता है और संसार में परिनिर्वाण के साथ ही समाप्त होता है। इस शाश्वत संघर्ष में मानव का साक्षात्कार बाहरी एवं भीतरी अनेक परस्पर विरोधी शक्तियों से होता है जो समय-समय पर उसे प्रभावित करती है। इन्हीं शक्तियों के प्रभाव से वह कभी अपने विवेक एवं साधना से विमुक्त हो पाता है। परन्तु कभी-कभी वह इन शक्तियों के चक्रव्यूह में इतना उलझ कर स्वयम् अपने आप को निर्बल और असहाय पाता है। यही शक्तियाँ मानव को ही नहीं देवताओं को भी उसी प्रकार प्रभावित करती रहती है जैसे मानव को। पुराणों में ऐसे अनेकों विवरण मिलते हैं जिनमें देवताओं को असुरों ने स्वर्ग से निष्कासित कर दिया और वे वनों में मारे-मारे फिरते रहे। उनकी इस पीड़ा को दूर करने में देवीशक्तियाँ किसी न किसी रूप में अवतरित हुईं। यहाँ यह जानना भी उचित होगा कि वह शक्तियाँ हैं कैसी जो शक्तियाँ मानव कल्याण में कार्यरत हैं वह देवी शक्तियाँ कहलाती हैं और जो उनके विपरित विनाशकारी प्रभाव रखती हैं वह आसुरीशक्तियाँ कहलाती हैं।

अनादि काल से ही इन देवी एवं आसुरी शक्तियों में परस्पर संघर्ष चलता आया है। कभी देवी शक्तियाँ प्रबल हो जाती हैं और धर्म को पुनः स्थापना करती हैं तो कभी आसुरी शक्तियाँ प्रबल होकर समस्त मानव समाज को ही नहीं अपितु देवताओं को भी प्रताड़ित करती हैं। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है।

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तादात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मं संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥

भगवद्गीता ही नहीं आसुरी शक्तियों के प्रकोप से साधु जनों के रक्षार्थ देवी शक्तियों का उदय अन्य पुराणों में भी वर्णित है। यही भावना मार्कण्डेयपुराण में दर्शाई गई है जिसमें देवी ने इस सम्बन्ध में, सिंहनाद इस प्रकार किया है।

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि संक्षयम्॥

देवी माहात्म्य-११.५४-५५

देवी भागवत में भी देवी इमी सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से घोषणा करती हैं कि साधुजनों के दुख दूर करने के लिए और दानवों को नष्ट करने के लिए वह सदैव संसार में अवतरित होती हैं।

यदा यदा हि साधुनां दुखं भवति दानव ।

तदा तेषां च रक्षार्थं देहं संधारयाम्यहम् ॥

पंचम स्कन्द - 1822

उपरोक्त संदर्भ से यह स्पष्ट है कि हमारे धार्मिक ग्रन्थों में देवी शक्तियों का युगयुगान्तर में असुरी शक्तियों से साधुजनों की रक्षा के लिए अवतरित होना दर्शाया गया है। इन शक्तियों में देवी और देवता दोनों ही सम्मिलित हैं। यह शक्तियाँ भारतीय धार्मिक क्षितिज पर अनादि काल से विद्यमान थीं। इस सम्बन्ध में वैदिक काल पर यदि दृष्टि डाली जाए तो यह स्पष्ट होगा कि तत्कालीन देवताओं जैसे इन्द्र, वरुण, प्रजापति, रुद्र आदि के साथ-साथ उषा, वाक्, सरस्वती आदि देवियों की भी आराधना प्रचलित थी। वास्तव में भारत एक धर्मप्रधान देश रहा है जिसमें अनेक देवी देवताओं की पूजा होती रही है। इन में से कुछ एक की मान्यता कालान्तर में लुप्त प्रायः सी हो गई परन्तु कुछेक देवी देवता ऐसे भी रहे हैं जिनकी मान्यता में एक बार भारतीय धार्मिक क्षितिज पर अम्युदय के पश्चात् कभी-कभी नहीं आई है। इन्हीं देवियों में मातृ-शक्ति का स्थान सर्वप्रथम रहा है। उमा-हेमवती की भी चर्चा उत्तर वैदिक साहित्य में की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूत्र साहित्य की रचना के समय उसका सम्बन्ध रुद्र शिव के साथ जोड़ दिया गया। इस प्रकार बढ़ते हुए शैव धर्म के सम्पर्क में आने से और देवी को भगवाने शिव की अर्द्धाङ्गिनी और मातृ रूप में प्रस्तुति उसकी आराधना एवं मान्यता में पर्याप्त रूप से सहायक हुई।

मातृपूजा की प्रथा के अवशेष सिन्धु घाटी की सभ्यता में पर्याप्त रूप से मिलते हैं। यह उस काल में प्रजनन क्रिया की देवी मानी जाती थी। उस समय उनकी मूर्तियों के साथ-साथ विभिन्न प्रतीकों की भी कल्पना की गई थी। हड़प्पा मोहनजोदड़ों एवं तत्कालीन अन्य सांस्कृतिक स्थलों से मातृ देवी की मृण्यमी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिन की आराधना उस युग में की जाती रही है। भारत ही नहीं भारत से बाहर भी मातृ देवी की पूजा ईसा से सहस्रों वर्ष पूर्व प्रचलित थी। जिन के अवशेष आधुनिक उत्खनन में मिले हैं। एक अन्य रोचक विषय यह है कि देवी माहात्म्य में देवी को शाकम्भरी रूप में प्रस्तुत किया है जिससे वह क्षुदा का अन्त करती है। सिन्धु घाटी के अवशेषों में एक ऐसी मुद्रा भी है जिसमें एक स्त्री की कोख से वृक्ष का उत्पत्ति दिखाई गई है। क्या यह देवी का शाकम्भरी रूप तो इस समुद्रा में प्रदर्शित नहीं है यह विचारणीय विषय है।

महालक्ष्मी अथवा श्री को राष्ट्र कहा गया है। सम्भवतः प्राचीन भारत में महान् राजनयमर्मज्ञ आचार्य कौटिल्य चाणक्य ने इसी लिए "राष्ट्रस्य मूलमर्थः" की धारणा का प्रतिपादन किया था। शतपथ ब्राह्मण (6.7.3.6) में "श्रीवै राष्ट्रम्" की जो उक्ति है उसमें अथवा लक्ष्मी और राष्ट्र में ऐक्यभावना का अभिप्राय अन्तर्गर्भित है श्री को लक्ष्मी कहने का तात्पर्य श्री में समस्त ऐश्वर्यलक्ष्मी अथवा ऐश्वर्य का समन्वय है। वस्तुतः श्रीमद् भगवद्गीता की विभूति और ब्राह्मण वाङ्मय का लक्ष्य एक ही अभिप्राय काद्योतक शब्द हैं। देवी और लक्ष्मी में कोई भेद नहीं और न ही श्री और लक्ष्मी में ही कोई भेद है। महिषासुरमर्दिनीमहालक्ष्मी की भावना में श्री सर्वत्र व्याप्त है और विश्वरूपता की भावना से भरी है। सम्भवतः इसी लिए कहा गया है :—

जगदुत्पादिका शक्तिस्तव प्रकृतिरिष्यते

सैव नाम सहस्रैस्तु लक्ष्मी श्रीरिति कथ्यते ॥

मार्कण्डेय पुराण में देवी को महालक्ष्मी एवं लक्ष्मी के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। यजुर्वेद के पुरुष सूक्त ने श्री एवं लक्ष्मी (श्रीश्च लक्ष्मीश्च) को नारायण पुरुष विष्णु की ही शक्तियों के रूप में वर्णन किया है। श्री का प्राण तथा लक्ष्मी को भूत की संज्ञा भी दी गई है। वास्तव में श्री-लक्ष्मी एक प्राचीन देवी मानी गई है जो भरहुत, सांची, अमरावती एवं मथुरा के पाषाण खण्डों में 200 वर्ष ईसा पूर्व से दिखाई जाती रही है। इन उदाहरणों में देवी कमलासन स्थित है और दोनों ओर एक हाथी सूंड में कलश उठाए उस पर जल डाल रहा है। कलान्तर में उसका अस्तित्व लक्ष्मी से जुड़ गया तथा वह कुबेर अथवा विष्णु की भार्या के रूप में आने लगी। इसी लक्ष्मी के विपरीत गुणों वाली देवी अलक्ष्मी मानी जाती है औरी बौद्ध जातक कथाओं में वह कलकत्री के रूप में प्रसिद्ध है। अथर्ववेद (7.120.4) में पुण्यलक्ष्मी एवं पापलक्ष्मी के नाम आते हैं और निश्चय ही पाप लक्ष्मी अलक्ष्मी की ही स्वरूप है।

ऋषि मार्कण्डेय ने देवी माहात्म्य में मनसावाचा कर्मणा देवी की शरणगति की भावना और साधना की अभिव्यक्ति की है। मार्कण्डेय पुराण का 79 वां अध्याय इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इसमें "नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः" के प्रसंगों का यही उद्देश्य है। या देवी सर्वभूतेषु विष्णु मायेति शण्डिता आदि बारहवें श्लोक से लेकर चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् आदि 37 वें श्लोक पर्यन्त नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः की ध्वनि माधुरी में देवी की शरणव्रज्या की संगीत माधुरी उसके उपासकों को आनन्द चिन्तन एवं अनुभव प्रदान करती है। वह लेखन का

विषय न रह कर आन्तरिक चिन्तन एवं अनुभव का है। इस विषय पर जो भी और जितना भी लिखा जाये कम है इसी अध्याय में देवी की म्नांत सर्वप्रथम विष्णु माया के रूप में की गई है। विष्णु तो साक्षात् प्रकाश स्वरूप परवहन है और उन की माया जिसे ध्यान में सर्वत्र व्यापक चिति रूप (श्लोक 37) कहा गया है, उन की शक्ति है जिसे काश्मीर के त्रिकदर्शन की परिभाषा में विमर्श कहा जाता है। प्रकाश विमर्शात्मक तत्त्व ही विष्णु माया तत्त्व है। यही शक्ति, लक्ष्मी रूप में समस्त भूत वर्ग का सृष्टि और स्थिति की लीला में लीन रहा करती है। यही परा प्रकृति है। यही महामाया है और इसी का एक स्वरूप चेतना है जिसके विश्वरूप में बुद्धि, श्रद्धा, नीति तथा दया प्रभृति अन्तर्भूत हैं।

देवी महात्म्य में देवी को “त्रयी देवी” की संज्ञा दी गई है। जिसकी तुलना वैदिक युग की त्रयी विद्या से की जाती है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार समस्त वैदिक तत्त्वज्ञान इसी त्रयी विद्या पर आधारित है जिस की पुष्टि मनु में इस प्रकार की है।

अग्निवायुरविष्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्धयर्थभृगयजुः सामलक्ष्मणम्॥

मनुस्मृति 1. 23

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी त्रयी विद्या का उल्लेख है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार ऋक् यजु एवं साम वेद इन्हीं तीनों विद्याओं के प्रतीक :—

ऋचा मूर्तिर्याजुषी गतिः साममयन्तेजः॥

गोपथ ब्राह्मण 1.2.9

इसी त्रयी विद्या की झलक तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी देखने को मिलती है जो इस प्रकार है।

ऋग्यजुं जाता सर्वसो मे मूर्तिमाहुः सर्वा गतिर्याजुषी हेव। शाश्रवत्।

सर्वतेजाः सामारूप्यं ह शश्रवत्सर्वं चंद ब्रह्मणा हैव सृ।

उधर शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को ब्राह्मण्ड की त्रयी विद्या का प्रतीक माना है। उसमें तो यहाँ तक कहा गया है कि निरक्षर लोग भी यह जानते थे कि स्वर्ग में सूर्य त्रयी विद्या का प्रतीक है :—

सैषा त्रयी विद्या तपित तद्धेतदप्य विद्वांस आहुस्त्रायेव विद्या तपतीति।

शतपथ ब्राह्मण, 10.5.2.2

देवी का प्रादुर्भाव देवीमहात्म्य तथा अन्य पुराणों में देवताओं के तेज द्वारा हुआ माना गया है परन्तु देवी भागवत में उसे आदि शक्ति के रूप में दर्शाया गया है जिससे विश्व की सृष्टि स्थिति एवं संहार होता है :—

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णु रिद महेशः।

शक्त्या तवैव हरते ननु चान्त काले॥

ईशा न तेऽपि च भवन्ति तया विहीना।

स्तस्या त्वमेव जगतः स्थिति नाशकर्त्री॥

कीर्तर्मति स्मृति गति करुणा दया त्वम्।

श्रद्धा घृतिश्च वसुधा कमला जपा च॥

देवी भागवत, पंचम स्कन्द

(आप की शक्ति के बल से ब्रह्मा जगत की सृष्टि विष्णु जगत का पालन और महेश्वर प्रलय काल में जगत का संहार करते हैं। आप की शक्तिकीर्ण होने से कभी इस विश्व की सृष्टि स्थितिहत और संहार करने में समर्थ नहीं होते। अतएव देवी आप ही इस अखिल जगत की स्थिति और विनाश का एक मात्र कारण हो। आप ही इस जगत की कारण स्वरूप हैं और आप में अधिष्ठित हैं। विश्व में कीर्ति, मति, स्मृति गति, करुणा, दया, श्रद्धा आदि शक्तियाँ आप में ही विद्यमान हैं।)

पुराण काल में देवी को सर्वशक्तिमयी कहा है क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उसी शक्ति को अधिष्ठात्री देवी मानते हैं और उसी की समय समय पर आराधना भी करते हैं। देवी महात्म्य में देवी के दो स्वरूप विद्यमान हैं। पहला स्वरूप है देवी की उत्पत्ति जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवताओं के तेज से हुई :—

निर्गतं सुमहत्तेजः स्तच्चैक्यं समगच्छत (2.11)

उन सभी देवताओं का तेज मिलकर एक हो गया। उस महान तेज का वह पुञ्ज देदीप्यमान पर्वत सा जान पड़ा जिस की ज्वालाएँ दशों दिशाओं में व्याप्त हो रही थीं। एकत्रित होने पर वह तेज पुञ्ज एक नारी के रूप में परिणत हो गया और अपने प्रकाश से उस ने तीनों लोकों को प्रकाशित किया। तत्पश्चात् सभी देवताओं ने उस देवी की जयजयकार बड़े भक्ति भाव से की।

जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥

तुष्टुवुर्मनचश्चैनां भक्ति नम्रात्म मूर्तयः ।

देवी माहात्म्य - 2.34.35

यही नहीं स्मस्त देवताओं में उस देवी की भक्ति भाव से महिषासुरवध के उपरान्त आराधना की जिसका उल्लेख देवीमाहात्म्य के चतुर्थ अध्याय में मिलता है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि यह किस प्रकार हुआ कि वही देवी जिसका प्रादुर्भाव देवताओं के तेज से हुआ उसी देवी की आराधना देवतागण भक्तिभाव से करने लगे। यह एक सांसारिक प्रश्न है और इसका उत्तर भी आध्यात्मिक न हो कर व्यवहारिक अथवा सांसारिक ही हो तो उचित होगा।

व्यवहारिक जीवन में एक परिस्थिति हमें कई बार देखने को मिलती है। उसका नाम है जन शक्ति, यह जन शक्ति प्रत्येक मानव में निहित है। चुनाव जन शक्ति के प्रतीक हैं। जनता अपनी शक्ति का प्रयोग करके सदस्य चुनती है और वही सदस्य जब मंत्री अथवा प्रधान मंत्री बन जाते हैं तो जो जन समूह उसे चुनता है उसी के द्वारा वह आदरणीय हो जाता है। अतः यदि देवताओं के तेज से देवी का प्रादुर्भाव हुआ और कालान्तर में उनके द्वारा वह वन्दनीय हुई तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

चण्डी माहात्म्य में देवी को कई नामों से स्मरण किया गया है और प्रत्येक नाम देवी के किसी न किसी पराक्रम आदि से जुड़ा है। देवी के विभिन्न नामों का स्पष्टीकरण इस प्रकार से है :—

1. दुर्गा—जब देवी दुर्गा नाम राक्षस का वध करती है तथा असुरों के दूत से वार्तालाप करती है।
2. दशभुजा—जब असुरों के विनाश के लिए वह दस भुजाएँ धारण करती है।
3. महिषासुरमर्दिनी—जब वह महिषासुर का मर्दन करती है।
4. सिंहवाहिनी—जब वह सिंह पर आरुढ़ होती है।
5. जगद्धात्री—जब वह विश्व अथवा ब्रह्माण्ड को धारण करती है।
6. काली—इस रूप में देवी रक्तबीज का वध करती है।
7. मुक्तकेशी—इस रूप में वह क्रूर राक्षसों का नाश करती है।
8. तारा—इस रूप में वह शुम्भ का विनाश करती है।
9. छिन्नमस्ता—इस रूप में वह निशुम्भ का नाश करती है।
10. जगद्ध्वारी—इस रूप में देवता उसके द्वारा असुरों के नाश के पश्चात् उसकी स्तुति करते हैं।

वास्तविक रूप में देवी अनेक रूपा हो कर एक ही रूप को दर्शाती है। देवीमाहात्म्य के दशम अध्याय में निशुम्भ दैत्य देवी की अनादि शक्ति पर संदेह करते हुए कहता है कि “अन्यासां बल माश्रित्य युधसे याति मानिनी”। (अर्थात् दूसरों की सहायता से ही आप मुझ से युद्ध कर रही हो। तभी देवी भगवती ने घोर गर्जना करते हुए कहा :—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापुरा।

पश्चैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥

(संसार में मैं ही एक मात्र विभूति हूँ, मुझ से परे कौन है। हे दुष्ट ! देखो मुझ में हूँ सभी विभूतियाँ प्रवेश कर ही हैं।)

इसके पश्चात् - देवी की सभी विभूतियाँ जो अनेकों देवियों के रूप में देवी की ओर से युद्धरत थीं उसी में समा गईं। तत्पश्चात् वह एक विशाल देवी के रूप में स्थित हुई।

ततः समस्ता ता देव्यो ब्राह्मणीं प्रभुखालयम् ।

तस्या देव्यास्तनो जम्मु रेकैवासीत्तदाग्निका ॥

अतः देवी शक्ति एक ही तत्व का प्रातर्नाभन्व करती है और समय समय पर अनेक रूप धारण कर के प्रकट होती रही है। इसी शक्ति के आत्म तत्त्व स्वरूप को श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने भी प्रकट किया है जिस समय वह अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि "मैं ही आत्मा हूँ मैं सभी प्राणियों में स्थित हूँ। मैं ही संग्रह का आदि, मध्य एवं अंत हूँ"।

अहमात्मा गङ्गाकेन सर्व भूतेष्वस्थितः।

अहं आदिं च मध्य च भूतानामन एव च ॥

श्रीमद्भगवद्गीता।

वस्तुतः वह एक महा शक्ति परमात्मा ही है, जो विभिन्न रूपों में विविध लीलाएँ करते हैं। परमात्मा के सभी पुरुषवाचक स्वरूप इन्हीं अनादि, अविनाशिनी, अनिर्वचनीया, सर्वशक्तिमयी, परमेश्वरी, आद्या, महाशक्ति के हैं। यही महाशक्ति जब अपनी शक्ति को अपने भीतर छिपाए रखती है, उसमें कोई क्रिया नहीं करती तब निष्क्रिय शुद्ध ब्रह्मा कहलाती है। जैसे विद्युत शक्ति बिजली की तारों के भीतर विद्यमान रहती है परन्तु आवश्यकतानुसार ही वह प्रयोग में आती है। जब आवश्यकता न हो तो तारों में गिम्मटी रहती है और बिजली का स्विच दबाने से ही वह प्रकाश कर देती है। इसी प्रकार यह महाशक्ति जब विकासोन्मुख हो कर एक से अनेक होने का संकल्प करती है तब स्वयं ही पुरुष अथवा स्त्री रूप में अपनी ही प्रकृतिरूप धारण में संकल्प द्वारा चेतन रूप बीज स्थापन करके सगुण, निर्विकार, निराकार परमात्मा बन जाती है। इन्हीं की अपनी शक्ति से गर्भाशय में बीज स्थापन में होने वाले विकार की भांति उस प्रकृति में क्रमशः सात विकृतियाँ होती हैं।

(महत्त्व-समष्टि बुद्धि, अहंकार और सूक्ष्म पञ्चतन्मात्राएँ-मूल प्रकृति के विकार होने में इन्हें विकृति कहते हैं। परन्तु इनसे अन्य सोलह विकारों की उत्पत्ति होने के कारण इन सातों के समुदाय को भी विकृति कहते हैं) फिर अहंकार से मन और दस (ज्ञान कर्मरूप) इन्द्रियाँ और पंच तन्मात्राओं में पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए इन दोनों समुदायों का नाम प्रकृति विकृति है। मूल-प्रकृति के सात विकार सत्पथा विकार रूप प्रकृति से उत्पन्न सोलह विकार और स्वयं मूल प्रकृति यह कुल मिला कर चौबीस तत्त्व हैं। वैसे तो महाशक्ति ही अपनी प्रकृति सहित चौबीस तत्त्वों के रूप में यह स्थूल संसार बन जाती है और जीव रूप में स्वयं पचीसवें तत्त्व रूप में प्रविष्ट होकर खेलती है। चेतन परमात्म रूपिणी महाशक्ति के बिना जड़ प्रकृति में यह समस्त कार्य कदापि सम्पन्न नहीं हो सकता। इस प्रकार यहां शक्ति विश्वरूप विराट पुरुष बनती है और इस सृष्टि के निर्माण में स्थूल निर्माता प्रजापति के रूप में स्वयं ही अंशावतार के भाव से ब्रह्मा और पालन कर्ता के रूप में विष्णु और संहार करता के रूप में, रुद्र अथवा शिव बन जाती है। ये ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव प्रभृति अंशावतार भी किसी कल्प में दुर्गा रूप से होते हैं, किसी में महाविष्णु रूप में किसी महाशिव रूप तथा अन्य अवतारों के रूप से। इस विभिन्नता का कारण और रहस्य भी इन्हीं को ज्ञात है। वैसे तो ब्रह्माण्डों में महाशक्ति असंख्य ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरी हुई हैं। अपनी योग-माया से अपने को आवृत कर स्वयं ही जीव मंजा को प्राप्त हैं। "ईश्वर जीव जगत तीनों आप ही हैं। भोक्ता, भोग्य एवं भोक्ष्य तीनों आप ही हैं। इन तीनों को अपने में ही निर्माण करने वाली, और तीनों में व्याप्त रहने वाली आप ही हैं"।

परमात्मा यह महाशक्ति स्वयं अपरिणामिनी हैं, परन्तु इसी महाशक्ति से सभी परिणाम होते हैं। यह स्वभाव से ही सत्ता दे कर अपनी माया शक्ति को क्रीड़ा शीला अर्थात् क्रियाशील बनाती है इसीलिए इनके शुद्ध विज्ञानानन्दधन नित्य अविनाशी एक रस परमात्मा स्वरूप में कदापि कोई परिवर्तन न होने पर भी इनमें परिणाम दिखता है, क्योंकि इनकी अपनी शक्ति का-माया का-विकसित स्वरूप नित्य क्रीड़ामय होने के कारण सदा बदलता ही रहता है और वह माया शक्ति सदा इस महाशक्ति से भिन्न रहती है। वह महाशक्ति ही स्वशक्ति है और शक्तिमान से शक्ति कभी पृथक् नहीं हो सकती, चाहे वह पृथक् भले ही दिखे। अतएव शक्ति का परिणाम स्वयंमेव ही शक्तिमान पर आरोपित हो जाता है। इस प्रकार शुद्धब्रह्म अथवा महाशक्ति में परिणामवाद सिद्ध होता है।

कतिपय विद्वानों का मत है कि महाशक्ति का अन्य रूप ही माया शक्ति, प्रकृति, विद्या, अविद्या, अज्ञान आदि है। महाशक्ति कोई पृथक् वस्तु नहीं है। उनका यह कथन भी एक दृष्टि से सत्य ही है क्योंकि मायाशक्ति परमात्मा रूपा महाशक्ति की ही शक्ति है और जीवों को बाँधने के लिए ज्ञान अथवा अविद्यारूप से और उनकी बन्धन मुक्ति के लिए ज्ञान अथवा विद्या रूप से अपना स्वरूप प्रकट करती है। तब इनसे भिन्न कैसे हुई? हाँ, जो माया शक्ति को ही शक्ति मानते हैं और महाशक्ति का कोई अस्तित्व ही नहीं मानते वे तो माया के अधिष्ठान ब्रह्म को ही अस्वीकार करते हैं। इसी लिए वह माया के चक्कर में पड़े हैं।

कतिपय विद्वान इस परमात्मा रूपा महाशक्ति को निर्गुण और कोई सगुण कहते हैं। यह दोनों सिद्धान्त रूप से स्वीकार्य हैं : क्योंकि यह उस अनादि शक्ति के ही दो नाम हैं। इन अवर्चनीया परमात्मास्वरूपा महाशक्ति में परस्पर विरोधी गुणों का नित्य सामंजस्य होता रहता है। वह जिस समय निर्गुण है उस समय भी उनमें गुणमयी महाशक्ति अन्तर्निहित है और सगुण कहलाती है। तब भी वे गुणमयी महाशक्ति की अधीश्वरी और स्वतन्त्र होने से वस्तुतः निर्गुण ही हैं। अथवा स्व-स्वरूपमय अचिन्त्य, अनन्त, दिव्यगुणों से नित्य विभूषित होने से वे सगुण हैं। और यह दिव्य गुण उनके स्वरूप से अभिन्न होने के कारण वे ही वस्तुतः निर्गुण भी हैं। तात्पर्य यह है कि उन में निर्गुण और सगुण दोनों लक्षण सर्वदा विद्यमान हैं। जो जिस भाव में उन्हें देखता है उसको उनका वैसा ही रूप भासित होता है। वास्तव में वह महाशक्ति कैसी है, क्या है, इस रहस्य को वही भली प्रकार जानती है।

कई विद्वानों के मतानुसार शुद्ध ब्रह्म में माया शक्ति नहीं रह सकती, यदि ब्रह्मण में माया स्थित हुई तो वह शुद्ध कैसे कहलाए? इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि शक्ति कभी शक्तिमान से अलग नहीं रह सकती। शक्तिमान का तो अस्तित्व ही शक्ति से जुड़ा है। यदि शक्ति नहीं होगी तो वह शक्तिमान कैसे कहलाएगा। दूसरी ओर यदि शक्तिमान न हो तो शक्ति कहां रहेगी। अतः शक्ति सदैव शक्तिमान में ही निवास करती है। शक्ति नहीं होती तो सृष्टि के समय शुद्ध ब्रह्म में एक से अनेक होने का संकल्प (एकोऽहं बहुस्याम) कहां से और कैसे होता? इस पर यदि कोई कहे कि जिस समय संकल्प हुआ था उसी समय शक्ति आ गई, पहले नहीं थी तो इस शंका का उत्तर यह है कि यदि वह शक्ति बाद में आई तो कहां से आ गई? किस स्थान पर वह छिपी बैठी थी? इसका क्या उत्तर है? यदि इस सभी को मिथ्या मान लिया जाए तो भी उतनी जिज्ञासा बनी रहेगी कि शुद्ध ब्रह्म का अस्तित्व किससे है। यदि स्पष्ट रूप से देखा जाये तो जिससे ब्रह्म का अस्तित्व है वही उसकी शक्ति है। यहां यह प्रश्न भी विचारणीय है कि क्या कोई प्राणी जीवन शक्ति के बिना जीवित रह सकता है यदि नहीं तो यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्म की जीवन शक्ति ब्रह्म से अलग नहीं है। वही जीवन शक्ति अन्यान्य समस्त शक्तियों की जननी है। वही परमात्मारूपा महाशक्ति है। यह शक्ति प्राणिमात्र में किसी न किसी रूप में विद्यमान है और यदा-कदा उसे उजागर करने की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ हनुमान में समुद्र लांघने की शक्ति विद्यमान थी परन्तु वह अव्यक्त थी : जाम्बवान् के याद दिलाते ही हनुमान ने उसे व्यक्त रूप दिया।

यही आदि के तीन युगल उत्पन्न करने वाली महालक्ष्मी हैं, इन्हीं की शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का प्रादुर्भाव होता है जिनसे विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहार होता है। यही शक्ति प्राणियों में दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, क्षुधा, तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, भक्ति, धृति, मति, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, कान्ति, लज्जा आदि के रूप में विद्यमान है। ये ही वाणी, विद्या, सरस्वती, सावित्री एवं गायत्री हैं। ये ही सूर्य की प्रभाशक्ति, पूर्णचन्द्र की सुधावर्षिणी शोभाशक्ति, अग्नि की दहिका शक्ति, वायु की वहन शक्ति, जलकी शीतलता शक्ति, धरा की धारणशक्ति और शस्य की प्रसूतिका शक्ति हैं। ये ही तपस्वियों का तप, ब्रह्मचारियों का ब्रह्मतेज, गृहस्थों की सर्वाश्रम-आश्रयता, वानप्रस्थों का संयम, सन्यासियों का त्याग, महापुरुषों की महत्ता और मुक्त पुरुषों की मुक्ति हैं। ये ही बलवानों का बल, दानियों की उदारता, माता-पिता की वत्सलता, गुरु की गुरुता, साधुओं की साधुता, चतुरों की चातुरी और मायावियों की माया हैं। ये ही लेखकों की लेखन शक्ति, सदाचारियों की दैवीसम्पत्ति, मुमुक्षुओं की षट्सम्पत्ति, धनवानों की अर्थसम्पत्ति और विद्वानों की विद्या हैं।

शक्ति के विभिन्न स्वरूप उपनिषदों में भी देखे जा सकते हैं। मुख्य शाक्त उपनिषदों के नाम इस प्रकार हैं :—

1. त्रिपुरातपिनी उपनिषद्
2. त्रिपुरा उपनिषद्
3. सरस्वती रहस्य उपनिषद्
4. सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद्
5. भावन उपनिषद्
6. देवी उपनिषद्
7. सीता उपनिषद्
8. बहवृचोपनिषद्

इन उपनिषदों में देवी शर्व शक्तिमयी, अज्ञान रूपी अन्धकार का विनाश करने वाली तथा सभी देवताओं की सहायता करने वाली तथा उन के कष्ट निवारण करने वाली कही गई है।

पूजा परम्परा—उद्गम एवं विकास

किसी एक प्रतिमा अथवा इष्ट देवी की आराधना के लिए विनम्रता एवं भक्ति भाव की आवश्यकता होती है। मानव इतिहास के प्रथम चरणों में ही मानव ने ऐसी किसी अदृश्य शक्ति की कल्पना की होगी जो उसे मानसिक परित्राण, शारीरिक सुरक्षा तथा अन्य प्राकृतिक व दैवी विपदाओं से छुटकाग दिला सके। एक बार जब उस अदृश्य शक्ति की कल्पना हो गई तो मानव ने उसे अपनी सांसारिक महत्वाकांक्षाओं की उपलब्धियों के लिए आह्वान करना आरम्भ कर दिया। इस प्रक्रिया में कभी वह असफल होता तो कभी सफल। परन्तु सफलता की प्राप्ति से उस का विश्वास उस अदृश्य शक्ति पर दृढ़ होता गया और उसने उसे कई नाम एवं रूप देने आरंभ कर दिए। इन विचारों का बहुमुखी विकास ही भक्तिभाव का श्रोत हुआ जो भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। भारतीय प्राचीन विचारभारा के अनुसार आध्यात्मिता प्रत्येक मानव में किसी न किसी रूप में व्याप्त है जिस कारण से भक्तिभाव उसके स्वभाव में ही स्थित है चाहे वह देश, धर्म, पूर्वजों अथवा शासकों के प्रति ही क्यों न हो। इसी पूजा भावना ने कालान्तर में मूर्ति निर्माण अथवा मूर्ति कला को जन्म दिया जिससे मानव अपने आराध्य देव को साकार रूप में लाकर उसकी अर्चना कर सके।

भारतीय प्रतिमा-विज्ञान की आधारशिला, पूजापरम्परा तथा उसके आधार स्तम्भ ध्यान परम्परा से भी आरम्भ हुई मानी जाती है। चिरन्तन से मानव ने अदृष्ट शक्ति के प्रति भीति भावना अथवा भक्ति भावना किंवा आत्मसमर्पण की भावना से किसी न किसी प्रकार से किसी न किसी पदार्थ को उस अदृष्ट शक्ति की प्रकृति अथवा उसका प्रतिनिधि मान कर अपने आराध्य के प्रति भाव पुष्प चढ़ाए हैं। इसी भावना को पूजा के नाम से पुकारा जाता है। पूजा शब्द का यह अत्यन्त स्थूल ऐतिहासिक एवं व्यापक अर्थ ही। नहीं विशिष्ट भी है। देव यज्ञ अथवा योग की सम्पन्नता द्रव्य, देवता एवं त्याग की त्रिविधा प्रक्रिया पर आश्रित है। एक द्रव्य, विशेष-दधि, दुग्ध, आज्य, धान्य आदि को मन्त्रोच्चारण सहित जब-जब किसी देव विशेष के प्रति त्याग-उत्सर्ग (आहुति) करते हैं उसी प्रकार से पूजा भी एक प्रकार से योग ही है जिस में एक देव विशेष के प्रति किसी द्रव्य विशेष-पुष्प, फल, चन्दन, अक्षत, वस्त्रादि समर्पण करते हैं। “पूजा प्रकाश” के प्रथम पृष्ठ में पूजा के इसी अभिधेयार्थ पर प्रकाश डाला गया है।

“तत्र पूजा नादेवतोद्देशेन द्रव्य त्यागात्मकत्वाद्याग एव”।

पूजा शब्द का यह अर्थ पूजा परम्परा के अति विकसित स्वरूप का परिचायक है। पूजा परम्परा की ऐतिहासिक समीक्षा में सर्वप्रथम अनायास हम वैदिक युग तथा सिन्धु घाटी सभ्यता के उस सुदूर भूत में अपनी दृष्टि डालते हैं। प्रायः इस विषय की मीमांसा में विद्वानों ने यही प्रणाली चरती है। इस पद्धति से न तो दृढ़ निष्कर्ष निकाल पाए हैं और न समीक्षा में पूर्ण संतोष ही प्राप्त हो सका है। अतः हमें मानवीय संस्कृति के व्यापक आधारभूत सिद्धान्तों को अपनाना है जिनसे इस विषय की समीक्षा में कुछ विशेष संतोष प्राप्त हो सके।

भारतीय संस्कृति में तथा उसकी सभ्यता की कहानी में मानव ने अनादिकाल से ही देव भावना की तो बात ही क्या देवभूवत्ता का भी अनुभव किया। यही कारण है कि इस देश को सभ्यता एवं संस्कृति के इन उदात्त एवं प्रशस्त सिद्धान्तों को प्रथम जन्म देने का अवसर मिला। देवों की क्रीड़ा भूमि भी इसी देश को अथवा पूर्व-वैदिक युग में जो पूजा परम्परा अथवा उपासना पद्धति प्रचलित थी और जिसके कतिपय साहित्यिक एवं कलात्मक प्रमाण प्राप्त होते हैं उनसे हम उस पद्धति के सार्वजनिक स्वरूप को स्थिर नहीं कर सकते।

वास्तव में मानव सभ्यता की कहानी मानव रहन सहन, भोजन, भजन, आच्छादन एवं चिन्तन की कहानी है, मनुष्य विचारवान प्राणि है। अतः सनातन से वह अपने स्रष्टा के सम्बन्ध में अपने संरक्षकों एवं उपकारकों के सम्बन्ध में सोचता आया है। “समराङ्गण सूत्रधार के सहदेवधिकार नामक एक अध्याय का यही मर्म है कि मानव यदि वह मानव है (पशु नहीं) तो कभी नहीं भूल सका कि एक समय था जब वह देवों का सहचर था। देवों से मानवों के उस पार्थक्य ने मानवों को पुनः देव मिलन के लिए महती उत्कण्ठा प्रदान की है। चिरकाल से इसी उत्कण्ठा से मानव ने अपने प्रत्येक व्यापार में देव मिलन की चेष्टा की विभिन्न साधनाओं एवं साधनों के द्वारा यह प्रयत्न किया कि वह देवों का सामीप्य प्राप्त कर सके। इसी भावना के दिग्दर्शन हमें भारत की विभिन्न दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों एवं विश्वासों से मिलते हैं। वैदिक कर्मकाण्ड, उपनिषदों के “आत्मज्ञान” आदि अनेक धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्त इस तथ्य के प्रबल प्रमाण हैं। देवों से मानव के मानस मिलन की कहानी का नाम ही देव यज्ञ एवं देव पूजा है। यह सर्वदा विद्यमान रही है अनादि काल से।

भारतीय ईश्वरोपासना अथवा देवोपासना में प्रतिमा पूजा का उच्च स्थान है। भारतीय धर्म (“यतोऽभ्युदयनिः श्रेय सिद्धि स धर्मः अतः धर्म का परम लक्ष्य निश्रेयस अर्थात् मोक्ष है।) के दृष्टिकोण से मानव का परम पुरुषार्थ मोक्षाधिगम है। यह मोक्षाधिगम अथवा मुक्ति प्राप्ति पूजा से प्राप्त ही होती। हमारे धर्म ग्रन्थ इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। जैसे :-

“पाषाण लोह मणिमृण्मयविग्रहेषु पूजा पुनर्जननभेगकरी मुमुक्षुः।

तस्माद्यस्तिस्त्व हृदयार्चनं मेव कुर्यात् बाह्यार्चनं परिपद पूनर्भवाय ॥

(मोक्ष के अभिलाषी यति के लिए पाषाणस लौह, मणि मिट्टी आदि द्रव्यों से विनिर्मित प्रतिमाओं की पूजा वर्जित है। वह पुनर्जन्म कारक है परन्तु सभी तो यति को देवार्चन अपने हृदय में ही करना चाहिए, बाह्यार्चन उसके लिए व्यर्थ है।)

परन्तु सभी तो यति ही नहीं हैं। सभी मुमुक्षु भी नहीं हो सकते। साधारण बुद्धि वाले प्राणियों के लिए जिन की संख्या ही अधिक होती है, कोई परम्परा आवश्यक है। इसी लिए कहा है:-

शिवात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योमिनः।

आज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमा परिकल्पिताः ॥

(योगी लोग शिव को अपनी आत्मा में साक्षात्कार करते हैं न कि प्रतिमा में। अतः यज्ञों के लिए देव भावना के सम्पादनार्थ प्रतिमाओं की कल्पना की जाती है।)

भारतीय पुरातन विचारकों के ये उद्धार एवं धर्म प्रवचन यद्यपि अपेक्षा कृत मध्य कालीन हैं परन्तु इन में प्रतिमा पूजा की अति प्राचीन परम्परा की झलक अवश्य दृष्टिगोचर होती है। अतः यह कहना सर्वथा युक्तिसंगत होगा कि प्रतीकोपासना (जिससे प्रतिमा पूजा का जन्म हुआ) उतनी ही प्राचीन है जितना कि मानव सभ्यता। यह मानवता की सदैव सहचरी रही है। इसके बिना मानवता एक क्षण के लिए भी उच्छ्वास न ले सकी। अतः विद्वानों की दृष्टि तर्क-वितर्क, वाद-विवाद अथवा गवेषणात्मक ऐतिहासिक अनुसन्धान भले ही शास्त्रीय दृष्टि (Academic Point of View) से ठीक हो परन्तु व्यापक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह मानना अनुचित न होगा कि उपासना की यह परम्परा पूर्व वैदिक युग में विद्यमान थी जिसका क्रमवद्ध विकास वैदिक युग में मिलता है और अनेकों वैदिक ऋचाओं की रचना हुई जिनमें अधिकतर वैदिक देवताओं की स्तुतियों के रूप में है।

ऋग्वेद की बहुसंख्यक ऋचाओं को आधार मानकर भारतीय पुराविदों के विभिन्न मत हैं। इन में मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ, विलसन, हापकिन्स आदि युरोपीय विद्वान तथा वेंकटेश्वर दास भट्टाचार्य आदि भारतीय विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जितेन्द्र नाथ बैनर्जी ने इन सभी की समीक्षा की है। इनमें से मैक्समूलर एवं मैकडानल वैदिक युग में प्रतिमा पूजा की परम्परा को नहीं मानते। अतः वे ऋग्वेद की ऋचाओं में प्राप्त ऐतद्विषयक सामग्री की व्याख्या भी तदनु रूप ही करते हैं। इसके विपरीत बोलन्सेन (Bollenson) हापकिंस (Hopkins) आदि विद्वान प्रतिमा-पूजा की परम्परा को वैदिक काल के समकालीन मानते हैं तथा अपने मतों के दृष्टिकोण में ऋग्वेद की ऋचाओं की व्याख्या भी अपने मत के पोषण में करते हैं। इनमें से कुछेक नीचे उद्धृत की गई हैं:-

- | | |
|--|-------------------|
| (1) तुविग्रीवो वपोदरः सुवाहुन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिधेत । | ऋ. वे. 8. 17. 8. |
| (2) इन्द्राग्नी शुम्भता नराः । | ऋ. वे. 1. 12. 3. |
| (3) उन्मा ममन्द वृषमो मरुत्वान् । | ऋ. वे. 2. 33. 6. |
| (4) दिवो नरः नृपेशः । | ऋ. वे. 3. 4. 5. |
| (5) अशरीरं चित् कृणुत सुप्रतीकम् । | ऋ. वे. 6. 28. 6. |
| (6) इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत । | ऋ. वे. 4. 17. 4. |
| (7) नुमन्वानः एषां देवान् अच्छ । | ऋ. वे. 5. 25. 15. |

इसी प्रकार के अनेकों संदर्भ ऋग्वेद से संगृहीत किए जा सकते हैं जिन में देवों की पुरुष रूप में प्रतिमाएँ परिकल्पित की जा सकती हैं। वैसे ही ऋग्वेद में अग्नि, सूर्य, वरुण, तथा इन्द्रादि देवताओं की पूजा प्रतिपादित हैं परन्तु इसका वास्तविक स्वरूप क्या था यह कहना कठिन है।

ऋग्वेद के अतिरिक्त सामवेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की देवोपासना के क्षेत्र में प्रमुख आर्य परम्परा यागोपासना ही हैं। अथर्ववेद में इस के विपरीत ऐसे अनेकानेक संकेत मिलते हैं जिन से अनायों की विभिन्न सामाजिक धार्मिक एवं नैतिक संस्थाओं पर प्रकाश पड़ता है। इन सब की समीक्षा करना तो यहां पर स्थानाभाव के कारण कठिन है परन्तु कुछेक संदर्भ ही यहां पर दर्शाए हैं।

शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता में प्रतिमा सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री है। इनमें सूर्य को “हिरण्य पाणि” कहा गया है। (देवो वः सविता हिरण्यपाणिः अ. 15 क 16) इसी प्रकार अग्नि के लौह विनिर्मित शरीर पर संकेत है। (याते अग्नेरजः शया तनूवर्षिष्ठा)। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में यज्ञों में प्रतिमा-प्रयोग पर निर्देश है। इसी प्रकार इसी संहिता में देव मन्दिरों का संकेत भी भट्टाचार्य ने 3 पाया है। इसी प्रकार भट्टाचार्य ने ही अथर्ववेद तथा सामवेद में भी प्रतिमा के संकेत निदिष्ट किए 4 हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों का अवलोकन करते हुए मूर्तिपूजा का आभास तैत्तिरीय ब्राह्मण (2.6.17) में मिलता है जिसमें तो स्वर्णमयी सुन्दर तीन देवियों-भारती, इडा एवं सरस्वती की पूजा के लिए होतृ-पुरोहित के लिए प्रवचन है।

होता यक्ष्मेशस्वती । तिस्रो देवीः हिरण्यमयीः । भारतीः महतीः महीः ।

इसके अतिरिक्त वैदिक खिलों में भी प्रतिमा पूजा की परम्परा की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। षड्विंश ब्राह्मण में तो देव प्रतिमाओं के हंसने और नृत्य आदि का उल्लेख मिलता है :-

देवतायनानि कम्पन्ते देव प्रतिमा हसन्ति रुदन्ति
नृत्यन्ति, स्फुरन्ति, खिलन्ति, उन्मीलन्ति ।

षड्विंश ब्राह्मणः 5.10

इसी प्रकार पञ्चविंश ब्राह्मण (23.18.1) ताण्ड्य ब्राह्मण (14.4.) ऐतरेय ब्राह्मण, शांखायन ब्राह्मण, एवं शतपथ ब्राह्मण में भी मूर्तिपूजा के अनेकों संदर्भ विद्यमान हैं।

आरण्यक ग्रन्थों में भी मूर्ति पूजा का वर्णन कई प्रकार से प्राप्त है। उनमें न केवल प्रतिमाओं का ही उल्लेख है अपितु प्रतिमा शास्त्र के पुरातन प्रमुख आचार्यों, जैसे कश्यप, विश्वकर्मा, त्वष्टा आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार आरण्यकों के समय प्रतिमा पूजा एवं प्रतिमा निर्माण परम्परा दोनों ही विद्यमान थीं। इनमें से कुछ संदर्भ उदाहरणार्थ नीचे दिए हैं :-

(1) इन्द्रात् परि तन्वं ममे ।

तै. आ. : आनन्दाश्रम, पृ. - 142.43.

(2) यत्ते शिल्पं कश्यप होनावत ।

तै. आ. राजेन्द्र लाल मित्र, पृ. - 80.

यस्मिन् सूर्या अर्पिता सप्तकसाम् ।

(3) विश्वकर्मा व आदित्यैरुत्तरत उपदधताम् ॥

तै. आ. राजेन्द्र लाल मित्र, पृ. - 126.

उपनिषदों की दार्शनिक ज्योति एवं ब्रह्मविद्या तथा आत्म विद्या तो सर्व विदित है: परन्तु उपनिषदों को ही यह श्रेय प्राप्त है कि इनके महास्रोत से भक्ति-धारा का उद्गम हुआ। प्रतिमा पूजा तथा भक्ति इन दोनों का परस्पर अटूट सम्बंध है। सुदूर अतीत में पूजा परम्परा का स्वरूप क्या था यह स्पष्ट नहीं है। उपनिषदों ने जहाँ ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान की गंगा बहाई वहाँ भक्ति गंगा को आगे उदाम गति से यह निकलने के लिए गंगोत्तरी का महास्रोत प्रदान किया। वास्तव में उपनिषदों में ही सर्वप्रथम भक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है तथा वेदिक देववाद से भिन्न उस देववाद की भी झलक मिलती है जिसकी पृष्ठ भूमि पर आगमिक एवं पौराणिक परम्परा का देववृन्द अपनी लोकोत्तर गरिमा से प्रतिष्ठापित हुआ।

उपनिषदों के पश्चात् आरण्यक साहित्य में प्रतिष्ठित देव पूजा-परम्परा विद्यमान थी। विभिन्न गृहसूत्रों का अवलोकन इस सम्बन्ध में अनिवार्य होगा। वैसे तो गृह सूत्र एवं श्रौत सूत्रों के रचयिताओं ने तत्कालीन समाज में उपयुक्त अनेकों विधि विधानों का उल्लेख किया है। परन्तु इन सभी के पीछे भक्ति भावना तो विद्यमान रही होगी। वास्तव में प्रथम सूत्रकार का आदेश है कि यदि अर्चा अथवा देव प्रतिमा जल जावे, फूट जाए, गिर पड़े, चूर चूर हो जाए अथवा हंसने लगे, चलायमान हो चले तो गृहस्थ मन्त्रोच्चारण कर अग्नि में दस आहुति देकर प्रायश्चित्त करे। द्वितीय में ईशान, इन्द्राणी तथा जयन्त आदि देवों की प्रतिमाएँ निर्दिष्ट हैं। तृतीय में भी पिता द्वारा शिशु उत्पत्ति के पश्चात् बहिर गमन पर देव प्रतिमाओं की पूजा का विधान है। चतुर्थ सूत्र में तत्कालीन देवमन्दिरों की स्थिति के बारे में प्रकाश डाला गया है। पंचम में देवप्रतिमाओं के सम्मुख वर्जित कृत्यों का वर्णन है। इस में सन्देह नहीं कि सूत्र साहित्य के प्रादुर्भाव के समय भारत में देव पूजा पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। इस सम्बन्ध में कुछ साक्ष्य यहाँ उदाहरणार्थ उपलब्ध कराए जाते हैं :—

(1) यद्यर्चा दह्येद्वा प्रपतेद्वा नश्येद्वा प्रभजेद्वा प्रहलेद्वा.....

एताभिर्जुहुयात्..... इति दश हुतयः ।

(i) मानव गृहसूत्र : 2, 15, 6

(ii) आश्वलायन गृहसूत्र : 20. 1-3

बौद्धायन गृहसूत्र : 2, 2, 23

(2) अथोपनिष्क्रम्य बाह्यानि चित्रियाण्यह्यर्च्य स्वान् गृहानानयति ।

(i) लौगा. गृहसूत्र : 18. 3

(ii) गौ. गृहसूत्र : 9, 13-14

(3) तस्याः उत्सर्गः संस्थावरोदके शुचौ वा देवतायने ।

(4) अप्राप्य देवताः प्रत्यवरोहेत्संप्रति ।

ब्रह्मणान् मध्ये गा अभिक्रम्य पितृन् ॥

पारस्कर गृहसूत्र-3. 14. 8

इस प्रकार दशम एवं एकादश गृह सूत्र में विभिन्न देवों एवं उनकी शक्ति देवियों की प्रतिमाओं का निर्देश है। इस अन्तिम निर्देश से यह भी सिद्ध होता है कि उस काल में विष्णु, रुद्र (शिव), दुर्गा, लक्ष्मी, सूर्य, गणेश तथा यम की पूजा पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी थी। साथ ही साथ प्रतिमा-निकेतनों अथवा मन्दिरों का निर्माण भी प्रचलित था। मन्दिरों के लिए 'देवगृह', 'देवायतन', 'देवकुल' आदि शब्दों का प्रयोग तत्कालीन समय में हुआ है।

स्मृतियों में मनु स्मृति अधिक प्राचीन है जिसमें देव पूजा के साक्ष्य की अमिट छाप है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण नीचे दिये हैं :—

(1) देवताभ्यर्चनञ्चैव समिधादानमेव च ।

अ. 2 श्लोक 176

(2) संक्रम ध्वजपटीणां प्रतिमानाच्च मोदकः ।

अ. 9 श्लोक 285.

ऐसा प्रतीत होता है कि मनु के समय में प्रतिमा पूजा का पर्याप्त महत्व प्राप्त हो गया था। इसी कारण से मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए देवपूजा एक अनिवार्य कर्म कहा गया है। इसके अतिरिक्त देवताओं के संकीर्तन का भी उल्लेख है। मनु के पश्चात् याज्ञवल्क्य स्मृति की महत्ता है। इसमें भी प्रतिमा पूजा के उदाहरण भरे पड़े हैं।

प्राचीन व्याकरणाचार्यों में पाणिनि तथा पातञ्जलि के नाम विशेष महत्व रखते हैं। पाणिनी ने अष्टाध्यायी में प्रतिमा एवं मूर्ति पूजा का कई बार उल्लेख किया है। पाणिनी का समय लगभग 800 ई. पू. माना गया है। अतः पाणिनी की सामग्री ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में नीचे दिए सूत्र द्रष्टव्य हैं :—

(i) येषां भक्तिर्यप,

चतु. 3, 95

(ii) वासुदेवार्जुनाभ्यां ऊज,

चतु. 3. 98

उधर पातञ्जलि ने भी अपने महाभाष्य में प्रतिमा पूजा का पर्याप्त संकेत दिया है। जैसे:—

(i) दीर्घनासिक्यर्चा तुङ्गनासिक्यर्चा ।

महाभाष्य : 2. 429

(ii) अथवा नेषा क्षत्रियाख्या । संज्ञेषा तत्र भवतः ।

महाभाष्य : 2. 314

तदुपरान्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र (300 ई. पू.) में भी प्रतिमा पूजन का पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध है। उसमें देव प्रतिमा पूजा तथा देवस्थानों का वर्णन कई बार आता है। दुर्गनिवेश के अध्याय में कौटिल्य ने अपराजिता, अप्रतिहत, वैजन्त, शिव वैश्रवण, अश्वि देवों तथा श्री एवं मदिरा देवियों के भुवन निर्माण का उल्लेख किया है।

प्राचीन साहित्य के अतिरिक्त पुरातत्त्व सामग्री भी पूजा अर्चना का साक्ष्य अतीव प्राचीन काल से प्रस्तुत कर्ता है। इस सम्बन्ध में हमें मिन्यु घाटी

सभ्यता की ओर ध्यान देना होगा। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के प्राचीन सांस्कृतिक भग्नावशेषों की खुदाई में जिन विभिन्न पुरातत्वान्वेषण-प्रेरक सामग्री प्राप्त हुई है उनमें सचित्र मुद्राओं आदि के अतिरिक्त नाना चित्रों से चित्रित रागरंजित कलाकृतियों के साथ-साथ अनेकों पाषाण प्रतिमाएँ भी उपलब्ध हुई हैं। इसके अतिरिक्त अनेकों लिङ्गकृति प्रतीक एवं योनि प्रतीक पदार्थ (Objects) प्राप्त हुए हैं जो इस- तथ्य का प्रमाण हैं कि सिन्धु घाटी के वासी लिङ्ग पूजक थे। इसके अतिरिक्त प्रतिमा पूजा के साक्ष्य अनेकों उत्खनन स्थानों से प्राप्त हुए हैं जो ऐतिहासिक युग की पूजा परम्पराओं को दर्शाते हैं।

मोहनजोदड़ो⁵ और हड़प्पा की पूजा परम्परा के बारे में सर जान मार्शल का मत इस प्रकार है :-

"The people of Mohanjodaro had not only reached the stage of anthropomorphising their deities, but were worshipping them in that form as well as in the aniconic; for the highly conventionalised of the image of what he justifiably describes as the prototype of Siva-Pasupati, its stylised details and the fact that the kindard image portrayed on the faience sealing is being worshipped by the Nagas clearly points to its being 'a copy of a cult idol'. The decoration, the sitting posture, the mode of showing the hands, the horns on the head etc. appear also on other figures, some of which may depict the different aspects of the same god. The nude goddess, either in association with a tree or not with some of the above characteristics, is shown as an object of veneration. Many composite human and animal figures found on the seals and amulets very probably stand for divinities in their theriomorphic or therioanthropomorphic forms, though many others are to be regarded as mere accessories. Most, if not all, of the above types of figures appear to have been based on actual icons of cult gods which were being worshipped by the people in those days."

वास्तव में पुरातत्व सामग्री तथा प्राचीन साहित्य परम्पराओं के आधार पर यदि समीक्षा की जाए तो यह स्पष्ट होगा कि प्राचीन काल से ही दो अलग-अलग धार्मिक विचार धाराएँ क्रियाशील थीं। एक ओर वैदिक आर्य थे तो दूसरी ओर भारत की आदिवासियों की सभ्यता थी। दोनों की अपनी-अपनी मान्यताएँ, पूजा पद्धतियाँ एवं धार्मिक विश्वास थे जिन का कालान्तर में समन्वय हुआ। इस सन्दर्भ में द्विजेन्द्र नाथ शुल्क का मत पर्याप्त युक्तिसंगत है। इसके अनुसार⁶ " वैदिक-देवों की अपेक्षा इन देवों एवं देवियों का पौराणिक एवं आगमिक तथा तांत्रिक देवों, देवियों एवं प्रतीकों के साथ विशेष साम्य है। इसका क्या रहस्य है। लेखक ने पूजा परम्परा के सांस्कृतिक दृष्टिकोण के समीक्षावसर पर यह बार-बार संकेत किया है कि इस देश में धार्मिक आस्था की दो समानान्तर धाराएँ वैदिक युग से बह रही हैं। प्रथम वैदिक धर्म एवं उसकी पृष्ठ भूमि पर पल्लवित स्मार्त धर्म। दूसरी अवैदिक (जिसे द्राविडी कहिए, मौलिक कहिए या देशी कहिए) धार्मिक धारा जिसके तट पर बहुत देर से हम विचरण कर रहे हैं और जिसका जन्म इसी देश की भूमि पर हुआ है। वैदिक धारा में आर्य परम्परा का प्राधान्य है अवैदिक में अनार्य-दविड़- इस देश के मूल निवासियों की धार्मिक परम्परा का प्राबल्य है। इन दोनों के दो प्रयाग पुराण एवं आगम बने। त्रिवेणी में सरस्वती ने भी योग दिया। आर्य गंगा एवं अनार्य यमुना के इसी संगम पर भारतीय धर्म (जो आर्य एवं अनार्य का सम्मिश्रित स्वरूप है) का महान अभ्युदय हुआ जो आज भी वैसा ही चल रहा है।"

पूर्वोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहना उचित ही होगा कि भारत में पूजा विशेष कर प्रतिमा पूजा प्राचीन काल से ही किसी न किसी रूप में चली आ रही है यह बात अलग है कि इसका स्वरूप तथा देवी देवता समय-समय पर अवश्य बदलते रहे हैं। साथ ही साथ कई तीर्थ स्थानों का भी अभ्युदय भारत भूमि पर हुआ। इन में शक्ति पीठों की महिमा देवी पूजा से जुड़ी है। इसी तथ्य की उद्भावना में देव पूजा के द्वारा शक्ति पीठों का निर्माण हुआ, अनेकों मन्दिर बने जिसने इस देश की स्थापत्य कला को विपुल विकास एवं आराधना का स्रोत बना दिया। साथ ही साथ देवी की अनेकों पूजा पद्धतियों का भी विकास हुआ। इसी सन्दर्भ में कालिका पुराण में वर्णित देवी पूजा विधि परिशिष्ट-17 में तथा तन्त्र विज्ञान में वर्णित देवी पूजा विधि, परिशिष्ट-१८ में देखी जा सकती है।

देवी सूक्त (२२२-२२३) में गौरी की द्वादश मूर्तियों में उमा, पार्वती, गौरी, ललिता, श्रियोत्तमा, कृष्णा, हेमवती, रम्भा, सावित्री, त्रिषण्डा, तोतला और त्रिपुरा के वर्णनों के साथ पञ्च ललीय मूर्तियों-ललीया, लोला लीलाङ्गी, लीलावती तथा नवदुर्गा मूर्तियों-महालक्ष्मी नन्दा, क्षेत्रकरी, शिवदूती, महारण्डा, भ्रमरी, सर्वमङ्गला, रेवती और हरसिद्धि के विशिष्ट वर्णोपरान्त, चामुण्डा, कात्यायनी आदि सामान्य देवियों के साथ-साथ सप्त मातृकाओं चामुण्डा, एन्द्री, वाराही, कौमारी, ब्रह्माणी, वैष्णवी और माहेश्वरी के वर्णन दिए हैं।

अतः देवी के अनेकों रूप भारतीय मूर्ति कला में ही समय-समय पर अतीत के चित्रपटल पर उभरते रहे हैं। मूर्तिकार ने भी अपनी कल्पना की उड़ान में अपनी कृतियों में ऐसा प्रदर्शन किया कि वास्तविकता की प्रतिमूर्ति की प्रतीक बनने लगी। इन मूर्तियों के मूर्तिकार कोई साधारण कलाकार न होकर उत्कृष्ट कृतियों की रचना करने वाले थे। उन्हें इन मूर्तियों के गढ़ने के लिए वर्षों साधना एवं प्रतिमा विज्ञान का ज्ञान आवश्यक था। इस आशय के लिए कई धार्मिक ग्रन्थों की रचना की गई जिनमें (1) ईशान शिवगुरुदेव पद्धति, हरिभक्ति विलास, अभिलषिसार्थचिन्तामणि (मानसोल्लास), रघुनन्दन-मठ-प्रतिष्ठा पद्धति, मानसार शिल्परत्न, रूपमण्डन, प्रतिमा विज्ञान, मयदीपिका, हेमाद्रि-चतुर्वर्ग चिन्तामणि, कृष्णानन्द-तन्त्रसार, आगमग्रन्थ आदि विशेष रूप से अल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त कई एक पुराणों जैसे अग्नि, वायु, वराह, वामन, कालिका, मार्कण्डेय, तथा मत्स्य पुराणों में भी इस विषय में पर्याप्त सामग्री भरी है।

अब देखना यह है कि मूर्तियाँ बनाने में कौन-कौन से पदार्थ (Material) काम में लाए जाते हैं। इस संदर्भ में उत्तर वैदिक साहित्य इस विषय पर पर्याप्त डालता है। तदनुसार मूर्ति निर्माण दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। इनका वर्गीकरण मत्स्य पुराण, हरिभक्ति विलास, एवं हयशीर्षज्योत्स्न में इस प्रकार से उपलब्ध है :-

(i) प्रथम वर्ग :-

(क) चित्रजा :-

ऐसी प्रतिमाएँ जो दीवारों, वस्त्रों अथवा कागज पर बनाई जाती हैं।

- (ख) लेप्यजा :- ऐसी प्रतिमाएँ जो मिट्टी से बनाई जाती हैं जिन्हें मृण्मयी भी कहते हैं।
 (ग) पाकजा :- ऐसी प्रतिमाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है जिन्हें धातु को पिघला कर बनाया जाता है। जैसे, स्वर्ण, चान्दी, ताम्र, लोह तथा कांस्य आदि।
 (घ) शस्त्रोष्णीका :- वह प्रतिमाएँ जो शस्त्र द्वारा काट कर बनाई जाती हैं। जैसे प्रस्तर, रत्न, हाथी दाँत, काष्ठ आदि।

(2) द्वितीय वर्ग :-

- (क) मृण्मयी मिट्टी से बनी हुई।
 (ख) दारुघटिता काष्ठ की बनी हुई।
 (ग) लोहजा लोहे से बनी हुई।
 (घ) रत्नजा रत्नों से बनी हुई।
 (ङ) शैलजा प्रस्तर प्रतिमाएँ।
 (च) गन्धजा गन्धकारी द्वारा निर्मित (Stueco)।
 (छ) कौसुमी पुष्पों द्वारा बनी हुई।

इसके अतिरिक्त, शुक्रनीति सार, भविष्य पुराण, बृहत्संहिता तथा भोजदेव रचित समरांगणसूत्रधार में उन द्रव्यों का जिनसे मूर्तियाँ बनाई जाती हैं, उल्लेख इस प्रकार है :-

(1) मृण्मयी :-

प्रतिमा निर्माण एक कला है और विज्ञान भी। अतः जिस प्रकार प्रशस्त वृक्षों की लकड़ी लाकर तक्षक महोदय अपनी कौशल एवं कारीगरी का परिचय देते हुए एक मनोरम एवं शिल्प प्रतिमा में उसे परिणत कर देते हैं, इसी प्रकार मृण्मयी प्रतिमाओं के निर्माण में भी कौशल की आवश्यकता होती है। वैसे तो स्थपतियों की चार ही कोटियाँ- स्थपति, सूत्रग्राही, वर्धकी एवं तक्षक (काष्ठ-कोविद Carpenter) हैं। परन्तु पुराणाख्यान में विश्वकर्मा की शूद्रा भार्या से उत्पन्न नौ कलाकार पुत्रों में कुम्भकार भी है।

मृण्मयी मूर्तियों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। एक है स्थूल प्रतिमाएँ जिन की पुरातत्त्वान्वेषण में प्रचुर प्राप्ति सुदूर सिन्धु सभ्यता में भी प्राप्य है। दूसरी सूक्ष्म प्रतिमाएँ जिनका चित्रजा प्रतिमाओं के अन्तर्गत समावेश किया जा सकता है तथा जिसे समरांगणसूत्रधार में लेप्यजा प्रतिमाओं के नाम से पुकारा गया है। मृण्मयी प्रतिमाओं के बारे में हयिशीर्ष पञ्चरात्र तथा हरिभक्तिविलास में वर्णित मृण्मयी प्रतिमाओं के बनाने का विधान नीचे उद्धृत है :-

मृत्तिकावर्णपूर्वेण गृहणोयुस्सर्व वर्णिनः।

नदी तीरेऽथवा क्षेत्रे पुण्य स्थानेऽथवा पुनः॥

पाषाण-कर्करालोहचूर्णानि समभागतः।

मृत्तिकायां प्रयोज्याथ कषायेन प्रपीडयेत्॥

खदिरेणर्जुनेनाथ सर्ज्जश्रीवेण्टकुंकमै।

कौटजैरायसैः स्नेहैदधि-क्षीर-घृतादिभिः॥

आलोड्य मृत्तिकां तैस्तैः स्थाने स्थाप्य पुनः पुनः।

मासं पर्युषितं कृत्वा प्रतिमां परिकल्पयेत्॥

(विभिन्न वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, अपने वर्णानुरूप मृत्तिका को नदी तीर, शस्य क्षेत्र, अथवा पावन स्थलों से लाकर उसमें मृत्तिका के समभागानुरूप-पिष्ट पाषाण (भालू-रेत)सिकता, तथा लोह का इसमें मिश्रण करे। पुनः खदिर, अर्जुन, सर्ज श्रीवेण्ट (बेतस), कुकुम्भ, कौरज और आयस आदि वृक्षों के रस के साथ दूध दधि, घृतादि स्नेहों को मिलावे। पुनः आलोडन करे- गोला बनावे फिर एक मास तक सूखने के लिए रखे तब प्रतिमा बनाए।) देवी भागवत में भी देवी की मृण्मयी प्रतिमा की पूजा का विधान है— मूर्ति च मृण्मयी तस्या विधाय पृथिवीपति। (दशम स्कन्द-1.10)

एक अन्य स्थान पर भी देवी की मृण्मयी प्रतिमा की पूजा का वर्णन इस प्रकार है :-

देव्यामूर्ति मृण्मयी च पूजयामास भक्तितः (दे० भा० दशम स्कन्द, 8.8)

(ii) दारु (काष्ठ) :-

कलात्मक दृष्टि से भवन निर्माण कला का सर्व प्राचीन द्रव्य दारु ही है। वृक्षों की शाखाओं से प्रथम मानव-भवन की परिकल्पना की गई। वैदिक साहित्य में भी भवनों के लिए काष्ठ का प्रयोग पर्याप्त रूप से मिलता है। जैसे:- 'किं स्विद् वनम् क उस् वृक्ष आस यतो द्यावा-पृथिवी निष्ठा तक्षु' :- (ऋ० वे० -10. 81. 4) अर्थात् किस वन के किस वृक्ष से पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष दोनों का निर्माण हुआ।

वस्तुतः वैदिक युग में निर्माण द्रव्यों में दो ही प्रयुक्त होते थे- दारु एवं मृत्तिका। इससे वैदिक जीवन की सरलता का आभास मिलता है जिसमें साधारण द्रव्य जैसे ईंट एवं लकड़ी ही घर बनाने में प्रयुक्त होते थे। परन्तु जैसे जैसे जीवन जटिल होता गया त्यों-त्यों द्रव्यों में भी जटिलता आती गई। निर्माण द्रव्यों में दारु का महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण

किस वृक्ष के कौन से भाग की लकड़ी प्रतिमा एवं स्तम्भ के योग्य है, किस तिथि में वन में प्रवेश करना चाहिए, वृक्ष को कैसे काटना चाहिए वह सब प्राचीन वास्तु शास्त्रों में लिखित है। समरांगण सूत्रधार में भी अन्य ग्रन्थों के साथ-साथ, इसी परम्परा के अनुरूप वनप्रवेशाध्याय नामक १६वें अध्याय में पर्याप्त सामग्री जुटाई गई है। परन्तु यह सामग्री भुवन निर्माण में काम आने वाली लकड़ी के लिए है न कि मूर्ति बनाने के लिए।

उसके विपरीत, बृहत्संहिता, भाविष्य, मत्स्य विष्णुधर्मोत्तर पुराणों में तथा मानसार आदि शिल्पशास्त्रों में प्रतिमोचित दारू के संग्रहण के लिए वृक्ष परीक्षा तथा वृक्ष चयनादि पर सविस्तार विवेचना की गई है। दारू प्रतिमाओं के लिए, देवदारु, चन्दन, समी, मधूक, अरिष्ट, अश्वत्थ तथा बिल्व की लकड़ी के प्रयोग को शुभ माना गया है।

(iii) पाषाण (प्रस्तर):—

प्रतिमा निर्माण में पत्थर का भी विशेष योगदान रहा है। इस उद्देश्य के लिये शिला का चयन भी विशेष महत्व रखता है। यह शिला पूर्ण रूप से निर्दोष होनी चाहिए। शिल्परत्न में सूचित है कि प्रतिमा के पाषाण अथवा काष्ठ में यदि नन्दावर्त, शेषनाग, अश्व, श्रीवत्स, कच्छप, शंख, स्वस्तिक, गज, गौ, वृषभ, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, छत्र माला, ध्वजा, शिवालङ्ग, तोरण, हरिण, प्रासाद, कमल, वज्र, गरुड अथवा शिव की जटा के सदृश रेखा अथवा रेखाएँ हैं, तो शिला उत्तम समझनी चाहिए।

(iv) धातु (Metals):—

धातु से बनी प्रतिमाओं को पाकजा वर्ग में लाया जा सकता है। ऐसी धारणा रही है कि धातुजा प्रतिमाओं, विशेषकर ताम्रोद्धवा प्रतिमाओं की परम्परा का प्रचार दसवीं शती ई० के पूर्व नहीं हुआ था। परन्तु यह धारणा कतिपय प्रमाणों जिनमें पुरातत्त्व सामग्री भी अभिव्याप्त है, अपवादमय है क्योंकि धातु की बनी अनेकों प्रतिमाएँ पुरातत्त्व उत्खननों से प्राप्त हुई हैं जिन में सिन्धु घाटी सभ्यता के स्थल भी आते हैं। प्रतिमाओं में ही नहीं अनेकों ताम्रपत्रों में भी धातु विशेषकर ताम्र प्रयोग में लाया गया था। इसके अतिरिक्त गुप्त काल की अनेकों धातु प्रतिमाएँ समय समय पर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण की वार्षिक रिपोर्टों में प्रकाशित होती रही हैं।

धातु प्रतिमाओं के निर्माण में मोम (Wax) का प्रयोग होता था। अतः इस प्रक्रिया को “मधूच्छिष्ट-विधान” भी दिया गया है। मधु-शहद के उच्छिष्ट (निकलने पर) जो शेष रह गया उसके साँपुट्य से धातु प्रतिमा निर्मित होती कही गई है। इस विषय पर कर्णागम, विष्णुसंहिता, मामसोल्लास, शिल्परत्न तथा समरांगणसूत्रधार विशेष रूप से प्रकाश डालते हैं।

(v) चित्र (Paintings):—

समरांगण सूत्रधार में चित्रकला को सर्वोत्तम कहा है। जैसे “चित्रं हि सर्व-शिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम्।” इसी प्रकार से चित्रकला समराङ्गण सूत्रधार एवं ह्यशीर्ष के कथनों के अनुसार भी एक मात्र चक्षुष्पत्ति की ही विधायिका नहीं उसमें आध्यात्मिक एवं दैविक तृप्तियाँ भी अन्तर्हित हैं। इन चित्रों के पटचित्र (painting on cloth) और कुड्य चित्र (Mural paintings) ही मुख्य रूप से प्रसिद्ध हैं।

(vi) रत्नादि बहुमूल्य सामग्री:—आगम साहित्य में मूर्ति निर्माण में कई प्रकार के रत्नों का समावेश है।

(vii) हस्तीदन्त:—

गोपीनाथ राव ने रवदीशर्करा तथा हाथी दाँत के बारे में भी लिखा है जिससे मूर्तियाँ बनाई जाती रही हैं। चूने का पत्थर ही (lime stone) रवदीशर्करा की मूर्तियाँ बनाने में प्रयुक्त होता था।

यहां एक अन्य तथ्य को भी कहना होगा और वह यह है कि उत्कृष्ट भक्ति भावना होने पर भी मूर्तियों की क्रय-विक्रय को अच्छा नहीं समझा जाता था। इस संदर्भ में महाभाष्य एवं काशिका का साक्ष महत्व रखता है जिसके अनुसार प्रतिमा निर्माण जीविकोपार्जन का साधन तो हो सकता है परन्तु “अपण्य” है अर्थात् जो विक्रय नहीं की जा सकती।

संदर्भ

- (1) Banerjee J. N., *Development of Hindu Iconography*, Ch. 11.
- (2) Keith, A. B., *Black Yajurveda*, Vol. II, p. 411.
- (3) I. I. P., XXXIII,
- (4) I bid.
- (5) Marshall, John, M
- (6) शुल्क, द्विजेन्द्र नाथ, भारतीय वास्तुशास्त्र, पृ. 65.

मातृ शक्ति

नास्ति मातृ समा छाया नास्ति मातृ समा गीतः ।

नास्ति मातृ समं त्राणं नास्ति मातृ समा प्रभाः ॥

मातृ शक्ति की आराधना का इतिहास मानव जाति के इतिहास से जुड़ा है जिस का साक्ष्य पुरा पाषाण युग में भी उपलब्ध है। इतिहासकारों ने अनेकों उत्खनन स्थलों से ऐसी सामग्री प्राप्त की है जिसे मातृदेवी की संज्ञा दी गई है। पुरा विशेषज्ञों को फ्रांस से उत्तर पाषाण युग की एक ऐसी प्रतिमा उपलब्ध हुई है जो नग्न रूप में खड़ी है तथा एक हाथ में भैंस का सींग ऊपर उठाए हुए है। इसके अतिरिक्त विश्व के कई देशों में भी ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक युग की अनेकों मृण्मय फलक एवं प्रतिमाएं मिली हैं जो निस्सन्देह मातृ देवी की प्रतीक मानी जाती रही हैं।

मातृ देवी की आराधना कब और किस रूप में आरम्भ हुई यह कहना तो कठिन है परन्तु मानव स्वभाव से ही मातृ शक्ति का उपासक रहा है। मानव के सांसारिक जीवन में अनेकों सफलताओं एवं असफलताओं से साक्षात्कार होता है। कभी वह अपनी विफलताओं पर अपने विवेक एवं पुरुषार्थ से विजय पा लेता है और कभी-कभी वह अपने प्रयत्न करने के पश्चात् भी असफल रहता है। ऐसी स्थिति में वह किसी अज्ञात शक्ति की परिकल्पना कर अपनी विफलताओं पर विजय प्राप्त करने के लिए उसकी आराधना करता है। यह तो कह नहीं सकते कि वह अपने प्रयत्न में सदैव सफल रहता है परन्तु यदि एक बार भी उसकी अर्चना से उसे सफलता मिल जाती है तो उसका विश्वास उस अदृश्य शक्ति में स्थिर होता जाता है। इस संदर्भ में मातृ शक्ति का विशेष महत्व है क्योंकि मां का ममत्व, उसके स्वभाव की कोमलता, उसका वात्सल्य प्राणि को शैशव से ही अगाध रूप से मिलता है जिसे वह विस्मरण नहीं कर पाता। उसी मातृ वात्सल्य एवं स्नेह की कल्पना अपने संकट के समय अथवा असीम निराशाओं से घिरा रहने पर उसे अधिक निष्ठावान बना देती है और जब वह उस संकट को पार कर लेता है अथवा अपनी विफलताओं को सफलता में बदलने में सफल होता है तो वह उसे मातृ शक्ति की कृपा मानता है। यदि संयोगवश वह असफल रहता है तो उसे अपना भाग्य मान कर संतोष करना पड़ता है।

इस सम्बन्ध में बैनर्जी^१ महोदय का कथन इस प्रकार है—

“A man by nature is a worshipper of *Sakti* or Power. Whenever he finds a special manifestation of *Sakti*, his attention is drawn towards it, and if it is found to be of a superior order in comparison with what he experiences in himself, he pays homage to it. This tribute of respect which a man offers to a superior manifestation of power may appear in diverse forms. Some manifestation of Power may strike terror into his heart and others may inspire his heart with feelings of admiration and reverence. Some may be attractive, while others may be repulsive. Some may rouse the spirit of fighting in him, and others may charm him to willing self surrender. The feeling of fear and hope, enoj and admeration, awe and reverence, hostility and friendliness, repulsion and attraction, etc. roused by different forms of the exhibition of Power, give rise to different forms of worship. In all these cases the sense of superiority of the Power manifested is present and a tribute is offered to it in some form or another.”

इसमें सन्देह नहीं कि पूर्व पाषाण युग में मानव जीवन अनेकों विषमताओं से परिपूर्ण था और उसे उस संकटमय जीवन में परित्राण मातृशक्ति की आराधना में दिखाई दिया। इसीलिए मातृदेवी की मृण्मय प्रतिमाओं का सृजन आरम्भ तो हुआ परन्तु वह अधिक लोकप्रिय था कि नहीं इस बारे में विश्वस्त रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु मातृ शक्ति की अर्चना उत्तर पाषाण युग में अधिक विकसित एवं लोकप्रिय होती गई। इसी युग में जनसंख्या में वृद्धि हुई तथा मानव जीवन के मूल्यों पर भी इसका प्रभाव हुए बिना न रह सका। मानव अब कन्दराओं में रहने वाला प्राणि मात्र न हो कर कतिपय सभ्य हो गया था तथा कृषि को उसने जीवन का अंग बना कर तो उसने एक अद्भुत कार्य कर दिखाया। अब उसे बन बन आखेट के लिए तो घूमना नहीं पड़ता था परन्तु कृषि का संरक्षण तो एक बड़ी समस्या थी। कभी सूखा है तो कभी अतिवृष्टि है तो कभी बाढ़ का प्रकोप है। यदि इन से बच भी जाए तो अन्य कई प्राकृतिक विपदाएँ उसे घेरे रहतीं। अतः उसे विवश हो इन विपदाओं से परित्राण के लिए किसी अदृश्य शक्ति अथवा भूशक्ति का आश्रय लेना होता था जिसमें मातृदेवी प्रमुख थी। यही कारण है कि उत्तर पाषाण युग में भी मातृ देवी की प्रतिमाओं की भरमार है।

इस विषय पर पृथ्वी कुमार अग्रवाल^२ का कहना इस प्रकार है—

“Round the concept of motherhood a wider symbology of sex and fertility evolved as recognising her identity in the creative manifestations of several natural phenomena, power and their functions. For example, the earth, the water, the vegetation etc. Still on a different level preliminary notions of the fertility in terms of diverse nature of mother's behaviour were further analysed, through a psychological evolution, such as the Producing Mother, Nourishing mother, Benevolent Mother, Punishing Mother, Terrific Mother, Killing Mother, Ruling Mother, Great Mother, etc.

“Such physical or functional determinations proved to suggest differentiating archetypes of Mother-goddess, and come to be expressed when imputed to the evolved deity-images, through a series of symbols of ideas, attributes and myths.

मातृ शक्ति के बारे में रोबर्ट ब्रूफोल्ड^३ के विचार इस प्रकार हैं —

“Although personified abstractions are foreign to primitive thought, the primal Mother partakes from her very nature

of an abstract character as the prototype of motherhood in general."

इसकी तुलना में एरिक न्यूमन⁴ मातृ शक्ति की प्राचीनता को स्वकार करते हुए इसकी मान्यता का विकास धीरे-धीरे हुआ मानते हैं :-

"The dominance of the archetype of the Great Mother constellates the human psyche of the primordial situation in which consciousness develops only slowly and only gradually emancipates itself from the dominance of unconsciousness directing process."

वास्तव में यदि देखा जाए तो मातृ शक्ति का महत्व तो मानव के पृथ्वी पर पदार्पण के साथ ही हो गया था चाहे वह योरुप, अफ्रीका हो अथवा भारत। कारण यह कि कृषि की अच्छी उपज, धनधान्य की वृद्धि तथा पशुधन की समोचित सुरक्षा, यह ऐसी आवश्यकताएँ थी जिनका स्वरूप सर्वव्यापी था। प्रागैतिहासिक गुफाओं में वन्य जीवों की आकृतियों का कारण यह भी हो सकता है। जो विश्व के अनेकों देशों में पाई जाती हैं। ई० पू० पांच हजार वर्ष पुरानी पुरातत्व सामग्री जो पश्चिमेश्या, मध्येशिया, फ्रांस की ग्रिमाल्डी गुफाओं, कुल्ली तथा जोहाब संस्कृतियों, हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो तथा भारत के अनेकों ऐतिहासिक स्थलों से उपलब्ध पुरातत्व सामग्री में मातृ देवी की अनेक प्रकार की प्रतिमाएँ मिली हैं। इन साक्ष्यों से मातृ पूजा की प्राचीनता तथा उसके विकास पर पर्याप्त प्रकाश डलता है। (२० चि०-1-8)

मातृ देवी की पूजा के जन्म स्थान के सम्बन्ध में कई विचारधाराएँ हैं। E. O. James⁵ जैसे विद्वानों की धारणा है कि सर्व प्रथम मातृ पूजा का प्रचलन, दक्षिण रूस तथा डोन नदी के तटवर्ती क्षेत्रों एवं पश्चिम एशिया में हुआ या जो कालान्तर में मोरेविया (Moravia) तथा आस्ट्रिया (Austria) के मार्ग से समस्त योरुप में फैल गया। इधर सरजान⁶ मार्शल जैसे विद्वान जो भारतीय संस्कृति एवं पुरातत्व के प्रकाण्ड पंडित माने जाते हैं उत्तर पश्चिम एशिया जिन में हड़प्पा, बलूचिस्तान, मेहरगढ़ तथा मोहनजोदड़ो को मातृशक्ति की पूजा का जन्मस्थान मानते हैं। उन की यह मान्यता ठोस तथ्यों पर आधारित प्रतीत होती है क्योंकि उन के शब्दों में :-

"For in no other country in the world, has the worship of the Divine of the Mother has been so deep rooted and unquittuous as in India. since her shrines are found in every town and hamlet throughout the entire length and breadth of the country."

इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है कि मातृ पूजा का भारत में आज भी बहुत महत्व है और अनेक धर्म ग्रन्थों में इस की पूजा अर्चना का विधान है जिन में ऋग्वेद प्रमुख है। ऋग्वेद के वागम्भरिणी सूक्त में देवी को सब देवों की अधिष्ठाता देवी के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

अहं रुद्रे भिर्वसु भिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

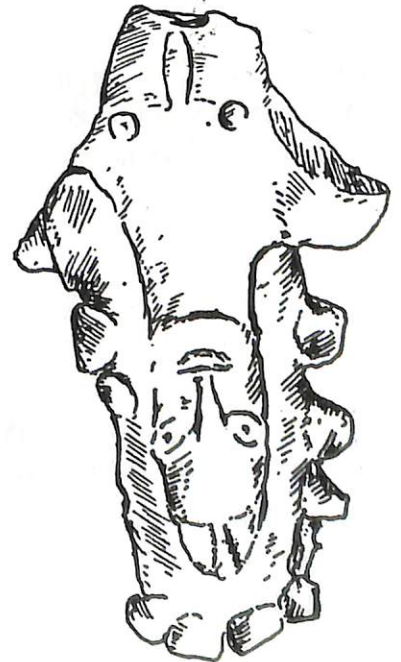
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्ष्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥

अहं सोममाहनसं बिभर्ष्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥

ऋग्वेद-१०.१२५

वेदिक साहित्य के साथ-साथ, उत्तर वेदिक साहित्य में भी देवी की विभिन्न रूपों में आराधना की गई है जिस का ब्योरा नीचे प्रस्तुत है :-



ग्रन्थ	संदर्भ	देवी का स्वरूप
(1) शतपथ ब्राह्मण.....	2.6.3.4..... 2.6.2.9	अम्बिका
(2) तैत्तिरीय ब्राह्मण.....	I.6.10.....	अम्बिका
(3) केन उपनिषद्.....	II. 25.....	उमा हेमवती
(4) श्वेताश्वतार उपनिषद्.....	IV. 10. VI-8. 1-3...	माया
(5) सौभाग्य लक्ष्मी उपनिषद्.....	V. 4. 1.2.....	महालक्ष्मी, श्रीविद्या
(6) नवो उपनिषद्.....	p.p. 41. 65.....	महालक्ष्मी
(7) गूह्यकाली उपनिषद्.....	V. 42.76.....	महादेवी
(8) देवी उपनिषद्.....	I. 10. 17.....	महादेवी
(9) सितोयमिषद्.....	V. I.....	प्रकृति
(10) त्रिपुरातापिनी उपनिषद्.....	I.1.....	त्रिपुरतापिनी, श्रीविद्या
(11) भवरिचोपनिषद्.....	श्लोक-8 (i).....	(1) महात्रिपुरसुन्दरी (2) बालम्बिका (3) बगला (4) मातङ्गी (5) स्वयंवरा (6) कल्याणी (7) भुवनेश्वरी (8) चामुण्डा (9) चण्डा (10) वारही (11) तिरस्कारिणी (12) राज मातङ्गी (13) शुकश्यामला (14) लघु श्यामला (15) अश्वारूढा (16) घूमावती (17) सावित्री (18) सरस्वती (19) ब्राह्मण्डकला देवी
(12) मण्डूकोपनिषद्.....	I. 2. 4.....	अम्बिका
(13) तैत्तिरीय संहिता.....	I.8.4.6.....	अम्बिका
(14) वाजसनेई संहिता.....	III.53.....	अम्बिका
(15) शांख्यायन गृहसूत्र.....	II. 14. (a).....	दुर्गा, ज्येष्ठा
(16) तैत्तिरीय आरण्यक.....	X-18 X-17.	अम्बिका रुद्रा दुर्गा, कात्यायनी, वैरोचनी, कन्याकुमारी
(17) बौधायन गृहसूत्र.....	I. 2. 7. 1..... III. 3.2.9	दुर्गा, ज्येष्ठा
(18) शांख्यायन श्रौत सूत्र.....	IV. 20.....	दुर्गा, ज्येष्ठा
(19) मनुस्मृति.....	III. 89.....	भद्रकाली
(20) मृच्छकटिकम्.....	I.15.....	अम्बिका

आदि कवि वाल्मीकि^१ की कल्पना में मातृ शक्ति का अपना एक अलग ही महत्व था। वह इसे पृथ्वी देवी का प्रतीक मानते थे। तभी तो सीता का जन्म हल चलाते समय पृथ्वी से ही हुआ तथा राजा जनक ने उसे पुत्री रूप में ग्रहण किया। यही नहीं सीता अन्ततः पृथ्वी में ही समा गई। जब वाल्मीकि ऋषि सीता को लेकर राम दरबार में पहुँचे तो सीता ने अपनी पवित्रता के बारे में पृथ्वी माता को साक्षी बनाते हुए यह वचन कहे :—

यथाहं राधावादयं मनसापि न चिन्तये
तथा में माधवी देवी विवर् दातुमर्हति ॥
मनसा कर्माणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा में माधवी देवी विवर् दातुमर्हति ॥

वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड, 87.15-16

(एक राम को छोड़ कर यदि मैंने किसी अन्य पुरुष की चिन्ता मन से भी कभी न की हो तो माता पृथ्वी फट जाए और मैं उस में समा जाऊँ। यदि मन वचन और कर्म से मैं न राम का ही पूजन किया है तो यह विष्णुप्रिया पृथ्वी मुझे अपने हृदय में स्थान दे।)

जिस समय सीता यह शपथ ले रही थी उसी समय एक बड़ा उद्भूत दृश्य उपस्थित हुआ। एक दिव्य सिंहासन पृथ्वी को फोड़ कर बाहर निकला। वह सिंहासन नागों के सिर पर रखा हुआ था। उन नागों का दिव्य रूप था और उनके शरीर पर दिव्य रत्न सुशोभित थे। सिंहासन पर पृथ्वी देवी बैठी थी उसने दोनों हाथों से सीता को पकड़ कर सिंहासन पर बैठा दिया। सीता के बैठते ही वह सिंहासन पृथ्वी में समा गया।

तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्ति रसातलम् ।
पुष्पवृष्टिरिविच्छन्ना दिव्या सीतामवाकिरत् ॥

वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड-पृ. 7.27

इस प्रकार सीता पृथ्वी से ही उत्पन्न हुई और मां पृथ्वी में ही समा गई। यही नहीं स्वयं भगवान राम ने “वसुधा देवी” की आराधना भी की है। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के 36 वें सर्ग में उमा-पार्वती का आख्यान है जो जगन्माता के नाम से सर्व प्रसिद्ध है।

मातृ शक्ति की आराधना हमें किसी न किसी रूप में महाभारत एवं पुराणों में भी मिलती है, वास्तव में देवी भागवत-मार्कण्डेय, देवी तथा कालिका पुराणों में तो मुख्यतः मातृ शक्ति के आख्यान ही हैं परन्तु अन्य पुराणों में भी ऐसे संदर्भों की कमी नहीं है।

मातृ शक्ति की आराधना भारत में कई प्रकार से प्रचलित है उनमें से एक उनकी चरण चिन्हों अथवा चरणपादुकाओं की भी है। जम्मू में वैष्णवों देवी की यात्रा में जाते हुए चरण पादुका एक तीर्थ है जहां पर देवी के चरण चिन्ह हैं। इसके अतिरिक्त ज्वाला जी मन्दिर (कांगड़ा) में भी देवी के चरण चिन्ह प्रवेश द्वार पर ही अंकित हैं। इन चरण चिन्हों की आराधना अति प्राचीन समय से न केवल भारत में अपितु योरोप के कई देशों में भी महसूसी वर्ष पूर्व के युगों में प्रचलित थी जिस के अवशेष आज भी उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ जर्मनी के बुनशोह (Bunsöh) नामक स्थान से ताभ्रयुगं का एक गोलाकार प्रस्तर खण्ड प्राप्त हुआ है जिस पर दो मानव पैरों के चिन्ह हैं। यह पाद चिन्ह पूजा अर्चना के लिए ही थे। इसके अतिरिक्त जर्मनी में ही बेलड्राफ (Beldraef)⁸ में पाए गए। कई प्रस्तर खण्ड पर भी पाँव के चिन्ह हैं। (रे. चित्र. 9)

पार्चुगाल से एक चरण पादुका ही मिली है जो ईसा से 2400 वर्ष पुरानी है। यह पादुका वक्राकार (Zigzag) तिनकों से बनी है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मिस्र में प्राचीन काल में हाथी दांत अथवा संगमरमर की बनी पादुकाएं मृतक शरीर के साथ ही भूमि में गाड़ दी जाती थीं परन्तु पार्चुगाल से मिली पादुका केवल आराध्य वस्तु ही थी। (रे. चि. 10)

भारत में ही नहीं पूर्वी देशों में भी देव चरणों की आराधना किसी न किसी रूप से प्रचलित थी। ऐसी ही एक प्रस्तर कम्बोडिया से भी प्राप्त हुई है जिसमें बुद्ध भगवान् के पदचिन्ह अंकित हैं। यह प्रतिमा मध्य युग की है। (रे. चि. 11)

देवी पूजा के संदर्भ में एक प्रश्न जो जन साधारण के मन में उठता है वह यह है कि महाशक्ति की नारी के रूप में ही आराधना क्यों होती है जबकि कई नर देवता भी हैं। इस शंका के मूल आधार में मनुष्य की वह मान्यता है जिसमें नर को नारी से हीन माना गया है। साधारण गृहस्थी नारी नर की सेवा-पूजा करती है उसके अधिकार आधिपत्य में रहती है। स्त्री का वर्चस्व स्वीकार करने में पुरुष अपना अपमान समझता है अतः उस शंका के पीछे शताब्दियों पुरानी वह प्रवृत्ति ही सक्रिय मालूम देती है जिसमें नारी को हीनता का शिकार होना पड़ा है। यह क्रम-अनादि काल से चला आया है परन्तु देश में मुस्लिम शासन के पश्चात् यह अधिक तीव्र हो गया जिसके अनेकों आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक प्रशासनिक एवं राजनैतिक कारण थे।

देवी माहात्म्य में देवी को मातृ रूप में संसार में व्याप्त कहा गया है। मातृरूप का परम उज्ज्वल स्वरूप है “वात्सल्य” जो एक माता से अधिक शिशु को कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता। उसी वात्सल्य की कल्पना सभी प्राणियों में देवी की कृपा से की गई है। माता के हृदय में अपार वात्सल्य है। जितनी करुणा एवं ममता माता में होती है उतनी ओर किसी सम्बन्धों में नहीं होती। उपासना के लिए भगवान के किसी घनिष्ठ सम्बन्ध के रूप में ही मान्यता प्रदान करनी पड़ती है। निराकार ब्रह्म का ध्यान संभव नहीं, ध्यान के बिना उपासना नहीं हो सकती। निराकारवादी भी ध्यान उपासना के लिए प्रकाश का ध्यान करते हैं। यह प्रकाश भी पञ्च भूतों के अन्तर्गत आता है। ध्यान भूमिका में प्रयुक्त किए जाने वाले प्रकाश बिन्दु एवं सूर्य मण्डल का एक आकार बन ही जाता है। इसलिए उपासना में कोई न कोई आधार तो निर्धारित करना ही पड़ता है। उस आकार के साथ जितनी आत्मीयता, ममता घनिष्टता होगी उतना ही अधिक उपासना में मन लगेगा, चित्त एकाग्र होगा और भावनात्मक तन्मयता की ओर दृष्टि के साथ भगवत् प्राप्ति की ओर मानव अग्रसर होता चला जाएगा।

जिस किसी के साथ घनिष्टता स्थापित होने पर कोई न कोई सम्बन्ध बन जाता है। सम्बन्ध का अर्थ है असाधारण घनिष्टता। परिवार के सदस्य, कुटुम्बी और कन्याओं के आदान प्रदान से सम्बन्धित लोग निकट सम्बन्धी कहलाते हैं। अन्य सम्पर्क में आने वाले लोग गुरुजन, मित्रगण होते हैं। इन्हीं वर्गों में स्वभाविक प्रेम बढ़ता है। इन के सान्निध्य में सुख मिलता है तथा वियोग से दुख होता है। भगवान् को प्राप्त करने के लिए उस की भक्ति आवश्यक है। उसके साथ पितु, मातु, सहायक स्वामी, सखा जैसे किसी सम्बन्ध की परिकल्पना करनी होती है। इस सम्बन्ध में जितनी अधिक आत्मीयता होगी वैसी ही प्रतिक्रिया भी होगी। गुम्बज अथवा कूप की प्रतिध्वनि की भान्ति अपनी प्रभुभक्ति ही ईश्वरीय प्रेम अथवा अनुग्रह बन कर हमारे पास लौट आती है। जिस प्रकार का ध्यान हम भगवान् के प्रति व्यक्त करते हैं उसी के अनुरूप दीवार पर फँकी हुई गेंद की भान्ति भगवत् अनुकम्पा लौट कर हमारे पास आ जाती है। इसीलिए भगवान् के साथ कोई न कोई नाता जोड़ना ही होता है यही उपासना की प्रगति का केन्द्र बिन्दु है। इसी भाव की अभिव्यक्ति हमें इस प्रार्थना में मिलती है :—

त्वमेव माता चपिता त्वमेव त्वमेव बन्धु चसखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

उपरोक्त श्लोक में सभी सम्बन्धों को गिनाया गया है जिसमें माता का सम्बन्ध सर्वप्रथम है। वह सर्वोपरि है क्योंकि माता से बढ़ कर अतीव निर्मल, अतिशय कोमल, करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण और कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, जब हम उस ईश्वरी शक्ति को माता मान कर चलते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया किसी सहृदय माता के वात्सल्य के रूप में ही उपलब्ध होती है उस उपलब्धि को पाकर साधक धन्य हो जाता है।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में माता की पदवी पिता से सौ गुना अधिक बताई गई है। इसका कारण यह है कि पिता के स्नेह एवं वात्सल्य की तुलना माता के निस्वार्थ कोमल एवं स्निग्ध वात्सल्य, करुणा एवं स्वाभाविक अनुकम्पा से कदापि नहीं की जा सकती। इसीलिए ईश्वरीय शक्ति की मातृ रूप में साधना अधिक श्रेयस्कर है।

एक वासनात्मक प्रवृत्ति मनुष्य के मन में नारी के प्रति जागरूक रहती है। यदि इस वासनात्मक प्रवृत्ति को नर-नारी में से हटा दिया जाए तो विष को अमृत में बदलने जैसी भावनात्मक रसायण बन सकती है। नर और नारी के बीच "रवि" और प्रमाण विद्युत धारा सी बहती है। उन का सम्पर्क वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है जैसा विद्युत का Positive एवं Negative धाराओं के मिलन से विद्युत संचार का माध्यम बन जाता है। माता और पुत्र का सम्बन्ध एक उत्कृष्ट स्तर की आध्यात्मिक विद्युत धाराओं का सृजन करता है ऐसा कई बार देखने को मिलता है कि मातृस्नेह से विहीन बालकों में एक तीव्र प्रकार का मानसिक अभाव रहता है चाहे उन्हें सभी सुख सुविधाएँ प्राप्त क्यों न हों। पत्नी, बहन, पुत्री आदि के रूप में भी नारी मनुष्य को महत्वपूर्ण भावनात्मक पोषण करती है साथ उसकी मानसिक अपूर्णता को पूर्ण करने में सहायक होती है। यही सांसारिक स्तर की बात उपासना के भावना क्षेत्र में भी लागू होती है। माता का जब नारी रूप जब उपासना के साथ जुड़ता है तो उससे प्राणी की बहुत बड़ी अपूर्णता पूर्ण हो जाती है।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार शक्ति अथवा देवी शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इसी कारण ही उसकी परिकल्पना नारी रूप में ही की जाती है। वास्तविकता तो यह है कि शक्ति तत्त्व को स्त्री अथवा पुरुष रूप नहीं दिया जा सकता। ऐसा तो शरीरधारी प्राणियों में सन्तानोत्पत्ति के प्रयोजन से होता है। दिव्य शक्तियाँ शरीरधारी न होकर अयोनिजा कहलाई जाती हैं तथा वह समय समय पर प्रकट होकर जनता के कष्टों का निवारण करती हैं। उन्हें नर अथवा नारी के रूप में तो साधक की सुविधा के लिए चित्रित किया जाता है।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्रत्यक्ष में ऐसा ही शिक्षा शिवाजी महाराज को उनकी माता ने दी जिस कारण से उसने अपनी सेना को यह कठोर आदेश दिए कि किसी भी विधर्मी महिला को अपमानित न किया जाए। इस के विपरीत अलाउद्दीन खिलजी ने रानी पदमिनी के मोह जाल में चितौड़ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। भारतीय इतिहास में ऐसे एनेकों उदाहरण मिलते हैं जिन में नारी-जाति को जो सम्मान मिला वह अन्य देशों में नहीं था। भारतवर्ष मनु आदि अनेकों ऋषियों की पावन भूमि है जिन्होंने "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" का सिद्धान्त जन-जन की मान्यता के लिए प्रतिपादित किया। यही कारण था कि अखण्ड राज्य की प्राप्ति के पश्चात् भी शिवाजी ने नारी के गौरव के कलंकित नहीं होने दिया।

नारी के प्रति पार्श्विक भावनाओं से तभी बचा जा सकता है यदि उन के प्रति सम्मान की भावना हो तथा मानव अपने चारों ओर "सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्" की भावना से ओतप्रोत हुआ नहीं पाता है। नारी का पवित्र रूप में देखना एक उच्च साधना है जो उसे आत्मिक उत्थान की ओर तीव्रगति से ले जाने में सहायक होती है। देवी का वास्तविक उपासक पतन से सुरक्षित रहता है कारण कि उसे नारी रूप में उस पराशक्ति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है जिसे पार्श्विक संस्कृति साक्षात्कार करने में असमर्थ है। यह साधना की आवश्यक प्रक्रिया है। यदि इसका समुचित पालन न हो सके तो साधना में अनेकों बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं।

कुमारी शक्ति तेजस्विता, सात्विकता, पवित्रता, शालीनता एवं कोमलता की प्रतिमूर्ति है। आसुरी तत्व उसमें पनप नहीं सकते। यदि वह ऐसा साहस करते हैं, तो वह उनका नाश कर देती है। उसका तेज अतीव प्रचण्ड है योगिनी तन्त्र के अनुसार एक समय कराल बदना महाकाली ने ब्राह्मण कन्या का रूप धारण कर कोलासुर दैत्य का नाश किया था। कुमारी पूजन से साधक में भी शक्ति अवतरित होती है इस शक्ति के विकसित होने पर प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। हिन्दु धर्म में कुमारी पूजन का यही कारण है। तन्त्रों ने भी इसे साधना रूप में अपनाया है। इसीलिए तो नवरात्रों में नियमित रूप से कुमारी पूजन का विधान है।

बृहज्ज्योतिषार्णव (धर्म स्कन्ध-४, उपासना स्तम्भ-३, तथा अध्याय-१२४) में कुमारी का निरूपण इस प्रकार किया गया है :—

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत् ।

गन्ध पुष्प फलादिनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥

द्विवर्षान्तर - मारुथ्य दशवर्षाविधि क्रमात् ।

पूजयेत्सर्वं कार्येषु यथाविध्युक्तमार्गतः ॥

(एक वर्ष तक की कन्या का पूजन नहीं करना चाहिए क्योंकि एक वर्ष की आयु की कन्या को गन्ध पुष्पादि से कोई प्रीति नहीं होती है।

दो वर्ष से लेकर दस वर्ष की कन्या ही पूजा के योग्य होती है।)

कन्या सभी प्रकार की स्मृद्धि है, सब प्रकार का श्रेष्ठ तप है। कुमारी पूजन के बिना, होम, मन्त्रार्चन, नित्यक्रिया निष्फल मानी जाती हैं। कुमारी पूजा से साधक कोटि गुणित फल प्राप्त करता है।

शक्ति साधना में कुमारी पूजन :—

कुमारी पूजन का महत्व भारत में प्राचीन काल से प्रतिष्ठित है। भारत एक धर्म प्रधान तथा अध्यात्मवादी देश है। प्रत्येक क्रिया जिसका आध्यात्म से सम्बन्ध है यहाँ उच्च सम्मान का पात्र रही है। जहाँ वनस्पति, वृक्ष एवं जलाशयों की पूजा होती है वहाँ भला सात्विकता की प्रतिमूर्ति-कुमारी की कैसे उपेक्षा की जा सकती है। उसे उच्च आसन पर आसीन करना उच्च सिद्धान्तों का ही प्रतीक है। देवी देवताओं की आराधना में हमारा उद्देश्य ईश्वर के अनेकों विशिष्ट गुणों को अपने में ओत-प्रोत करना है। जब मूर्ति पूजा से हम गुणों के आकर्षण की प्रतिक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं, तो क्रिया शील आराध्य तो शीघ्र फलदाई सिद्ध हो सकता है। शास्त्रों में ईश्वर को सनातन कुमारी माना गया है। श्वेताश्वतार उपनिषद् में ईश्वर को स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारी की संज्ञा दी गई है :—

त्वं स्त्री एवं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

क्योंकि :-

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।

तदेव शक्रं तद् ब्रह्म तदायस्तत् प्रजापतिः ॥

श्वेताश्वतार उपनिषद् :— 4.2

(वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है। वही नक्षत्र है, वही जल, प्रजापति तथा ब्रह्म भी है)

सब को विभु में देखने वाला कुमारी में भी अपने इष्ट देव के दर्शन करता है। एक विद्वान ने इस विषय पर अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किए हैं :—

“ईश्वर की सन्तान कुमारी है। जो खिले हुए कमल के पुष्पों के समान नवीन एवं कोमल है जिसके नेत्र रूपी कमल विश्व रूपी जल में तैरते रहते हैं। वह मनुष्यों की ओर प्रेमपूर्ण और करुणा भरी दृष्टि से देखती है और उसकी वाणी में सन्ध्याकालीन मन्द-मन्द वायु का सुकोमल संगीत भरा हुआ है। जब मनुष्य की आँखें उसकी आँखों के स्पर्श में आती हैं तथा उसके अधरों पर चिरकने लगती हैं तब वह उसकी आत्मा को अपने में और अपनी आत्मा को उसके अन्दर देखने लगता है। यहां तक कि उसका पुरुष भाव भी मिट जाता है और संसार के सभी पदार्थ मधुर और कोमल हो जाते हैं”।

हिन्दु धर्म में कुमारी पूजन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है तथा इसकी पृष्ठभूमि में ऋषियों का वह गहन अध्ययन है जिसके अन्तर्गत मानव की सहज प्रवृत्ति का विश्लेषण है। संस्कारों वश पशुभाव का आधिपत्य रहता है। तनिक सी भी उत्तेजना मिलने पर उसमें वह पाशविक वृत्ति जागृत हो उठती है। अतः उसे एक मनोवैज्ञानिक मोड़ देना ही श्रेयस्कर है। व्यवहारिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो मानव में काम वासना जीवन के किसी भी मोड़ पर उसे पथ भ्रष्ट कर सकती है। इस प्रवृत्ति से ऋषि, मुनि भी नहीं बच सके हैं। देवर्षि विश्वामित्र का उदाहरण हमारे समक्ष है। वह मेनका के रूप-लावण्य से प्रभावित हो अपनी तपस्या से विमुख हो गए। भारतीय पौराणिक साहित्य में ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। यही कारण था कि हमारे धर्म ग्रन्थों में “मातृवत परदारेषु” का पाठ जन साधारण को दिया।

कुमारी पूजन का वैसे तो अनेकों धार्मिक अनुष्ठानों में विधान है परन्तु नवरात्रों में दुर्गा पूजा का अनुष्ठान पूर्ण नहीं माना जाता जब तक कि कुमारी पूजन न किया जाए। वास्तव में कुमारी पूजन दुर्गा पाठ का एक अंश ही बन गया है।

संदर्भ

1. Banarjee, A.K. *Discussions on Hindu Spiritual Culuture*. vol. II. pp. 59-60
2. Agrawala, P.K. *Goddesses in Ancient India*. Varanasi. 1984. p.3.
3. Briffault Robert. *The Mothers*. (London). 1927. Vol. III. P.48
4. Normann Erichi *The Great Mother*; Newyork, 1954. p.92
5. James E.D. *The Cult of the Mother Goddess*. p. 13. London. 1959
6. Marshall, John *Mohacnjodaro and Indus Civilization*. Vol. I, pp. 48 II
7. Valmiki Ramayana *Uttara Khanda*. 98.6.
8. Nagar, S.L. *The Universal Mother*. p.20. fig.28.

देवी का प्रदुर्भाव (दिव्य रूप से एवं देवताओं के तेज से)

मातृ शक्ति की उपासना अनादि काल से न केवल भारत में अपितु विश्व के अनेकों देशों में प्रचलित थी। उसकी उपासना के अवशेष गिन्धु घाटी सभ्यता में भी मिलते हैं। परन्तु उन अवशेषों में भी उस मातृशक्ति की मान्यता एक उन्नत रूप में प्राप्त है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि इसकी उपासना सिन्धु घाटी सभ्यता से पूर्व अवश्य रही होगी जो उन्हें अपनी प्राचीन संस्कृति से धरोहर के रूप में प्राप्त हुई। इसी मातृशक्ति की उपासना के अवशेष बुलोचिस्तान के कुली स्थान पर तथा पश्चिम एशिया के कई अन्य देशों में भी उपलब्ध हैं। इन देशों में मिली मूर्तियाँ कई प्रकार की सामग्री से बनी हैं और मातृ पूजा की प्राचीनता एवं अन्ततः दुर्गा महिषासुरमर्दिनी के स्रोत की ओर इंगित करती हैं।

देश में दुर्गा महिषासुरमर्दिनी की मान्यता के प्रादुर्भाव एवं विकास के दो मुख्य स्रोत हैं, पहला साहित्य और दूसरा पुरातत्व के अवशेष। प्राचीन संस्कृत साहित्य में देवी के प्रादुर्भाव एवं उसकी मान्यता तथा पूजा पद्धति का सविस्तर वर्णन है जबकि पुरातत्व सामग्री में पाषाण प्रतिमाएँ, मृण्मय एवं कांस्य मूर्तियाँ, हस्तलेखा, चित्र आदि सम्मिलित हैं।

(1) वैदिक साहित्य

सर्वप्रथम वैदिक साहित्य का अवलोकन करते हुए जे. एन. बैनर्जी¹ का कहना है कि देवी की मान्यता का प्रारम्भ लक्ष्मी के रूप में उत्तर वैदिक युग में उपलब्ध है। ऋग्वेद अथवा अन्य संहिता ग्रन्थों में श्री अथवा लक्ष्मी का उल्लेख नहीं है। परन्तु शतपथ ब्रह्मण में उसका आविर्भाव बड़े नाटकीय ढंग से मिलता है तदनुसार एक समय प्रजापति ब्रह्मा सृष्टि रचना करते हुए कुछ विपादमय हो गए उस समय श्रीदेवी ब्रह्मा के सन्मुख प्रकट हुई। उसके सौन्दर्य की छटा से सभी देववृन्द ईर्ष्या से भर गए और उसे मारने को उद्धत हुए। प्रजापति ब्रह्मा ने उन्हें ऐसा करने से रोका क्योंकि वह एक नारी स्वरूप थी। किन्तु उसके सभी आयुध तथा सिद्धियों को ब्रह्मा ने उससे ले लेने की अनुमति दे दी। इसके पश्चात् अग्नि सोम, वरुण, मित्र, इन्द्र, बृहस्पति, सवितर, पूषण एवं सरस्वती ने श्रीदेवी की प्रतिष्ठा, प्रभुसत्ता, प्रभुत्व लक्ष्मी तथा अन्य विभूतियाँ ले लीं। तब प्रजापति की आज्ञानुसार उस श्रीदेवी ने दस होम दस देवताओं को भेंट की जिससे उस की नष्ट हुई ऋद्धि सिद्धि सभी पुनः लौट आई। इस कथा का अभिप्राय समझना कठिन नहीं होगा जो इस बात का प्रतीक है कि श्री देवी उन सभी ऐश्वर्य युक्त सदगुणों का समूह है जिस की प्राणिमात्र को सदैव आकांक्षा रहती है। ऋग्वेद के श्रीसूक्त में (जो कालान्तर में जोड़ी गई मानी जाती है) श्री लक्ष्मी का भव्य स्वरूप दर्शाया गया है।

(2) उपनिषद् साहित्य

आर्य सभ्यता की वैदिक परम्परा में ब्रह्म तत्व का अभ्युदय उपनिषदों में व्याप्त है जिसमें मातृ शक्ति की उपासना भारत में आर्य सभ्यता से प्राचीन मानी गई है। इसी नारी शक्ति अथवा मातृशक्ति का समन्वय आर्य सभ्यता में उमा, उमाहेमवती, हिमालय की पुत्री उमा के रूप में हुआ जो पार्वती के नाम से भी जानी जाने लगी क्योंकि वह पर्वतराज हिमालय की पुत्री थी। अतः प्राचीन ग्रन्थ जिसमें वह देवी अपने अभूतपूर्व व्यक्तित्व को दर्शाती है वह देवी माहात्म्य न होकर केन उपनिषद है। शताब्दियों तक सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान ब्रह्म को ही आर्य सभ्यता सर्वोपरि मानती थी जिसमें यज्ञ, होम आदि का प्रचलन था। परन्तु इस रुढ़िवाद की शिथिलता केन उपनिषद में प्रत्यक्ष दिखाई देती है जिसमें मातृशक्ति विजयी होकर भारत के धार्मिक क्षितिज पर उभरती है। यह तो मानना ही होगा कि इस देवी शक्ति में वैदिक देवताओं पर अपना प्रभुत्व सिद्ध कर दिया क्योंकि ब्रह्म का ज्ञान सित्राएँ देवी के किसी को न हो पाया। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि देवी हेमवती का अभ्युदय आर्य एवं अनार्य सभ्यताओं के मेल का प्रतीक है।

उमा हेमवती का उपाख्यान केन उपनिषद में इस प्रकार है कि ब्रह्माण्ड में एक बार देवताओं और असुरों में एक भीषण युद्ध हुआ जिसमें देवताओं ने अप्रत्यक्ष रूप से ब्रह्म की शक्ति द्वारा असुरों पर विजय प्राप्त की। उस समय तक देवताओं को ब्रह्म और उसकी शक्ति का तनिक मात्र भी ज्ञान नहीं था। अतः उस विजय के पश्चात् सभी देवतागण प्रमाद ग्रसित हो गए और ऊँचे स्वर से अपनी विजय का हर्षनाद करने लगे कि “विजय हमारी है। यह सम्मान भी हमारा है”। तभी ब्रह्म अपने तेज पुन्ज में वहाँ प्रकट हुए। परन्तु देवता लोग को नहीं पहचान पाए। अतः उसका अस्तित्व उन आत्मनिष्ठ देवों के लिए पहली ही बना रहा।

केन उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ने ही देवताओं को विजयी बनाया परन्तु देवता उसे अपनी ही विजय समझ कर गर्व से भर गए और अहंकार युक्त घोषण करने लगे कि वह विजयी हो गए। ब्रह्म उन के अहंकारयुक्त वर्ताव को देखकर उनके सम्मुख प्रकट हुए परन्तु देवता लोग उन ब्रह्म के अस्तित्व से अनभिज्ञ थे। अतः आपस में वह मन्त्रणा करने लगे कि वह क्या वस्तु है। तब सभी देवताओं ने अग्निदेव को ब्रह्म के पास उसका आगमन जानने को भेजा। अग्निदेव के ब्रह्म के समीप पहुँचने पर ब्रह्म ने पूछा कि आप कौन हैं। अग्निदेव ने उत्तर दिया कि वह अग्निदेव हैं तथा उनमें यह शक्ति है कि वह संसार की हर वस्तु को जला दें। तब ब्रह्म ने अग्नि के समग्र एक तृण डाल कर उसे जलाने का आदेश दिया परन्तु अग्निदेव भ्रमक प्रयत्न करने पर भी उसे न जला सके। अपने प्रयत्नों में विफल होने पर अग्निदेव ने अपनी असफलता स्वीकार की और देवताओं के पास पुनः आया

आए और उन से बोले कि वह ब्रह्म का अस्तित्व जानने में असफल रहे।

इसके पश्चात देवताओं में वायुदेव को ब्रह्म के समक्ष भेजा। ब्रह्म ने उन के गुण जान लेने पर उन्हें एक तिनका उड़ाने की आज्ञा दी परन्तु वायुदेव इस तृणमात्र को अपने सम्पूर्ण वेग का प्रयोग करने पर भी नहीं हिला सके। इन्होंने भी देवताओं के समीप जा कर अपनी असमर्थता प्रकट कर दी।

तभी सब देवताओं ने देवराज इन्द्र को उस यक्ष (ब्रह्म) का अस्तित्व जानने के लिए भेजा। वह उसकी ओर भागा परन्तु वहां पर यक्ष के स्थान पर तेजपुंज दिखाई दिया और उसके स्थान पर हिमालय की पुत्री उमा हेमवती प्रकट हुई। इन्द्र ने उमा से उस यक्ष के अस्तित्व के बारे में प्रश्न किया। उमा ने ही इन्द्र को बताया कि वह यक्ष ब्रह्म ही थे और उन की असुरों पर विजय इन्हीं ब्रह्म शक्ति से ही हुई थी²। अतः ब्रह्म का वास्तविक ज्ञान उमा हेमवती द्वारा ही हुआ जिससे वे अवतक अनभिज्ञ थे।

अथेन्द्रमबुवन मधवन्नेतद् विजानीह, किमेतद् यक्षमिति,
तथेति तदभ्यद्रवत् तस्मात् तिरोदधे ॥
स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियामाजगाम बहुशोभनामुमां
हेमवतीं, तां हो वाच किमेतद् यक्षमिति ॥
सा ब्रह्मेति हो वाच, ब्रह्मणो वा एतद् विजये महीयध्वमिति,
ततो हैव विदान्वकार ब्रह्मेति ॥

केन उपनिषद् : 3.11-12; 4.1.

उपरोक्त कथानक से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसा से 6 सौ वर्ष पूर्व वह देवी शक्ति ही थी जिसे ब्रह्म के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान था जिसका दिग्दर्शन उसने देवताओं को भी करवाया। उन देवताओं को तभी बोध हुआ कि उनकी विजय इन्द्रादि देवों के प्राक्रम से न हो कर उसी आदि शक्ति ब्रह्म का स्वरूप है और ब्रह्माण्ड के कण-कण में व्याप्त है।

वास्तव में केन उपनिषद् ही सर्व प्रथम देवी की महत्ता को उजागर करके वैदिक रूढ़वादि परम्पराओं को त्याग नारी जाति को गौरव प्रदान कर देवी शक्ति को सर्वोच्च स्थान प्रदान कर उसे देवताओं के गुरु का स्थान देती है। इससे पूर्व देवतागण ब्रह्म शक्ति से सर्वथा अनभिज्ञ थे। तभी तो ब्रह्म एवं उसकी शक्ति एक दूसरे के अविभाज्य अंग मानी जाने लगी और देवी की महिमा भी दिनोदिन बढ़ती गई। 108 उपनिषदों में से जिन आठ उपनिषदों में देवी की महिमा का वर्णन है उनकी सूची प्रथम अध्याय में दी जा चुकी है। केन उपनिषद् में जिस उमा हेमवती का उल्लेख हुआ है वही उमा वाल्मीकि रामायण में भगवान् शिव की अर्धाङ्गनी के रूप में प्रकट हुई।

(3) वाल्मीकि रामायण

पुरा राम कृतोद्वाहः शितिकण्ठों महातपाः ॥
दृष्ट्वा च भगवान् देवी मैथुनायोपचक्रमें ।

बालकाण्ड 36.6

(श्री राम। पूर्व काल में महा तपस्वी भगवान् नीलकण्ठ ने उमा देवी के साथ विवाह करके उनको नव वधु के रूप में अपने निकट आई देख उसके साथ रति क्रीड़ा की।)

(4) महाभारत

भीष्म पर्व के 23वें अध्याय में वर्णित दुर्गा का स्तोत्र स्कन्द पुराण के स्तोत्र से साम्यता रखता है। महाभारत युद्ध के समय जो भगवान् कृष्ण ने कौरव और पाण्डव दोनों सेनाओं को अपने समक्ष देखा तो अर्जुन को प्रेरणा दी कि विजय प्राप्ति के लिए तुम दुर्गा का स्तवन करो। अर्जुन ने कहा—हे आर्या ! हे सिद्ध सेनानी ! हे मन्दिर-पर्वत वासिनी देवी ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कुमारी, भद्रकाली, कपाली, कृष्णपिंगले, महाकाली, चण्डी, तारिणी मेरा प्रणाम स्वीकार करो, हे कात्यायनी, महाभागे, कराली, विजया, जया, मयूरपंख ध्वजा धारिणी, महिषासुरमर्दिनी, कौशिकी, नित्य पीतवसिनी, अट्टाहसकारिणी, चक्रसमान मुखवाली, रणप्रिये, मेरा आप को नमस्कार है। हे उमा, शकुम्भरी कैटभ दैत्य विनाशिनी, हिरण्याक्षी, विरुपाक्षी सुन्दर धूम्राक्षी मैं आप को नतमस्तक हूँ। हे ब्रह्मण्ये, भूतकालज्ञा, जम्बुद्वीप वासिनी, वेद जिन की पुण्यदायिनी महिमा का गान करते हैं आप को नमस्कार है। हे स्वामी कार्तिक की माता, दुर्गा, भगवती, वनवासिनी मेरा आप को प्रणाम है। आप ही स्वाहाकर स्वधा, कला काष्ठा सरस्वती, वेदमाता सरस्वती और वेदान्त स्वरूपा हो। हे महादेवी मैंने पवित्र मन से आपका स्तवन किया है। आप की कृपा से युद्ध में मेरी विजय हो।”

अर्जुन के पवित्र भाव से स्तवन करने पर देवी आकाश में प्रकट हुई और बोली “हे पाण्डव तुम कुछ ही समय में शत्रु पर विजय प्राप्त करोगे, यदि इन्द्र भी तुम्हारा विरोधी हो जाए तब भी कोई शत्रु तुम्हें पराजित नहीं कर सकता।”

यह आख्यान महाभारत काल में प्रचलित दुर्गा उपासना पर प्रकाश डालता है। परन्तु यह सन्दर्भ महाभारत की सभी प्रतियों में उपलब्ध नहीं है। इसीलिए कुछ विद्वान् इसे श्लेषक भी मानते हैं। परन्तु इस सन्दर्भ की प्राचीनता के बारे में संशय नहीं किया जा सकता।

(5) पौराणिक साहित्य

देवी भागवत् में देवी को दुर्गा-पार्वती एवं विष्णु-माया के रूप में दर्शाया गया है। दूसरे शब्दों में यह पार्वती एवं लक्ष्मी अथवा महालक्ष्मी का स्वरूप भी है। परन्तु लक्ष्मी का उद्गम समुद्र मन्थन द्वारा हुआ माना जाता है महाभारत में समुद्र मन्थन का वृत्तान्त बहुत ही सजीव ढंग से चित्रित है। इसके अनुसार समुद्र मन्थन का उद्योग देवताओं एवं असुरों द्वारा मामूहिक ढंग से हुआ इस उद्योग में मन्दराचल पर्वत की मथानी बनाकर वासुकी नाग की डोरी से क्षीरसागर का मन्थन किया गया। भगवान् विष्णु ने कूर्मावतार द्वारा मन्दराचल के आधार भूत होकर इस देव कार्य में सहायता की। इस मन्थन से धन्वन्त्री वैद्य, उच्चैश्रवा अश्व, गजेन्द्र एवं लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई कही जाती है।

मार्कण्डेय पुराण सभी पुराणों में प्राचीन माना जाता है। देवी माहात्म्य भी इसी का एक अंश है जो विद्वानों के मतानुसार बाद में जोड़ा गया है। किन्तु फिर भी देवी माहात्म्य की प्राचीनता भी सर्वमान्य है। मार्कण्डेय पुराण का देवी माहात्म्य खण्ड मूलग्रन्थ से कुछ अर्वाचीन हो सकता है परन्तु इसकी रचना शैली श्लोकों की रोचकता काव्य की प्रभावोत्पादक क्षमता को दृष्टि में रखते हुए उसे अधिक उत्तर कालीन मानना न्याय संगत नहीं होगा। इसी देवी माहात्म्य के अनुसार देवी नित्यरूपा ही है। सम्पूर्ण जगत उनका ही स्वरूप है तथा उन्हीं से समस्त विश्व व्याप्त है। फिर भी उस देवी का प्राकट्य अनेक प्रकार से होता है। यद्यपि वह नित्य और अजन्मा है फिर भी वे देवताओं का कार्य करने के लिए समय-समय पर प्रकट होती हैं :-

देवानां कार्य सिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ॥

कल्प के अन्त में जब सम्पूर्ण जगत एकार्णव में निमग्न हो रहा था और सब के प्रभु भगवान् विष्णु शेष नाग की शैय्या पर योगनिद्रा का आश्रय ले सो रहे थे उस समय उनकी कानों की मेल से दो भयंकर अमुर उत्पन्न हुए जो मधु और कैटभ के नाम से विख्यात हुए। वह दोनों दैत्य ब्रह्मा का वध करने को तैयार हुए। भगवान् विष्णु के नाभ कमल में विराजमान प्रजापति ब्रह्मा ने जब उन दोनों भयानक असुरों को अपने समीप तथा भगवान् को निद्रा अवस्था में देखा तो एकाग्रचित्र हो कर उन्होंने विष्णु को जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योगनिद्रा की स्तुति आरम्भ की। जो इस विश्व की अधीश्वरी, जगत को धारण करने वाली संसार का पालन एवं संहार करने वाली तथा तेजस्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति है। उन्हीं भगवती निद्रा देवी की ब्रह्मा स्तुति करने लगे।

निद्रा भगवती विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः।

देवीमाहात्म्य-1.17

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा द्वारा स्तुति करने पर भगवान् जनार्दन एकार्णव समुद्र में शेष नाग की शैय्या से जग उठे और उन दोनों असुरों को देखा। वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान और प्राक्रमी थे। वे दोनों ब्रह्मा को प्रताड़ित करने को ही थे। तब हरि ने उन दोनों दैत्यों के साथ युद्ध किया। तब महामाया ने उन दैत्यों को मोहग्रस्त कर दिया तथा वे अहंकार युक्त वाणों में भगवान् विष्णु को बोले, “हम तुम्हारी वीरता से प्रसन्न हैं कोई वर मांगो”। तब भगवान् विष्णु ने कहा कि “यदि आप वास्तव में प्रसन्न हैं तो मेरे हाथों मारे जाओ। बस इतना सा ही मैं वर मांगता हूँ। तब विवश हो दैत्यों ने कहा—“जहां पृथ्वी जल में डूबी हुई न हो जहां सूखा स्थान हो वही हमारा वध करो।” (आवांजहि न यत्रोर्थी सलिलेन परिप्लुता)। तब भगवान् विष्णु ने उन दोनों के मस्तक अपनी जाँघ पर रख कर काट दिए। इस प्रकार देवी महामाया ब्रह्मा जी की स्तुति करने पर प्रकट हुई थीं।

इसके अतिरिक्त देवी महिषासुरमर्दिनि के प्रादुर्भाव का वृत्तान्त देवी माहात्म्य के द्वितीय अध्याय में वर्णित है। जिसके अनुसार महिषासुर के दैत्यों के स्वामी हो जाने पर उसने इन्द्रादि सभी देवताओं को पराजित कर दिया। तब सभी देवता भगवान् विष्णु एवं शिव के पास अपनी रक्षा के लिए पहुँचे। उन्होंने अपनी पीड़ा की गाथा सुनाई जिसे सुन कर भगवान् विष्णु और शिव ने दैत्यों पर बड़ा क्रोध किया। तब अत्यन्त क्रोध से भरे चक्रपाणि विष्णु के मुख से एक महान् तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताओं के शरीर से भी बड़ा भारी तेज निकला और वह सभी मिलकर एक तेज पुंज में परिणत हो गया। वह तेज पुंज एक देदीप्यमान पर्वत सा जान पड़ा जिस की ज्वालाएं दसों दिशाओं में व्याप्त थीं। एकत्रित होने पर वह एक नारी के रूप में परिणत हो गया। वसुदेवशरण³ अग्रवाल ने इस तेज पुंज की व्याख्या इस प्रकार से की है :-

“The Deva principle is essentially a flaming tower of fire or a mountain of conflagration of Heat (देवोष्ण्य) and primeval of favour (अग्रज, तपस, अमीद्व तपस) of that Divine Light ब्रह्मरूप सूर्य is but one symbol in the endless chain of axial alignment of millions and billions of other suns. That is also conceived in the Puranas as a Jyotirlinga of incomparable splendour whose ends are beyond measure. The three worlds are filled with Divine Light (व्यापू लोकत्रायं त्विषा-2.12)

सभी देवताओं के तेज एकत्रित हो गए और वही तेज पुंज संसार में व्याप्त हो एक नारी रूप धारण कर लिया। इस सर्वशक्तिमयी देवी की अंग प्रत्यंग का स्रोत इस प्रकार से था (परिशिष्ट-1) :-

देवता का नाम

- (1) शिव के तेज से _____
- (2) यम के तेज से _____
- (3) विष्णु के तेज से _____
- (4) चन्द्रमा के तेज से _____
- (5) इन्द्र के तेज से _____
- (6) वरुण के तेज से _____
- (7) पृथ्वी के तेज से _____
- (8) ब्रह्मा के तेज से _____
- (9) सूर्य एवं वसुओं के तेज से _____
- (10) कुबरे के तेज से _____
- (11) प्रजापति के तेज से _____
- (12) अग्नि के तेज से _____
- (13) वायु के तेज से _____

देवी अंग रचना

- मुखमण्डल की रचना हुई।
- बालों की रचना हुई।
- भुजाओं की रचना हुई।
- वक्षस्थलों की रचना हुई।
- कटि प्रदेश की रचना हुई।
- जंघाएँ बनी।
- निम्बों की रचना हुई।
- पाँव तथा पाँव की अंगुलिया बनीं।
- हाथ और हाथ की अंगुलियों की रचना हुई।
- नासिका की रचना हुई।
- दाँतों की रचना हुई।
- नेत्रों तथा भ्रुकुटियों की रचना हुई।
- कानों की रचना हुई।

अतः देवी के सभी अंग देवताओं के तेज से उत्पन्न हुए। यही नहीं उस आदि देवी के अस्तित्व में आते ही सभी देवताओं ने अपने दिव्यास्त्र आदि देवी को रक्षार्थ प्रदान किए। देवी माहात्म्य के अनुसार विभिन्न देवताओं ने जो अस्त्र-शस्त्र देवी को प्रदान किए वह इस प्रकार हैं। (परिशिष्ट-2)

देवता का नाम

- (1) शिव _____
- (2) कृष्ण _____
- (3) वरुण _____
- (4) अग्नि _____
- (5) मारुत _____
- (6) इन्द्र _____
- (7) सहस्राक्ष (इन्द्र) _____
- (8) यमराज _____
- (9) वरुण _____
- (10) प्रजापति (ब्रह्मा) _____
- (11) ब्रह्मा _____
- (12) सूर्य _____
- (13) काल _____
- (14) समुद्र _____
- (15) विश्वकर्मा _____
- (16) हिमवत _____
- (17) कुबेर _____
- (18) शेषनाग _____
- (19) अन्य देवता _____

अस्त्रादि की सूची

- त्रिशूल
- चक्र
- शंख
- भाला
- धनुष एवं बाण
- वज्र
- ऐरावत हाथी का घण्टा
- यमदण्ड
- पाश
- मोतियों की माला
- कमण्डलु
- समस्त रोम कूपो मे तेज भरा।
- ढाल और तलवार
- उज्ज्वल हार तथा कभी भी जीर्ण न होने वाले वस्त्र तथा अन्य आभूषण।
- निर्मल परसा तथा अनेक प्रकार के अस्त्र एवं अभेद्य कवच।
- वक्षः स्थल और मस्तक पर धारण करने के लिए कभी न कुम्हलाने वाले कमलों की मालाएँ।
- वाहन रूप में सिंह तथा अन्य रत्न
- मधु से भरा पान पात्र
- नागहार
- आभूषण एवं अस्त्र शस्त्र।

इस प्रकार सभी देवताओं ने सम्मान पाकर देवी ने बारंबार अट्टहास पूर्वक उच्च स्वर से गर्जना की। उनके इस सिंह नाद से सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा। इस सिंह नाद से पृथ्वी डोलने लगी और समस्त पर्वत हिलने लगे।

सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः।

तस्या नादेन धीरेण कृत्स्नमापूरितं नभः

देवी माहात्म्य - 2-2.3

(2) वामन पुराण में महर्षि पुलस्त्य देव ऋषि नारद को महिषासुरमर्दिनी के आविर्भाव का वृत्तान्त सुनाते हैं जिसके अनुसार एक समय मांहपासुर ने अश्विनी कुमार, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, ब्रह्मा और इन्द्रादि देवताओं पर अधिकार कर लिया। यह सभी देवता एकत्रित हो कर विष्णु एवं भगवान् शिव, जो एक साथ बैठे थे, के समक्ष उपस्थित होकर उन्हें महिषासुर के प्रकोप की गाथा सुनाई। देवताओं की व्यथा से दोनों भगवान् विष्णु एवं शिव क्रोधित हो उठे। उनके मुख से महान तेज प्रकट हुआ। वही तेज कात्यायन ऋषि के आश्रम में पर्वत श्रृंग तुल्य एकत्रित हो गया और उर्मा तेज से सहस्रों सूर्यों के समान एक विशुद्ध देह वाली चंचल एवं विशाल नेत्रों वाली कात्यायनी देवी प्रकट हुई।

तेनर्षि सृष्टेन च तेजसा वृत्तं ज्वलत्प्रकाशार्कसहस्रतुल्यम्।

तस्माच्च जाता तरलायताक्षी कात्यायनी योग विशुद्ध देहा ॥

वामन पुराण, 19.8

इसके पश्चात् देवी के अंगों की रचना के बारे में भी विशेष रूप से उल्लेख है जिसके अनुसार :-

माहेश्वर शिव के तेज से	देवी के मुख की रचना हुई।
अग्नि के तेज से	तीनों नेत्रों की रचना हुई।
विष्णु के तेज से	अट्टारह भुजाएँ बनीं।
चन्द्रमा के तेज से	सम्यक् सटे हुए स्तन युगल बने।
इन्द्र के तेज से	मध्य भाग बना।
वरुण के तेज से	ऊरु जंघों एवं नितम्बों की रचना हुई।
पितामह ब्रह्मा के तेज से	पदयुगल बने।
आदित्यों के तेज से	पाँव की अंगुलियाँ बनीं।
वसुओं के तेज से	हाथ की अंगुलियाँ बनीं।
प्रजापतियों के तेज से	दाँत बने।
वायु के तेज से	दोनों कान बने।
यक्षों के तेज से	नाक की रचना हुई।

कामदेव के तेज से दोनों भौहें बनीं। देवी के आविर्भाव के पश्चात् सभी देवताओं ने देवी को अपने अस्त्र, शस्त्र एवं आभूषण आदि अर्पित किए जिन का व्योरा इस प्रकार है।

देवता	अर्पित वस्तु
ब्रह्मा	कमण्डलु एवं अक्षमाला
शिव	त्रिशूल
विष्णु	चक्र
वरुण	शङ्ख
अग्नि	शक्ति
वायु	धनुष
सूर्य	अक्षय बाणों वाले दो तूणीर
इन्द्र	घण्टा सहित वज्र
यम	दण्ड
कुबेर	गदा
काल	ढाल सहित तलवार
चन्द्रमा	चामर सहित हार।
समुद्र	माला
हिमालय	सिंह
विश्वकर्मा	चूड़ामणि, अर्धचन्द्र तथा कुठार
गन्धर्वराज	रजत का पात्र
नागराज	नागहार
ऋतुओं ने	नमुरझाने वाले पुष्प

यहाँ पर विचारनीय विषय यह है कि वामन पुराण में देवी को अट्टारह भुजाओं से सुसज्जित दिखाया गया है। (भुजाष्टादश सप्रजिज्ञरे, 19.18) और जो आयुध देवताओं ने देवी को भेंट किए उन की संख्या लगभग अट्टारह ही बनती है।

अपने प्रादुर्भाव के पश्चात् देवताओं द्वारा पूजित होने पर उस त्रिनेत्रा देवी कल्यायनी ने उच्च स्वर से अट्टहास किया। तत्पश्चात् देवी सिंह पर सवार होकर विन्ध्य नामक ऊँची शृंखलाओं वाले पर्वत पर चली गई। इसी पर्वत की चोटियों को महर्षि अगस्त्य ने निम्न कर दिया था। वह आदिशक्ति देवताओं की विभिन्न तेजों के समावेश से ही उत्पन्न हुई।

यही नहीं, वामन पुराण में यह भी वर्णित है कि शिव ने हिमवान की तपोधना नामक कन्या से विवाह किया था उन्हीं के कोख से कौशिकी देवी का आविर्भाव हुआ था और उसी ने विन्ध्य पर्वत पर जाकर शुम्भ एवं निशुम्भ नामक दैत्यों का वध किया था।

या सा हिमवतः पुत्री भवेनोढा तपोधना।

उमा नामा च तस्याः सा कोशाज्जाता तु कौशिका ॥

सम्भूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूत गणैर्वृता।

शुम्भं चैव निशुम्भं च वधिष्यति वरायुधैः ॥

वामन पुराण -22.3.4

(3) देवी भागवत पुराण के अनुसार महिषासुर द्वारा प्रताड़ित देवगण शिव तथा ब्रह्मा को आगे कर महाराज विष्णु के पास पहुँचे और अपनी पीड़ा का वर्णन किया। उन्होंने भगवान् विष्णु से यह भी स्पष्ट किया कि दानव महिषासुर किसी पुरुष द्वारा अजेय है और केवल नारी रूप में कोई शक्ति अवतरित हो कर उस दानव का नाश कर सकती है। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तथा अन्य देवताओं से तेज पुञ्ज का आविर्भाव हुआ। पश्चात् वही तेज पुञ्ज एक नारी के रूप में परिवर्तित हुआ जिसके अट्टारह हाथ, तीन नेत्र, तेजोमय मुखमण्डल, रक्तोष्ठ थे और जिसके शरीर पर अनेकों आभूषण सुशोभित थे। अन्य पुराणों की तरह इस पुराण में देवी के शरीर की रचना का ब्यौरा इस प्रकार दिया गया है :-

- | | |
|------------------------------------|---------------------------------------|
| (1) भगवान् शिव के तेज से | उसका मुखमण्डल बना। |
| (2) यम के तेज से | उनके लम्बे काले एवं घुंघराले बाल बने। |
| (3) अग्निदेव के तेज से | उसकी तीनों आँखें बनी। |
| (4) सन्ध्या के तेज से | उनकी भ्रुकुटियों की रचना हुई। |
| (5) वायुदेव के तेज से | उसके कानों की रचना हुई। |
| (6) कुबेर के तेज से | उसकी नासिका की रचना हुई। |
| (7) दक्ष के तेज से | उसके दांत बने। |
| (8) अरुण के तेज से | उसके होंठों की रचना हुई। |
| (9) भगवान् विष्णु के तेज से | उसकी अंगुलियां बनी। |
| (10) वसुओं के तेज से | उसकी अट्टारह भुजाएँ बनीं। |
| (11) देवराज इन्द्र के तेज से | उसके वक्षस्थल एवं कटि प्रदेश बने। |
| (12) पृथ्वी के तेज से | उसकी जंघाओं एवं नितम्बों की रचना हुई। |
| (13) कार्तिकेय के तेज से | उनका ऊपरी ओट बना। |

उसी ग्रन्थ में अनेक देवताओं द्वारा जो शस्त्रास्त्र आदि देवी के समर्पित किए गए उन का ब्यौरा इस प्रकार से है :-

देवता	आयुधादि-समर्पित
(1) विष्णु	चक्र
(2) शिव	त्रिशूल
(3) वरुण	शङ्ख
(4) अग्नि	शक्ति
(5) मारुत्	धनुर्बाण
(6) इन्द्र	वज्र तथा ऐरावत का घण्टा
(7) काल	दण्ड, ढाल एवं तलवार।
(8) ब्रह्मा	कमण्डलु
(9) वरुण	पाश
(10) विश्वकर्मा	नूपुर, कंकण, परशु, गदा तथा कवच
(11) कुबेर	स्वर्ण पात्र
(12) सूर्य	रश्मि
(13) समुद्र	पुष्पमाला तथा दो वस्त्र।

(4) शिव पुराण⁷ में भी देवी की उत्पत्ति का आख्यान है जिसमें देवी के शरीर की रचना में जो देवों का योगदान है वह अन्य ग्रन्थों में कुछ भिन्न है। इसका व्यौरा नीचे दिया गया है।

- (1) शिव के तेज से उसका तेजस्वी मुख मण्डल बना।
- (2) यमराज के तेज से उसके केशों की रचना हुई।
- (3) विष्णु के तेज से उसकी भुजाओं की रचना हुई।
- (4) चन्द्रमा के तेज से उसके वक्षस्थलों की रचना हुई।
- (5) इन्द्र के तेज से उसकी अंगुलियों एवं कटि प्रदेश बने।
- (6) पृथ्वी के तेज से उसके नितम्ब बने।
- (7) वरुण के तेज से उसकी जंघाएँ बनी।
- (8) ब्रह्मा के तेज से उसके पाँव बने।
- (9) कुबेर के तेज से उसकी नासिका बनी।
- (10) प्रजापति के तेज से उसकी दस पंक्तियाँ बनी।
- (11) सन्ध्या के तेज से उसकी भ्रुकुटियाँ बनी।
- (12) अग्नि के तेज से उसके तीनों नेत्र बने।
- (13) वायु के तेज से उसके कान बने।
- (14) सूर्य के तेज से उसके केशों की आभा मिली।

यह पुराण⁸ भी देवी के प्रादुर्भाव के पश्चात् देवताओं द्वारा उसे अस्त्र-शस्त्रों के प्रदान करने का वर्णन करता है जो इस प्रकार है :-

- | देवता | भेंट |
|----------------|----------------|
| (1) ब्रह्मा | कमण्डल |
| (2) शिव | त्रिशूल |
| (3) कृष्ण | चक्र |
| (4) अग्नि | शक्ति |
| (5) वायु | तरकस |
| (6) इन्द्र | वज्र एवं घण्टा |
| (7) यम | दण्ड |
| (8) काल | तलवार एवं ढाल |
| (9) विश्वकर्मा | परशु |
| (10) हिमवान | सिंह |

(5) वराह पुराण में देवी का अभ्युदय त्रिकला के रूप में हुआ है जिसके कालान्तर में नारद ने दर्शन किए और महिषासुर को देवी के दिव्य रूप का वर्णन किया। इस आख्यान के अनुसार एक समय भगवान् शिव कैलाश पर्वत पर अपने गणों के साथ विराजमान थे कि ब्रह्मा आदि देवगण वहाँ पधारे और उन्हें अन्धकासुर द्वारा देवताओं का प्रताड़ित करने का समाचार दिया।

अस्त्यन्धको महादैत्यस्तेन सर्वे दिवौकसः।

अर्दिता मत्समीयं तु बुद्ध्वा मां शरणैषिणः ॥

वराह पुराण - 89.14

ऐसा कह कर स्वयं ब्रह्मा भगवान् शिव को देखने लगे और परमेश्वर नारायण का स्मरण किया और नारायण भी वहाँ उपस्थित हो गए। तदुपरान्त तीनों उपस्थित देवता एक दूसरे को परस्पर देखने लगे। उस एकस्वरूप हुई दृष्टि से एक दिव्य स्वरूप वाली कुमारी प्रकट हुई।

ततस्तेषां त्रिधा दृष्टिर्भूत्वैका समजायत।

तस्यां दृष्ट्यां समुत्पन्न कुमारी दिव्य रूपिणी ॥

वराह पुराण - 89.18

वह कुमारी नील कमल दल के समान श्याम वर्णा थी। उसके केश काले एवं धुंधराले थे। उसकी ललाट, नाक एवं मुख बहुत सुन्दर थे। इस प्रकार वह कुमारी सुप्रतिष्ठित हुई। इस पुराण में देवी की उत्पत्ति ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के तेज से बताई गई है परन्तु उसके अंगों की रचना का व्यौरा

नहीं दिया है। फिर भी उसके असीम तेजस्वी होने का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि त्वष्टा ने अग्निजिह्वा जो लक्षण कहे हैं वह सभी कन्या में एक साथ विद्यमान थे।

त्वष्टा यदग्निजिह्वं तु लक्षणं परिभाषितम्।

तत्सर्वमेकतः संस्थ कन्यायां संप्रदृश्यते ॥

वराह पुराण - 89.20

तभी देवताओं ने उस देवी को अपने तीन रूप धारण करने की प्रार्थना की जिससे उसने अपना शरीर तीन प्रकार से बना लिया। तदनन्तर वह ब्रह्मी, वैष्णवी एवं रौद्री रूप में परिणत हो तीनों देवियां क्रमशः श्वेत पर्वत, मंदराचल एवं नील पर्वत पर तप करने चली गई। इन देवियों में से वैष्णवी देवी जो मंदराचल पर तपस्या कर रही थी उस का मन क्षुब्ध हो गया और उसी अवस्था में अनेकों कुमारियों ने जन्म लिया और वह उसी पर्वत पर देवी के साथ स्थित हुई। तभी देव ऋषि नारद वहां पहुँचे। देवी के दर्शन के पश्चात् वह तुरन्त महिषासुर के पास गए तथा देवी के दिव्य स्वरूप का वर्णन किया जिससे दानव महिषासुर के मन में देवी को पाने की इच्छा प्रबल हो उठी।

(6) मत्स्य पुराण के एक कथानक के अनुभार एक बार ऋषियों ने पार्वती के पूर्व जन्म के बारे में प्रश्न के उत्तर में बताया गया कि वह पूर्व जन्म में दाक्षायनी नाम से प्रसिद्ध हुई क्योंकि वह दक्ष की पुत्री हुई। यही दाक्षायनी दक्ष द्वारा अपमानित होकर उसके यज्ञ की अग्नि में प्रवेश कर गई और तभी से वह सती नाम से जानी जाने लगी। इस सम्बन्ध में यह विशेष रूप से विचारनीय है कि दाक्षायनी को स्वयं दक्षप्रजापति ने जगन्माता (जगतोमाता) के रूप में आराधना की है जिसने ब्रह्मा की प्रेरणा से दक्ष के घर पुत्री के रूप में जन्म लिया।

(दुहितृत्वेन गता देवी ममानुग्रहकामयया - मत्स्य पुराण, 13.19) यहां पर देवी सती के रूप में जानी जाने लगी। दक्ष के अनुसार ब्रह्माण्ड में ऐसा कुछ भी नहीं जिस में वह व्याप्त नहीं है। अर्थात् वह ब्रह्माण्ड के कण कण में व्याप्त है :-

न त्वया रहितं किञ्चिद् ब्रह्माण्डे सचराचरम्।

मत्स्य पुराण - 13.12.19

इसी दाक्षायनी देवी ने देवताओं को वरदान दिया तथा इस बात की भी घोषण की कि दक्ष की सभी 60 कन्याएँ उसी का अंश रूप हैं।

मंदशेनांगनाः षष्टिर्भविष्यन्त्यं गजास्तवा।

मत्स्य पुराण - 13.22

इसके अतिरिक्त मत्स्य पुराण में 108 शक्ति पीठों का भी सविस्तार उल्लेख है।

(7) ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा को ही आदि शक्ति के रूप में दर्शाया गया है। यह आद्याशक्ति है जिसका पांच प्रकृतियों में प्रधान स्थान⁹ है। इसी ग्रन्थ के अनुसार भगवान् कृष्ण के मुख से वाणी वादिनी शुक्लाम्बरा देवी सरस्वती का¹⁰ प्रादुर्भाव होती है। सरस्वती के पश्चात् महालक्ष्मी तथा दुर्गा आदि का प्राकट्य भी जगादाधार श्रीकृष्ण¹¹ से ही होता है। यह ही दुर्गा, राधा, सरस्वती एवं सावित्री, विश्वनिर्मात्री पंच प्रकृति पुराणकार के द्वारा स्वीकृत¹² की गई है। देवी भागवत में भी इन के पंच प्रकृतियों के रूप में स्वीकार किया गया है। श्री राधा को तो मूल प्रकृति¹³ के रूप में माना गया है।

स्कन्द पुराण¹⁴ में ऋषि अगस्त्य ने स्कन्द कार्तिकेय से यह प्रश्न किया कि उसकी माता दुर्गा क्यों कहलाती है। तब कार्तिकेय ने उत्तर दिया कि एक समय दैत्य का पुत्र दुर्ग नाम से प्रसिद्ध था। उसने ब्रह्मा की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर उस दैत्य को श्रृष्टिकर्ता ने उसे वर दिया जिससे वह अत्यन्त बलशाली हो गया। उसने तीनों लोकों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया तथा ऋषि पत्नियों को अपने ही गुण गान करने की आज्ञा दी। सभी धार्मिक क्रियाएँ लुप्त प्रायः सी हो गई। ब्रह्मणों ने उस दैत्य के भय से वेद पाठ भी बन्द कर दिया। नदियों ने अपने बहाव का मार्ग बदल दिया, अग्नि की आभा लुप्त हो गई और आकाश के तारामण्डल उस दैत्य के डर से अदृश्य हो गए। वह मेघों का रूप लेकर अपने मन के अनुसार वर्षा करने लगा। उसके भय से पृथ्वी अधिक अन्न उत्पन्न करने लगी तथा वृक्ष अधिक फल एवं पुष्प देने लगे।

दुर्ग राक्षस के भय से आतंकित देवगण महादेव शिव की शरण में उपस्थित हुए। उन्होंने देवताओं को कष्ट में देख देवी पार्वती से उस राक्षस को नष्ट करने के लिए कहा। महादेव की आज्ञा का पालन करते हुए पार्वती ने देवताओं को सान्त्वना दी तथा सर्वप्रथम कालरात्री को उस दैत्य के संहार के लिए भेजा। उस देवी (कालरात्री) की शोभा से तीनों लोक देदीप्यमान हो उठे जिससे समस्त ब्रह्माण्ड के सभी प्राणी विस्मित हो उठे। राक्षस दुर्ग इससे अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा उसने अपनी विशाल सेना को देवी पर आक्रमण करने के लिए भेजा। परन्तु देवी ने एक ही हुंकार मात्र से सभी को भस्म कर दिया। राक्षस ने तब 30,000 अन्य विशालकाय योद्धाओं को देवी पर विजय पाने के लिए भेजा जिन से सम्पूर्ण पृथ्वी आच्छादित हो गई। इतनी विशाल दैत्य सेना को देख कर कालरात्री, पार्वती के समक्ष लौट गई। तब दैत्यराज दुर्ग सहस्रों हाथियों, घोड़ों, रथों तथा असंख्य सेना समूह के साथ पार्वती पर आक्रमण करने को उद्यत हुआ। जो विन्ध्य पर्वत पर आसीन थी। जैसे ही असुर राजा अपनी विशाल सेना के साथ विन्ध्य पर्वत पर पहुँचा तो देवी ने एक हजार भुजाएँ धारण कर लीं और प्रत्येक भुजा में अनेकों शस्त्रास्त्रों से प्रहार किया जो विन्ध्य पर्वत पर विराजमान थी।

इन अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग से अनेक वन्य प्राणी हताहत हो गए तथा वृक्षों एवं वनस्पतियों की भी भारी क्षति हुई। देवी ने इन सभी प्रहारों का निष्क्रांत्य एवं निष्फल कर दिया। तब दुर्ग राक्षस ने देवी पर एक ज्वलन्त शक्ति का प्रहार किया जिसे देवी ने सहस्त्रों बाणों द्वारा नष्ट कर दिया। तब असुर ने एक बाण देवी के वक्ष पर छोड़ा जिसे देवी ने निष्फल कर दिया। अन्त में देवी ने दुर्ग राक्षस को नीचे गिरा दिया तथा अपनी वाम पाद उसके वक्ष पर रख दिया परन्तु वह पुनः उठ खड़ा हुआ और देवी से युद्ध करने लगा।

देवी के शरीर से निकली सभी शक्तियों ने दानव सेना को नष्ट कर दिया। तब उस दानव ने एक विशालकाय हाथी का रूप धारण कर देवी से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। परन्तु देवी ने उस दैत्यकार हाथी को भी नष्ट कर दिया। पश्चात् वह महिष बन कर देवी से युद्ध करने लगा। जब देवी ने उस महिष का भी वध कर दिया तो वह असुर मनुष्य रूप में आकर युद्ध करने लगा। तब देवी ने एक तीक्ष्ण बाण उस असुर के वक्षस्थल में वीध दिया जिससे वह भूमि पर गिर पड़ा और समस्त पृथ्वी रक्त रन्जित हो उठी। और दैत्य ने प्राण त्याग दिए समस्त देवगण प्रसन्न होकर देवी की स्तुति करने लगे। तभी से पार्वती दुर्गा के नाम से भी जानी जाने लगी।

इसी पुराण¹⁵ के महेश्वर खण्ड के आख्यान में वर्णित आख्यान के अनुसार एक साय भगवती गौरी एक बार हिमालय के अरुणाचल प्रदेश में तपस्या में लीन थी। इस समय चार बटुक भैरव उस क्षेत्र के रक्षार्थ नियुक्त थे। तभी महिषासुर अपनी सेना सहित आखेट में रत वहीं जा पहुँच जहाँ पर गौरी ध्यानस्थ थी। जब महिषासुर ने उसे विवाह की इच्छा प्रकट की तो देवी ने घोषणा की "मैं यहाँ पर एक प्राक्रमी वर पाने के लिए तपस्या कर रही हूँ अतः मुझे अपना प्राक्रम दिखाओं।" उसके पश्चात् महिषासुर ने अपने वैभव तथा प्राक्रम का बखान किया। उसके पश्चात् उसने देवी से युद्ध करते हुए परम गति प्राप्त की।

(9) शिवपुराण में देवी के प्रादुर्भाव सम्बन्धी विवरण अन्य पुराणों के समान ही है। इसके अनुसार महिषासुर द्वारा प्रताड़ित देवगण भगवान् शिव की शरण में गए जहाँ भगवान् विष्णु भी उपस्थित थे। देवताओं ने महिषासुर द्वारा किए गए अत्याचारों का निवेदन किया। तभी उन तीनों देवों के नेत्रों से अग्नि पुन्ज प्रकट हुआ जो एकत्रित हो एक देवी के रूप में परिणत हो गया। वही देवी महिषासुरमर्दिनी कहलाई जाने लगी :-

ततोतिकोपपूर्णस्य विष्णो शंभोश्च वक्रतः ।
तथन्येषां च देवानां शरीरात्रिगतं महा ॥
अतीव महसः पुंजं ज्वलन्तं दशादिक्षुच ।
अपश्यं स्त्रिदशस्सर्वे दुर्गा ध्यान परायणा ॥
सर्वदेव शरीरोत्थं तेजस्तदति भीषणम् ।
संधी भूया भवन्नारी साक्षान्महिषमर्दिनी ॥

शिवपुराण, उमा संहिता, 46.11-13.

यही नहीं शिव पुराण अन्य पुराणों¹⁶ की भांति देवी के विभिन्न अंगों के बारे में भी जानकारी देता है जिस के अनुसार :-

- | | |
|-------------------------------|----------------------------------|
| (1) शिव के तेज से | उसके मुखमंडल की रचना हुई। |
| (2) विष्णु के तेज से | उसकी भुजाएँ बनी। |
| (3) चन्द्रमा के तेज से | उसके वक्षस्थल बने। |
| (4) इन्द्र के तेज से | उसका मध्यभाग बना। |
| (5) वरुण के तेज से | उसी जंघाएँ बनीं। |
| (6) पृथ्वी के तेज से | उसके नितम्बों की रचना हुई। |
| (7) ब्रह्मा के तेज से | उसके दोनों पाँव बने। |
| (8) आदित्यों के तेज से | उसके पाँव की अंगुलियाँ बनी। |
| (9) वसुओं के तेज से | उसके हाथों की अंगुलियाँ बनी। |
| (10) कुबेर के तेज से | उसकी नासिका बनी। |
| (11) प्रजापति के तेज से | उसकी दन्त पंक्तियों की रचना हुई। |
| (12) अग्नि के तेज से | उसके तीनों नेत्र बने। |
| (13) संध्या के तेज से | उसकी दोनों भृकुटियाँ बनी। |
| (14) वायु के तेज से | उसके दोनों कान बने। |

देवी के प्रकट होने के उपरान्त ही सभी देवताओं ने उसे अनेकनेक अस्त्र-शस्त्र एवं आभूषण प्रदान किये जिन का ब्यौरा नीचे दिया गया है :-

देवता	समर्पित शस्त्रास्त्र आदि
(1) शिव	त्रिशूल
(2) विष्णु	चक्र
(3) वरुण	पाश
(4) अग्नि	शक्ति
(5) मारुत	धनुर्वाण
(6) इन्द्र	वज्र एवं घम्टा
(7) यम	कालदण्ड
(8) प्रजापति	अक्षमाला
(9) ब्रह्मा	कमण्डल
(10) दिवाकार	रश्मि
(11) काल	खड्ग
(12) सागर	दिव्या हार, चूड़ामणि, कुण्डल, कंकण, अर्ध चन्द्र, केयूर एवं नूपुर
(13) विश्वकर्मा	परशु
(14) हिमवान्	सिंह

उपरोक्त विवरण में देवी का देवताओं की आराधना पर उन के तेज से प्रकट होने का वृत्तान्त कई पुराणों में कुछ फेर बदल के साथ प्राप्त होता है। इसी सन्दर्भ में केन उपनिषद् के कथानक की पृष्ठभूमि बहुत महत्वपूर्ण है जिसमें देवी शक्ति को समस्त देवताओं के अग्रगण्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कथानक से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवतागण ब्रह्माण्ड के अस्तित्व से सर्वथा अनभिज्ञ थे तभी तो वह असुरों पर विजय को अपनी ही विजय मान गर्वित हो उठे। परन्तु एक तृण मात्र को ब्रह्म की आज्ञा के बिना न वायु हिला सका न अग्नि देव अपने भरसक प्रयत्न के पश्चात् भी जला न सके। अन्ततः ब्रह्म तत्त्व का बोध उन्हें उमा हेमवती के द्वारा ही मिल पाया। यही नहीं जब सभी देवता गण महिषासुर से परास्त होकर एकत्रित हुए तो वही तेजोमयी देवी उनके तेज से प्रकट हुई तथा उसने महिषासुर का संहार किया। तात्पर्य यह है कि जिस कार्य की साधना में सर्वथा देवगण असफल रहे उसी की सिद्धि देवी शक्ति द्वारा हुई। यह सभी प्रमाण देवी शक्ति की उत्कृष्टता को दर्शाते हैं। कुछेक विद्वानों का मत है कि भारत में नारीशक्ति किमी न किमी रूप में आर्यों के आभ्युदय से पूर्व आराध्य थी परन्तु आर्य देवताओं जैसे इन्द्र, वरुण, मित्र, पूषण आदि के जन सम्पर्क में आने के पश्चात् उसकी आराधना कुछ पीछे अवश्य पड़ गई परन्तु उपनिषद् काल में वह पुनः सशक्त होकर भारत के धार्मिक क्षितिज पर उभरी और आदि शक्ति और जगदम्बा के रूप में उस की आराधना उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। सुप्रभेदागम¹⁷ उसे आदिशक्ति के रूप में विष्णु भगिनि भी प्रदर्शित करता है।

वस्त्राभूषण

देवी के आविर्भाव के पश्चात् कई देवताओं ने देवी को अनेकों वस्त्र एवं आभूषण प्रदान किए। देवी भागवत तथा मार्कण्डेय, पुराणों के अनुसार समुद्र ने देवी को दो रक्त वर्ण के कभी नष्ट न होने वाले वस्त्र दिए। सम्भवतः यही कारण है कि वह भारतीय कला में अधिकतर दो वस्त्रों से ही सुसज्जित दर्शाई जाती है। इसके अतिरिक्त देवी की अनेकों आभूषण भी देवताओं ने प्रदान किए और उनका ब्यौरा भी पौराणिक साहित्य में देवी की अनेकों कृत्यां जो भारतीय कलाकारों ने समय-समय पर बनाई उन में देवी को आभूषणों युक्त ही दर्शाया गया है। एक बात जो इस बारे में विशेष रूप से उल्लेखनीय है वह यह है कि इन आभूषणों का आकार समय-समय पर बदलता रहा है जैसा कि गुप्त काल से उत्तर मध्य युग तक की देवी की प्रतिमाओं के तुलनात्मक अध्ययन से मिलता है। आरम्भ में तो देवी की प्रतिमाओं को साधारण आभूषण से कुण्डल, कंकण और नूपुर आदि ही पर्याप्त समझे जाते थे परन्तु कारान्तर में देवी की वेशभूषा अपनी चर्म सीमा पर जा पहुँची।

विभिन्न पुराणों में देवी के जो आभूषण जिन-जिन देवताओं ने उसे प्रादुर्भाव के समय प्रदान किए उसकी तालिका निम्न प्रकार से हैं :-

आभूषण जो देवी को दिए गए

देवता के नाम	देवी भागवत (खण्ड-5.28.1-7)	मार्कण्डेय पुराण (अध्याय-82)	शिव पुराण (उमा सं. अ. 46)
(1) समुद्र लाल रंग के न नष्ट होने वाले वस्त्र एवं फूलों की माला		(1) मोतियों की माला एवं हँसुली एवं वस्त्रयुग्म, चूड़ामणि	
(2) नष्ट न होने वाले वस्त्रों का जोड़ा	कर्णफूल, चूड़ी, अर्द्धचन्द्र सदृश		
(3) नष्ट न होने वाले पुष्पों की माला	आभूषण, अंगूठी, पायल		

(2) विश्वकर्मा	(1) चूड़ामणि	(1) चूड़ामणि	कमल की सुन्दर माला
	(2) कुण्डल	(2) कुण्डल	
	(3) कंकण	(3) कंकण	
	(4) बाजूबन्द	(4) अर्द्धचन्द्रकार आभूषण	
	(5) नूपुर	(5) बाजूबन्द	
	(6) हंसूली	(6) हंसूली	
	(7) अंगूठियां	(7) नूपुर हीरों की अंगूठियां	
(3) शेष			हीरों से जटित नगों की माला
(4) वरुण		(8) न मुझांने वाले कमल के पुष्पों की माला तथा वैजन्ती माला	
(5) हिमवान्		कई प्रकार के हीरे	रत्न जटित सूर्याकार हंसूली कई प्रकार के रत्न मोतियों की माला
(6) प्रजापति			

सिंह वाहन

देवी भागवत एवं अन्य पुराणों के अनुसार देवी के प्रकट होने के उपरान्त हिमवान् ने देवी को सिंह भेंट दिया जिस कारण से वह सिंह वाहिनी के नाम से जानी जाने लगी। वसुदेव शरण अग्रवाल सिंह को वनों का राजा मानते हुए कहते हैं वन्य प्राणियों में दो प्रकार के पशु माने जाते हैं। एक "आरण्यपशु"¹⁸ के नाम से जाने जाते हैं जो अयज्ञीय होते हैं और उनकी बली नहीं दी जा सकती। दूसरे ग्राम्य पशु कहलाते हैं जो यज्ञीय होने के कारण बली के योग्य होते हैं। प्रत्येक पशु की अपनी शक्ति अथवा तेज होता है। वन्य पशुओं में सिंह ऐसा पशु है जिसकी शक्ति का प्रयोग मानव कभी नहीं कर पाता। महिषासुरमर्दिनी का सिंह वाहन होने का यह अर्थ भी हो सकता है कि यह देवी उस भयंकर वन्य प्राणि को वश में रखती है जिसकी शक्ति को अन्य कोई प्रयोग में नहीं ला सकता। और चूँकि सिंह वन का राजा माना जाता है अतः देवी भी वनों की अधिष्ठात्री देवी अथवा अरण्यानी भी कहलाती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति समस्त संसार पर अपने ग्राम्य पशुओं द्वारा विजय प्राप्त करता है तथा अन्य लोगों पर आरण्य पशुओं द्वारा विजित होता है :-

"प्रजापतिरकामयत्। उभौलोकावभिजयेय देवलोकं च मनुष्य लोकं चेति स एतान् पशून्पश्यद् ग्राम्याश्चारण्यांश्च तानालभत तैरिमौलोकान वारुद्ध ग्राम्यैरवे पशुभिरिमं लोकमवारुद्धा रण्यैरमुमयं वै लोको मनुष्यलोकाऽथासौ देवलोको यदग्राम्या न्यशूनालमतऽइममेव तैर्लोकं यजमानोऽवरुद्धे यदारण्यानमुं तैः।

शतपथ ब्राह्मण-13.2.1.1

घोषणा :-

अपने प्रादुर्भाव के पश्चात् देवी अपनी परिचारिकाओं के साथ विन्ध्य पर्वत पर विराजमान थी और देवी माहात्म्य में शुम्भ ने अपने दूत को देवी के समक्ष विवाहार्थ एक प्रस्ताव भेजा जिसके उत्तर में देवी ने यह घोषणा की :-

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति

यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥

(जो भी मुझे संग्राम में पराजित करेगा और मेरा अहंकार नष्ट कर देगा उसे ही मैं पति रूप में वरण करूंगी, क्योंकि उसे ही मैं अधिक बलशाली मान सकती हूँ।)

वराह पुराण (94.22-26) में महिषासुर के भेजे हुए दूत के वचन सुन कर जिसमें असुरराज ने देवी को विवाह प्रस्ताव किया था, देवी हंस पड़ी। उस दूत ने देवी के हँसने पर उसकी कुक्षि में सचराचर त्रैलोक्य को देखा और उसी क्षण वह अचम्भित हो उठा। तब देवी ने अपनी परिचारिका जया को बुलाकर उससे दूत को कहलवाया कि :

कन्यार्थी वदते यद्धि तत्त्वया समुदीरितम्।

यदि नाम व्रतं चास्याः कौमारं सार्व कालिकम्।

अपि चान्याकुमारेऽत्र सन्ति देव्या पदानुगा ॥

तासामेकाऽपि ना लभ्या किमु देवी स्वयं शुभा।

वराह पुराण - 94.25-26

(तुमने जो कहा है, वही सभी कन्या के अभिलाशी कहते हैं। किन्तु देवी ने सदा के लिए कुंवारी रहने का व्रत ले रखा है। यहां की अन्य कन्याएँ भी देवी की ही अनुगामिनी हैं। उनमें से एक भी प्राप्त नहीं हो सकती। देवी कल्याणी के विषय में तो कहना ही क्या)

वामन पुराण (20.34) के अनुसार जब महिषासुर ने दुन्दुभि को दूत बना कर देवी के पास विवाहार्थ भेजा तो देवी ने उसे सूचित किया "कि पूर्वजों ने हठ पूर्वक हमारे कुल में जो शुल्क निर्धारित किया है उसके अनुसार जो कन्या को युद्ध में जीतेगा वही उसका पति होगा"

कुलेस्मदीये शृणु दैत्य शुल्कं
कृतं हि यत्पूर्वतैः प्रसह्य।
यो जेष्यतेऽस्मत्कुलजां रणाग्रे
तस्याः स भर्ता ऽपि भविष्यतीति ॥

वामन पुराण - 20.34

शिव पुराण की उमा संहिता में भी देवी की यही प्रतिज्ञा है कि जो उसे संग्राम में पराजित करेगा वही उसका पति होगा उसका :-

परन्त्वेका कृता पूर्व प्रतिज्ञा तान्निबोध मे ॥
यो मे दर्पं विधुनुते यो मां जयति संगरे।
उत्सरे तमहं कर्तुं पति नान्यमिति ध्रुवम् ॥

(पूर्व काल में मैंने एक प्रतिज्ञा की है कि जो मुझे संग्राम में जीत लेगा वही मेरा पति होगा।)

उपरोक्त चारों उदाहरणों में से एक में तो सदा कौम्य व्रत का पालन करने की प्रतिज्ञा का कथन है जबकि तीन में देवी संग्राम में अपने विजयता द्वारा परास्त होने पर ही उसकी पत्नी हो सकती है। वास्तविक रूप से यदि देखा जाये तो इन दोनों परिस्थितियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि देवी तो अनादि शक्ति हैं जो सर्वथा अजेय हैं और सर्वव्यापी हैं। इस शक्ति का कभी न हास हुआ है न होगा। एक अन्य तथ्य जो यहां विचारणीय है वह यह कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं इन्द्रादि देवताओं की रण में असुरों द्वारा परास्त होने का उल्लेख तो मिलता है परन्तु देवी कभी किसी आसुरी शक्ति से परास्त हुई हो ऐसा वृत्तान्त नहीं मिल सका है।

सेना :-

वैसे तो देवी महिषासुर के साथ संग्राम में अकेली ही थी। और यही तथ्य मार्कण्डेय पुराण में भी व्याप्त है। परन्तु वामन पुराण¹⁹ के अनुसार युद्ध भूमि में कई एक भीतगण (जिन में से कुछ के मुख भूपक, कुक्कुट, गाय, बकरे, जैसे थे और नाना प्रकार के आँख, नाक, कान और पैर वाले थे) देवी अट्टहास से प्रकट हुए। ऐसे ही भूत गणों अन्य पुराणों में भी मिलता है। मत्स्य पुराण (1.54.524-545) तथा पद्म पुराण (शृष्टि खण्ड - 40. 406-496) में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं। परन्तु यह सभी गण भगवान् शिव से अधिक जुड़े हैं। तथा इन का गुप्त काल में भारतीय (पाषाण) काल में भव्य प्रदर्शन हुआ है।

इसके अतिरिक्त देवी के सिंह ने भी युद्धस्थल पर देवी का पर्याप्त साथ दिया है। देवी की अनेकों भव्य प्रतिमाओं में देवी के साथ सिंह भी महिषासुर पर आक्रमण करता हुआ दर्शाया गया।

वराह पुराण अनुसार देवी के साथ रण में उसकी सभी परिचारिकाएँ शस्त्रास्त्र लेकर युद्ध करने लगीं।

ततः कन्या महाभागाः सर्वास्ता देवी शासनात्।
बभूवुधोर रूपिण्यः खड्ग चर्म धनुर्धराः।
संग्रामहेतोः संतस्थु दैत्य विध्वंसनाय ताः।

वराह पुराण - 94.33

परिचारिकाएँ :-

वराह पुराण (91.30-36) के अनुसार नारद ने देवी को मन्दराचल पर्वत पर अपनी सखियों सहित निवास करते देखा। उन सखियों अथवा परिचारिकाओं के नाम इसी पुराण में दिए हैं :-

"विद्युत्प्रभा, चन्द्रकान्ता, सूर्यकान्ति, परा, गम्भीरा, चारुकेशी, सुजाता, मुन्जकेशिनी, घृताची, उर्वशी, दूसरी, शशिनी, शीलमण्डिता, चारुकन्या, विशालाक्षी, धन्या, पीनपयाधरा, चन्द्रप्रभा गिरीसुता, सूर्यप्रभा, अमृता, स्वयंप्रभा, चारुमुखी, शिवदूती, विभावरी, जया, विजया, जयन्ती एवं अपराजिता

(वराह पुराण-91.8-11)

शस्त्रास्त्र :-

पिछले अध्यायों में यह समुचित रूप से स्पष्ट किया जा चुका है कि देवी के प्रादुर्भाव के समय सभी देवताओं ने उसे अपनी रक्षार्थ अनेको शस्त्रास्त्र प्रदान किए। इन सब का व्योरा एक तालिका में उपलब्ध है। परन्तु वराहपुराण²⁰ में देवी को बीस भुजाओं वाली दर्शाते हुए शस्त्रास्त्रों का वर्णन इस प्रकार दिया है :-

“धनु, खड्ग, शक्ति, बाण, शूल, गदा, परशु, डमरु, विशालघण्टा, शतघ्नी, मयंकंर मुद्गर, भुशण्डी, भाला, मूसल, चक्र, भिन्दिपाल, दण्ड, पाश, ध्वज, एवं पद्म।”

देवी के सौन्दर्य का वर्णन :-

यह तो पूर्व पृष्ठों में उल्लिखित है ही कि देवी का प्रादुर्भाव देवताओं के तेज से हुआ और उसका अद्वितीय सौंदर्य अबर्णनीय है। परन्तु विभिन्न पुराणों में उसकी छटा विभिन्न रूप से दर्शाई गई है। इस वर्णन को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक तो उस देवी का वह स्वरूप है जो देवताओं ने सात्विक दृष्टि से देखा और एक वह है जो असुरों ने तामसिक दृष्टि से देखा। तामसिक एवं सात्विकदृष्टि दोनों में बहुत अन्तर होते हुए भी देवी की प्रतिष्ठा में कोई अन्तर नहीं है।

वराह पुराण के कथानक के अनुसार सम्पूर्ण अंगों में ऐश्वर्य धारण करने वाली रजोगुण मयी, परमशक्ति स्वरूपा देवी मन्दार पर्वत पर सखियों द्वारा सेवित, तपस्या में लीन थी। तभी देव ऋषि नारद वहां पहुँचे। देवी ने उन्हें आसन दिया और वहां पधारने का प्रयोजन पूछा। नारद ने कहा कि हम आप के दर्शनार्थ यहां आए हैं। तभी देवी के रूप को एक टक देखते हुए नारद ने विचार किया :-

दृष्टामुहूर्तं देवेशीं विस्मितो नारदोऽभवत्।
अहो रूपमहो कान्तिरहो धैर्यमहो वयः॥
अहो निष्काम्यता देव्या इति खेदमुपाययौ।
देवगंधर्व सिद्धानां यक्षकिन्नर रक्षसाम्॥
न रूपमीदृशं क्वापि स्त्रीष्वन्यासु प्रदृश्यते।
एवं संचित्य मनसा नारदो विस्मयान्वितः॥

वराह पुराण:- 91.23-25

(मुहूर्त पर्यन्त देवी को देख कर नारद मुनि आश्चर्य चकित हो गए। अहो। देवी का कैसा अद्भुत रूप है ? उनकी कैसी सुन्दर शोभा है, उनका कैसा धैर्य है एवं कैसी उनकी अवस्था है। कैसी देवी की निष्कामता है। यह देख कर मुनिनारद चिन्ता करने लगे। देव गन्धर्व, सिद्ध, यक्ष, किन्नर एवं रक्षसों की अन्य स्त्रियों में कहीं भी ऐसा रूप देखने को नहीं मिलता। मन में ऐसा विचार कर नारद आश्चर्य मग्न हो गए।)

यही नहीं महिषासुर के समक्ष देवी की आभा का वर्णन करते हुए देव ऋषि नारद ने कहा कि ‘जिस ने वरदान के कारण चराचर स्वरूप त्रैलोक्य को प्राप्त कर लिया है जो प्रधान व्रतधारिणी तापसी कन्या जैसी ब्रह्माण्ड में कही नहीं है। और सभी देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण तथा अन्य दैत्य नायक उसकी उपासना²¹ करते हैं।

देव ऋषि नारद के इस वर्णन में सत्त्वगुण ही प्रधान है। कामुकता का लेश मात्र भी नहीं है क्योंकि देवी तो अदि शक्ति है जगत की आधार है और सभी में मातृ रूप में स्थित है अतः तमोगुण की तो कोई गुंजाइश ही नहीं है। तभी तो देवताओं ने उसकी बारंबार स्तुति की है।

जहां यह देवी संसार में मातृ रूप में स्थित है (या देवी सर्वभूतेषु मातृ रूपेण संस्थिता) वहां कभी-कभी मानव जन अनेक प्रकार के भ्रमों में लिप्त हो कर कई अनिष्ट कर बैठते हैं। ऐसा करने में भी प्राणि पूर्ण रूप से देवी की इच्छा के अधीन ही रहते हैं क्योंकि वह ही संसार में भ्रान्ति रूप में स्थित है (या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्ति रूपेण संस्थिता)। अतः यदि आसुरी शक्ति उस देवी के वास्तविक रूप को नहीं देख पाती है तो इसमें उन की अस्मर्थता का ही बोध होता है।

मार्कण्डेय पुराण में महिषासुर को प्रबल तमोगुणी मानव के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। परन्तु देवी भागवत में इस प्रतीक-कल्पना को ध्यान में न रख कर महिषासुर को कामातुर पुरुष के रूप में प्रकट किया है। इस सम्बन्ध में देवी भागवत के पञ्चम स्कन्ध के नवम अध्याय के नीचे लिखे श्लोक अधिक प्रकाश डालते हैं जिन में महिषासुर और देवी के प्रेषित दूत के वार्तालाप का उल्लेख है।

सामादिभिरुपायै स्त्वं समानय शुभाननम्।
नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादि भिस्त्वह॥
अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय ममान्तिकम्।
करोमि पट्टमहिषीं तां मरालभुवं मुदा॥
प्रीतियुक्ता समायाति यदा सा मृगलोचना।
रसभङ्गो यथा न स्थत्तया कुरु ममेप्सितम्॥
श्रवणान्मोहितोऽस्थाय तस्य रूपस्य सम्पदा॥”

देवी भागवत् पुराण :- पंचम स्कन्ध, नवम अध्याय

इसमें सन्देह नहीं कि देवी माहात्म्य के वर्णन में एक बहुत बड़ा रस भङ्ग है, जिस पर देवी भागवत में सम्भवतः पर्याप्त मनन चिन्तन नहीं हो पाया है। शुम्भ के देवी के प्रति प्रेम निवेदन में तो कुछ औचित्य है परन्तु महिषासुर के विषय में यह सब वर्णन निरर्थक एवं अनौचित्यपूर्ण है। वामन पुराण में तो देवी को सर्व प्रथम चण्ड तथा मुण्ड ने देखा और उसके सौन्दर्य का वर्णन उन्होंने ने दैत्यराज को इस प्रकार किया :-

जितास्तयातोयधराऽलकैर्हि

जितः शशाङ्को वदनेन तन्व्या।

नेत्रैस्त्रिभिस्त्रोणि हुताशनानि

जितानि कण्ठेन जितस्तु शङ्खः।

स्तनौ सुवृत्तावथ मग्नचूचुकौ

स्थितौ विजित्येव गजस्य कुम्भौ।

त्वां सर्व जेतारमिति प्रतव्य

कुचौ स्मरणैव कृतौ सुदुर्गैः॥

पीनाः सशस्त्राः परिधोपमाश्च

भुजास्तथाऽष्टादश भान्ति तस्याः।

पराक्रमं वै भवतो विदित्वा

कामेन यन्त्रा इव ते कृतास्तु॥

मध्यं च तस्यास्त्रिवलीतरङ्गं

विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि।

भयातुरारोहोहण कातरस्य

कामस्य सोपानभिव प्रयुक्तम्॥

सा होम राजी सुतरां हि तस्या

विराजते पीन कुचावलङ्गना।

आरोहणे त्वद् भय कातरस्य

स्वेद प्रवाहो ऽसुर मन्मथस्य॥

नाभिर्गङ्गीरा सुतरां विभाति

प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना।

तस्यैव लावण्यगृहस्य मुद्रा

कन्दर्पराज्ञा स्वयमेव दत्ता॥

विभाति रम्यं जघनं मृगाक्ष्याः

समन्ततो मेखलयाऽवजुष्टम्।

मन्याम तं काम नराधिपस्य

प्राकार गुप्तं नगरं सुदुर्गम्॥

वृत्तावरोमौ च मृदू कुमार्याः

शोभेत ऊरू समनुत्तमौ हि।

आवासनार्थं मकर ध्वजेन

जनस्य देशाविव सन्निविष्टौ॥

तज्जानुयुग्मं महिषासुरेन्द्र

अर्द्धोन्नतं भाति तथैव तस्याः।

सृष्ट्वा विधाता हि निरूपणाय

श्रान्तस्तथा हस्ततले ददौ हि॥

जङ्घे सुवृत्ते ऽपि च रोम हीने

शोभेत दैत्येश्वर ते तदीये।

आक्रम्य लोकानिव निर्मिताया

रूपार्जितस्यैव कृताधरौ हि॥

**पादौ च तस्याः कमलोदराभौ
प्रयत्नतस्तौ हि कृतौ विधात्रा।
आज्ञापि ताभ्यां नरवरलमाला
नक्षत्रमाला गगने यथैव॥**

वामन पुराणः 20.4-14.

(उस कृशाङ्गी सुन्दरी ने केश के द्वारा मेघों को, मुख के द्वारा चन्द्रमा को तीनों नेत्रों द्वारा तीनों अग्नियों को, और कण्ठ के द्वारा शंख को जीत लिया है। उसके मग्न चूचुक वाले वृत्ताकार स्तन इस प्रकार स्थित हैं मानों उन्होंने ने हाथी के दोनों गण्डस्थलों को जीत लिया हो। यह प्रतीत होता है मानों आपको सर्व विजयी समझकर कामदेव ने ही कुचरूपी दो सुन्दर दुर्गों की रचना की है। उस की मोटी परिध सद्दृश अट्टारह भुजाएँ इस प्रकार शोभित हो रही हैं मानों आप का पराक्रम जान कर कामदेव ने यन्त्र के सद्दृश उनका निर्माण किया हो। हे देवेन्द्र। त्रिबली से तरंगित तथा सुन्दर रोमावली वाला उसका मध्यभाग इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों वह भयार्त तथा आरोहण के लिए अधीर कामदेव का सोपान हो। हे असुर। पीनकुचावलग्न उसकी वह रोम राजि इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानों आरोहण करने में आप के भय से कातर कामदेव का स्वेद प्रवाह हो।

दक्षिण की ओर घुमी हुई इसकी गंभीर नाभि इस प्रकार प्रतीत हो रही है मानों कन्दर्पनरेश ने स्वयं ही उस लावण्य गृह के ऊपर अपनी मुद्रा लगाई हो। चारों ओर मेखला से वेष्टित उस मृगाक्षी का रमणीय जघन सुशोभित हो रहा है। उसे हम काम नरेश का चहारदीवारी से सुरक्षित दुर्गम नगर मानते हैं। उस कुमारी के वृत्ताकार रोमरहित कोमल तथा उत्तम ऊरु इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानों मकरध्वज ने मनुष्यों के निवासवार्थ दो देशों का सन्निवेश किया है। हे महिषासुरेन्द्र। उसके अर्द्धान्त जानुयुगल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानों उनकी रचना करने के उपरान्त श्रान्त विधाता ने निरुपणार्थ अपना करतल न्यस्त किया हो। हे दैत्येश्वर। उसकी सुवृत्त तथा रोमहीन वे दोनों जंघाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानों लोकातिक्रमण कर निर्मित की गई नायिका के रूप द्वारा नीची की गई है। विधाता ने प्रयत्न पूर्वक उसके कमलोदर के समान कान्ति वाले पाद युगल का निर्माण किया है। उन्होंने नख रूपी रत्नों की माला को इस प्रकार प्रकाशित किया मानों आकाश में नक्षत्रों की माला हो।)

उपरोक्त विषय को यदि गहरी दृष्टि से देखा जाय तो यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी वाली स्थिति। अर्थात् जैसी जिस की जैसी भावना होती है वैसे ही उसे उसका फल भी मिलता है। भगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता में भी स्पष्ट रूप से कहा है कि यो यथा मां प्रपश्यन्ते तां तथैव भजाभ्यहम्। आदि शक्ति तो सर्वदा सर्वत्र एक सी ही रही है परन्तु देवताओं ने उसका जगत जननी के रूप में ध्यान किया है जब कि असुरों ने उसे तामसिक दृष्टि से अवलोकन किया है। तभी तो विनाश के प्राप्त हुए। गोस्वामी तुलसीदास ने इसी भाव को रामचरितमानस में बड़े सुन्दर ढंग से दर्शाया है। दृश्य उस समय का है जब सीता स्वयंवर के लिए सुसज्जित मण्डप में राम एवं लक्ष्मण दोनों प्रवेश करते हैं। उपस्थित नृपगणों में से कुछेक ने उन्हें एक महान् योद्धाओं के रूप में देखा जिनके श्याम तथा गौर वर्ण के सुन्दर शरीर थे।

देखहि भूप महा रण धीरा।
मनहु वीर रस धरे शरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी।
मनहुँ, भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल योनिप देखा।
तिन प्रभु प्रकट काल सम देखा॥
पुरवासिन देखे दोऊ भाई।
नरभूषण लोचन सुखदाई॥
विदुषन प्रभु विहार भय भासा।
शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशा॥
हरि भक्तन देखे दीउ भ्राता।
इष्टदेव इव सब सुख दाता॥
नारि विलोकहि हर्षि हिय निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत श्रृंगार धरि मूरति परम अनूप॥

भगवान् राम के यज्ञमण्डप में पहुंचने पर तुलसीदास ने उपस्थित जन समूह की विविध प्रकार की प्रतिक्रिया दर्शाई है। नृपगणों ने दोनों भाईयों को महान् योद्धाओं के रूप में देखा जैसे वीर रस स्वयं शरीर धारण कर के आया हो। दुष्ट जनों को वह भयानक मूर्तिया दिखाई दी जिसे देख कर वह त्रसित हो गए। जो असुर लोग राजाओं के वेष में थे उन्होंने ने राम को काल के समान देखा। नगर वासियों को दोनों भाई नवरत्नों के रूप में दिखाई दिए जो नेत्रों को आनन्द देते हैं। विद्वानों ने उनको विराटमय देखा जिसके अनगिनत हाथ, पैर, नेत्र एवं मस्तक थे। योगियों को तो वह परम ब्रह्म ही दिखाई पड़े जो शान्त, शुद्ध, एक रस तथा स्वभाव से ही प्रकाशित थे। भगवद् भक्तों ने दोनों भाईयों को इष्ट देव के रूप में देखा जो सब सुखों को देने वाले थे। उधर स्त्रियां प्रसन्न चित हो अपनी भावना के अनुसार देखती थीं कि मानों श्रृंगार रस ही बहुत उपमा रहित शरीर धारण कर शोभा दे रहा हो। तुलसी दास का भाव अन्ततः यही माना जायगा कि :-

जाकी रही भावना जैसी।

प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥

इसी प्रकार देवी का स्वरूप तो एक ही है परन्तु दर्शनार्थी अपनी भावना के अनुसार ही उसका महत्व आँकते हैं।

परिशिष्ट-1 तथा 2. विभिन्न पुराणों में वर्णित देवताओं के तेज से देवी का प्रादुर्भाव तथा उरके द्वारा देवी को शस्त्रास्त्र प्रदान करने का ब्योरा प्रस्तुत करते हैं।

देवी का विराट रूप

श्री मद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट रूप के दर्शन करवाए थे। इस कार्य के लिए वह अपनी साधारण दृष्टि से उन्हें नहीं देख सका था। अतः भगवान् ने उसे दिव्य नेत्र प्रदान किए थे ताकि वह उस विराट रूप को देख सके। (दिव्यं ददामि से चक्षुः पश्य मे योगमेश्वरम्)। इसी प्रकार देवी भागवत पुराण में भी देवी के विराट स्वरूप का सविस्तार वर्णन है जिस के अनुसार हिमाचल के प्रार्थना करने पर देवी ने इस प्रकार उत्तर दिया (7-33. 1-2; 13-16; 20-27. 35. 37. 38. 42)

मन्माया शक्ति संकलृप्तं जमत्सर्वं चराचरम्।
साऽपि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः॥
व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता।
तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम्।
ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्मा ऽहमस्मि च।
ब्रह्माऽहं विष्णु रुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी॥
सूर्योहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथाप्यहम्।
पशुपक्षी स्वरूपाहं चाण्डालोऽहं च तस्करः॥
व्याधोहं क्रूर कर्माऽहं सत्कर्माऽहं महाजनः।
स्त्री पुनपुसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः॥
यच्च किंचित्कवचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अंतर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याहं सर्वदा स्थिता॥
यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्वदम्।
तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवी कृपा मयी॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः।
ननर्दुमुदितात्मानः पूजयंतश्च तद्वचः॥
अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्त कामदुष्टा शिवा।
अदर्शयन्निजं रूपं भक्त काम प्रपूरणी॥
अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम्।
द्यौर्मस्तकं मवेद्यस्य चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी॥
दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायु प्रकीर्तितः।
विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतं॥
नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरः स्थलम्।
महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनलोको मुखं स्मृतं॥
तपोलोको रिराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः।
इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोतं महेशितुः॥
नासत्यदस्त्रौ नासे स्तो गन्धो घ्राणं स्मृतः बुधैः।
मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी॥
एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुंगवाः।
ज्वालामाला सहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वाया॥
सहस्रशीर्षं नयनं सहस्र चरणं तथा।
कोटि सूर्य प्रतिकाशं विद्युत्कोटसमप्रभम्॥
भयंकरं महा धोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम्।
ददृशस्ते सुरा सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे॥

वाष्पगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे।
अपराध क्षमस्वाम्ब पाहि दीनांस्तवदुद्भवान्॥
कोपं संहर देवेशि सभया रूप दर्शनात्।
काते स्तुति प्रकृतव्या पामरैर्निर्जरैरिहः।

देवी भगवत पुराण

(देवी बोलीं हे हिमाचल। मेरी माया शक्ति ने चराचरात्मक सम्पूर्ण विश्व को रचा है। यदि परमार्थ दृष्टि से देखें तो माया वह भी मुझ से भिन्न नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि से जो विद्या है वही माया है, दोनों तत्त्व अभिन्न हैं। मैं ही सूत्रात्मा तथा विराजात्मा ईश्वर हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र गौरी, ब्राह्मी वैष्णवी भी मैं ही हूँ मैं ही सूर्य चन्द्र नक्षत्र, पशु पक्षी, चाण्डाल चोर, व्याध, क्रूरकर्मा सत्कर्मा महाजन, स्त्री, पुरुष नपुंसकादि सभी कुछ हूँ। इसमें सन्देह नहीं है। जहाँ जो भी कुछ देखने सुनने में आता है, चाहे वह भीतर हो अथवा बाहर उन सभी में मैं सदैव व्यापक रूप से विद्यमान हूँ।

(हिमालय बोले है देवेशि आपने अपने जिस सर्वाभिमानि स्वरूप का वर्णन किया है, उसी विराट स्वरूप के मुझे दिखाने की कृपा करें। व्यास जी बोले- हे जनमेजय। हिमालय के बचनों से सभी देवता अत्यन्त आनन्दित हो कर उनका अनुमोदन करने लगे कि हम सभी की यही इच्छा है। तब सभी की ऐसी अभिलाषा जान कर कामनाओं को पूर्ण करने वाली शिवा ने अपना यथार्थ रूप प्रकट कर दिया। तब सभी देवता उनके विराट रूप को देखने लगे। देवी का मस्तक आकाश, तथा सूर्य और चन्द्रमा उनके नेत्र थे। दिशाएँ कान, वेद, वाणी, वायु, प्राण, विश्व हृदय और पृथिवी जंघा थी। पाताल नाभि, ज्योतिश्चक्र हृदय स्थल महर्लोक ग्रीवा और जन लोक मुख था। सत्यलोक के नीचे स्थित तपोलोक ललाट, इन्द्रादि बाहु और शब्द श्रोत था अश्विद्वय नासिका, गन्ध धाणेन्द्रिय, अग्निमय मुख और दिन-रात्री पलकें थी। भगवती के ऐसे विराट रूप के देवताओं ने दर्शन किए। उनकी उस देह से सहस्रों ज्वालाएँ निकल रही थी। वह जिह्वा से बार-बार होंठ चाट रही थी। उनके सहस्रों मस्तक, नेत्र एवं चरण थे। उनका प्रकाश करोड़ों सूर्यों एवं विद्युत के समान था। उस भयंकर एवं क्रूर आकृति को देखते हुए सभी देवता आतंकित हो कर हाहाकार करने लगे। फिर नेत्रों में जल भर कर गद्गद कण्ठ से देवी की स्तुति करने लगे।)

सन्दर्भ

- (1) Banerjea, J.N., *Development of Hindu Iconography*, p. 231
- (2) केन उपनिषद्, 3.1.14
- (3) Agrawala, V.S., *Devi Mahatmya*, pp. 192-193.
- (4) देवीमाहात्म्यम् 2.30-31
- (5) वामन पुराण, 19.3-6
- (6) देवी भागवत पुराण, 5.8.14-32
- (7) शिव पुराण, उमा संहिता, 5.46.14-18
- (8) *Ibid* 5.46.19-20
- (9) ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्म खण्ड, 5.25.
- (10) *Ibid*, ब्रह्म खण्ड, 3.65.66, 4.1-2.3.70-71, 3.85
- (12) *Ibid*, प्रथम खण्ड, 1.1
- (13) देवी भागवत पुराण, 9.4.4
- (14) स्कन्द पुराण, II, 83
- (15) स्कन्द पुराण, महेश्वर खण्ड, 10. 1-110.
- (16) शिव पुराण, उमा संहिता, 46.14-20
- (17) Rao, T.A. Gopinatha, *Elements of Hindu Iconography*, Vol. I, Part, II, p. 349
- (18) Agrawala, V.S., op. cit. pp. 193-94
- (19) वामन पुराण, 21. 19-21
- (20) वराह पुराण, 94. 42-43
- (21) *Ibid*, 92.30-34.

ऐतिहासिक परीक्षण

महिषासुर वध का आख्यान कई पुराणों में मिलता है। इन पुराणों को भारतीय जनता के धार्मिक विचारों तथा विधानों का स्रोत माना जाता रहा है। न ही भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्परा को समझने के लिए पुराणों का अध्ययन और ज्ञान आवश्यक है। इनमें लिखित प्राचीन भारतीय वंशावलियों तथा वंशानुचरितों के कारण भारत के प्राचीन इतिहास के निर्माण के पुराणों का मुख्य भाग रहा है। इस प्रकार पुराण वाङ्मय निर्विवाद रूप से अनेक विद्याओं का स्रोत रहा है। प्राचीन काल से ही पुराण और इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। दोनों एक दूसरे के पूरक माने गए हैं। पुराण एवं इतिहास यह दोनों शब्द कभी तो भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते रहे हैं और कभी एक ही अभिन्न अर्थ में दोनों का प्रयोग होता रहा है। अतः यह कहना सर्वथा उचित होगा कि पुराणों में वर्णित आख्यान ऐतिहासिक महत्व भी रखते हैं जिन से हमें क्रमबद्ध रूप से भारत की धार्मिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का बोध होता है। वसुदेव शरण अग्रवाल ने वामन पुराण में वर्णित विषयों को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि “यह संतोष का विषय है कि वामनपुराण एक मत्पूर्ण ग्रन्थ है जिसमें निहित है भारतीय स्वर्णयुग की गहन प्रेरणा, धार्मिक गतिविधियाँ तथा उत्कृष्ट अनुभव जो विश्व में कठिनता से देखने को मिलते हैं। वह युग था उत्कृष्ट देश का, जबकि आत्मतत्त्व के ज्ञान के लिए सहस्रों झरोखें खुले थे जिसमें आनन्द, ज्ञान, भक्ति तथा दिव्य भावनाएँ प्रवेश करती थी।” पुराणों के रचयिताओं ने कई धार्मिक देवी देवताओं की अर्चना के साथ-साथ ऐतिहासिक आख्यानों को भी उजागर किया जिससे विभिन्न विषयों का सही मूल्यांकन हो सके।

महिषासुरमर्दिनी की कथा देवीभागवत, शिव, वराह, वामन तथा मार्कण्डेय आदि कई पुराणों में वर्णित है। इसके अतिरिक्त इन पुराणों में ऐतिहासिक महत्व के अनेकों आख्यान हैं। उन में से देवी महात्म्य अथवा मार्कण्डेय पुराण में वर्णित महिषासुर सम्बन्धी कथाएँ विशेष रूप से अध्ययन के लिए उपयुक्त हैं।

महिषासुरमर्दिनी के आख्यान को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने से पूर्व वामन पुराण² में वर्णित अगस्त्य ऋषि के उपाख्यान की ओर ध्यान देना होगा। इसके अनुसार प्राचीन काल में विन्ध्य पर्वत ने अपनी गगन विहारी शृंखलाओं से सूर्य की गति को रोक दिया। तदनन्तर सूर्य ने महर्षि अगस्त्य के पास यह रुकावट दूर करने की प्रार्थना की। तब अगस्त्य ने दिवाकर को आश्वासन दिया कि वह विन्ध्य शृंखलाओं को निम्न कर देंगे। तब अगस्त्य ने विन्ध्याचल के समीप जा कर कहा कि “मैं अति पवित्र महातीर्थ जा रहा हूँ और वृद्ध होने के कारण तुम्हारे ऊपर चढ़ने में असमर्थ हूँ अतः आप तत्काल नीचे हो जाएँ और जब तक मैं पवित्र तीर्थ से स्नान करके पुनः न लौटूँ तब तक तुम्हें नहीं बढ़ना चाहिए नहीं तो मैं फिर शाप दूँगा।

गत्वा वचः प्राह मुनिर्महीधं यास्ये महतीर्थवहं सुपुण्यम्।

बृद्धोऽस्यशक्तश्च तवाधिरोढुं तस्माद् भवान् नीचतरोऽस्तु सद्यः॥

इत्येवमुक्तो मुनिसत्तमेन स नीच श्रृंगस्त्वभवम्भहीधः।

समाक्रमन्त्यापि महर्षिमख्यः प्रोलङ्घ्य विन्ध्यं त्विदमाह शैलम्॥

यावन् भूयो निजाभावजामि महाश्रमं घौत वपुः सुतीर्थात्।

त्वया न तावत्विह वर्धितव्यं नौ चेद् विशाप्स्ये ऽहमवज्ञया ते॥

वामन पुराणः 19.29-31

भौगोलिक दृष्टि से विन्ध्य पर्वत का विशेष महत्व है क्योंकि यही वह पर्वत शृंखला है जो उत्तर एवं दक्षिण भारत के मध्य में स्थित है। उपरोक्त उपाख्यान के अन्यसन्दर्भों के बारे में कुछ कहना तो कठिन है परन्तु ऋषि अगस्त्य द्वारा विन्ध्य पर्वत का पार करना एक ऐतिहासिक महत्व की बात है। इससे पूर्व रामायण काल के पश्चात् आर्यों में से कोई भी इस पर्वत शृंखला को लांघ कर दक्षिण में नहीं जा सका था। अतः अगस्त्य ऋषि पहला आर्य जाति का व्यक्ति माना जाता है जिसने दक्षिण में प्रवेश कर वहाँ अपना आश्रम बनाया और ज्ञान का प्रचार किया।

महर्षि अगस्त्य का विन्ध्य पर्वत को पार करना वसुदेवशरण³ अग्रवाल एक ऐतिहासिक घटना मानते हैं जिससे दक्षिण का मार्ग आर्यों को खुल गया। इसके अतिरिक्त देवी माहात्म्य के प्रथम अध्याय में चैत्रवंश का उल्लेख है। भारतीय इतिहास में कलिंग का नृप खार्वेला चैत्र वंशज था और उसे चैत्रवंशवर्धन के नाम से भी पुकारा गया है जिसका वर्णन हाथी गुफा⁴ के शिलालेख में मिलता है। परन्तु अन्य सुदृढ़ तथ्यों के अभाव के कारण इसे ऐतिहासिक मान्यता देना कठिन दीखता है।

देवी माहात्म्य के भाष्यकार भास्कर राय ने महिषासुर को महिष्मती का पुत्र कहा है। इस महिष्मती का सम्बन्ध चेदी वंश से जोड़ा जा सकता है जिनकी राजधानी महिष्मती थी और महिषासुर की कथा उस क्षेत्र में लोकवार्ता के रूप में प्रचलित थी। प्राचीन महिष्मती की पहचान इन्दौर नगर से 60 कि० मी० ओंकारेश्वर-मान्धाता से की जाती है जो नर्बदा के दक्षिण तट पर स्थित है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस कथा का प्रारम्भ उन वनों एवं पर्वत शृंखलाओं से हुआ जो नर्बदा एवं कालिसिन्धु नदियों के मध्य में स्थित है। वसुदेव शरण अग्रवाल⁵ का कहना है कि जिस प्रकार वाल्मीकि ऋषि ने सर्यु नदी के तट पर रामायण की रचना की थी उसी प्रकार ऋषि मार्कण्डेय ने देवी माहात्म्य की रचना समकालीन लोक कथाओं के आधार पर की। इस संदर्भ में एक बात जो विशेष ध्यान देने योग्य है वह यह कि दन्त कथाएँ अथवा लोक कथाएँ सर्वथा निराधार नहीं होती और कभी-कभी कुछ ऐसी घटनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं जो जन साधारण पर अमिट प्रभाव छोड़ देती हैं। जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती हैं। कभी मौखिक रूप से तो कभी लिखित रूप से। महिषासुरमर्दिनी की कथा भी इसी श्रेणी में आती है।

देवी माहात्म्य के प्रथम अध्याय (श्लोक-4) में “कोलाविध्वंसिनस्तथा” का उल्लेख है जिसके अनुसार कोलवंशज राजाओं ने राजा सुरथ पर आक्रमण किया जो चैत्र वंश में उत्पन्न हुआ था। कोलाविध्वंसिन वंश का इतिहास जानने के लिए शान्तनवी चक्रवर्ती की कृतियों का आश्रय लेना पड़ेगा जो इनको कोल जाति के ब्राह्मण बताता है जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के उपासक थे और वराह हन्ता थे। इसी लिए वह कोलाविध्वंस के नाम से जाने गए। परन्तु वसुदेव शरण अग्रवाल कोलाविध्वंसिन को शक जाति के पर्यायवाचक मानते हैं क्योंकि वह विष्णु के वराह रूप के उपासक⁶ थे।

देवी माहात्म्य के ग्यारहवें अध्याय में देवी को शिवदूती के नाम से पुकारा गया है। यह नाम देवी को इस लिए दिया गया क्योंकि उस ने शिव को दैत्यों के पास दूत बना कर भेजा था। (शिवदूती स्वरूपेण हतदैत्य महाबले) इस विषय का एक सांस्कृतिक महत्व है क्योंकि भारतीय इतिहास में एक ऐसा युग भी आया था जिस में शासनाध्यक्ष अन्य देशों में अपने दूतों को प्रेषित करने में गौरव समझते थे। महाभारत के समापर्व में दूतों द्वारा अन्य राज्यों को अपने प्रभाव में लाने का उल्लेख है (दूतैरेव वशे चक्रे)। उसी धारणा का यहाँ धार्मिक दृष्टि से प्रयोग हुआ है। भाव यह है कि देवी शिव को अपना दूत बनाकर अपने प्रभुत्व का प्रदर्शन करती है।⁷ दूत भेजने की प्रथा का उदय ईसा पूर्व की शताब्दियों में हुआ परन्तु ईसा की प्रथम शताब्दी में यह पर्याप्त रूप से प्रचलित हो गई। यह दूत अपने राजाओं की प्रभुसत्ता एवं गौरव के प्रतिनिधि माने जाते थे। और गुप्त एवं कुषाण काल में इनका विशेष महत्व रहा है।

देवी माहात्म्य में ऐसे असुरों के संहार का भी उल्लेख है जो वैप्रचित के वंशज कहलाए जाते थे। बाह्य रूप से यदि देखा जाए तो यह वैप्रचित को इंगित करते हैं जो इन्द्र का शत्रु था जिस का अन्त देवासुर संग्राम में इन्द्र द्वारा हुआ था। यह वैप्रचित असुर वसुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यवन हो सकते हैं क्योंकि देवीमाहात्म्य में कुछ नाम ऐसे भी हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व है। इसी विद्वान के अनुसार यवनों का प्रभाव दो भागों में बँटा था। प्रथम में उनका प्रभुत्व वेन्द्रिया में था तथा द्वितीय भाग में उन्होंने पंजाब में शाकाल⁸ पर अधिपत्य जमाया हुआ था। उनके तीन शताब्दियों के शासन काल में उन्होंने भारतीय साहित्य पर अमिट छाप छोड़ी और वह भारतीय ब्राह्मणों अथवा ऋषियों की भाँति ही पूजनीय माने जाने लगे। इन का वर्णन महाभारत के द्रोणपर्व में भी मिलता है। वास्तव में वैप्रचित असुरों का कोलाहल के युद्ध में भाग लेना मत्स्यपुराण में उल्लिखित है। मार्कण्डेय पुराण कोलविध्वंसियों को सुरथ के शत्रु के रूप में प्रकट करता है।

देवी माहात्म्य के ग्यारहवें अध्याय में देवी को रक्तदन्तिका रूप में स्मरण किया गया है। (स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्त दन्तिकां-42) रक्तदन्तिका शृंग शासकों की अधिष्ठात्री देवी भी मानी जाती रही है। वास्तव में शृंग तथा रक्तदन्तिका शब्द समानार्थक हैं। शृंग वृक्ष (Ficus Infectoria) को हिन्दी में प्लक्ष, पिल्लखन अथवा पाकड़ कहते हैं। इस वृक्ष के रक्तवर्ण के बेर सदृश छोटे-छोटे फल होते हैं अतः उनको रक्तदन्तिका नाम देना उचित ही है। ऐसा लगता है कि पुराणकार शृंग शासकों को विस्मरण नहीं कर पाया क्योंकि रक्त रन्जित दाँतों में तथा शृंग वृक्षों के रक्त फलों में समानता है। उधर रक्त दन्त राक्षसों के नाम भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि रक्त दन्तिका के प्रयोग के पीछे किसी भीषण युद्ध की विस्मृति निहित है।

देवी माहात्म्य में ही शकम्बरी तथा शताक्षी नामों में भी देवी को पुकारा गया है जो ऐतिहासिक महत्व के हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जनता उस समय किसी भयंकर प्राकृतिक विपदा में ग्रस्त थी क्योंकि लगभग सौ वर्षों तक वर्षा नहीं हुई थी। उस समय देवी ने शाकम्बरी तथा शताक्षी दो रूपों को धारण किया। हो सकता है कि इसका सम्बन्ध शक, कुशाण शासकों कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव के शासन काल से हो जिनके अन्तिम चरण का उल्लेख ९८ शक संवत् के शिलालेख में उपलब्ध है। इस सम्बन्ध में कई तथ्य विचारणीय हैं। सर्वप्रथम देखने योग्य बात यह है कि देवी को "शाकम्बरी" कहा गया है जिसका अर्थ यह भी हो सकता है कि वह शक वंश की मातृ देवी है। दूसरी बात यह है कि देवी के किसी असुर अथवा शत्रु का उल्लेख नहीं आया है। ऐसी सम्भावना है कि पुराणकार के स्मृति-पटल पर शक शासकों की छवि, (जिन्हें वह आक्रमणकारी नहीं मानते थे) विद्यमान थी तथा उसने उनकी देवी को भी अपनी उपासना पद्धति में सम्मिलित कर लिया था।

परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो देवी का शाकम्बरी रूप हड़प्पा तथा मुहन्जुदड़ो में भी प्राप्य है। इन स्थानों से ऐसी मुद्राएँ उत्खनन में प्राप्त हुई हैं जिसमें एक स्त्री मूर्ति की कोख से वृक्ष उपजता दिखाया गया है। इसी प्रकार की कुषाण कालीन एक अन्य मुद्रा भीटा से प्राप्त हुई है जिसमें वृक्ष देवी की ग्रीवा से निकलता दिखाया गया है।

शताक्षी रूप में देवी को "अयोनिजा" कहा गया है अर्थात् उस का जन्म दिव्य रूप से हुआ, न कि मानुषी गर्भ से :-

मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविविष्याम्योनिजा।

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्॥

कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति यां ततः।

देवी को उपरोक्त श्लोक में मुनियों द्वारा सेवित कहा गया है जो उन्हें सौ नेत्रों से देखती है जिससे उसका नाम शताक्षी हुआ। यहां मुनियों का अर्थ वही है जो महाभारत के शान्ति पर्व के नारायण पर्व में चित्रशिखण्डिनः के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह विशेषण भारत में सप्तर्षियों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है (प्रोक्ता सप्तर्षयो लोके तथा चित्र शिखण्डिनः विष्णुधोत्तर पुराण, 3.8.25)। परन्तु यह विशेषण पहलवी धर्म के सात अमेषपिण्डों के लिए प्रयोग में लाया गया था जैसा कि नारायणीय धर्म के उस अध्याय में वर्णित है जिस में ससेनियन चिन्हों की भरमार है। इसी नारायणीय धर्म में ईरान की देवी आशा तथा उसका पहलवी प्रारूप संस्कृत में ऋता के नाम से उपलब्ध है। उसका संस्कृत नाम ऋताक्षी प्रतीत होता है जो कि कुषाण शासकों कनिष्क तथा हुविष्क के सिक्कों में उपलब्ध⁹ है।

एक विशेष तथ्य जो इस सम्बन्ध में विचारणीय है, वह यह है कि देवी कात्यायनी अथवा महिषासुरमर्दिनी की मूर्तियां सर्वप्रथम कुषाण काल में मथुरा में पाई गई हैं। इसीकाल में देवी की प्रतिमाएँ काफी प्रचलित थीं। ऐसा लगता है कि इन देवी के विकसित रूप में आशा, ऋता, ऋताक्षी, ओरदक्षी तथा शताक्षी आदि देवियों का भी पर्याप्त योगदान है। इन सभी का प्रभाव ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में भारतीय समकालीन शासक वर्ग में देखने में मिलता है। देवी अयोनिजा कहलाती हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल¹⁰ ने इसका पश्चिमएशिया का सम्पर्क इस प्रकार प्रतिपादित किया है :-

"She was truly regarded as not of mortal birth but of heavenly origin as the divine light of Ahura Mazda who himself was known as Hari Medhas Deva in his period as mentioned several times in the Narayana Parvan."

देवी माहात्म्य में देवी को भ्रामरी रूप में भी स्मरण किया है। देवी भागवत पुराण के दशम स्कन्ध में दिए हुए आख्यान के अनुसार नारद द्वारा पूछे जाने पर स्वयं नारायण ने जो कथा इस बारे में सुनाई वह इस प्रकार है। एक बार पाताल वासी वरुण नामक दैत्य ने हिमालय के निकट गंगा तट पर घोर तप किया जिससे ब्रह्मा प्रसन्न हो गए। उस दैत्य ने को मनुष्य तथा पशुओं से अपने को अवध्य होने का वर प्राप्त कर लिया। वर

प्राप्त कर वह दैत्य उद्धत एवं उद्विग्न हो गया और समस्त देवताओं को उसने पराजित कर दिया। उसके उपरान्त देवता गण एकत्रित हो कर विचार करने लगे। तभी आकाशवाणी सुनाई दी कि दैत्य वरुण गायत्री मन्त्र के जप के कारण अजेय हैं। तब देवताओं ने देवगुरु बृहस्पति को दैत्य के पास इस संदेश के साथ भेजा कि आप गायत्री मन्त्र का जप करने के कारण हमारे ही अंग बन गए हो अतः हममें सम्मिलित हो जाओ अथवा गायत्री की आराधना छोड़ दो। बृहस्पति के कहने के अनुसार दैत्य वरुण ने देवी पूजन का त्याग कर दिया।

इधर देवों ने भगवती जगदम्बा की आराधना आरम्भ कर दी। देवों की आराधना से प्रसन्न हो कर देवी ने भ्रमरों से आभूषित भ्रामरी रूप धारण किया और उस दैत्य से युद्ध करके उस का विनाश किया। युद्ध में भ्रमरों ने अपने काले रूप से अन्धकार फैला कर विषाक्त मक्षिकाओं के समान अपने दाँतों से उस दैत्य को सेना समेत डस कर व्याकुल कर दिया। भ्रमरों के दंश प्रहार से दैत्य को निर्वीर्य, निस्तेज, तथा हताश करते हुए देवी ने अन्त में उसे यमलोक पहुँचा दिया।

भ्रमरा एव संजातास्तद्विद्धुत भिवाभवत्।
ते सर्वे दैत्यवक्षांसि दारयामाससुरुद्रता॥
नरं मधुहरं यद्वन्मक्षिकाः कोपं संयुताः।
उपायो न च शास्त्राणां तथास्त्राणां तथा ऽ भवत्॥

देवी भागवत पुराण :- 10.22. 12-13

इस प्रकार ब्रह्मा जी से दैत्य को मिले वर की रक्षा हो गई। और दैत्य के विनाश से देवों का भी उद्धार हो गया।

वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार इस घटना का भी ऐतिहासिक महत्व है जिसमें असुरों को रक्त वर्ण का दर्शाया है जो तुरुक्ष सैनिकों का हो सकता है। दूसरे षट्पद लक्षण उन अश्वारोहियों के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है जो अश्व सवार होते हुए छः पैर वाले होते हैं (दो अश्वरोही के तथा चार अश्व के)। इसमें उन तुरुक्ष (Indo-scythian) का वर्णन है जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया था तथा गुप्तकालीन नरेशों ने अपनी सेना का पुनर्गठन उसी शैली पर किया गया था। इस का उदाहरण कालिदास के रघुवंश में इस प्रकार से मिलता है।

अभ्यभुयत वाहानां चरतां गात्रशिञ्जितैः।
वर्मभिः पवनोदधूतराजताली बन्ध्वनिः॥

रघुवंश :- 4.56

(चलते हुए घोड़ों के शरीर पर शब्द करते हुए कवचों की ध्वनि से वायु से हिलते हुए ताल वृक्षों के वन की ध्वनि तिरस्कृत हुई।)

पैकुली शिलालेख के अनुसार चतुर्थ शती ई० में ससानियों ने सिंध तथा राजपूताना में आक्रमण किया था जिसे नष्ट करने के लिए चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पार्सीक देश पर आक्रमण किया था। इसी का उल्लेख अश्वारोहियों के प्रभुत्व को दर्शाता है।

कोई भी रचनाकार अपने समकालीन समाज में प्रचलित परम्पराओं की सर्वथा अनदेखी नहीं कर सकता और उनमें से कुछ एक महत्वपूर्ण परम्पराओं का उल्लेख किसी न किसी रूप में अनायास ही कर देता है। देवी माहात्म्य का रचनाकार भी इस प्रकृति से अछूता नहीं जान पड़ता क्योंकि उसने कुछ ऐसी परिस्थितियों को दर्शाया है जो गुप्त काल में प्रचलित थीं। उदाहरणार्थ काञ्चन छत्र को ही लीजिए। देवी माहात्म्य के पञ्चम अध्याय (श्लोक 52) में छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनश्रावी तिष्ठति का अर्थ स्वर्ण वृष्टि लिया गया है। यह स्वर्ण वृष्टि भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग की ओर संकेत करती है जिसका वर्णन कालिदास ने रघुवंश में भी इस प्रकार किया है।

प्रातः प्रयाणभिमुखाय तस्मैः सविस्मयाः कोशगृहे नियुक्ताः।
हिरण्यमयीं कोषगृहस्यमध्ये वृष्टिं शशंसु पतितां नभस्तः॥

रघुवंश :- 5.29

(प्रातः काल यात्रा करने के लिए उद्धत उन रघु महाराज से खजाने पर नियुक्त किए हुए लोगों ने आश्चर्य युक्त होते हुए खजाने के गृह के अन्दर आकाश से गिरी हुई स्वर्ण की वृष्टि को देखा।)

बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान (पृ० 213-14) भी स्वर्ण वृष्टि का उल्लेख इस प्रकार करता है :- वर्षितं मे सप्ताहमन्तपुरे हिरण्य वर्षाम्। इसी ग्रन्थ के पृ० 224 पर 'नः क्षर्पण वर्षेन वृष्टि कामेषु विधत्ते पि' का उल्लेख है जो स्वर्ण वर्षा ही है।

इसी स्वर्ण वर्षा के बारे में महाभारत का साक्ष्यभी अना ही महत्व रखता है। इसी ग्रन्थ में महाराज सहोत्र के राज्य में कनक वृष्टि का वर्णन शान्ति पर्व (पृ० 29, 24-26, पूना संकलन) में मिलता है।

महाकवि बाण अपनी कृति हर्षचरित में दिव्य कनक वृष्टि को दर्शाता है। ('महाकरकावदाता वसुन्धरां इव द्यौः'। हर्षचरित, (निर्णयसागर प्रेस, पृ० 134) ऐसा लगता है कि उस समय भारतवर्ष में स्वर्ण का बाहुल्य था जिस कारण से सर्वत्र सम्पन्नता का वातावरण था जिस का कारण इस का विदेशों से लाभदायक व्यापार तथा उपज थी। वसुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार स्वर्णवृष्टि की उक्ति का प्रयोग स्वर्ण के बाहुल्य की ओर इंगित करता है और सम्भवतः यही कारण है कि इस काल (350-450 ई०) तक स्वर्ण सिक्कों एवं मुद्राओं की पर्याप्त मात्रा में प्राप्ति है। अतः देवी माहात्म्य में इस का वर्णन औचित्यपूर्ण ही है।

नागहार एक अन्य गुप्त कालीन लक्षण है जिसका वर्णन देवी माहात्म्य में मिलता है। यह नागहार देवी को सर्पों के राजा शेषने अर्पित किया था। यह एक विचित्र प्रकार का आभूषण था जिसे कादम्बरी ने राजपुत्र चन्द्रापीड को दिया था। इस का वर्णन बाण की कादम्बरी में मिलता है। श्रीहर्ष के नैषदीय चरित्र में जिस दुन्दुभक नाग आभूषण का उल्लेख है वहीं नागहार का ही दूसरा रूप है। यह स्वर्ण तारों के गुच्छे का बना होता था जिस का आकार दुन्दुभक नामक सर्प के आकार समान ही होता था जिसमें रत्न जड़े रहते थे। यह बाएँ कन्धे से छाती की ओर पहना जाता था। ऐसा लगता है कि रचनाकार को इस आभूषण का पर्याप्त ज्ञान था।

महिषासुर का जन्म महिष्मती में हुआ जो इसी नाम की नगरी की राजकुमारी थी तथा अम्बर ऋषि के शाप वश वह महिषी रूप में परिणत हो गई। इस महिष्मती नगरी का भी ऐतिहासिक महत्व है। इस महिष्मती नगरी की पहचान वर्तमान महेश्वर अथवा ओंकारेश्वर-मान्धाता से की जाती है। इस विषय में दो मत हैं। इस सम्बन्ध में डिस्कल्कर, पण्डया, दीक्षित, करण्डीकर तथा विलफोर्ड ने महेश्वर को प्राचीन महिष्मती कहा है जबकि प्रसिद्ध विद्वान मोंराशी, रायचौधरी, पार्जोन्टर तथा फ्लीट आदि आधुनिक ओंकारेश्वर मान्धाता को ही महिष्मती¹² मानते हैं। परन्तु कनिंघम की धारणा इन सबसे अलग है और वह माण्डला (म० प्र०) को महिष्मती मानते हैं।

कई पुराणों के अनुसार जिन में हरिवंश पुराण¹³ प्रमुख है महिष्मती को नर्मदा के तट पर स्थित बताते हैं। अन्य दैत्यों को जो यदुवंश की एक शाखा माने जाते हैं इससे सम्बंधित बताते हैं। उनके वंशजों में से जो नाम 'हय' अथवा 'अश्व' के साथ समाप्त होते हैं (जैसे कि 'दशाश्व' आदि) आर्य जाति के माने जाते हैं। एक बात तो सर्वथा स्पष्ट है कि जो कोई इस नगर का विजेता हो इसके आदिवासी नाग जाति के थे जिन्हें हथियों न परास्त किया। अन्य सभी पुराणों की अपेक्षा हरिवंश पुराण ने इस विषय पर अधिक प्रकाश डाला है जिस से इस नगर की वास्तविकता पर कुछ कहा जा सकता है।

हरिवंश पुराण के अनुसार नागराज धूमवर्ण की कन्या से उत्पन्न यादव-पुत्र मुचुकुन्द ने विन्ध्य पर्वत में निवास किया। यहां उसने अनेकों भयंकर पाषाणों तथा नागों से आच्छादित नर्मदा के तट पर निवासार्थ नगर बसाया। इस नगर के चारों ओर गहरी खाई थी तथा नगर में अनेकों उद्यान एवं वाटिकाएँ थी। इसी पुराण के अनुसार महिष्मति दो विन्ध्य पर्वतों के बीच स्थित थी अथवा विन्ध्य एवं ऋक्षवत (सातपुड़ा) पर्वत शृंखलाओं के मध्य में स्थित थी। हरिवंश पुराण (33.4-5) तथा पद्म पुराण, (4-115) के अनुसार महिष्मती का निर्माण साहज के पुत्र महिष्मत ने (हैहय का पौत्र तथा यदु का एक पुत्र था) करवाया था। हरिवंश में ही (33.26) यह भी उल्लिखित है कि इस नगर को कार्तवीर्य अर्जुन ने कर्कोटक नाग से जीत लिया था। इसी बात की पुष्टि वायु प्रमाण (23.26) तथा मत्स्य पुराण (43.29) से भी होती है।

पद्म पुराण¹⁴ के अनुसार चन्द्रवंशी मान्धाता के पौत्र मुचुकुन्द जो वास्तव में सूर्य वंशी थे नर्मदा घाटी के राजा बने।

महाभारत¹⁵ के अनुसार जब सहदेव दिग्विजय के लिए नर्मदा तट पर स्थित महिष्मती पहुँचे तो उस समय नील नाम के राज उस पर राज्य कर रहे थे चूँकि नील की सहायता अग्निदेव कर रहे थे अतः सहदेव कुछ भी करने में असमर्थ था। तब उसने अग्निदेव की आराधना की जिसने उसे बताया कि वह उस नगर की तब तक रक्षा करेंगे जब तक उन का वंश चलेगा।

संस्कृत साहित्य की ओर यदि देखा जाय तो ज्ञात होगा कि कालिदास, दण्डिन, राजशेखर तथा मुरारी ने अपनी रचनाओं में महिष्मती का उल्लेख किया है कालिदास ने रघुवंश में महिष्मती का वर्णन इस प्रकार किया है :-

अस्याङ्कं लक्ष्मीर्भव दीर्घ बाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाव्यनीम्।

प्रासाद जालैजलवेणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः॥

(महिष्मती नामक एक राजा की राजधानी के परकोटा रूप नितम्ब की करधनी तथा जल रूप वेणी से रमणीय रेवा नदी को महलों के झरोखों से देखने की इच्छा है तो इस राजा के अंक की शोभा बनो अर्थात् इस राजा को वरण करो।)

कालिदास के अनुसार शास्त्रों तथा वृद्ध जनों का सेवक प्रतीप नामक राजा उस कार्तवीर्य का वंशज था जो इन्दुमती के विवाह के समय महिष्मती पर शासन कर रहा था।

दण्डिने उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करते हुए दशकुमार चरित में (छठी शताब्दी ई० में) मालवा की राजनीतिकी परिस्थिति को उजागर किया है। इसके अनुसार इस समय इस पर महाराज भोज के वंशजों का अधिकार था।

राजशेखर (बाल रामायण, III.35) तथा मुरारी (अनर्धराधव-Act VII) केसाक्षों के अनुसार उन के काल में महिष्मती पर कालचूरी शासकों का शासन हो चुका था।

यही नहीं पतञ्जलि ने अपने महामाष्य में महिष्मती का उल्लेख किया है पाणिनि की वार्तिका 10 तथा 15 की व्याख्या करते हुए उसने लिखा है कि सूर्यास्त के समय उज्जयनी से चल कर सूर्योदय के समय मष्मिती पहुँचा जा सकता¹⁶ है।

बौद्ध साहित्य में भी महिष्मती को भूला नहीं गया है। वास्तव में सब से प्राचीन महिष्मती का साक्ष्य तो बौद्ध साहित्य में है जो ई० पू० द्वितीय शताब्दी का है। महागोविन्द सुतान्त¹⁷ में महिष्मती अवन्ती की राजधानी थी जो रेणु राज्य के आठ जनपदों में से थी। सुत्त निपात में एक कथा एक ब्राह्मण ऋषि बावेरी के बारे में है जो अलका नगरी में गोदावरी के तट पर रहता था और वह बुद्ध की खोज में महिष्मती,¹⁸ उज्जैनी आदि कई नगरों में गया।

महिष्मती का वर्णन प्राचीन शिलालेखों¹⁹ में भी प्राप्त होता है। सांची स्तूप के शिलालेखों में 'महिस्ती' अथवा 'माहसती'²⁰ के साथ उज्जैनी के साथ मिलता है। इन में से कुछ ई० पू० की तीसरी अथवा दूसरी शताब्दी के हैं। अन्य शिला लेखों अथवा ताम्र पत्रों में भी महिष्मती का दिग्दर्शन मिलता है। ईसा की पाँचवी शताब्दी के बर्वानी तथा बाघ से प्राप्त पत्रों महिष्मती से ही जारी की गई थीं। इसके अतिरिक्त शिलालेखों में भी महिष्मती कई बार वर्णित है।

इस संबंध में यह विचारणीय है कि महिष्मती नाम की राजकुमारी के अस्तित्व के बारे में पुरातत्व साक्ष्य प्राप्य न रहते हुए भी उसी नाम की नगरी जिसकी वह राजकुमारी थी के अस्तित्व के बारे में विश्वनीय साक्ष्य प्राप्य है।

मोनियर विलियमस²¹ के अनुसार महिषासुर भैरव का शासक था और इस नगर का नाम महिषासुर को ही अपभ्रंश मात्र है। इस दैत्य ने एक के बाद दूसरे राज्य पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। इस सम्बंध में पुराणों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। उसका आतंक इतना बढ़ गया कि देवताओं को स्वर्ग त्याग कर वनवासी बनना पड़ा। देवी भागवत पुराण के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को भी इस असुरेन्द्र से परास्त होना पड़ा वराह पुराण (अध्याय -93) के अनुसार इन्द्र भी इस असुर से पराजित हो गया और मार्कण्डेय पुराण इसी बात की साक्षी में कहता है 'इन्द्रोभूत महिषासुरः'। महिषासुर के प्रभाव का दक्षिण से उत्तर की ओर फैलने से देवता लोग चिन्तित हुए क्योंकि उन का अपने राज्यों से प्रभुत्व मिटता जा रहा था। वामन पुराण के उन्नीसवें अध्याय के अनुसार सभी देवता विन्ध्याचल पर एकत्रित हुए यह विचार करने के लिए कि इस महिषासुर का अन्त करने के लिए क्या किया जाए। उसी समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं इन्द्र के क्रोध करने पर उनके मुखों से महान तेज प्रकट हुआ जो कात्यायन ऋषि के आश्रम में एकत्रित हो कात्यायनी देवी के रूप में प्रकट हुआ।

इसका भावार्थ यह भी हो सकता है कि सभी देव सेनाएँ एकत्रित होकर एक ही आधिपत्य (कमान) में आ गईं। (यह कोई विचित्र बात नहीं है क्योंकि आधुनिक युग में भी हमने देखा है कि कई देशों की सेनाओं ने एकत्रित हो कर इराक पर आक्रमण कर उसे परास्त किया। इन सभी की कमान संयुक्त राष्ट्र के अधीन थी।) सभी देवताओं की सेनाओं का एकजुट होकर संघर्ष करने से एक अद्वितीय शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ जिससे महिषासुर एवं उसकी विशालसेना का नाश हुआ।

इस समय यह विश्वास पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि महाभारत के युद्ध की भांति महिषासुर के साथ देवी का युद्ध भी एक ऐतिहासिक घटना थी कि नहीं परन्तु यदि थी तो हो सकता है कि सभी देवताओं की सेनाओं ने अपने अपने देवताओं के ही अस्त्र-शस्त्र धारण किए हों। जैसे विष्णु की सेना के सैनिक चक्रधारी थे, शिव के त्रिशूल धारी, यम के दण्डधारी, इन्द्र के वज्र धारी, मरुत के धनुधारी, काल के खड्गधारी तथा वरुण के पाशधारी थे क्योंकि यही अस्त्र देवताओं ने देवी को दिए बताए गए हैं। किसी भी सेना को रसद पानी भी अवश्य मिलना चाहिए और यह महत्वपूर्ण कार्य ब्रह्मा द्वारा किया गया मालूम होता है क्योंकि ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु को देवी को प्रदान किया था जिस का मात्र महत्व खान-पान की सामग्री रखना है।

वामन पुराणों²² में देवी के मुख से अनेकों गणों की उत्पत्ति का वर्णन है। इन गणों को साथ लेकर ही देवी ने महिषासुर की सेना पर आक्रमण कर के उसे नष्ट कर दिया। देवी के साथ अन्य शक्तियाँ भी थीं इस का उदाहरण देवी माहात्म्य के दशम अध्याय में मिलता है जब शुम्भ देवी के साथ अन्य शक्तियों को देख कर कहता है कि दूसरों का सहारा ले कर आप युद्ध कर रही हैं (अन्यासं बलमाश्रित्य युद्धयसे याति मानिनी)। परन्तु देवी अपनी सेनाओं पर अपना पूर्ण आधिपत्य दर्शाते हुए उन सबको समेट कर एक हो गईं।

**ततः समस्तास्ता ता देव्यो ब्रह्माणी प्रमुखालयम्।
तस्या देव्यातनो जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका॥**

देवी माहात्म्यः 10.4

तब देवी ने घोषणा की 'यह सभी शक्तियाँ मेरी ही कृपा से स्थित थीं और उन्हें समेट कर मैं एकत्व को प्राप्त हुई एक रूपा हूँ। इससे विदित होता है कि सभी देव सेनाएँ जो दैत्यों के संहार के लिए अलग-अलग स्थानों पर युद्ध कर रही थी पुनः देवी की आज्ञा से एक जुट हो गईं। इसका एक उदाहरण हमें आज के युग में भी मिलता जब स्वतंत्रता दिवस के समापन समारोह में विभिन्न सेनाओं के सभी बैन्ड एकत्रित हो कर परेड की सलामी लेते हैं तथा बाद में अपनी-अपनी टुकड़ी में चले जाते हैं और जब वह एकत्रित होते हैं तो उन सभी की एक ही कमान होती है।

भौगोलिक दृष्टि से विन्ध्य पर्वत का अपना एक अनोखा ही महत्व है। ऐसा लगता है कि महिषासुर के पास यह क्षमता थी कि वह जब चाहे इन पर्वत श्रृंखलाओं को सेना समेत पार कर ले जिसे देवतागण नहीं कर पाते थे। दक्षिण का मार्ग तो देवताओं के लिए महर्षि अगस्त्य के विन्ध्य पर्वत को लाँघने के पश्चात् ही खुला। जब देवताओं के तेज से कात्यायनी का प्रादुर्भाव हुआ तो देवी ने उस पर्वत श्रृंखला की सब से ऊँची चोटी पर अपना निवासस्थान बनाया जिससे वह विन्ध्यवासिनी कहलाई। (तस्योर्ध्वं शृंगे मुनि संस्तुता सा दुर्गा स्थिता दानव नाशनार्थम्)। उस ऊँची चोटी पर निवास स्थान बनाने का एक मात्र कारण दानव विनाश ही तो था। युद्ध कुशलता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो सब से ऊँची चोटी से शत्रु की गतिविधियों की बेहतर जानकारी मिल सकती है।

इसमें सन्देह नहीं कि महिषासुरमर्दिनी के साथ महिषासुर के युद्ध का कोई विश्वसनीय प्रमाण जुटाया नहीं जा सका परन्तु इस कथानक से जुड़ी कुछ घटनाएँ एवं साक्ष्य ऐतिहासिक महत्व के अवश्य हैं जिन पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। एक अन्य तथ्य जो इस सम्बन्ध में विशेष महत्व रखता है वह यह है कि ऋषि अगस्त्य का विन्ध्याचल को लाँघना। यह कब सम्भव हुआ यह कहना तो कठिन है क्योंकि ऋषि अगस्त्य का वर्णन तो रामायण में भी आया है। परन्तु उसने विन्ध्य पर्वत कब पार किया यह निश्चित रूप से स्पष्ट नहीं है। कुछ एक विद्वानों का मत है जिसकी पुष्टि नहीं हो सकी कि अगस्त्य ऋषि ने विन्ध्याचल को पूर्व गुप्त काल में अथवा ईसा की प्रथम शताब्दियों में पार किया होगा। और महिषासुर से युद्ध बाद में हुआ। इसी संदर्भ में सम्राट समुद्र गुप्त की प्रयाग प्रशास्ति का हवाला दिया जा सकता है जिसमें दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। एक है सम्राट के शरीर पर युद्ध में शस्त्रास्त्रों के चिन्ह तथा दूसरी है समुद्र गुप्त का सभी दक्षिण राज्यों को जीत कर उन्हें वापस लौटाना।

जहां तक शस्त्रास्त्रों द्वारा सम्राट समुद्रगुप्त के शरीर बीधने का प्रश्न है, इन अस्त्रों की गणना में परशु, बाण, शङ्ख (Spikes), शक्ति प्राश, तलवार गदा, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच बैतिस्तिका आदि का उल्लेख प्रयाग प्रशास्ति में मिलता है। लगभग यही अस्त्र देवी माहात्म्य में देवी तथा असुरों के साथ युद्ध में प्रयोग किए गए हैं। तोमर भिन्दीपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा। यह साम्यता विशेष महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह हमारी इस धारणा की पुष्टि में तनिक सहायक होती है कि इस संग्राम का गुप्त काल से सम्बन्ध हो सकता है।

प्रयाग प्रशस्ति में ही समुद्र गुप्त को “दक्षिणापि राज-ग्रहण-मोक्षानुग्रह-जनित प्रतापोन्मिश्र महामागस्य” कहा गया है अर्थात् वह सम्राट जिसने सर्व प्रथम सभी दक्षिणापथ राज्यों को अपने अधीन करके उनके राज्य उन्हें लौटा दिए। सम्भव है कि समुद्र गुप्त का यह युद्ध जिसमें उस ने दक्षिण के सभी राज्यों को परास्त किया था काफी भयंकर हुआ हो जिसकी अभिव्यक्ति मार्कण्डेय ऋषि ने अपने देवी माहात्म्य में दर्शाई हो। इधर मार्कण्डेय पुराण का समय ईसा की तीसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक आँका गया है, और देवी माहात्म्य उसका एक अंग है जो कुछ एक विद्वानों के अनुसार क्षेपक के रूप में बाद में जोड़ा गया है। फिर भी वह काफी प्राचीन है। इस विषय पर वासुदे शरण अग्रवाल का मत भी युक्ति संगत दिखाई देता है जिसके अनुसार मार्कण्डेय ऋषि ने देवी माहात्म्य की रचना तत्कालीन प्रचलित लोक कथाओं पर आधारित था।

सन्दर्भ

- (1) Agrawala, V. S., *Vamana Purana-Astudy*, Int., p.iii.
- (2) वामन पुराण 19.23-32
- (3) Agrawala, V.S., *op. cit.*, p.40
- (4) *Ibid*, p.152
- (5) *Ibid*, p. 168
- (6) *Ibid*, p. 168
- (7) Agrawala V.S., *Devi Mahatmya*, p. 215.
- (8) *Ibid*, pp. 218-19
- (9) Whitehead, R.B. *Some Rare Indo-Greek and Scythian Coins*, pp. 194-207
- (10) Agrawala, V.S., *op.cit.*, (D.M.), p.219
- (11) *Ibid*, Introduction, pp. IX-X
- (12) Sankalia, H.D., *Excavations at Maheshwar and Navadatodi*, p.4, (Poona, 1958.)
- (13) हरिवंश पुराण , 38.14-20
- (14) पद्म पुराण, 5.8.39-40
- (15) 28.1-28
- (16) *JRAS*, 1910, p. 441.
- (17) दीर्घ निकाय, (Pali text Society), ii, pp. 220
- (18) *JRAS*, 1910, p. 443; *Sutta Nipata*, (Pali Text Society), p. 194
- (19) *R.I.*, II, pp. 97-116
- (20) *C.I.I.*, V, Part-I, pp 17-19
- (21) William Manier, *Religion Thought and Literature*, p. 431
- (22) वामन पुराण, 21.18-22
- (23) *C.I.I.*, III (Revised), pp. 216-217
- (24) *Ibid*, p. 217.

6

देवी माहात्म्य

देवी माहात्म्य में जो मार्कण्डेय पुराण का ही अंश है, तेरह अध्याय हैं जिस में दुर्गा महिषासुरमर्दिनी के आविर्भाव के अतिरिक्त उसके अन्य स्वरूप तथा दानवों के साथ हुए युद्धों के साथ साथ विभिन्न प्रकरणों देवताओं द्वारा उसकी स्तुतियों का भी उल्लेख है। इसमें श्लोकों की संख्या 568 है जिसे विस्तृत करके 700 बना दिया गया है। इसी कारण से इसे दुर्गासप्तशती भी कहते हैं। इस ग्रन्थ में देवी का सर्वशक्तिमयी आदिशक्ति, जननीपरा तथा जगदम्बा आदि कई रूपों में आराधना की गई है। सी जी जंग ने इसकी व्याख्या इन शब्दों में की है :-

“Whether you call the principle of existence. God, Mothers Energy or anything else you like, you have created nothing; you have simply changed a symbol”. (Psychological commentary to the Book of Great Liberation, p. xxx)

देवी भागवत पुराण के अनुसार देवी की आराधना बाह्य एवं अभ्यातिरिक्त दो प्रकार की होती है। उसकी बाह्य उपासना दो अंगों में बटी है। एक वैदिक रीति के अनुसार है जो वैदिक कहलाती है तथा दूसरी तान्त्रिक पूजा है जिसके श्रोत तन्त्र ग्रन्थ हैं। वैदिक पूजा पद्धति में यज्ञ, तप, भक्ति ज्ञान एवं योग के अतिरिक्त मूर्तिपूजा तथा महापट पूजा (Painting on Cloth) भी सम्मिलित है।

देवी की आभ्यन्तर पूजा द्वारा साधक देवी साधना में लीन हो जाता है और उसे देवी के परम पद की प्राप्ति होती है। यही भाव देवी भागवत में दर्शाया गया है :-

संविदेव परम रूपमुपाधि रहितं मया।

अतः संविदि मद्रूपे चेतः स्थायं निराश्रयम्॥

संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत्।

देवी भागवत पुराण, 7.39.44-45

देवी माहात्म्य के बारे में वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि वह ऋग्वेद वे रागाभहिणी सूक्त का विस्तार मात्र है। उनके शब्दों में उस विषय का अवलोकन ही उचित होगा :-

"The Devi Mahatmya is an elaborate conception of the Devi of the Vedic doctrine of an all powerful goddess of supreme transcendence, as propounded in the Ambhrini Sukta (R.V. 10.72). The Devi Bhagvat tells us that the Ambhrini Sukta beginning with अहं ऋदभिर्यसुभिर्यस्यरामि comprises the Armoured Hymn (कवच मन्त्र) of the Goddess (देवी भागवत. 7.40.22)

"The word Mahamaya is the same as Mahima of the R.V. The majesty of God or Goddess reveals itself in the hero pattern, where deity as a hero must manifest its power against an adversary. The Divine hero does three things, viz., discovers the enemy, organises paraphernalia of the battle and ultimately leads the struggle to victory, as a result of which the enemy or the asura becomes completely prostrate and the Divine Light fills the whole space between heaven and earth.

देवी माहात्म्य में तेरह अध्याय हैं और उन सभी में से केवल तीन अध्याय मात्र ही महिषासुर वध से सम्बन्धित हैं। अतः उन तीनों तथा प्रथम अध्याय का पर्यावलोकन यहाँ देना रुचिकर होगा :-

(1) पहले अध्याय का आरम्भ स्वरोचिष-मन्वन्तर में विराजमान चैत्र वंश के प्रतापी राजा सुरथ के आख्यान से होता है। महाराज सुरथ महामाया महाशक्ति देवी की शरणागति की महिमा से सावर्णि मनु के रूप में पुनर्जन्म ग्रहण करके सावर्णि मन्वन्तर के प्रवर्तक के रूप में प्रख्यात हुए हैं। महाराज सुरथ पर उनके शत्रुओं ने आक्रमण किया और उसका राजपाट छीन लिया। विरक्त हो कर सुरथ वन में चले गए जहाँ समाधि नाम के एक धन कुबेर वैश्य से उनकी भेंट हुई। समाधि की धन सम्पत्ति पर उसके पुत्र-पौत्रादि ने अधिकार जमा लिया जिसके कारण उन्हें भी वैराग्य हो गया और मन की शान्ति के लिए वह भी वन में विचरने लगे। जिस वन में उन की भेंट हुई उसी में सुमेधस् नाम के परम देवी भक्त ब्रह्म ज्ञानी ऋषि का आश्रम था। दोनों, ऋषि सुमेधस् के पास पहुँचे और दोनों ने ही उनसे अपने अपने मन की व्यथा का निवेदन किया। ऋषि सुमेधस् ने उन्हें महामाया का ज्ञानोपदेश दिया और उसका दर्शन भी कराया। दोनों महामाया के शरणागत हुए और दोनों का उद्विग्न हृदय आश्वस्त हुआ। राजा सुरथ अपने राज्य के एक छत्र अधिपति हुए और समाधि नाम वैश्य का अहंता ममता का भाव ज्ञानाति में भस्मीभूत हो गया।

यही आख्यान देवी भागवत के दशम अध्याय में भी महाराज सुरथ के आख्यान के रूप में वर्णित है। किन्तु देवी माहात्म्य के इस अध्याय में वर्णित इस आख्यान से कुछ भिन्न है। सम्भवतः देवी भागवत पुराण के रचयिता ने सुरथ का आख्यान ही मार्कण्डेय पुराण से ग्रहण किया है और समाधि का आख्यान छोड़ दिया है। मार्कण्डेय एवं देवी भागवत पुराणों में वर्णित सुरथ आख्यान के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि देवीभागवत का आख्यान मार्कण्डेय पुराण का ही रूपान्तर मात्र है। कहीं कहीं तो वह ही पद प्रयुक्त किए गए हैं जो मार्कण्डेय में हैं। देवीमाहात्म्य में सुरथ को देवी के अनुग्रह से निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति तथा भावीजन्म में सावर्णि मनु के रूप में उनके जन्म का वर्णन है और वैश्यवर समाधि को अहंता ममता के अज्ञानान्धकार से दूर उठा कर आत्मज्ञान के प्रकाश में प्रतिष्ठापित करने का प्रतिपादन करता है।

सम्भवतः वैश्यवर समाधि का आख्यान बौद्ध धर्म के प्रभाव की ओर संकेत देता है। देवी भागवत में निष्कण्टक राज लाभ और आत्मज्ञान के वरदान के भागी महाराज सुरथ ही बताए जाते हैं क्योंकि उन्हें ही सावर्णि मनु के रूप में भविष्य में जन्म लेना है। समाधि का सावर्णि मनु से सम्बन्ध-वर्णन देवी भागवत के रचयिता ने जानबूझ कर छोड़ दिया है, क्योंकि उसकी दृष्टि में सावर्णि मुनि के माहात्म्य के प्रसंग में किसी धन कुबेर वैश्य के आत्मज्ञान का निरूपण असंगत है। आत्मज्ञान के अधिकारी सावर्णि मन्वन्तर में ब्राह्मण और क्षत्रीय ही हो सकते हैं। वैश्य को सम्भवतः इसका अधिकार नहीं था। वैश्य को अहंताममता से छुटकारा या तो बौद्ध धर्म ने दिलवाया अथवा जैन-धर्म ने। जो भी हो यह एक स्वतन्त्र विचार विमर्श का विषय है।

इसी अर्ध्याय में महाशक्ति विष्णु माया को महाकालिका रूप में मधु कैटभमर्दिनी कहा गया है। मधु और कैटभ असुर होने के साथ साथ सहोदर भी थे। इन दोनों भाइयों का वर्णन देवी भागवत के दशम स्कन्द के ग्यारहवें अध्याय में मिलता है। महाभारत में भी मधु कैटभ का आख्यान कुछ परिवर्तन के साथ दिया हुआ है। यहाँ मधुकैटभ का वर्णन महाविष्णु के कर्ण मल के रूप से नहीं, अपितु उनके नाभिकमल में ब्रह्मा की उत्पत्ति के साथ-साथ कमलपत्र संलग्न सागर के दो जल बिन्दुओं से हुआ बताया जाता है। एक जलबिन्दु मधु के समान मधुर होने से तमोगुण का प्रतीक मधु और दूसरा रजोगुण का प्रतीक होने से कैटभ कहा गया। महाभारत का यह प्रसंग कुछ लोग क्षेपक मानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे शेषशायी विष्णु के कर्ण मल की कल्पना को उचित न मान कर क्षेपककार ने उसके स्थान पर जल बिन्दु की कल्पना कर ली। देवी भागवत के प्रथम स्कन्ध के 7-9 अध्यायों में मधुकैटभ के जन्मादि का विस्तृत वर्णन है।

(2) द्वितीय अध्याय में सर्ग चक्र के चले जाने पर देव एवं असुर सृष्टि होती है। पश्चात् देवी तथा आसुरी शक्तियों का भयंकर युद्ध छिड़ जाता है। आसुरी शक्तियों का प्रतीक महिषासुर है और दैवी शक्ति का प्रतिनिधित्व महालक्ष्मी रूप में साक्षात् विष्णुमाया करती है। जो कि देवी का महिषासुरमर्दिनी रूप है। महाकाली रूप में मधुकैटभ वध और महालक्ष्मी रूप में महिषासुरवध-वे दोनों आख्यान केवल आख्यान ही नहीं हैं अपितु

आध्यात्मिक रहस्य हैं जनमें देवी की जगत्सृष्टि और जगद्रक्षा का अभिप्राय अभिव्यक्त होता है। देवी भागवत के दशम स्कन्ध के बारहवें अध्याय में देवी के महालक्ष्मी रूप में महिषासुर विनाश का जो आख्यान है वह देवी माहात्म्य के इस अध्याय में वर्णित महिषासुर-वध के आख्यान पर ही आधारित है। वास्तव में देवी भागवत के महिषासुर तथा महिषासुरमर्दिनी के वर्णनों की अपेक्षा देवी माहात्म्य का वर्णन अधिक रोचक एवं प्रभावशाली है जिसमें एक सुन्दर काव्यधाराप्रवाह रूप में है। उदाहरणार्थ देवीभागवत महिषासुर की गरिमा महिषोऽ भूज्जगत्प्रभुः (10.12.1) कहने से कुछ अधिक प्रभावशाली नहीं है परन्तु देवीमाहात्म्य में इन्द्रोभून्महिषासुरः (2.2) जो सौन्दर्य वा सजीलापन है वह देवीभागवत के वर्णन में नहीं है।

देवी भागवत के पञ्चम स्कन्द में द्वितीय अध्याय (श्लोक 18-50) में महिषासुर के अद्भुतजनम का वर्णन है। यहां रंभ नामक दानव का एक सुन्दर महिषी के संसर्ग से महिषासुर की उत्पत्ति मानी गई है। रंभ के मारने वाले महिष का भी रक्त बीज के रूप में पुर्नजन्म आदि कई आख्यान हैं जिनका मार्कण्डेय पुराण अथवा देवी माहात्म्य में कोई स्थान नहीं है। देवीमाहात्म्य के द्वितीय अध्याय के चालीसवें श्लोक में महिषासुर के दानवी सेनाओं के सेनानी के रूप में चिक्षुर का नाम आता है। यही चिक्षुर देवीभागवत (5.3.3.) महिषासुर का महावीरशाली सेनानी कहा गया है (सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य महावीर्यो महोत्कटः) देवी माहात्म्य के इस अध्याय में परिगणित चामर, उदग्र, महाहनु, अतिलोमा, वाष्कल तथा विडाल आदि महिषासुर के अन्य सेनापतियों का भी देवी भागवत में उल्लेख है। इस अध्याय में देवी और महिषासुर एवं उसकी सेना का जो युद्ध वर्णित है उस पर महाभारत के द्रौण, कर्ण, शल्य आदि के युद्ध वर्णनों का प्रभाव दिखाई देता है। परन्तु देवी भागवत में यह प्रभाव लुप्त प्रायः सा है जिस कारण इसमें युद्ध वर्णन काफी फीका-फीका सा लगता है।

(3) तृतीय अध्याय में देवी से युद्ध करने से पूर्व महिषासुर का प्रधान सेनापति चिक्षुर देवी से युद्ध करता है और देवी द्वारा बिना विशेष प्रयास के ही मारा जाता है। तत्पश्चात् चामर उदग्र तथा वाष्कल आदि सेनानायकों के वध से क्रुद्ध मायावी महिषासुर का देवी के साथ संग्राम में उसके वध के वर्णन का प्रसंग अध्याय की समाप्ति में आता है। देवी माहात्म्य में देवी से चिक्षुर के युद्ध का वर्णन इस प्रकार है :-

स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽ सुरः।

यथा मेरु गिरेः शृङ्गं तोय वर्षेण तोयदः॥

इसी घटना का देवी भागवत के पञ्चम स्कन्द (15.13) के निम्नलिखित श्लोक में है।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दानवो बलदर्पितः।

मुमोच वाणं वृष्टिं तां धनवृष्टिर्मिवापराम्॥

दोनों वचनों पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि देवी माहात्म्य के वर्णन में जो प्रवाह है वह देवी भागवत में नहीं हो पाया है। परन्तु वामनपुराण में चिक्षुर देवी द्वारा पांच वाणों द्वारा मारा जाता है जिससे उसके दोनों पाँव, हाथ एवं सिर कट जाता है :-

तस्यामिपतितः पादौ करौ शीर्षं च पञ्चमिः।

शरैश्चिच्छेद संकुद्धा न्यपतन्निहतोऽसुरः॥

वा० पु०-21.30

इसी अध्याय में देवी के मधुपान का वर्णन इस प्रकार से प्राप्य है।

गर्ज गर्ज क्षणं मूढं मधु यावत् विपाय्यहम्।

मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः॥

देवी माहात्म्य में जो मधु शब्द का प्रयोग हुआ है जो कुछ विद्वानों की धारणा के अनुसार सुरा का ही दूसरा रूप है। इसी धारणा को लेकर तान्त्रिक विचार धारा के अनुयाई शक्ति पूजा में मांस और मध्य का प्रयोग करते भी कहे जाते हैं। परन्तु यह एक विडम्बना सी लगती है क्योंकि पुराणों में मद्य सेवन का सदैव निषेध मिलता है। इस सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से विचारणीय है वह यह कि “मधु” शब्द का प्रयोग दूध अथवा दूध की बनी वस्तुओं के लिए भी हुआ है। इस सम्बन्ध में मानियर विलियमस का वैदिक तथ्यों के आधार पर मधु के बारे में कहना इस प्रकार है :-

“Milk or anything produced from milk, (as butter, ghee etc).

Sanskrit English Dictionary, p. 779

इस में संदेह नहीं है कि मधु शब्द का प्रयोग मद्य अथवा सुरा के लिए भी हुआ है परन्तु यह भी उन्ता ही सत्य है कि इसी शब्द का प्रयोग दूध अथवा दूध की बनी वस्तुओं के लिए भी हुआ है। वैसे भी दूध अथवा दूध की बनी वस्तुओं का सनातन पूजा पद्धति में एक विशेष स्थान है। पञ्चामृत जैसा पवित्र पदार्थ भी दूध, घी, एवं दही के सम्मिश्रण से ही बनता है। कृष्णलीला के संदर्भ में भी दूध, दही, माखन एवं छाछ का अपना ही स्थान है। अतः पुराणकार का देवी माहात्म्य में मधु शब्द का प्रयोग सम्भवतः दूध अथवा दूध की बनी किसी वस्तु विशेष के लिए ही था। परन्तु वासुदेवशरण अग्रवाल मधु को एक पेय मात्र ही मानते हैं। उनके अनुसार :-

“The Goddess quaffs a divine drink. This has a reference to Madhu or Soma in the region of parameshtthi which the world of other (जगन्माता) sips as her invigorating drink. In the Vedas, the region of parameshtthi or Viraj, the universal mother is conceived of as an ocean of Soma or मधु”.

इसी संदर्भ में देवी भागवत में जो उल्लेख है उसका संकेत पूर्णरूप से मदिरा की ओर है (पञ्चम स्कन्ध, अध्याय-15):-

इत्युक्त्वा चषकं चैव गृहीत्वा सुरया युतम्।

पपौः पुनः पुनः क्रोधाद्धनुकामा महासुरम्॥

दुद्राव दानवं देवी हर्षयन देवतागणान्॥

उपरोक्त श्लोकों में पहली बात जो ध्यान देने योग्य है वह है चषक और सुरा शब्दों का प्रयोग। चषक सुरा पात्र माना जाता है और इस शब्द का प्रयोग कालिदास के रघुवंश, (7.46), हर्षचरित (Ch.7) आदि अनेक ग्रंथों में सुरा पात्र के रूप में हुआ है। परन्तु यह सुरा साधारण रूप से प्रयोग में आने वाली मद्य न हो कर दिव्यपेय जैसे मधु एवं शहद भी हो सकती है। साथ ही इस में द्राक्षासव शब्द का भी प्रयोग हुआ है। जिसका सामान्य रूप से अर्थ अंगूर की बनी मद्य ही निकलती है। अतः देवी भागवत में तो मद्यपान का स्पष्ट रूप में साक्ष्य है। इस संदर्भ में विचारणीय बात यह है कि देवीभागवत के श्लोकों में देवीमाहात्म्य जैसा काव्यात्मक सौन्दर्य एवं भक्तिभाव का नितांत अभाव है। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि देवी भागवत के श्लोक क्षेपक के रूप में कालान्तर में वाममार्गियों अथवा तान्त्रिक विचार वालों ने देवी पूजा में मधु एवं मांस के प्रयोग को उचित ठहराने के लिए जोड़ दिए हों। देवी माहात्म्य में तो "मधु" शब्द का प्रयोग दूध के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है परन्तु यदि कालिका पुराण में कथित विधान को दृष्टिगोचर किया जाय तो मधु शब्द का अर्थ सुरा होना सम्भव है। इन संदर्भ में कालिका पुराण का यह श्लोक विचारणीय है जिसमें देवी की पूजा पद्धति में मधु मांस का भी प्रावधान है।

अंगरागेषु सिन्दूरं देव्या प्रीतिकरं परम्।

सुगन्धि शालिनं चान्नं मधुमांस समन्वितम्॥

कालिका पुराण :- 54.31

देवी की पूजा पद्धति का प्रावधान कई पुराणों में प्राप्य है परन्तु मधु, मांस का प्रयोग अन्य स्रोतों में प्राप्य नहीं। कालिका पुराण में तो देवी को प्रसन्न करने के लिए पशुबलि का भी प्रावधान है। यहां तक कि उन पशु तथा पक्षियों का व्योरा भी दिया है जिन की बलि देने से देवी प्रसन्न अथवा संतुष्ट होती है।

चण्डिका बलिदानेन तोषयेत साधकः सदा॥

पक्षिणः कच्छपा ग्राहाश्छागत्वाश्च वराहकाः।

महिषो गोधिका शोषा तथा नव विधा मृगाः॥

चामरः कृष्णसारसश्च शशः पंचाननस्थः॥

मत्सया स्वगात्ररुधिरैश्चाष्टधा बलयो महा॥

कालिका पुराण :- 55.2-4

वास्तव में देवी पूजा के विधान पर्याप्त विस्तृत रूप से कालिका पुराण के 53 वें से 56 वें अध्यायों में दिये हैं। परन्तु यह सब विधान तान्त्रिक पद्धति के ही प्रतीत होते हैं और इन की मान्यता तथा प्रयोग साधारण जनता से क्रमशः लुप्त प्राय हो गया है। फिर भी कई स्थानों पर देवी पूजा में पशु-पक्षियों की बलि अभी भी प्रचलित है और ऐसे स्थानों की गिनती बहुत कम है। इन सब में से मुख्य स्थान कलकत्ता का काली मन्दिर है जहां आज भी बलि प्रथा प्रचलित है।

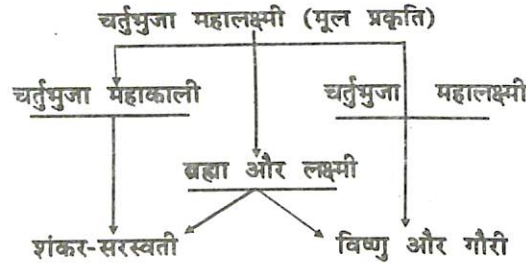
अब प्रश्न यह उठता है कि पशुबलि का प्रचलन देवी पूजा में कब और कैसे प्रवेश हुआ। इस संदर्भ में हमें सर्व प्रथम मार्कण्डेय पुराण का आश्रय लेना पड़ेगा जिसमें देवी माहात्म्य में देवी की आराधना की गई है। देवी माहात्म्य तो केवल पाठ मात्र है और उसमें किसी बलि का प्रावधान नहीं है। अतः देवी माहात्म्य में देवी की आराधना अथवा पूजा पद्धति में मांस मदिरा अथवा बलि का प्रावधान नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि देवी की पूजापद्धति का विकास मार्कण्डेय पुराण के पश्चात् ही हुआ। अन्य पुराणों जैसे देवीभागवत, देवी, वराह, वामन आदि में भी इस प्रकार के साक्ष्य का अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की प्रथाएँ देवी पूजा पद्धति में बाद में जोड़ी गईं। कुछ विद्वानों का विचार है कि भारत में तन्त्र विद्या का फैलाव बौद्ध धर्म की देन है क्योंकि महायान मत के अन्तर्गत बौद्धधर्म में अनेकों उग्र देवी देवताओं की कल्पना की गई जो मध्य युग में अपनी पराकाष्ठा पर जा पहुँची। इन्हीं तान्त्रिक प्रवृत्तियों से हिन्दू धर्म भी प्रभावित हुआ और तन्त्रों के विकास में वृद्धि हुई। यही प्रवृत्ति शक्ति तथा शिव पूजा में तान्त्रिक प्रथाओं के समावेश का कारण बनी।

इस का अर्थ यह कदापि नहीं है कि तान्त्रिक प्रवृत्तियों से हिन्दू धर्म के सभी मत समान रूप से प्रभावित हुए। ऐसी प्रवृत्तियों से अनेकों मत अप्रभावित रहे और कई एक मतों पर इनका प्रभाव आंशिक अथवा नाम मात्र ही था। इस सम्बन्ध में वैष्णव धर्म का उदाहरण दिया जा सकता है जिस पर सात्विक प्रवृत्ति का पूर्णरूप से आधिपत्य रहा है और इन की पूजा पद्धति में राक्षसी एवं तामसी प्रवृत्तियाँ देखने को नहीं मिलती। वैष्णव धर्म का जन साधारण पर उतना ही गहरा प्रभाव था जितना कि शाक्त धर्म में मांस मदिरा एवं बलि का। यह प्रवृत्तियाँ भारत में किसी विशेष खण्ड अथवा प्रदेश में सीमित नहीं थी अपितु समस्त भारत में ही प्रचलित थी। इसमें संदेह नहीं कि पूर्वीभारत में तान्त्रिक तथा शाक्त प्रवृत्तियाँ प्रबल रही हैं। परन्तु, यह भी उतना ही सत्य है कि वैष्णव धर्म भी पूर्वी भारत में अत्यन्त प्रबल रहा है और इसके प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु माने जाते हैं। यही नहीं पहाड़पुर (बंगाल) के देव मन्दिर इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि वैष्णव प्रवृत्तियाँ भी उस प्रदेश में पर्याप्त प्रबल रही हैं जिस का जन साधारण पर भी उतना ही प्रभाव था जितना कि शाक्त धर्म का।

एक तथ्य इस सम्बन्ध में और भी विचारणीय है कि मार्कण्डेय पुराण के अनुसार देवी का प्रादुर्भाव मुख्यतः ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव के तेज से हुआ था। देवी माहात्म्य भी महाकाली, महालक्ष्मी एवं महा सरस्वती को समर्पित है। अर्थात् देवी के तीन रूपों की कल्पना की गई है जिसमें शिव की शक्ति महाकाली, ब्रह्मा की महासरस्वती एवं विष्णु की महालक्ष्मी है जिसे वैष्णवी नाम से भी पुकारा गया है। अतः शक्ति पूजा में काली, वैष्णवी

अथवा लक्ष्मी तथा सरस्वती ही प्रधान रही हैं। काली को चण्डी, चामुण्डा, कंकाली, भद्रकाली आदि नाम भी दिए गए हैं। अधिकतर बलि अथवा मांस मध्य आदि इन्हीं देवियों की पूजा पद्धति में प्रयुक्त हुआ जबकि वैष्णवी की पूजा पद्धति इस प्रवृत्ति से सर्वथा अछूती थी। सरस्वती का अपना अलग ही प्रभाव था और वह तो ज्ञान दात्री के रूप में ही पूजित हुई। उसकी पूजा पद्धति में भी तामसिक प्रवृत्तियों का समावेश नहीं हो पाया।

कालान्तर में इन देवियों की पूजा पद्धतियों में कई विधि-विधान जुड़ते गए तथा कई ग्रन्थों में इनके प्रादुर्भाव के बारे में अनेकों धारणाएँ प्रचलित हो गईं। इसी एक धारणा के अनुसार महालक्ष्मी ही देवी की समस्त विकृतियों (अवतारों) की प्रधान प्रकृति है। इसके अनुसार तीनों गुणों की साम्यावस्था रूपा प्रकृति भी इनसे भिन्न नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य अथवा व्यक्त अव्यक्त-सब इन्हीं के स्वरूप हैं। वे सर्वत्र व्यापक हैं। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम एवं रूप सब वही हैं। वे सच्चिदानन्दमयी परमेश्वरी सूक्ष्मरूप से सर्वत्र व्याप्त होती हुई भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए परम दिव्य चिन्मय सगुण रूप से सदा विराजमान रहती हैं। उनके उस श्री विग्रह की कान्ति तपाए हुए सुवर्ण की भांति हैं। वह अपने चार हाथों में मातुलिङ्ग (बिजौरा), गदा खेटक (ढाल) और पानपात्र धारण करती हैं तथा मस्तक पर नाग, लिंग और योनि धारण किए रहती हैं। भुवनेश्वरी संहिता के अनुसार मातुलिङ्ग कर्म राशिका, गदा क्रिया शक्ति का, खेट ज्ञान शक्ति का और पान पात्र तुरीय शक्ति (अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूप में स्थिति) का सूचक है। इसी प्रकार नाग से कालका, योनि से प्रकृति का तथा लिंग से पुरुष का ग्रहण होता है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति, पुरुष और काल दोनों का अधिष्ठान परमेश्वरी महालक्ष्मी ही है। उक्त चतुर्भुज महालक्ष्मी के किस हाथ में कौन से आयुध हैं, इसमें मतभेद है। रेणुका माहात्म्य में बताया गया है कि दाहिनी ओर के नीचे के हाथ में पानपात्र और ऊपर के हाथ में गदा है। बायीं ओर के ऊपर के हाथ में खेट तथा नीचे के हाथ में श्रीफल है। परन्तु वैकृतिक रहस्य में 'दक्षिणः करक्रमात्' कह कर जो क्रम दिखाया गया है, उसके अनुसार दाहिनी ओर के निचले हाथ में मातुलिङ्ग, ऊपर वाले हाथ में गदा, बायीं ओर के ऊपर वाले हाथ में खेट तथा नीचे वाले हाथ में पान पात्र है। चतुर्भुज महालक्ष्मी ने क्रमशः तमोगुण और सतोगुण उपाधि के द्वारा अपने दो रूप और प्रकट किए जिन की क्रमशः महाकाली और महासरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुई। ये दोनों देवीमाहात्म्य के प्रथम चरित्र और उत्तर चरित्र में वर्णित महाकाली एवं महासरस्वती से भिन्न हैं क्योंकि यह दोनों चतुर्भुज हैं और उक्त चरित्र में वर्णित महाकाली के दस तथा महासरस्वती की आठ भुजाएँ हैं। चतुर्भुजा महाकाली के हाथ में खड्ग, पानपात्र, मस्तक और ढाल है इनका क्रम भी पूर्ववत् ही है। उनका भी पहले ही जैसा क्रम है। फिर इन तीनों देवियों ने स्त्री-पुरुष का एक एक जोड़े की सृष्टि की। महाकाली से शंकर और सरस्वती महालक्ष्मी से ब्रह्मा और लक्ष्मी तथा महा सरस्वती से विष्णु और गौरी का प्रादुर्भाव हुआ। इन में लक्ष्मी विष्णु को गौरी शंकर को तथा सरस्वती ब्रह्मा को प्राप्त हुई। अपनी शक्तियों सहित ब्रह्मा ने सृष्टि, विष्णु ने पालन तथा शिव ने रुद्र रूप से संहार कार्य सँभाला। इन अवतारों का क्रम इस प्रकार है।



मार्कण्डेयपुराणकार ने महिषासुर को प्रबल तमोगुणमय मानवमन के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। परन्तु देवी भागवत में वह बात नहीं है। देवी भागवत में महिषासुर को देवी के प्रेम में उन्मत्त व्यक्ति के रूप में निरूपित किया है। यह परिस्थिति देवी पुराण के पञ्चम स्कन्ध के नवम अध्याय में स्पष्ट हो जाती है जिस के कुछ अंश नीचे दिए हैं :-

सामादि भिरुपायैस्त्वं समानय शुभाननम्।

नायाति यदि सा नारी त्रिमिः सामादिभिस्त्विह॥

अहत्वा तां वराहोहां त्वमानयमामान्तिकम्।

करोमि पट्टमहिषीं तां मरालध्रुवं मुदा।

प्रीति युक्ता समायाति यदा सा मृगलोचना।

रस भङ्गे यथा न स्यात्तथा कुरु ममेप्सितम्॥

श्रवणान्मोहितो ऽ स्म्यद्य तस्या रूपस्या सम्पदा।

परन्तु वामन पुराण के अनुसार विन्ध्य पर्वत पर निवास करती हुई कात्यायनी देवी को सर्वप्रथम महिषासुर के चण्ड और मुण्ड नामक दो सेनापतियों ने देखा। उस देवी के स्वरूप का वर्णन जो उन दोनों ने किया वह महिषासुर को कामासक्त करने में पर्याप्त था। उन्हीं के अनुसार उस देवी ने केश पाश के द्वारा मेघों को, मुख के द्वारा शशांक को, तीन नेत्रों द्वारा गार्हपत्य, दक्षिण एवं आवहनीय नामक तीनों अग्नियों को और कंठ के द्वारा शंख को जीत लिया है। वह कृशांगी अथवा पतले शरीर वाली दर्शाई गई है जिसके उन्नत वक्षस्थलों की तुलना कामदेव द्वारा कुचरूपी दो दुर्गों की रचना के समान है। इसके अतिरिक्त देवी के रूप लावण्य का वर्णन तो अद्वितीय है। यहां तक कहा गया है विधाता ब्रह्मा ने उस देवी की रचना करने के उपरान्त श्रान्त हो अपना करतल न्यस्त कर दिया था :-

सृष्ट्या विधाता हि निरूपणाय

श्रान्तस्तथा हस्त तले ददौ हि॥

इसमें संदेह नहीं कि देवी के रूप लावण्य की व्याख्या पुराण कार ने महिषासुर के दो सेनापतियों द्वारा करवाई है जिन का भाव भक्तिपूर्ण न होकर विषय वासना से प्रेरित है। इसीलिए महिषासुर में उसे पाने की प्रबल इच्छा जग उठी। तब महिषासुर ने दन्दुभि को देवी के पास भेजा।

वराह पुराण में देवी के स्वरूप को देख कर नारद जी चकित हो गए। मुहूर्त पर्यन्त देवेशी को देखकर नारद मुनि आश्चर्य से कहने लगे (देवी का) कैसा (अद्भुत) रूप है। उनकी कैसी सुन्दर शोभा है। उनका कैसा धैर्य है और उनकी कैसी अवस्था है।

तं दृष्ट्वा सहसा देवीं ब्रह्मपुत्रं तपोधनम्।

अहो रूपमहो कान्तिरहो धैर्ययहो वयः॥

वराहपुराण-91.23

उक्त वर्णन में देवी के सौन्दर्य की छटा का दिव्यदर्शन तो मिलता ही है परन्तु विषय लोलुपता का सर्वथा अभाव है। यदि चण्ड और मुण्ड के द्वारा किए गए देवी के रूप लावण्य की छटा की नारद की कल्पना से तुलना की जाये तो अन्तर स्पष्ट दिखाई देगा। देवी का स्वरूप तो वही है परन्तु देव ऋषि नारद उसे देख कर अतीव आश्चर्य चकित होते हैं जबकि महिषासुर उसके रूप में वासना एवं आसक्ति की भावना रखता है।

यही नहीं देव ऋषि नारद जब देवी से साक्षात्कार के पश्चात् महिषासुर के पास पहुँचे तो देवी के बारे में उन्होंने ने दैत्यराज को कहा कि कल्याण स्वरूपा वह जैसी है उस प्रकार की सती स्त्री मैं ने इस ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए कहीं नहीं देखी। सभी देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध चारण एवं दैत्यनायक उसकी उपासना करते हैं। देवों और गन्धर्वों को बिना जीते उसे कोई जीत नहीं सकता (वराह पुराण, 91.28-35)

तस्याश्च देव गन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः।

उपासांचक्रिरे सर्वे येऽप्यन्ये दैत्यनायकाः॥

वराहपुराणकार ने देवी की महिमा का वर्णन तो अवश्य ही किया है परन्तु इसमें जगन्माता की महत्ता ही प्रकट होती है तभी तो संसार के सभी जीव उसकी नितांत उपासना ही करते हैं।

मार्कण्डेय पुराण में देवी के साथ युद्ध के समय महिषासुर जब महिष रूप में देवी पर आक्रमण करता है तो देवी महिष का सिर काट देती है। इस कटे हुए सिर वाले धड़ से महिषासुर मनुष्य रूप में कटी हुई ग्रीवा से बाहर निकलता है। उस दृश्य का पुराण कार ने बहुत ही सजीव रूप से चित्रण किया है। कटे हुए महिष शरीर से जब दानव बाहर निकलता है तो देवी केशों से उसके सिर को पकड़ कर उसे काट देती है। ऐसी स्थिति में वह "अर्धनिष्क्रान्त" बताया गया है। दूसरे शब्दों में देवी ने महिषासुर की हत्या उस समय की जब उसकी मानव देह मृतक महिष के शरीर से आधी ही निकल पाई थी।

आसुरी शक्तियाँ-एवं असुर, दैत्य, दानव तथा राक्षस

(1) आसुरी शक्तियाँ

देवी तथा आसुरी शक्तियाँ ब्रह्माण्ड में अनादि काल से संघर्ष परायण रही हैं। कभी देवी शक्तियाँ प्रबल हो उठती हैं तो कभी आसुरी शक्तियाँ विश्व को प्रभावित करती हैं। भारतीय धर्म ग्रन्थों में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं जिन में देवी शक्तियों को परास्त कर तीनों लोकों में अपना आधिपत्य स्थापित कर लेती हैं। पश्चात् अपने कुप्रभाव से समस्त विश्व के प्राणियों को आतंकित कर देती हैं। उनके इस आतंक से विश्व भर के प्राणी अपनी सामान्य जीवन की शुभ कार्यों से विमुख हो कर अधर्म एवं क्रूर कार्यों में लिप्त हो जाते हैं। यही नहीं यह शक्तियाँ देवताओं को भी उतना ही प्रताड़ित करती हैं जितना मानवों को। इसी कारण से देवराज इन्द्र भी पदच्युत हो कर वनों में अन्य देवताओं समेत भटकते फिरते हैं। इन आसुरी शक्तियों के मार्ग में जो भी आता है वह उसे नष्ट कर देती हैं। देवी माहात्म्य में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि महिषासुर इन्द्र का सिंहासन छीन कर स्वयं इन्द्र बन बैठा। 'इन्द्रोमूर् महिसासुरः'।

इन देवी शक्तियों का प्रादुर्भाव जानने के लिए सबसे पहले यह जान लेना होगा कि भारतीय धार्मिक परम्पराओं में तपस्या का असीम महत्व है। इसी तप साधना द्वारा ही अनेक सिद्धियाँ मानवों एवं असुरों को प्राप्त होती हैं। साधना एवं तपस्या का स्वरूप एक रहते हुए भी देव एवं दानव इसे अलग-अलग ढंग से क्रियान्वित करते हैं। ध्येय दोनों का एक रहता है - अप्राप्य सिद्धि की प्राप्ति। इस साधना में भी असुर अपने दृढ़प्रतिज्ञ होने के साथ अशिथिलता और कड़ाई का प्रदर्शन करते हैं। ऐसे उदाहरण भी पुराणों में आए हैं जिन में असुरों ने तपस्या करते हुए अपने अंगों की बली प्रज्वलित अग्नि में दी। जिससे भगवान विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव प्रसन्न हुए। एक विषय जो विचारणीय है वह यह है कि यह राक्षस वर्ग केवल इन्हीं त्रिदेवों की उपासना करते थे किसी अन्य की नहीं कहीं-कहीं असुरों की तपस्या के समय इन्द्र के प्रकट होने का भी वर्णन मिलता है परन्तु तपस्यारत असुर इससे संतुष्ट नहीं होते और जब तक ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रकट नहीं हुए और उन्हें अभीष्ट वरदान नहीं दिया वह अडिग रहे। असुरों द्वारा देवी शक्ति की पूजा एवं उसकी तपस्या का उल्लेख धार्मिक ग्रन्थों में बहुत कम मिलता है। सम्भवतः यह असुर अथवा दानव देवी शक्ति की उपासना में विश्वास नहीं करते थे ऐसा प्रतीत होता है।

एक अन्य विशेषता असुरों की तपस्या में यह थी कि वह सदैव भौतिक साधनों समेत अपने अमरत्व की लालसा में अधिक लालायित रहते थे जो कि एक असम्भव बात थी। उनका आराध्य देवता प्रकट होने पर उन को इस बात से अवगत करवाते थे की इस नश्वर संसार में जिस प्राणि ने जन्म लिया है उस की मृत्यु अवश्यम्भावी है (जातस्य हि द्रुवं मृत्युः)। तब तपस्या रत असुर किसी अनोखे प्राणी से अपनी मृत्यु का वरदान माँग लेता। जब-जब कोई असुर अथवा राक्षस यह वरदान माँग लेता कि उसकी मृत्यु नारी के अतिरिक्त किसी जीव अथवा प्राणी से ना हो तो आदि शक्ति को प्रकट होकर ऐसे राक्षसों का संहार करना पड़ता। महिषासुर, शुम्भ एवं निशुम्भ का नाम इसी संदर्भ में लिया जा सकता है। वास्तव में शुम्भ एवं निशुम्भ ब्रह्मा के वरदान द्वारा ही अजेय हुए। इसी प्रकार दुर्गम नाम का राक्षस ब्रह्मा द्वारा दिए गए वरदान का दुरुपयोग कर के ही चारों बेटों को पाताल में छीन कर ले गया।

(2) असुर :

असुर वंश परम्परा में यदि देखा जाय तो वे देवताओं से भिन्न नहीं थे। पुराणिक साहित्य में असुरों की उत्पत्ति कश्यप ऋषि एवं दिति द्वारा हुई बताई गई है जबकि देवमाता अदिति कश्यप की अन्य पत्नी थी।

असुर शब्द का प्रयोग तो सर्व प्रथम ऋग्वेद में हुआ है जिस में इन्द्र एवं विष्णु द्वारा उन की कई नगरों को नाश करने का वर्णन है। अवश्य ही असुर संहार के योग्य तभी होते थे जब वह देवताओं द्वारा अनिष्ट कारी समझे जाते थे। ऋग्वेद के कथन से इसकी पुष्टि इस प्रकार होती है :-

**इन्द्राविष्णू दंहिताः शम्बरस्य नवपुरो नवति च शनिष्ठम्
शतं वचिनः सहस्रं च साकं ह्यो अप्रत्यसुरस्य वीरान्।**

ऋग्वेद-7.99.5

(हे इन्द्र और विष्णु तुमने असुरों की अनेक नगरियों का नाश किया तथा असुरों के असंख्य वीरों की तुम ने अप्रतिभ रूप से नष्ट किया।)

एक अन्य वैदिक कथन में असुरों को ताड़नीय बताते हुए उन्हें विद्वानों के शत्रु की समता दी है जैसे :-

बृहस्पते तपुषाश्नव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान्।

यथा जघन्य घृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्काकमिन्द्र।।

ऋग्वेद-2.3.4

(हे बृहस्पते बड़ों के रक्षक इन्द्र दुष्टों को विदीर्ण करने वाले राजपुरुष जैसे सूर्य मेघ के अग्र भागों को (असुरस्य) विद्वानों के शत्रु के वीरों को अच्छे भोजन करने वाले वीर के तुल्य अपने ताप से बेधता है वैसे आप दुष्टों को ताड़ना दो। प्रगल्भता के साथ पहले ही हमारे शत्रु को और दोषों को नष्ट कर।)

वास्तव में यदि देखा जाए तो ऋग्वेद के प्राचीनतम भागों में "असुर" शब्द का प्रयोग परमात्म शक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है जो (Zoroastrian) पारसी धर्म के अहूर जैसा है। यह शब्द देवताओं जैसे इन्द्र, अग्नि आदि के लिए भी प्रारम्भिक वैदिक काल में प्रयुक्त हुआ है। कालान्तर में इस

शब्द का अर्थ अनिष्टकारी शक्तियों के लिए प्रयोग होने लगा जिस का प्रमाण ऋग्वेद के अंतिम मण्डलों तथा अथर्ववेद में मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस शब्द का अर्थ अनिष्टकारी शक्तियों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार असुर प्रजापति के स्वास के उत्पन्न हुआ है। इसी ग्रन्थ में एक अन्य स्थान पर असुरों की उत्पत्ति प्रजापति के उदर से हुई बतलाई गई है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार असुर प्रजापति निम्न स्वास से उत्पन्न हुए। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार प्रजापति ने जल से अप्सराओं, देवताओं मानवों एवं गंधर्वों की रचना की। उसी जलकणों से असुर, राक्षस एवं पिशाच बने। मनु के अनुसार असुरों की उत्पत्ति पिशाचों से हुई। विष्णु पुराण के अनुसार असुरों की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा हुई।

अथर्व वेद में भी असुरों का वर्णन ऐसे वर्ग के रूप में ही आया है जो प्रताड़ना के अधिकारी हैं। उपरोक्त संदर्भ में असुरों के नाश के लिए इन्द्र, विष्णु एवं वृहस्पति का आह्वान किया गया है। ऋग्वेद की ऋचाओं के अनुरूप ही अथर्ववेद में भी अनिष्टकारी शक्ति के रूप में दर्शाया गया है कि और वृहस्पति द्वारा उनके विनाश का भी वर्णन है :-

**यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमद रसेन सह वर्चसा॥**

अथर्व वेद-X,6-22

(जिस असुर विनाश को देवों के लिए बृहस्पति ने बाँधा था वह मणि मेरे पास रस और तेज के साथ आ गया है।)

अथर्व वेद की एक अन्य ऋचा में भी इसी प्रकार का ही भाव प्रकट किया गया है, जैसे :-

**यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम्।
स मायं मणिरागमत् सर्वाभि भूतिभिः सह॥**

अथर्व वेद - X, 6-28.

वैदिक वाङ्मय के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में भी देव तथा असुर संघर्ष विद्यमान है। शतपथ ब्राह्मण में भी देवताओं और असुरों को प्रजापति की सन्तान बताया गया है। उन दोनों में परस्पर संघर्ष का पता इस कथन से चलता है :-

**देवाश्च वा ऽ असुराश्च। उभये प्रजापत्या पस्पथिरे ते ह स्म यदेवा असुरा न्ययन्ति ततो ह स्मेवेनान्युनरूपो तिष्ठन्ति॥ ते ह देवा ऊचुः।
जायमो व ऽ असुरांरततस्त्वेव नः पुनरूपो तिष्ठन्ति कथं न्वेनानपजय्यं जयेमेति।**

(देव और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान थे जो अपनी बड़ाई के लिए झगड़ पड़े। देवों ने असुरों को हरा दिया। परन्तु असुर फिर भी देवों को कष्ट देने लगे। देवों ने कहा, "हमने असुरों को हरा दिया है। फिर भी असुर हम को सता रहे। क्या काम करें कि अब हम असुरों को हरा दें और फिर लड़ना न पड़े।)

इसी प्रकार अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में भी असुरों का उल्लेख किसी न किसी रूप में अवश्य मिलता है।)

उपनिषद् साहित्य में भी असुरों का वर्णन कई बार आया है, इनमें असुर देवताओं के साथ संघर्ष करते ही दर्शाए गए हैं। उदाहरणार्थ छान्दोग्य उपनिषद् में देवासुर संघर्ष तो दर्शाया ही है। साथ में यह भी प्रमाणित किया है कि वह दोनों प्रजापति की सन्तान थे :-

**देवासुरा ह वै यत्र संयेतिरे। उभये प्रजापत्यास्तद्ध देवा
उद्गीथमाजद्रुशेनैनानभि भविष्याम इति।**

छान्दोग्य उपनिषद्-1.2.1

(देवता एवं असुर दोनों प्रजापति की सन्तान थे। देवताओं ने उद्गीथ-ओमकार को यह सोच कर ग्रहण किया कि वह असुरों का नाश कर देंगे।)

इसी उपनिषद् में आगे वर्णन है कि देवता लोगों ने ओमकार पर तपस्या की परन्तु असुरों ने उस तपस्या को भंग कर दिया। इसी प्रकार की कथा बृहदारण्यक उपनिषद् (1.1.3.1) में भी आई है।

रामायण बाल काण्ड (45.30-38) में वाल्मीकि ने असुरों की उत्पत्ति को समुद्र मन्थन से जोड़ दिया है। इस आख्यान के अनुसार समुद्र मन्थन के समय क्षीरसागर से एक आयुर्वेदमय धर्मात्मा पुरुष धन्वन्तरि के अर्विभाव के पश्चात् सुन्दर कान्ति वाली बहुत सी अप्सराएँ प्रकट हुईं। मन्थन करते ही अप् (जल) में वह कन्याएँ उत्पन्न हुई थीं इसी कारण वह अप्सरा कहलाई।

**अप्सु निर्मथनादेव रसाद् वर स्त्रियः।
उत्पेतुर्मनुज श्रेष्ठ तस्मादप्सरसो ऽ भवन्॥**

रामायण, बालकाण्ड, 45-33

उन अप्सराओं को समस्त देवता और दानवों में से कोई भी अपनी पत्नी रूप में ग्रहण न कर सके इसी कारण वह सामान्या मानी गईं। तदनन्तर वरुण की कन्या वारुणी जो सुरा की अभिभानिनी देवी थी प्रकट हुई और वह अपने को स्वीकार करने वाले पुरुष की खोज करने लगी। दिति के पुत्र दैत्यों ने उस वरुण कन्या सुरा को ग्रहण न किया परन्तु अदिति के पुत्रों ने इस अनिच्छ सुन्दरी को ग्रहण कर लिया। सुरा से रहित होने के कारण ही दैत्य असुर कहलाए तथा वारुणी को ग्रहण करने से देवता लोग प्रसन्न हो गए और सुर कहलाए।

**दिते पुत्राः न तां राम जगृह्वरुणात्मजाम्।
अदितेस्तु सुता वीर जगृहुस्तामनिन्दिताम्॥**

**असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुता।
हृष्टा प्रमुदिताश्चासन् बारुणी ग्रहणात् सुरा**

रामायण, वालकाण्ड, 45-37-38

अतः वाल्मीकि रामायण में सुरों एवं असुर के उद्भव का वर्णन अत्यन्त रोचक ढंग से दर्शाया गया है। इसमें असुरों की क्रूरता एवं उदंडता का सर्वथा अभाव है। हां तो असुरों को उत्पत्ति के समय देवताओं से भी बढ़ कर दर्शाया गया है क्योंकि उन्होंने बारुणी अथवा सुरा ग्रहण करने वाली स्त्री को अस्वीकार कर दिया। वही सुरा जिसके सेवन से मनुष्य अपने पर नियन्त्रण नहीं रख पाता।

एक विषय जो यहां पर विशेष रूप से विचारनीय है कि रामायण में राम का युद्ध राक्षसों से ही मूल रूप से दर्शाया गया है और असुर शब्द का प्रयोग उतना प्रबल नहीं है जितना “राक्षस” का। राम ने जितने भी दुष्टों का संहार किया वह रावण अथवा उसके वंशज थे। कहीं-कहीं दानव शब्द का प्रयोग भी हुआ है तथा कहीं-कहीं दैत्य शब्द को भी प्रयोग में लाया गया है। परन्तु मुख्य रूप से रामायण में राक्षसों का ही प्रभाव नष्ट करने का उद्देश्य राम के समक्ष था चाहे वह खर, दूषण, ताड़का, सुरसा अथवा रावण हो अथवा रावण सेना।

महाभारत में भी असुरों को देवताओं का शत्रु ही दर्शाया गया है। इन असुरों की अत्यन्त रोचक भूमिका तो समुद्र मंथन के समय उजागर होती है जिसमें उन्होंने देवताओं के साथ मिलकर मेरु पर्वत की मथनी बना कर, वासुकि नाग की डोरी से क्षीर सागर को मथ डाला। इसके अतिरिक्त असुरों, दैत्यों, दानवों एवं राक्षसों का कई बार महाभारत में उल्लेख मिलता है।

पौराणिक साहित्य में असुरों का विशेष स्थान है और पुराणों के कई आख्यान वास्तव में उन के बिना नीरस हैं। यदि वह अपना उपद्रवी चरित्र न दर्शाएँ तो वास्तव में देवताओं का कोई महत्व ही नहीं रह जाता है। यही नहीं उन की गतिविधियों से मृत्युलोक में ही नहीं स्वर्ग लोक में भी हल चल मच जाती है और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि देवताओं को किसी न किसी रूप में प्रकट हो कर उन पर अकुंश लगाना ही पड़ता है। वह पौराणिक साहित्य के अनुसार अपने वचन के पक्के हैं। अपनी कठोर तपस्या से वह ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को प्रसन्न करते हैं जो उन्हें समय-समय पर वरदान देते हैं। देवी भागवत के अनुसार एक बार नारायण ने कुछ अप्सराओं को वरदान दिया कि वह द्वापर युग में उन की पत्नियां बनेंगी। दुर्गम, शुम्भ ब्रह्मा के वरदान से ही अजेय हुए। बर्दिक एवं उत्तरवैदिक साहित्य की भान्ति पुराणों में भी असुरों को देवताओं के बन्धुओं के रूप में ही प्रस्तुत किया है जिन में स्वर्ग पर एकाधिकार की होड़ लगी रहती थी। कभी देवतागण सफल होते थे तो कभी असुर। इन्द्र तो देवताओं का राजा था परन्तु कभी कभी इन्द्र पद पर असुर भी आसीन हो जाते थे। मार्कण्डेय पुराण में इसका सपष्ट संकेत मिलता है। (इन्द्रोभून्महिषासुरः)

देवी माहात्म्य में दो असुरों-मधु एवं कैटभ का उल्लेख मिलता है जिन का वध विष्णु ने किया था। हरिवंश पुराण (52.21-25) में मधु एवं कैटभ असुरों की उत्पत्ति इस प्रकार कही गई है। प्राचीन काल में कमल योनि ब्रह्मा ने मृत्तिका के दो महान असुरों की श्रृष्टि की थी। वे दोनों असुर जब महाविष्णु क्षीरसागर में शयन कर रहे थे तो निद्राभग्न हो गए। तब विष्णु के कर्ण मल से उत्पन्न हो कर वे असुर लकड़ी के खम्बे के समान उचेत पड़े रहे। बाद में ब्रह्मा के आदेश से पवनदेव उनके शरीर में प्रविष्ट हुए जिसमें उन में जीवन का संचार हुआ। जीवन प्राप्त कर वह दोनों बढ़ने लगे और इतने बढ़े कि आकाशमण्डल को उन्होंने घेर लिया। तदुपरान्त ब्रह्मा ने उन दोनों का शरीर स्पर्श कर के देखा तो एक का शरीर मृदु तथा दूसरे का कठोर पाया। तब उन्होंने ने मृदु शरीर वाले को मधु तथा कठिन शरीर वाले का नाम कैटभ रखा। नामकरण के पश्चात् दोनों बड़े अभिमान के साथ युद्ध के लिए विचरने लगे।

इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि असुर ही ऋषियों की तपस्या भंग नहीं करते थे अपितु देवता लोग भी असुरों की तपस्या में विघ्न डालते थे। पुराणों के अनुसार असुर बन्धु रम्भ एवं करम्भ ने घोर तपस्या की। उनमें से करम्भ की हत्या इन्द्र ने मकर बनकर कर दी। इसके पश्चात् रम्भ ने घोर तपस्या की और अपने प्राणों की आहुति देने के तत्पर हुआ। तब अग्नि देव ने प्रकट होकर उसे ऐसा करने से रोका और उसे वरदान दिया कि उसे एक बहुत ही तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति होगी। तारक एवं दुर्गम नामक असुरों से भी यही हुआ। दुर्गम की वेद विद्या के प्रभाव का ज्ञान था अतः उसने सभी वेदों को अपने साथ पाताल ले जाने के लिए ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया। कालान्तर में वह शताक्षी देवी द्वारा परास्त किया गया।

मन्त्र शक्ति का असुरों को पर्याप्त ज्ञान था और उसका वह समय-समय पर उपयोग भी करते थे। उनकी एवं देवताओं की साधना में एकमात्र अन्तर यह था कि असुर अत्यधिक कठोर तप में लिप्त हो जाते थे परन्तु देवतागण इतना नहीं कर पाते थे। शंखचूड़ ने ऋषि जैगीश्वर द्वारा कृष्णमन्त्र लेकर उसकी साधना पुष्कर तीर्थ में की। फल स्वरूप ब्रह्मा से एक अभेद्य कवच प्राप्त किया।

असुरों में युद्ध करने की प्रवृत्ति सदैव देखने को मिलती है और इसी प्रवृत्ति के कारण जब भी कोई असुर प्रभुत्व को प्राप्त करता है तो उसे तीनोंलोकों में स्वामित्व स्थापित करने की लालसा प्रबल हो उठती है। तभी तो महिषासुर इन्द्र पर भी स्वामित्व जमा लेता है। परन्तु जब देवी उसे युद्ध के लिए चुनौती देती है तो असुर नेता वाष्कल, दुर्धर, असिलोम एवं विडाल देवी को महिषासुर के वैभव का प्रलोभन देकर उसे वरण करने को कहते हैं। महाभारत में कई असुरों के नामों का उल्लेख है जिन का ब्यौरा नीचे दिया गया है :-

- | | |
|--------------|---------------|
| (1) अनुहृद्र | (2) इलवाल |
| (3) उपसुण्ड | (4) उशनस |
| (5) कमलाक्ष | (6) कालनेमि |
| (7) किरमिरा | (8) केशिन |
| (9) कैटभ | (10) जम्ब |
| (11) तारक | (12) तारकाक्ष |

(13) तालजंघा	(14) त्रिशिर
(15) दंश	(16) धुन्धु
(17) नमशी	(18) नरक
(19) नहुष	(20) निकुम्भ
(21) पक	(22) पुलोम
(23) प्रहद्र	(24) मनकी
(25) मर	(26) मधु
(27) मय	(28) महिष
(29) मूर	(30) यातुधान
(31) वाल	(32) वाली
(33) वाटापी	(34) विधुन्हल
(35) विप्रचित्रि	(36) विरुपाक्ष
(37) वैरोचन	(38) विविन्द्य
(39) वीर	(40) वृषपर्वण
(41) वेगावत	(42) शम्बर
(43) शल्व	(44) शंहलद
(45) शुक्र	(46) शम्बर
(47) हिरण्यकशिपु	(48) शुण्ड

असुर शब्द पश्चिम एशिया में भी बहुत प्रसिद्ध रहा है और उस क्षेत्र के प्राचीन अवशेषों में इस की पर्याप्त झलक मिलती है। इस विषय में मलोवन (Mallovan, M.E.L.) ने इस प्रकार अपना मत व्यक्त किया है :-

“The wide spread influence of Sumer at the end of the early dynastic period is also well demonstrated for up the river Tigris at the city of Assur which after 2000 BC was to become the religious capital of Assyria. Temple G which is thought to have been dedicated to a goddess, probably Ishtar, was laid down in a simple type of ground plan, with oblong sanctuary and side chambers, as in many other Mesopotamian cities such as Mari and Nuzi. At Assur there were benches against the walls upon which the statues in Sumerian form, depicted as clothed in fleecy skins, were dedicated to the god.”

यह बात अब तक स्पष्ट की जा चुकी है कि देवता और असुर एक ही पिता की संतान थे। उन्होंने कई बार आपस में युद्ध किया तो कई बार संयुक्त रूप से उद्योग भी किए। समुद्र मन्थन इनमें से एक था। यह उद्योग देवताओं और असुरों की अनथक प्रयत्नों का ही फल था। इसमें अत्यन्त विकट कार्य तो असुरों को सौंपा गया जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। उदाहरणार्थ वासुकी नाग की डोरी मन्दराचल के लपेटी गई परन्तु उसका अग्रभाग अथवा फण जो विषभरे थे वह असुरों को पकड़ा दिए गए और देवताओं ने उस नाग का पिछला भाग पकड़ा जो जोखिम रहित था। यही नहीं यदि राक्षस देवताओं अथवा ऋषियों की तपस्या में बाधा डालते थे तो देवतागण भी पीछे नहीं थे। बली को अपदस्थ करने के लिए विष्णु ने वामन रूप धरा और रम्भ और करम्भ की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र ने मकर रूप धारण कर करम्भ को ग्रस लिया। अतः यह मानना पड़ेगा कि देवता और असुर एक ही पिता की संतान थे और उनकी प्रवृत्तियों में भी समानता की झलक मिलती है।

कई विद्वानों के मतानुसार भारत में आर्य सभ्यता के अभ्युदय के पूर्व असुर जातियां ही भारत के मूल निवासी थे। इनमें से कुछ जातियां बिहार के छोटा नागपुर तथा बंगाल में निवास करती हैं। आधुनिक युग में यह आदिवासी कहलाती हैं।

असुरों की उत्पत्ति के बारे में कई एक मत हैं। कई विद्वानों का कहना है कि उनका नाम असीरयन देवता असुर से सम्बद्ध है। इन असुरों को भारत में हीनता की भावना से इसलिए देखा जाने लगा क्योंकि वह आर्य जाति के शत्रु थे। कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि आर्य लोग सुरा का अत्यधिक प्रयोग करते थे अतः वह सुर अथवा सुरा प्रेमी कहलाए। इस तथ्य का कुछ आभास रामायण में भी मिलती है।

(3) दानव:- दानव शब्द दनु से बना है। दनु प्रजापति की ही पुत्री थी जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी। अतः दनु की संतान की कालान्तर में दानव कहलाई। इस का वर्णन महाभारत (1.2520), हरिवंश एवं वामन पुराणों में भी मिलती है। शतपथ ब्राह्मण में दनायु को दानवों की माता कहा है :-

स यद्वर्तमानः समभवत् तस्माद् वृत्रोऽयं यदपात्समभवत्तस्माद्
विहस्तं दनुश्च दनायुश्च मातेव पितेव च परिगृह्यतु तस्माद्दानव इत्याहुः।

(चूँकि वह वर्तमान-वृत्तधातु का अर्थ बहना है, अर्थात् बह कर उत्पन्न हुआ, इसलिए अहि-सर्प हुआ। दनु और दनायु ने माता पिता के समान उसे लिया। इसीलिए इसे दानव कहते हैं।)

यह दानव लोग भी इच्छानुसार अपना रूप बदल लेते थे। महाभारत में (11.385) में एक आख्यान है जिस के अनुसार कृष्ण ने एक ऐसे दानव का संहार किया था जो वृषभ के रूप में आया था।

(4) दैत्य :- महाभारत में दैत्यों को दिति की सन्तान कहा है। इसी का वर्णन अन्य पुराणों में भी आता है। दैत्यों का गुरु शुक्राचार्य था तथा देवताओं का वृहस्पति। महाभारत में दैत्यों के नाम इस प्रकार दिए हैं:-

- (1) अश्वपति: (I.2651)
- (2) बाण: (IX-2700)
- (3) शिवि: (I-2644)
- (4) हिरण्यकशिपु (XII-12942)
- (5) इत्वल: (III-8543)
- (6) मय: (II-10,16)
- (7) प्रह्लाद: (XII, 8032)
- (8) तारक : (XIII, 4012)
- (9) वेगवत: (III-675)
- (10) विप्रचिन्ति: (XII,3661)
- (11) वेरोचन (V, 1187)
- (12) विरुपाक्ष (I,2658)

राक्षस:- राक्षस जाति भी आसुरी शक्ति की ही प्रतीक है और रामायण में विशेषरूप से इन का वर्णन मिलता है। राम ने विश्वामित्र ऋषि के साथ जा कर अनेकों राक्षसों का संहार किया। बनवास के समय भी कबन्ध, मारीच आदि कई राक्षस राम द्वारा मारे गए। वास्तव में सूर्पनखा नाम की राक्षसी के कथित निरादर के कारण ही सीता का हरण हुआ तथा राम ने राक्षसों की नगरी पर चढ़ाई करके रावण तथा अन्य राक्षसों का वध किया।

महाभारत में राक्षसों को पुलस्त्य की तथा निर्रति एवं अधर्म की संतान कहा है। पाण्डव पुत्र भीम की पत्नी हिडिम्बा भी राक्षस जाति की ही थी जिसका पुत्र घटोत्कच था। मुख्य रूप से महाभारत में वर्णित राक्षसों के नाम इस प्रकार हैं।

- (1) अलम्बुश (VII,3621)
- (2) अलायुध (VII. 8050)
- (3) बक (I.6209)
- (4) चारवाक (I-349)
- (5) धूमाक्ष (III.16391)
- (6) घटोत्कच (Vi. 4113)
- (7) हिडिम्ब (I, 2253)
- (8) जटायु (III, 11448)
- (9) किकर (I, 6715)
- (10) किमीर (III, 368)
- (11) लवन (XIII, 861)
- (12) मनिमत (III, 11736)
- (13) मारीच (V, 11200)
- (14) ओध (V, 1890)
- (15) पुलोमन (I, 877)
- (16) रावण (III, 15872)
- (17) वज्रवेग (III, 16434)

वास्तव में देखा जाय तो असुर, दैत्य, दानव एवं राक्षस शब्द विशेष रूप से आसुरी शक्तियों के लिए ही अनादि काल से प्रयुक्त हो रहे

हैं और इस की अलग अलग जातियां होने पर भी यह शब्द समानार्थक रूप से भी प्रयुक्त होते रहें हैं। अतः इन सभी का स्पष्टरूप से वर्गीकरण नहीं हो सकता है। उदाहरणार्थ असुर शब्द दैत्यों दानवों एवं राक्षसों, सभी के लिए प्रयुक्त हुआ भी देखा गया है। यही नहीं असुर तथा देव जातियों में आपस में विवाह की प्रथा भी थी। कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का विवाह बाणसुर की पुत्री उषा से हुआ था तथा राक्षसी हिडिम्बा का विवाह पाण्डव वशी भीम से हुआ था। पौराणिक असुर सेनापतिय की सूची परिशिष्ट-3 में उपलब्ध है।

सन्दर्भ

- (1) देवी भागवत पुराण, 5.2.17
- (2) Hastings James, *Encyclopedia of Religion and Ethics* Vol.II. 157-59

8

महिषासुर

(क) जन्म :- महिषासुर के जन्म के बारे में कई पुराणों में अनेकों आख्यान वर्णित हैं परन्तु वराह पुराण (अध्याय-९४-) के अनुसार सृष्टि के आदि में ब्रह्मा से उत्पन्न एवं सरस्वती का मित्र सुषार्व्व नामक ऋषि हुआ है। इसी का सिन्धुद्वीप नामक महा तेजस्वी एवं प्रतापवान् पुत्र हुआ। उसने महिषमती नामक नगरी में तप किया। निराहार रह कर घोर तप करते हुए विप्रचित्ति की पृथ्वी पर अनुपम रूप वाली देवकन्या सदृश महिष्मती नामक एक पुत्री थी। वह महिष्मती एक बार सखियों से घिरी हुई भ्रमण करते करते मन्दराचल घाटी में पहुँची जहाँ अम्बर ऋषि का आश्रम था। वह तपोवन लतागृहों तथा अनेकों वृक्षों एवं पुष्पों से सुशोभित था जिसे देख कर महिष्मती ने सोचा कि महिषी बन कर इस ऋषि को डरा दूँ जिससे वह आश्रम छोड़ चला जाय और वह स्वयं वहाँ पर निवास करे। ऐसा सोचते ही उसने सखियों सहित शृंग धारण करने वाली महिषी बन गई और उस ऋषि के तपोवन को ध्वस्त करने लगी। परन्तु ऋषि अपने योगबल से वास्तविकता जान गए तथा उन्होंने महिष्मती को श्राप दिया:-

यस्माद् भीषयसे मां त्वं महिषीरूप धारिणी ।

अतो भव महिष्येव पाप कर्म शतंसमा:-॥

वराहपुराण-९४-१२

(यतःतुम महिषी का रूप धारण कर के मुझे भयभति कर रही हो, अतः हे पापकर्मिणी,सौ वर्ष पर्यन्त तुम भैंस बनी रहो।)

इस श्राप को सुन कर वह भय से कांपती हुई महिष्मती ने ऋषि से शाप का अन्त करने की प्रार्थना की। उसके करुणा जनक वचन सुन कर ऋषि ने कहा कि एक पुत्र जन्म के उपरान्त तुम्हारे शाप का अन्त हो जाएगा। ऐसा कहे जाने पर वह नर्मदा तट पर गई जहाँ पर महान् तपस्वी सिन्धुद्वीप घोर तपस्या कर रहे थे। उस तपस्वी ने जल में स्नान कर रही वस्त्रहीन इन्दुमती नामक एक दैत्य कन्या को देखा जिससे उनका शुक्रपात हुआ। संयोग वश वहाँ पर आई हुई महिषी ने शुक्रसमेत उसजल की पीलिया जिससे उसे गर्भ हो गया। कालान्तर में उस महिषी से महिषासुर का जन्म हुआ।

(2) वामन पुराण¹ के अनुसार प्राचीन काल में रम्भ एवं करम्भ नामक दो भयंकर असुर थे। पुत्रहीन इन दोनों दैत्यों ने पंचनद के जल में रह कर बहुत वर्षों तक पुत्रार्थ तप किया। मालवट यक्ष के प्रति ध्यानस्थ इन दोनों भाईयों में से एक जल में स्थित हो तथा दूसरा पंचाग्नि के मध्य बैठ कर तप किया। तब इन्द्र ने ग्रह का रूप धारण कर करम्भ को ग्रस लिया। तदनन्तर भाई के मारे जाने पर क्रुधित हो रम्भ ने अपना मस्तक काट कर अग्नि में आहुति देने की इच्छा की। उसी समय अग्नि देव ने प्रकट हो कर रम्भ को आत्महत्या से रोका और उसे इच्छानुसार वर मांगने को कहा। तदनन्तर रम्भ ने अग्नि देव ने कहा कि “यदि आप वरदेना ही चाहते हैं तो मुझे अपने से भी अधिक तेजस्वी पुत्र प्रदान करें जो तीनो लोकों को विजय कर सके। वह समस्त देवताओं,मानवों और दैत्यों से अजेय हो, वायु के समान महाबलवान तथा कामरूपी एवं सर्वास्त्रवेत्ता हो”:-

अजेयों देवतैःसर्वै पुंभिर्दैत्यैश्च पावक ।

महाबलो वायुरिव काम रूपी कृतास्त्र वित् ॥

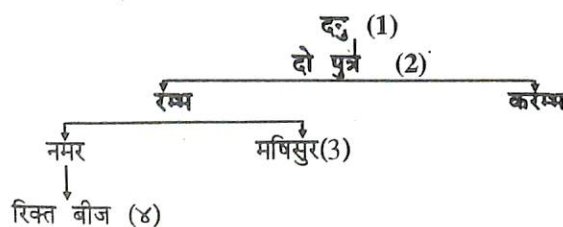
वामनपुराण २८-५१

अग्नि देव तथास्तु कह कर चले गए। अग्नि देव के विदा होने पर रम्भ यक्षों से परिवेष्टित मालवट यक्ष का दर्शन करने गया। वहाँ उन यक्षों का पद्म नामक निधि एकाग्र मन से वहाँ निवास करता था। वह पर्वत बकरे, भेड़ों, अश्व, हाथी एवं गौधन से आच्छादित था। वहीं रम्भ एक तीन वर्षीय महिषी पर आसक्त हो गया जिससे उसे गर्भ हो गया। उस महिषी के लेकर दानव पाताल में चला गया। परन्तु वहाँ उसके बन्धु बान्धवों ने उस का त्याग करा दिया। विवश हो रम्भ पुनः मालवट यक्ष के पास आगया तथा वहाँ पर महिषी ने इच्छानुसार रूप धारण करने वाले अत्यन्त बलवान महिष पुत्र को जन्म दिया।

कालान्तर में रम्भ एक अन्य महिष द्वारा मार गया जिस ने रम्भ पत्नी महिषी को पाने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु वह महिषी यक्षों की शरण में गई जिन्होंने उस की रक्षा की तथा वह दुष्ट महिष भी मारा गया।

यद्यपि मालवट यक्ष के बारे में कुछ विशेष रूप से नहीं कहा जा सकता परन्तु फिर भी ऐसा लगता है कि यह एक यक्ष तीर्थ को इंगित करता है। इससम्बन्ध में यह कहना अनुचित न होगा कि महाभारत के तीर्थ यात्रा पर्व (अध्याय-८१) में कुरुक्षेत्र को मालवट तीर्थ के नाम से पुकारा गया है। इसमें मंजवट का उल्लेख है जो कि मालवट का समानार्थक हो सकता है।

वामन तथा अन्य पुराणों के आधार पर महिषासुर की वंशावली इस प्रकार से है :-



- (१) देवी भागवत पुराण ५.२-१७
 (२) वामन पुराण १७.४५-४६
 (३) वामन पुराण १७.६१
 (४) देवी भागवत पुराण ५.१२-१८

(३) कालिका पुराण में एक विचित्र आख्यान मिलता है जिनके अनुसार महिषासुर कात्यायन ऋषि का शिष्य था तथा एक बार कौतूहल वश उसने एक दिव्य स्त्री का रूप बदल कर ऋषि की काम वासना उजागर करने का प्रयत्न किया जिस से क्रुद्ध हो कर ऋषि ने उसे श्राप दिया कि “स्त्री बन कर तू ने मेरी तपस्या भग करने का यत्न किया है अतः तुम स्त्री द्वारा ही मारे जाओगे”

मुने कात्यायनाख्यस्य शिष्यं हिमवदन्तिके ।
 दिव्यस्त्री रूपमुतुलं कृतवाहं कौतुकात् तदा ॥
 मया सम्मोहितो विप्रोऽत्यजत् सद्यस्तदा तपः ।
 नदूरात् संस्थितेनाहं मुनिना कात्यसूनुना ।
 ज्ञात्वा मया तदा शप्तः शिष्यर्थे क्रोध वह्निना ।
 यत्मात् त्वया में शिष्योऽयं महिस्तपसश्च्युतः ॥
 कृत्स्त्वया स्त्री रूपेण तत् त्वां स्त्री निहनिष्यति ।
 इति मां शप्तवान् पूर्व मुनि कात्यायनः स्वयम् ॥

कालिका पुराण 60.97-100

महिषासुर की महिष्मती से उत्पत्ति एक विशेष विन्दु की ओर भी संकेत करती है । ऋग्वेद में महिषी की तुलना गौरी से की गई है जो महिषी रूप में वरुणादेव के समुद्र की अतुलित शक्ति की प्रतीक है।

(४) देवी भागवत पुराण के अनुसार दनु नामक असुर के रम्भ एवं करम्भ नामक दो पुत्र थे जिन की कोई सन्तान नहीं थी । पुत्र प्राप्ति के लिए उन दोनों ने धोर तपस्या की। करम्भ जिस ने जल में खड़े हो कर तपस्या की वह इन्द्र द्वार मकर के रूप में मारा गया । रम्भ ने जो पंचाग्नि तापन से तपस्या कर रहा था उसने अग्नि देव से अति बलवान पुत्र की प्राप्ति का वर लिया । कालान्तर में उसका एक महिषी से सम्पर्क हुआ और रम्भ किसी अन्य महिष द्वारा मारा गया। गर्भवती महिषी जब अपने पति के साथ चिता में जलने लगी तब महिषासुर उसके गर्भ से बाहर आगया और असुरों का शासक बना ।

(५) देवी पुराण के २०वें अध्याय में असुर घोर महाघोर का रूप ले लेता है और अन्त में महिषासुर का जो कालान्तर में देवी द्वारा मारा जाता है ।

(ख) तपस्या :- महिषासुर के जन्म के पश्चात् उसके अत्यन्त बलवान होने पर भी वह देवताओं द्वारा सर्वथा अजेय नहीं था और अजेय होने के लिए उसे तपस्या करनी पड़ी। देवीभागवत पुराण में इस का एक रोचक वृत्तान्त है जिसके अनुसार पृथ्वी में महिषासुर के महीपति होने पर देवताओं तथा असुरों की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। परन्तु महिषासुर इतना प्रबल नहीं था कि वह देवताओं को जीत सके । अतः उस ने अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए सुमेरु पर्वत पर जाकर घोर तप किया जिससे पितामह ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और महिषासुर को अभीष्ट वर मांगने को कहा। तब महिषासुर ने अमरत्व प्राप्ति की इच्छा की जिससे उस की मृत्यु न हो सके । तब ब्रह्मा ने उसे समझाया कि संसार में जो प्राणि उत्पन्न हुआ है उसे अवश्य मरना है । यही तथ्य श्री मद्भगवद्गीता में इस प्रकार दर्शाया गया है :- जातस्य हि ध्रुवं जन्म मृतस्य च। इसी तथ्य को सामने रख ब्रह्मा ने महिषासुर को समझाया :-

उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च ।

सर्वथा मर्णोत्पत्ति सर्वेषां प्राणिनां किल ॥

देवी भागवत पुराण :-5.2.9

(उत्पत्ति होने पर मरण और मरने पर उत्पत्ति यही जीवों का सनातन धर्म है ।)

इसी कारण से अमरत्व तो महिषासुर को न मिल पाया परन्तु महिषासुर द्वारा इस याचना पर कि वह देव दानव, तथा मनुष्य जाति पुरुष से न मारा जा सके क्योंकि स्त्रियों से उसे कोई भय नहीं जो वह स्वभाव से ही निर्बल होती है (अबला हंत मा हन्तु कथं शक्ता मविष्यति) तो ब्रह्मा ने तथास्तु कह दिया ।

(ग) संदेश वाहक दूत :- देवी माहात्म्य में देवी ने अपने प्रादुर्भाव के पश्चात् एक भयंकर सिंहनाद किया जिससे चारों दिशाएं गूँज उठी और समस्त प्राणियों में हाहाकार मच गई । महिषासुर भी इस सिंहनाद से प्रभावित हुआ और आश्चर्य चकित हो वह क्रोध में भर गया तब वह इसी क्रुधित अवस्था में उसी ओर भागा जहां से वह गर्जना हुई थी । उसके साथ उसकी सेना भी थी । तब उस ने देवी को देखा जिसकी शोभा तीनों लोकों में व्याप्त थी। उसकी सहस्रों भुजाएँ थी और अपने धनुष की टंकार से उसने समस्त पाताल लोक को हिला दिया था । तभी देवी तथा महिषासुर की सेना में घोर युद्ध हुआ । इस सभी वृत्तान्त के बावजूद महिषासुर द्वारा संदेशवाहक का भेजा जाने का वर्णन देवी माहात्म्य में नहीं है । फिर भी इस ग्रन्थ के अनुसार संदेश वाहक अथवा दूत देवी के पास दैत्य शुम्भ ने भेजा था न कि महिषासुर ने । देवी माहात्म्य के अनुसार चण्ड और मुण्ड

द्वारा देवी की शोभाका वर्णन सुनते ही दैत्यराज शुम्भ ने अपने सुग्रीव नामक दूत को देवी के पास इस संदेश सहित भेजा कि:-

देवी दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।

दूतो हं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः॥

“हेदेवि इसलोक का परमेश्वर दानव राज शुम्भ है। जिसने आपके पास मुझे दूत रूप में भेजा है और इसी कारण से मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।”

इसके पश्चात्² उस दूत ने अपने दैत्यराज के शौर्य और वैभव का वर्णन किया तथा देवी को दैत्यराज के समक्ष जाने को कहा। जो देवी ने अस्वीकार कर दिया।

(2) वराहपुराण में दूत के बारे में उल्लेख इस प्रकार है कि देवी अपने प्रादुर्भाव के पश्चात् मन्द्राचल पर्वत पर तपस्या में लीन थी कि देव ऋषि नारद वहां पहुंचे। देवी के दर्शन के उपरान्त वह शीघ्र ही महिषासुर के पास गए तथा देवी की शोभा का वर्णन उन्होंने दैत्यराज से किया।

नारद³ के चले जाने पर दैत्यराज ने अपने मन्त्रियों से परमार्श कर विद्युत्प्रभ नामक दूत को देवी के पास प्रणय सूत्र में बन्धने के लिए भेजा। दूत ने देवी के पास पहुंच कर महिषासुर के शौर्य, वीरता एवं वैभव तथा कुलशील का परिचय देते हुए कहा :-

महिषेति स्मृतो नाम्ना ब्रह्मवंश विवर्धनः।

सत्वां वरयते देवि देव सैन्यविर्मदनः॥

वराहपुराण-94.20

(उस ब्रह्म के वंश में वृद्धि करने वाले महिष नाम से प्रसिद्ध बुद्धिमान महान बली एवं प्राकामी पुत्र उत्पन्न हुआ। हे देवी ! देवी की सेना को पराजित करने वाला महिष तुम्हें वरण कर रहा है।)

(3) महिषासुर द्वारा प्रेषित दूत, वामन पुराण⁴ के अनुसार दुन्दुभि नामक दैत्य सेनापतियों से सुन चुका था। देवी के समक्ष पहुंच कर दुन्दुभि ने देवी को जो महिषासुर का संदेश दिया वह इस प्रकार है :-

एवं समाज्ञापयते सुरारिस्त्वां देवी दैत्यो महिषासुरस्तु।

यथामरा हीनबलाः पृथिव्यां भ्रमन्ति युद्धे विजिता मया ते॥

स्वर्ग मही वायु पथाश्च वश्याः पाताल मन्ये चमहेश्वराद्याः।

इन्द्रोस्मि रुद्रोस्मि दिवाकरोस्मि सर्वेषु लोकेष्वधिपोऽस्मि बाले॥

न सोऽस्ति नाके न महीतले वा रसातले देव भटोऽसुरो वा।

यो मां हि सग्राममुपेयिवांस्तु भूतो व यक्षो न जिजीविषुर्युः॥

यान्यानि रत्नानि महीतले वा स्वर्गेऽपि पाताल तलेऽय मुग्धे।

सर्वाणि मामद्य समागतानि वीयार्जितानीह विशालनेत्रे॥

स्त्रीरत्नमग्रयं भवति चकन्या प्राप्तोस्मि शैलं तब कारणेन।

तस्माद् भजस्वेह जगत्पति मां पतिस्त्वार्होस्मि विभु प्रभुश्च॥

वामनपुराण:-20.25-29

(हे देवि सुरारि! महिषासुर ने तुम्हें यहां समाज्ञापित किया है कि मेरे द्वारा युद्ध में विजित बल हीन अमर लोग पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हैं। हे बाले! स्वर्ग पृथ्वी वायु मार्ग, पाताल और शंकर आदि सभी मेरे वश में हो गए हैं। मैं ही अब इन्द्र रुद्र, दिवाकर एवं सभी लोको का अधिपति हूँ। स्वर्ग, पृथ्वी, अथवा रसातल में जीवित रहने की इच्छा वाला ऐसा कोई देव योद्धा असुर, भूत अथवा यक्ष नहीं है जो युद्ध में मेरा सामना कर सके। हे मुग्धे! हे विशाल नेत्रे! पृथ्वी स्वर्ग या पाताल में जितने भी रत्न हैं वह सभी पराक्रमजित हो कर आज मेरे पास आ गए हैं। आप स्त्री रत्न में श्रेष्ठ कन्या हैं। मैं आप के लिए पर्वत पर आया हूँ।)

परन्तु देवी ने विना युद्ध के आत्मसमर्पण को ठुकरा दिया।

(4) देवी भागवत⁵ में ऐसा वर्णन मिलता है कि पराशक्ति के प्रादुर्भाव के पश्चात् उसने एक भयंकर हुंकार भरी जिसकी गूंज तीनों लोकों में फैल गई। इस घोर सिंहनाद से महिषासुर विचलित हो उठा और उसने एक दूत उस भयंकर शब्द का श्रोत मालूम करने को भेजा। उसने देवी को देख कर देवराज के पास आया और उसे प्रणय का संदेश भेजने को परामर्श दी। तब महिषासुर ने अपने एक विशिष्ट सेनापति को देवी के समक्ष दूत के रूप में प्रेषित किया। दूत के वचन सुन कर देवी ने महिषासुर का प्रस्ताव अस्वीकार कर उसे यह सूचित किया कि उसका प्रादुर्भाव ही संसार में दैत्यों के विनाश के लिए हुआ है। इसके उपरान्त एक अन्य दैत्य जिका नाम ताम्र था पुनः देवी के समक्ष भेजा गया ताकि वह देवी को प्रभावित कर सके। परन्तु देवी अविचलित रहीं।

(5) स्कन्द पुराण⁶ में दूत का अख्यान कुछ भिन्न है। इसके अनुसार देवी ने स्वयं ही देवगुरु वृहस्पति को दूत बना कर महिषासुर के पास भेजा था। परन्तु इस कार्य से पूर्व वृहस्पति को वानर मुखवाला बना दिया गया था। उसे यह कार्य सौंपा गया था कि वह असुर को यह चेतावनी दे दे कि यदि उसने अरुणाचल निवासियों को पीड़ित करना बन्द नहीं किया तो उस का नाश हो जाए गा।

(६) शिव पुराण⁷ में भी देवी को दूत शुभ दैत्य ने ही भेजा था और उसने देवी से प्रणय याचना की। परन्तु देवी ने उसे अस्वीकार कर दिया।

(घ) राजनैतिक प्रतिष्ठा :- किसी भी राज्य में राजनीति को विशेष स्थान होता है। राज्य भीतरी व्यवस्थाओं अथवा बाहरी सम्बन्धों का आधार तो राजनीति है और उसकी प्रतिष्ठा तो विशेष रूप से महत्व पूर्ण होती तो है। महिषासुर तो दैत्यराज था ही। उसकी राजनीतिक गति-विधियों का आभास पुराणों में पर्याप्त रूप से मिलता है।

सर्वप्रथम राजदूत को ही लें। वराहपुराण में महिषासुर के मन्त्रियों ने दूत के लक्षण इस प्रकार कहे हैं :-

यः सर्व शास्त्र नीतिज्ञः शुचिः शौर्य समन्वितः।

तस्माज् ज्ञात्वा तु तां देवी वर्णतो रूपतो गुणैः॥

प्राक्रमेण शौर्येण सामग्रया स्थानेन करेण च।

बन्धु वर्गेण सामग्रया स्थानेन करणेन च।

वराह पुराण :- 92.18-19

(जो दूत सभी शास्त्रों और नीति को जानने वाला, शुभ आचार सम्पन्न, एवं शौर्य युक्त हो उस के द्वारा उस देवी के वर्ण, रूप, गुण, प्राक्रम, शौर्य, तेज, बल, बन्धुवर्ग, सामग्री, स्थान एवं साधन को जान कर देवी के विषय में उचित कार्य करना चाहिए।)

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विद्युत्प्रभ नामक एक अत्यन्त मेधावी दैत्य सेनापति का देवी के पास दूत कार्य के लिए चुनाव किया गया। वास्तव में कौटिल्य के अर्थशास्त्र⁸ के अनुसार भारतीय ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्व पूर्ण व्यक्ति माना जाता रहा है। और अन्य देशों से सम्बन्ध उसी की कार्य कुशलता एवं कार्य क्षमता पर निर्भर रहते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रपंचसार के अनुसार राजदूत एक गुप्तचर का ही रूप, और मृदुभाषी, दूरदर्शी, एवं साहसी होना चाहिए।

महिषासुर की राजनैतिक गतिविधियों की झलक देवी भागवत पुराण⁹ में सक्रिय रूप से दर्शाई गई है। दृश्य है जब महिषासुर के दूत का देवी से साक्षात्कार होता है। दूत का आचरण देवी के प्रति अत्यन्त आदर भाव का था और उस ने अपने आने का कारण तथा भेजने वाले का परिचय¹⁰ सम्मान पूर्वक दिया। जब उसके कार्य में सफलता नहीं मिली तो भी उसने देवी से सविनय विदा ली और अपनी भेंट का ब्योरा अपने दैत्य राज को दिया। यही नहीं, उसने अपने स्वामी को यह भी स्पष्ट किया कि उसने देवी के साथ संघर्ष का रास्ता क्यों नहीं अपनाया। राजदूत की प्रतिष्ठा की झलक इस बात में भी मिलती है जब जब हम ताम्र का एक अन्य दूत के चरित्र के साथ अवलोकन इकरते हैं जो दैत्येश्वर के समक्ष उपस्थित हुआ और उसके चरित्र में सौम्यता की पराकाष्ठा देखने को मिलती है, अन्य पुराणों में भी दूत का देवी के समक्ष व्यवहार सराहनीय कहा जाए गा जिसमें उग्रता अथवा उद्धण्डता का सवर्था अभाव है।

(ङ) राजनैतिक परामर्श तथा आपात्कालीन बैठक :- प्राचीन काल की राजनीति में आमात्यों तथा अन्य युद्ध विषारदों का गहन महत्व हुआ करता था। राजा किसी भी भीषण संकट के समय अपने आमात्यों और सेनापतियों से सलाह करना आवश्यक समझता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में इस विषय का प्रावधान किया है कि "आपात्काल में राजा अपने आमात्यों एवं सेनापतियों को सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से परामर्श करेगा। कार्यसिद्धि के लिए राजा या तो बहुमतानुसार कार्य करे गा अथवा जैसे वह स्य उचित समझे¹¹ गा करे गा।

दैत्यराज महिषासुर की राजनीतिक कार्य कुशलता की झलक वराह पुराण में मिलती है जिस के अनुसार देवी के सौन्दर्य का वर्णन नारद के मुख से सुन कर दैत्य आश्चर्य चकित हो उठा। तभी स्थिति पर विचार करने के लिए अलंशर्मा नामक महाबलवान् महा मन्त्री ने अपने आठ पराक्रमी, नीतिमान् एवं बहुश्रुत मन्त्रियों को परामर्श के लिए बुलवाया। उन के नाम थे :- प्रघस, विघस, राड्कर्ण, विभावसु, विद्युन्माली, सुमाली, पर्जन्य, एवं क्रूर। उन मन्त्रियों ने दानवेन्द्र से कहा कि "कार्य बतलाएँ"। इसके उत्तर में महिषासुर ने कहा :-

महां तु कथिता बाला नारदेन महर्षिणा।

सा चाजित्य सुराध्यक्षं न लभ्येत वराङ्गना॥

एतदर्थं भवन्तो वै कथयन्तु विमृश्य वै।

कथं सा लभ्यते वाला कथं देवाश्च निर्जिताः।

भवेयुरिति तत्सर्वं कथयन्तु द्रुतं मम॥

वराह पुराण :- 93-6,7

(नारद ने मुझे एक कन्या के विषय में कहा है। देवों के स्वामी को बिना जीते वह श्रेष्ठ स्त्री प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए आप लोग विचार करके कहें कि वह कुमारी कैसे प्राप्त होगी एवं देवता लोग कैसे पराजित होंगे आप शीघ्र ही मुझे बतलाएँ।)

इसके पश्चात् वहां पर उपस्थित मन्त्रियों एवं सेनापतियों में परामर्श एवं वहस हुई। सबसे पूर्व प्रघस ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया :-

या सा ते कथिता दैत्य नारदेव महासती।

सा शक्ति परमार देवी वैष्णवी लोकधारिणी॥

गुरुपत्नी राजपत्नी तथा सामन्तयोषितः।

जिघृक्षन् नश्यते राजा तथा गम्यागमेन च॥

वराह पुराण :- ९२-९,१०

(नारद ने जिस महासती का वर्णन किया है वह परम शक्ति रूपा लोक धारिणी वैष्णवी देवी है। गुरु पत्नी, राजपत्नी एवं सामन्त की पत्नी को प्राप्त करने तथा गम्यागमन से राजा नष्ट हो जाता है।)

प्रघस के विचारों की पुष्टि विघस ने करते हुए कहा, 'हे राजन उस देवी के बारे में प्रघस ने ठीक ही कहा है। यहां तक तो ठीक ही है परन्तु इसके पश्चात् प्रघस ने अपने समर्थन में बहुमत की कामना करते हुए कहा कि "यदि सबका एक मत हो तो मुझे यह सिद्धान्त स्मरण है कि विजय की इच्छा करने वालों को सर्वदा कुमारी का वरण करना चाहिए। परन्तु स्वतन्त्रता पूर्वक कभी भी कन्या का अपहरण नहीं करना चाहिए। हे श्रेष्ठ मन्त्रियों। यदि आप लोगों को मेरी बात अच्छी लगती हो तो मन्त्री उस कल्याणमयी के पास जाकर याचना करें। जो उस कन्या का बन्धु हो हम उससे याचना करें। प्रारम्भ में साम नीति का प्रयोग करने के उपरान्त हम दान उपाय का प्रयोग करेंगे। उसके पश्चात् ही भेद अथवा दण्डनीति का प्रयोग करेंगे।"

देवी भागत् पुराण¹² में महिषासुर के सेनापतियों एवं मन्त्रियों की बैठक का ब्योरा कुछ अधिक व्यापक रूप से दिया है जिसके अनुसार, देवी की घोर गर्जना सुन कर महिषासुर ने अपने एक गुप्तचर को देवी का पता लगाने को भेजा। उस गुप्तचर ने आकर बताया कि पर्वत पर अठारह भुजाओं वाली देवी विद्यमान थी जिसने अपने हाथों में अनेकों अस्त्र शस्त्रधारण किए हुए थे। इसे सुन कर महिषासुर ने अपना एक दूत देवी के पास प्रणय सूत्र बन्धन का प्रस्ताव लेकर भेजा जिसे देवी ने ठुकरा दिया। इसके पश्चात् महिषासुर ने अपने मन्त्रियों की एक सभा बुलाई। अपने स्वागत भाषाण में दैत्य राज ने अपने सभासदों में पूर्ण विश्वास व्यक्त करते हुए उन से परामर्श माँगी कि देवी को कैसे विजित किया जाए। इसके पश्चात् विरुपाक्ष, दुर्दुर ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि देवी काम वासना से प्रभावित होने के कारण ऐसा अट्टहास कर रही थी। परन्तु ताम्र नामक सेनापति का मत उन दोनों के विपरीत था। उसका कहना था कि देवी कोई साधारण नारी नहीं थी क्योंकि साधारण नारी के दो भुजाएँ होती हैं जबकि देवी की अठारह भुजाएँ हैं। इसके अतिरिक्त उस देवी की वाणि बहुत सौम्य थी जिसमें काम वासना के लेश मात्र भी नहीं था। अतः वह अवश्य ही कोई अद्वितीय नारी थी। ताम्र के तर्क युक्त तथा प्रभावशाली वचन सुन कर दैत्यराज ने उसे देवी के पास दूत बना कर भेजा।

जब ताम्र देवी से भेंटकर निराश लौटा तो महिषासुर के सभासदों की पुनः बैठक हुई जिसमें समस्त वस्तुस्थिति की पूर्ण समीक्षा की गई। पश्चात् वाष्कल, महाबाहु एवं दुर्दुर को देवी से युद्धार्थ भेजा गया।

अनेक पुराणों में वर्णित महिषासुर सम्बन्धी आख्यानों को यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होगा कि उसकी मन्त्री परिषद अत्यन्त प्रभावशाली थी जिसमें प्रत्येक सदस्य निर्भीक भाव से अपना मत व्यक्त कर सकता था। उस परिषद में वाद विवाद तर्क संगत होता था और यदि एक सदस्य दूसरे से सहमत नहीं होता था तो उससे वैमनस्यता नहीं होती थी न ही किसी प्रकार की कटुता ही आने दी जाती थी। उदाहरणार्थ, यद्यपि ताम्र का मत विरुपाक्ष एवं दुर्दुर के मत के विपरीत था परन्तु ताम्र ने उन दोनों को अपने तर्कों द्वारा अपने विचारों की परिपक्वता का परिचय दिया जिसे सबने सहर्ष स्वीकार किया। यही नहीं पूरी सभा की कार्यवाही सुनियोजित ढंग से हुई दर्शाई गई है। जिसमें अराजकता अथवा अनुशासन हीनता देखने को नहीं मिलती है।

(च) **शस्त्रास्त्र** :- महिषासुर¹³ तथा उसकी सेना ने देवी के साथ युद्ध में अनेकों शस्त्र प्रयोग किए, धनुष, परशु, मूसल, गदा, पट्टिका, शूल, चक्र, शक्ति, तोमर, मुदगर, भिन्दीपाल, लाङ्गूल, वज्र, कौमदीगदा, तथा सर्पाकार विषैले बाणप्रयोग में लागू हुए। परन्तु देवी के साथ युद्ध युद्ध में रत महिषासुर जब महिष के कटे हुए सिर से बाहर निकालता है तो उसके दोनों हाथों में ढाल और तलवार भारतीय मूर्ति कला में स्रष्टारणतया दिखाई जाती रही है। वास्तु शास्त्र भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

(छ) **युद्ध के वाहन** :- देवी के साथ करते समय महिषासुर एवं उसकी सेना ने हाथी, घोड़े तथा रथों का प्रयोग किया जिन में से पुराणों के अनुसार अधिकांश नष्ट हो गए।

(ज) **वाद्य यन्त्र** :- महिषासुर अथवा उसकी सेना द्वारा युद्ध में प्रयुक्त वाद्ययन्त्रों के उल्लेख का सर्वथा अभाव है परन्तु वामन पुराण में देवी द्वारा प्रयुक्त वाद्य यन्त्रों का वर्णन मिलता है। दैत्य सेनापति वाष्कल, उद्धत, उदग्राख्य, उग्रकामुक, दुर्धर, दुर्मुख, तथा विडालनयन ने युद्ध भूमि में अपनी सेनाओं सहित कात्यायनी पर एक साथ आक्रमण कर दिया। उन्हें देख कर देवी ने लीला पूर्वक हाथों में वीणा एवं डमरु लेकर हँसते हुए बजाना आरम्भ कर दिया। देवी ज्यों ज्यों उन वाद्यों को बजाती थी त्यों त्यों भूतगण नाचते और हँसते थे।

तान् दृष्ट्वा लीलया दुर्गा वीणां जग्राह पाणिना।

वादयामास हंसती तथा डमरुकं वरम्॥

यथा यथा वादयते देवी वाद्यानि तानि तु।

तथा तथा भूत गणा नृत्यन्ति च हसन्ति च॥

वामन पुराण :21.34-35

(झ) **युद्ध की तैयारी** :- महिषासुर दूरा देवी के साथ युद्ध की तैयारी का उल्लेख भी युक्ति संगत होगा। इस विषय पर वराहपुराण पर्याप्त प्रकाश डालता है। वराहपुराण के अनुसार जब महिषासुर द्वारा देवी को भेजा हुआ दूत निराश वापिस लौटा तो महिषासुर¹⁴ ने अपनी समस्त सेना लेकर सर्वप्रथम इन्द्र पर आक्रमण कर देया जिससे देवता गण क्रुद्ध हो गए। देवों और असुरों में घोर युद्ध हुआ जिसमें देवता लोग पराजित हो ब्रह्म लोक चले गए।

परन्तु युद्धार्थ प्रस्थान से पूर्व महिषासुर ने विरुपाक्ष नामक सेनापति को आदेश दिया कि शीघ्र ही हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदल सैनिकों को लाए जिससे मैं देवों तथा गन्धर्वों को जीतूंगा। तब ऐसा कहे जाने पर विरुपाक्ष शीघ्र ही न हारने वाली बड़ी सेना को ले आया।

आनीयतां द्रुतं सैन्यं हस्त्यश्वरथपत्तिनाम् ।
येन देवान् सगन्धर्वान् जयामियुधि दुर्जयान्॥
एवमुक्ते विरूपाक्षस्तदा सेनापतिं द्रुतम्।
आनिनाय महत्सैन्यमनन्तमपराजितम्॥

वराहपुराण:- 92-27.28

उस सेना में एक एक दानव युद्ध में वज्र धारण करने वाले इन्द्र के समान थे। तब उग्र स्वभाव वाले अनेकों दैत्यों ने मन्त्रणा की तथा देव सेना के विनाशनाथ प्रण किया। यह सेना विचित्र यानों, अनेक प्रकार की ध्वजाओं, अद्भुत शस्त्रों से सुसज्जित थी। अनेक प्रकार के भयंकर रूप वाले तथा हाथों में भयंकर आयुध धारण करने वाले राक्षस देवताओं को जीतने की इच्छा से वेग पूर्वक नृत्य करने लगे।

देवी भागवत्¹⁵ के अनुसार असिलोम एवं विडालाक्ष द्वारा देवी का वृत्तान्त सुन क्रुद्ध हो महिषासुर ने अपने सारथी को आदेश दिया " मेरे रथ को शीघ्र लाओ जिसमें एक सहस्र घोड़े जुते हैं और अनेकों पताकाओं से युक्त है। उसमें अनेकों शस्त्र भी हैं। वह रथ शीघ्र वहां लाया गया जिसपर आरुढ़ हो कर महिषासुर ने युद्धार्थ प्रस्थान किया।

(ज) युद्ध स्थल :- वास्तविक युद्ध स्थल के बारे में विश्वस्त रूप से प्रमाणों के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में देवी माहात्म्य का साक्ष्य विन्ध्य पर्वत को इंगित करता है। वराह पुराण के अनुसार यह युद्ध स्थल मन्दार पर्वत था जिस पर देवी अपनी सखियों सहित विराजमान थी। अतः इस पुराण के अनुसार महिषासुर का देवी के साथ युद्ध मन्दार पर्वत पर ही हुआ था।

वामन पुराण के अनुसार विन्ध्य पर्वत ही युद्ध स्थल था परन्तु पद्मपुराण में यह वर्णन आया है कि वैवस्वत मन्वन्तर में महिषासुर का विन्ध्य पर्वत पर विनाश हुआ था जबकि स्वयंभू मन्वन्तर में वैष्णवी ने उसे मन्दारगिरि पर परास्त किया था। अतः इस प्रकार ज्ञान शक्ति की अज्ञान शक्ति पर विजय हुई। वामन पुराण ने विन्ध्य पर्वत को अधिक महत्व देते हुए यह दर्शाया है कि देवी देवताओं के तेज से अपने प्रगाढ़भार्व के पश्चात् विन्ध्य पर्वत पर गई जिसे महर्षि अगस्त्य ने नीचे झुकाया था।

मन्दार पर्वत की पहचान आधुनिक उत्तर विहार क्षेत्र में भागलपुर से कुछ कि०मी० दक्षिण से की गई है। पार्जितर के मतानुसार विन्ध्य पर्वत से आधुनिक विन्ध्य पर्वत श्रृंखला नहीं मानी जानी चाहिए, अपितु भोपाल से पूर्व स्थित वह संभाग माना जान चाहिए जो विन्ध्य पर्वत श्रृंखला को विहार से जोड़ता है। यह स्थिति उन नदियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होती है जो इस क्षेत्र से निकलती हैं और जिन का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में मिलता है।

विन्ध्याचल¹⁶ को कुछ विद्वान उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर के निकट स्थित मानते हैं। वहीं पर विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर भी है। विन्ध्याचल नगर जो कि पम्पापुर के नाम से जाना जाता है मिर्जापुर से लगभग आठ किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। इस का वर्णन भविष्य पुराण के नवें अध्याय में भी मिलता है। योगिनी तन्त्र (२.९,) तथा कालिका पुराण के अध्याय ५.८.३७ में भी उस का उल्लेख है।

कालिका पुराण (13.23) में भी मन्दार पर्वत का उल्लेख है। इसकी पहचान भागलपुर के बांका खण्ड से की गई है जो भागलपुर (बिहार) से लगभग ४६ कि०मी० दूरी पर स्थित है। इस पर्वत शिखर की ७०० फुट की ऊंचाई है।

वास्तव में यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो युद्ध स्थल मन्दार पर्वत श्रृंखला न हो कर विन्ध्य पर्वत पर ही होने की अधिक सम्भावना है क्योंकि इसी की सब से ऊंची चोटी पर देवी ने अपना स्थान बनाया कहा जाता है और इसी पर्वत की श्रृंखलाओं को झुका कर महर्षि अगस्त्य ने दक्षिण में प्रवेश किया था।

(ट) युद्ध में दैत्य सेना का विनाश :- मार्कण्डेय पुराण देवी और आसुरी सेनाओं में युद्ध का वीभत्स दृश्य प्रस्तुत करता है जिसमें समस्त भूमि रक्त रंजित है तथा सैनिकों के विक्षिप्त अंग सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। देवी ने अपनी त्रिशूल, गदा, भाला, खड्ग तथा अन्य अस्त्रों से अनेकों असुर योद्धाओं का संहार किया। कुछ एक को उसने अपने पाश से बांध कर घसीट लिया। कुछ देवी के अस्त्रों के प्रहार से भूमि पर गिर पड़े तथा रक्त उगलने लगे। कुछ के अंग छिन्न भिन्न हो गए। अनेकों विनाशिर के शव इधर उधर बिखरे पड़े थे जिन्हें कई जीव जन्तु खा रहे थे। कई मृत व्यक्तियों के हाथों में अभी भी अस्त्र शस्त्र पकड़े हुए थे। चालको के नाश के पश्चात् कई हाथी, घोड़े तथा रथ ध्वस्त हो कर विक्षरे पड़े थे और रक्त की मानों नदियां बह रही थीं। सर्वत्र मृत्यु और विनाश ही दृष्टिगोचर था। इसमें सन्देह नहीं कि पुराण कारों ने देवी की शोभा और प्राक्रम में अद्वितीय पाण्डित्य को प्रदर्शन किया है परन्तु युद्ध स्थल का मार्मिक दृश्य भी मन को एकदम दहला देने वाला है। देवी भागवत पुराण के (५.१३.३०-३८) के अनुसार दोनों पक्षों ने युद्ध में अत्यन्त विनाशकारी शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया जिससे रक्त की नदियां रणभूमि में वह निकली जिसमें नरमुण्ड ऐसे तैर रहे थे मानो यमराज ने तैरने के लिए छोड़े हो। अनेकों मृतक शरीर पड़े थे जिन्हें शृगाल खा रहे थे। अन्यस्थानों पर वन को अन्य माँसाहारी जन्तु मृतकों की देहों को नोच रहे थे। शवों की दुर्गन्ध सर्वत्र व्याप्त थी तथा चीत्कार भी सुनाई दे रही थी।

इन्ही पुराणकारों के अनुसार जब दैत्य सेना का पूर्ण रूप से संहार हो गया तो महिषासुर देवी के साथ युद्धार्थ स्वयं रणभूमि में महिष के रूप में पहुँचा! आते ही उस में सींगों से पत्थरों को उखाड़ना आरम्भ कर दिया तथा भूमि से अपने खुरों द्वारा गहरे गड्ढे बना दिए और अनेकों वृक्षों को अपनी पूँछ के प्रहार से गिरा दिया। तब महिषासुर ने देवी के वाहन सिंह पर अक्रमण किया। देवी ने महिषासुर के अक्रमण को निष्फल कर दिया।

तभी दैत्यराज ने क्रुद्ध हो अपने खुरों से अनेकों पर्वत उखाड़ कर उन्हें सींगों से दूर दूर तक फेंक दिया जिनके खण्ड सर्वत्र फैल गए। उनसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे आकाश में से आच्छादित हो उठा हो। वराहपुराण में महिषासुर की रण नीति का वर्णन इस प्रकार किया है जो आज कल के युग में छापामार (guerrilla or hit and run) युद्ध कहलाता है :-

मुक्तवा तमेकं महिषं हत्वा तमम्ययात्।
यावद् देवी ततः साऽपितां दृष्ट्वा सोऽपिद्बुधे॥
कवचिद् युध्यति दैत्यन्द्रः क्वचिच्चैव पलायति।
क्वचित् पुनर्मृधं चक्रे क्वचित् पुनरुपारमत्॥

वराहपुराण :-94.47-48

(उस एक महिष के अतिरिक्त सभी को मारने के उपरान्त उस देवी ने उस दैत्य पर आक्रमण किया। उस देवी को आते देख कर उस महिष ने भी आक्रमण किया। दैत्यन्द्र कभी लड़ता था और कभी भाग जाता था। कभी पुनः युद्ध करता था एवं पुनः कभी रुक जाता था।)

वामन पुराण ने दैत्य सेना के परास्त होने के पश्चात् दैत्यराज का रण भूमि में प्रवेश का अधिकारोचक ढंग से वर्णन किया है जिस के अनुसार देवी के बाहुदण्ड से मारे गए विशीर्ण दर्प वाले बलवान महासुर अस्तव्यस्त वस्त्रों वाले दैत्य मारे गए। तदुपरान्त महिषासुर ने अपने हताहत योद्धाओं को देख कर अपने खुराग्र, तुण्ड, पूंछ, वक्षस्थल तथा निःश्वास वायु से देवी के भूत गणों को भगा दिया। वज्रतुल्य शब्द एवं सींगों की नोक से अन्य गणों को प्रताड़ित कर वह देवी के वाहन सिंह को मारने को दौड़ा। तदनन्तर तीक्ष्ण श्रृंगयुक्त वह महिष कोप वश शीघ्रता पूर्वक पर्वतों एवं भूमि को विशीर्ण करने लगा तथा समुद्र को संक्षुब्ध करते हुए एवं मेघों को विध्वस्त करते हुए वह दुर्गा की ओर दौड़ा।

नादेन चैवाशानिसन्निभेन

विष्माणकोदया त्वपरान् प्रमथ्य।

दुद्राव सिंह युधि हन्तु कामः

ततो ऽ म्बिका क्रोधवशं जगाम॥

ततः स कोपादथ तीक्ष्णश्रृंगः

क्षिप्रं गिरीन् भूमि मशीर्णयच्च।

संक्षोभयंस्तोयनिधीन धनांश्च

विध्वंसयन् प्राद्रवताथ दुर्गाम्॥

वामन पुराण:-21.40-41

(ठ) असुर सेनापतियों का विवेक :-

देवी भागवत के अनुसार असुर सेनापति विडालाक्ष की हत्या के पश्चात् महिषासुर ने असिलोम को देवी के साथ युद्ध के लिए प्रेरित किया। उस समय उस असुर सेनापति की मानसिक स्थिति बहुत जटिल हो गई। वह यह जानता था कि देवी से युद्ध निरर्थक है जो समस्त दैत्य कुल को विनाश की ओर लेजाएगा। परन्तु उसमें इतना साहस नहीं था कि वह राजाज्ञा की अवहेलना कर सके अथवा अपनी मनस्थिति को स्पष्ट रूप से महिषासुर के समक्ष प्रकट कर सके। वह जानता था कि महिषासुर तनिक सा विरोध भी सहन नहीं कर सकेगा। अतः वह देवी को कहता है कि :-

ऊर्ध्वं सव्यं करं कृत्वा तामुवाच मितं वचः।

देवि जानमि मरणं दानवानां दुरात्माम्॥

तथा ऽ पि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया।

महिषो मन्दबुद्धिश्च न जानाति प्रिया प्रिये॥

तदग्रे नैव वक्तव्यं हितं चैवाप्रियं मया।

मर्तव्यं वीरधमेर्णं शुभं वाध्यं शुभं भवेत्॥

दैव मेव परम मन्ये धिक्पौरुष मनर्थकम्।

पतन्ति दानवास्तूर्णं तव बाणाहता भुवि॥

देवी भागवत् पुराण:15.40-43

(तब असिलोम बाईं भूजा उठा कर देवी से कहने लगा कि हे देवि, दुष्ट स्वभाव के कारण दानावों की मृत्यु हो गी यह मैं जानता हूँ। किन्तु यह जान कर भी मुझे समर में प्रवृत्त होना पड़ेगा क्योंकि मैं पराधीन हूँ। और महिषासुर अत्यन्त मन्दबुद्धि है। इसीकारण से वह प्रिय अथवा अप्रिय से अनभिज्ञ है। उसके निकट हितकर अप्रिय वचन नहीं कहने चाहिए। अतः शुभ हो अथवा अशुभ मैं राज धर्म के अनुसार युद्ध में प्राण त्याग दूँगा। दानव लोग आप के वाणों के प्रहार से आहत होकर तत्क्षण भूतल में गिरते हैं यह भाग्य की ही बात है।)

उपरोक्त सन्दर्भ में दैत्य सेनापति का विवेकपूर्ण चिन्तन एवं उसकी विवशता भलीभांति उजागर हो जाती है। उसे देवी से युद्ध की निरर्थकता का पूर्णरूप से बोध है। परन्तु फिर भी वह एक सच्चे योद्धा की मृत्यु को ही अपनाता है।

(ड) महिषासुर का विवेक :- महिषासुर देवी के समक्ष युद्धार्थ मनुष्य रूप में पहुँता है तो आसक्त हो उसे उपदेश देता है। इसका वर्णन देवी भागवत में इस प्रकार दिया है:-

कोमलां चारु सर्वाङ्गीं नारी नरविमोहिनीम्।
 जित्वा हरिहरादींश्चलोकपालांश्च सर्वशः॥
 किं त्वया सह युद्धं युक्तं कमल लोचने।
 रोचते यदि चावर्गि ववाहं कुरु मां भज।
 नो चेद्द्रच्छ यथेष्टं ते देशं यस्मात्समागता।
 नाहं त्वां प्रहरिष्यामि यतो मैत्री कृता त्वया॥
 हितमुक्तं शुभं वाक्यं तस्माद्द्रच्छ यथासुखम्।
 का शोभा में भवेदन्ते हत्वा त्वां चारु लोचनाम्॥
 स्त्रीहत्या बालहत्या च ब्रह्महत्या दुरत्यया।
 गृहीत्वा त्वां गृहं नूनं गच्छाम्यद्य बरानने॥
 तथाऽपि में फलं न स्थाद्वलाभोग सुखं कुतः।
 प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतों यतः॥
 पुरुषस्य सुखं न स्यादृते कातांमुखांबुजात्।
 तत्तथैव हि नारीणां न स्याच्च पुरुषं विना॥

देवी भागवत पुराण- 15.48-54.

(तुम्हारे सभी अंग मनोहर और कोमल हैं। ऐसी ललना के देखने से मनुष्य मात्र ही मोहित होता है। इसी कारण से चारुवदने तुमपर प्रहार करने में मुझे अति शंका उत्पन्न होती है। हे कमललोचने मैं ने हरिहर आदि सभी देवताओं तथा लोक पालों को जीत लिया है। अतः तुम से युद्ध करना मुझे क्या उचित है। हे सुन्दरी यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो विवाह करके मेरा भजन करो नहीं तो जिस स्थान से आई हो वही चली जाओ। तुमने मुझ से मित्रता की है इसी कारण से तुम पर प्रहार करने की इच्छा नहीं है। यह मैं ने हित एवं मंगलमय वचन कहे हैं अतः तुम सुख से प्रस्थान करो। तुम सुलोचना ललना हो। तुम्हारी हत्या करके मेरी कोई बड़ाई नहीं हो गी। हे कृशोदरी स्त्री हत्या, ब्रह्म हत्या तथा बाल हत्या के पाप का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। किन्तु बल प्रयोग करने से कहीं सुख नहीं होता इसी कारण से भी मुझे फल लाभ नहीं होगा। हे सुकेशी मैं विनय पूर्वक तुम को कहता हूँ कि कामिनी के मुख पंकज विना पुरुष को सुख नहीं होता।)

इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि महिषासुर को भी अशुभ शुभ का पर्याप्त ज्ञान था। वह जानता था कि स्त्री, ब्रह्म एवं बाल हत्या सर्वधर वर्जित है। यही नहीं उसने देवी को यह भी परामर्श दिया कि उससे अच्छा वर उसे नहीं मिल सकता और यदि वह उसकी बात को नहीं मानेगी तो उसे भी इसी प्रकार पश्चाताप होगा जैसे मन्दोदरी को हुआ था जसने उचित समय पर योग्य वर को ठुकरा दिया था। उस मन्दोदरी की कथा महिषासुर ने देवी को इस प्रकार से सुनाई (देवी भागवत पुराण:- 17.156)

“सिंहल देश के राजा चन्द्र सेन की पुत्री का नाम मन्दोदरी था। युवावस्था प्राप्त होने पर राजा ने उस राजकन्या का विवाह मद्रदेशाधिपति सुधन्वा के पुत्र कुम्भग्रीव नामक राजकुमार से करना निश्चित करने के लिए राजकुमारी से पूछा। परन्तु राजकुमारी ने विवाह न करने का निश्चय किया। इस प्रकार वह राजकुमारी राजमहल में ही रहने लगी। एक बार वह अपनी सखियों सहित उपवन में क्रीड़ा रत थी। तभी वीरसेन नामक एक अति प्रसिद्ध राजा उसी मार्ग से निकला। वह अकेला ही उस उद्यान के निकट पहुँच गया। तभी राजकुमारी की सखियों ने उसे किसी राजा के आने की सूचना दी। तभी राजा ने एक सखी द्वारा प्रणय सन्देश राजकुमारी को भेजा जो राजकुमारी ने अस्वीकार कर दिया तथा राजा अपने देश को चला गया।”

“राजकुमारी मन्दोदरी की एक अन्य भगिनी भी थी जिस का नाम था इन्दुमती। जब वह विवाह योग्य हुई तो उसके विवाहार्थ स्वयंवर सभा रची गई जिसमें अनेकों राजकुमार उपस्थित हुए। इन्दुमती ने अपने लिए एक योग्य राजकुमार का चयन किया। तभी मन्दोदरी ने भी कामासक्त हो मद्रराज को अपने पति रूप में वरण किया। राजा ने दोनों का सहर्ष विवाह करके मन्दोदरी को विदा किया। राजा अपने देश में जाकर मन्दोदरी के साथ सुख से रहने लगा परन्तु कुछ समय के पश्चात् राजा की आसक्ति अन्य स्त्रियों से हो गई जिसका ज्ञान मन्दोदरी को भी हुआ। अतः उसने दुःखित मन से अपने पति एवं राजवैभव का त्याग कर दिया तथा किसी देवस्थान में रहने लगी।”

ऊपरोक्त कथा में महिषासुर ने देवी को यह ज्ञात कराने का यत्न किया कि यदि उसने असुर की प्रणय याचना को ठुकरा दिया तो उसे भी मन्दोदरी की भाँति पश्चाताप की अग्नि में जलना पड़ेगा।

(ण) महिषासुर वध :-

(1) मार्कण्डेय पुराण की कथा के अनुसार जब चण्डिका देवी ने क्रोध की आग में जलते हुए महादानव महिषासुर को अपनी ओर दौड़ते देखा तब वह भी उसका वध करने के लिए क्रुद्ध हो उठी। उन्होंने ने तत्काल वरुण से मिले पाशा को उस पर फेंका और उससे उस महिषासुर को जकड़ लिया। उस महासमर में देवी के पाश में बँधें उस महिषासुर ने अपना महिषरूप छोड़ दिया। एक क्षण में उसने अपने को सिंह रूप में बदल लिया और जैसे ही अम्बिका देवी उसका सिर काटने को उद्यत हुई वैसे ही वह हाथ में खड्ग धारण कर मनुष्य रूप में दिखाई देने लगा। तभी बड़ी शीघ्रता के साथ देवी ने ढाल तलवार लिए उस मानुषरूपी महिषासुर को अपने वाणों से विक्षत कर दिया। किन्तु क्षण भर में उसने एक विशाल गजराज का रूप धारण कर लिया और अपनी सूँड से उसने देवी के वाहन महासिंह को पकड़ लिया और अपनी ओर खींचने लगा। परन्तु जैसे ही उसने सिंह को सूँड से पकड़ कर खींचना आरम्भ किया कि देवी ने अपनी तलवार से उसकी सूँड काट दी। उस महिषासुर ने तभी अपना रूप बदल कर महिष रूप धारण कर लिया और समस्त चराचर जगत में खलबली मचाने लगा।

त्रैलोक्य को व्याकुल देखते ही जगन्माता चण्डिका क्रुद्ध हो गई। देवी चण्डिका ने दैत्य द्वारा फेंकी गई चट्टानों को अपने वाणों की बौछार से चूर चूर कर दिया। तभी वह उछल कर उस महिषासुर जो महिष के रूप में था चढ़ बैठी और उसके गले पर पैर जमा कर त्रिशूल का प्रहार किया। देवी के पैर से आक्रान्त महिषासुर अपने मुख के साथ अपने शरीर के अर्द्ध भाग को ही निकाल सका परन्तु देवी के पराक्रम से विस्मित हो जैसा का तैसा पड़ा रहा। शरीर के आधा ही निकला होने पर भी वह महिषासुर देवी से युद्ध करने लगा परन्तु देवी ने अपने विशाल खड्ग से उसका सिर काट दिया और वह भूमि पर गिर पड़ा :-

एवमुक्त्वा सुमुत्पत्य साऽरूठा तं महासुरम्।

पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूले नैनमताडयत्॥

ततः सोऽपि पदाऽक्रान्तस्तथा निजमुखात्ततः।

अर्द्धनिष्क्रान्त एवासाद् देव्या वीर्येण संवृतः॥

अर्द्ध निष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।

तथा महासिना देव्या शिररिच्छत्वा निपातितः॥

देवी माहात्म्य—3.37-39

(2) देवी भगवत (5.18.2-70) के अनुसार महिषासुर सर्वप्रथम मानुष रूप में रणभूमि में प्रविष्ट हुआ। देवी द्वार प्रहार किए जाने पर उसने सिंह रूप बदल लिया और देवी के वाहन सिंह पर प्रहार किया। जब देवी ने सिंह रूपी दैत्य पर प्रहार किया तो उसने गजराज का रूप बना लिया और अपनी सूँड से भारी शिलाएँ देवी पर फेंकने लगा जिन्हें देवी ने अपने वाणों से नष्ट कर दिया। तब दैत्यराज ने शरभ का रूप बदल लिया जिस को आठ टाँगें थी। फिर उसने वृषभ का रूप धारण किया जिसका सिर देवी ने चक्र से काट दिया। स्कन्द पुराण (5.8.1-11) में भी इस बात का वर्णन है कि महिषासुर ने सिंह का रूप भी बदला।

(3) शिव पुराण (उमा सहिता 46.42-52) में भी यह उल्लेख है कि महिषासुर रण भूमि में महिष रूप में ही आया और उसने अपने खुरों एवं सींगों के प्रहार से पर्वत श्रृंखलाओं एवं भूमि को विदीर्ण कर दिया। जब देवी ने उसे पाश से बान्ध दिया तो वह सिंह रूप में आ गया। इसके पश्चात् उसने गजरूप का आश्रय लिया परन्तु फिर वह अपने असली रूप में आ गया तब तक देवी ने महिषासुर को गिरा दिया और उस पर आरूढ़ हो कर महिष के सिर कटे शरीर से मनुष्यरूप में आधे निकलते हुए दैत्य राज का संहार किया :-

एकाभाष्य कूर्दित्वा देवी सर्व कलामयी।

पदाक्रम्यासुरं कण्ठे शूलेनोत्रेण साऽभिनत्॥

तत्स्तच्चरणा क्रान्तस्व स्वकीयमुखात्ततः।

अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीदेव्या वीर्येण संवृतः॥

अर्द्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महाधमः।

महासिना शिरोभित्वा न्यपाति धरणी तले॥

शिव पुराण (उमा सहिता—46.58—60)

(4) मार्कण्डेयपुराण, शिवपुराण तथा अन्य पुराणों के महिषासुर वध के देवी भागवत के साथ तुलनात्मक अध्ययन से पाठ भेद दिखाई देता है। उदाहरणार्थ देवी भागवत में महिषासुर गजराज, सिंह एवं महिष के अतिरिक्त शरभ रूप भी बदलता है परन्तु यह प्रसंग अन्य पुराणों में प्राप्त नहीं है। इस के अतिरिक्त महिषासुर के महिष रूप का सिर मार्कण्डेय पुराण में तलवार से कटता है जबकि देवी भागवत में यह चक्र से कटता है।

(5) वामन पुराण के अनुसार जब देवी द्वारा छोड़ा गया बज्र भी महिषासुर के सम्पर्क से छिन्नभिन्न हो गया तो देवी सहसा सिंह को छोड़कर महिषासुर की पृष्ठ पर आरूढ़ हो गई। देवी के पृष्ठ पर स्थित होने पर महिषासुर वीर्य की मद से उछलेन लगा। वे भी मृदु तथा कोमल चरणों से भीगे मृगचर्म के सदृश उसका मर्दन करने लगी। देवी द्वारा मर्दन किया जाता हुआ वह पर्वताकार महिषासुर बलहीन हो गया। तदनन्तर देवी ने शूल से उसका कण्ठ काट दिया। उसके कटे कण्ठ से एक खड्गधारी पुरुष निकला। उसके निकलते ही देवी ने उसके हृदय पर चरण से आघात कर और क्रोध से उसके बालों को पकड़ कर तलवार से उसका सिर काट डाला। उस समय दैत्यों की सेना में हाहाकार मच गया :-

निष्क्रान्तमात्रं हृदये पदा तम्
आहत्य संगृह्य कचेषु कोपात्।
शिरः प्रचिच्छेद वरासिना ऽस्य
हाहाकृतं दैत्य बलं तदाऽभूत् ॥

वामन पुराण—21.49

(6) देवी ने वराह पुराण के अनुसार अनेकों वर्ष महिषासुर के साथ युद्ध के पश्चात् सौ चोटियों वाले महान पर्वत पर उसे दोनों पैरों से दबा कर शूल से उसे मार डाला। देवी न खड्ग से उस का सिर काट दिया उसके भीतर से एक पुरुष निकला जिसे देवी के शस्त्र ने स्वर्ग लोक पहुँचा दिया।

ततः कालेन महता शतशृंगे महागिरो।
पद्म्यामाक्रम्य शूलेन निहतो दैत्य सत्तमः॥
शिरश्चिच्छेद खड्गेन तत्र चान्तः स्थितः पुमान्।
निर्गत्य विगतः स्वर्गं देवी शस्त्र निपातनात्॥

वराह पुराण—94.50-51

(7) देवी पुराण¹⁷ में देवी द्वारा महिषासुर का वध खड्ग द्वारा उस का सिर करने से वर्णित है।

इस प्रकार उस महा दैत्य महिषासुर का जिसने त्रैलोक्य पर विजय प्राप्त की थी, का अन्त देवी द्वारा हुआ और पश्चात् ही वह महिषासुरमर्दिनी के नाम से जानी जाने लगी। महिषासुर वध का प्रसंग किसी न किसी रूप में अनेको पुराणों में आया है जिसमें मुख्यरूप से यह है :—

(1) देवी भागवत पुराण :-	5. 2. 3-19, 44
(2) मार्कण्डेय पुराण :-	82.1-84. 36
(3) वराहपुराण :-	92.1-95. 65
(4) शिव पुराण :-	5-46; 1-63
(5) वामन पुराण :-	18.39, 21-50
(6) स्कन्द पुराण :-	1 [-3] (i) 10.1-11. 46 3 [-1] 6.1-7.44, 6. 118.1-121.86 7. [-1].83.1-60 7. [-3].36.3-163

महिष्मती :-

महिषासुर की माता का नाम महिष्मती पुराणों में वर्णित है। यह महिष्मती विप्रचित्ति की पुत्री थी जो अपनी सखियों सहित मन्दार पर्वत पर स्थित ऋषि अम्बर के आश्रम में गई तथा वहाँ पर ऋषि को महिषी बन कर डराने लगी। ऋषि ने क्रुधित हो कर महिष्मती को महिषी बन जाने का श्राप दिया जिससे उसकी मुक्ति एक पुत्र को जन्म देने के उपरान्त ही हो सकती थी। इसी महिष्मती की वंशावली वराह पुराण में (94.2-5) में इस प्रकार दी गई है।

ब्रह्मा

सुपर्णाशव

सिन्धुद्वीप

विप्रचित्ति

महिष्मती

महिषासुर

राजकन्या महिष्मती के अतिरिक्त महिष्मती नगरी का विस्तृत वर्णन, इसी रचना के छठे अध्याय में उपलब्ध है।

सन्दर्भ

1. वामन पुराण, 18.40-45
2. देवी महात्म्य, 5.105—114
3. वराह पुराण, 92.21
4. वामन पुराण, 20.25-29
5. देवी भागवत पुराण, 9.32-48
6. स्कन्द पुराण, महेश्वर खण्ड, 10.3—72
7. शिवपुराण, उमा संहिता, 47.24-38
8. Chaudhary R. K., *Kantilya's Political Ideas and Instructions*, P. 343
9. देवीभागवत पुराण, 5. 10. 65-68
10. *Ibid.* 5.10.60-64
11. Chaudhary R. K., *Op cit*, p. 105
12. देवीभागवत पुराण, 5.9.46-59
13. *Ibid.* 5.5.21-35
14. वराह पुराण, 93.2
15. देवीभागवत पुराण, 5.5.16.1-7
16. Law, B. C., *Historical Geography of Ancient India*, P. 134, cal, 1954.
17. देवी पुराण, 20.32

9

संस्कृत साहित्य की देन

भारतीय परम्परा में वैदिक, तथा उत्तर वैदिक साहित्य के अतिरिक्त पुराणों में प्राचीन भारत के धार्मिक चिन्तन की झलक मिलती है जिस में अन्य देवताओं के साथ-साथ शक्ति की आराधना का भी किसी न किसी रूप में विधान है। इनमें से भी पुराणों का विशेष महत्त्व है जिनमें अनेकों पूजाविधियों का वर्णन है जिन में शक्ति पूजा का विशेष स्थान है। मार्कण्डेय, तथा अन्य पुराणों में शक्ति उपासना का विशेष रूप से उल्लेख है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त भी प्राचीन भारत की धार्मिक गतिविधियों का अवलोकन अन्य संस्कृत साहित्य में भी प्राप्त है जिस की रचना समय-समय पर अतीत में उच्चकोटि के लेखकों द्वारा होती रही है। वास्तव में यह साहित्य एक ऐसा झरोखा है जिसमें अतीत की गौरवमय छवि उन साहित्यकारों द्वारा दर्शाई गई है। यह साहित्य भारतीय संस्कृति को विशेष रूप से उजागर करता है जिसमें कई एक पूजा विधियाँ भी सम्मिलित हैं। यह साहित्य ईसा की कई शताब्दियों पूर्व से आरम्भ होकर एक अटूट श्रृंखला के रूप में उपलब्ध है जिसमें अन्य कई विषयों जैसे राजनीतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक तथा भौगोलिक आदि के अतिरिक्त अतीत भारत की धार्मिक मान्यताओं का भी झलक मिलती है। जैसे सागर में अनेकों छोटी बड़ी सरिताओं एवं नदियों का समावेश होता है वैसे ही इस साहित्य में भी विभिन्न देवी देवताओं और उन की मान्यताओं का दिग्दर्शन मिलता है। वैसे यह साहित्य है तो बहुत विशाल परन्तु यहाँ पर केवल कुछ विशिष्ट ग्रंथों का क्रमबद्ध अवलोकन प्रस्तुत है।

गन्थकार	ग्रंथ	समय
१. कौटिल्य	अर्थशास्त्र	चतुर्थ शती ई० पू०
२. शूद्रक	मृच्छकटिकम्	प्रथम शती ई० पू०
३. कालिदास	(१) कुमार सम्भवम् (२) रघुवंश (३) विक्रमोर्वशीयम्	प्रथम शती ई० पू० से ४५० ई०
४. भास	चारुदत्तम्	द्वितीय—तृतीय शती ई०
५. सुबन्धु	स्वप्नवासवदत्ता	छठी शती ई०
६. दण्डिन	दशकुमारचरितम्	छठी शती ई०
७. श्रीहर्ष	नागानन्दम्	सातवीं शती ई०
८. बाण	(१) हर्षचरित (२) कादम्बरी	सातवीं शती ई० " "
९. भवभूति	(१) मालती माधव (२) उत्तररामचरित	" " " "
१०. वाक्पति मिश्र	प्राकृतगौड़वहो	७२५ ई०
११. हेमचन्द्र सूरी	द्वयाश्रय महाकाव्य	१०८८ ई०
१२. बिल्हण	विक्रमांकदेवाचरित	ग्यारहवीं शती ई०
१३. कलहण	राजतरङ्गिणी	" "
१४. जयानक	पृथ्वीराज विजय	" "
१५. बल्लालसेन	भोजप्रबन्ध	" "
१६. सोमेश्वर देव	कीर्तिकौमदी	तेरहवीं शती ई०
१७. विश्वनाथ	साहित्यदर्पण	चौदहवीं शती ई०

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में दो देवियों का उल्लेख किया है। एक तो है अपराजिता जो दुर्गा का ही दूसरा नाम माना गया है। दूसरी है मदिरा। मानियर विलियम ने मदिरा देवी को भी दुर्गा का रूप ही माना है।^१ कुछ भी हो यह तो मानना ही होगा कि देवी की आराधना अपराजिता अथवा मदिरा के रूप में कौटिल्य के समय में खूब प्रचलित थी तभी तो वह उनके मन्दिर बनाने का विधान बताता है।

अपराजिता प्रतिहत जयन्त वैजयन्त कोष्ठकान्

शिववैश्रवणाश्वि श्रीमदिरा गृहं च पुर मध्ये कारयेत्।

अर्थशास्त्र :— 4.24

(अपराजिता (दुर्गा), विष्णु, जयन्त, इन्द्र, इन देवताओं के स्थान तथा शिव, वैश्रवण (वरुण) अश्विनीकुमार, लक्ष्मी और मदिरा इन पाँचों के स्थान नगर के मध्य में ही बनाए जाएँ।)

मृच्छकटिकम्² में दुर्गा देवी चाण्डाल की कुलदेवी के रूप में प्रकट होती है। दशम अंक में चाण्डाल चारुदत्त पर उसके वध के लिए तलवार उठाकर प्रहार करना चाहता है। उसी समय वह अपनी कुलदेवी का स्मरण करता है। एकदम तलवार उस के हाथ से गिर जाती है। वह आश्चर्य में पड़ जाता है कि कैसे क्रोधपूर्वक खींची हुई तलवार कस कर मुट्ठी में पकड़े रहने पर भी, ब्रह्मतुल्य कठोर तलवार पृथ्वी पर गिर पड़ी। चूँकि तलवार धरती पर गिर गई इसी से चाण्डाल अनुमान लगाता है कि चारुदत्त की मृत्यु न होगी। अतः वह सह्यवासिनी देवी का ध्यान करता हुआ प्रार्थना करता है कि चारुदत्त मृत्यु मुख से छूट जाय।

**भगवति सह्यवासिनि प्रसीद ! प्रसीद ! अपि नाम
चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत्।**

मृच्छकटिकम्—10.37

कुमारसम्भव में कालिदास ने पार्वती और शिव के प्रणय को दर्शाते हुए यह सिद्ध किया है कि आत्मसंयम द्वारा समाधि लगा लेने पर शिव ने जो पार्वती से विवाह किया था वह केवल इस लिए था कि उससे होने वाला पुत्र तारकासुर का वध कर सके।

**पुरा मयाकारि गिरीन्द्रपुत्र्या प्रतिग्रहोऽयं नियतात्मनापि।
तत्रेष हेतुः खलु तदभवेन वीरेण यद्वध्यत एवं शत्रुः॥**

कुमारसम्भवः—12.55

परन्तु रघुवंश में तो कालिदास ने प्रारम्भ में ही शिव पार्वती की माता एवं पिता के रूप में आराधना की है —

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरी।

रघुवंश—1.1

विक्रमोर्वशीयम् में राजा परुरवा के उर्वशी से मिलने के साधन रूप हैं भगवती पार्वती के चरणरज से उत्पन्न सङ्गमनीय नामक मणि जिसके धारण करने से प्रियजन से अवश्य भेंट होती है। राजा उसे ले लेता है। पश्चात् उसकी उर्वशी से भेंट होती है।

**सङ्गमनीय रति मणिः शैलसुता चरणरागयो निरयम्।
आवहति धार्यमाणः सङ्गमम चिरात्प्रियजनेन॥**

विक्रमोर्वशीयम्—4.64

चारुदत्त नाटक के प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में विट और शकार से पीछा की गई व्याकुल वसन्तसेना का प्रवेश दिखाया गया है। शकार के कथन से वसन्तसेना को विदित हो जाता है कि समीप ही आर्य चारुदत्त का निवासस्थान है। इसमें वह अपना सौभाग्य तथा आत्मरक्षा की अनुभूति करती है। वसन्तसेना अन्धेरे में निगाह बचाकर खसक जाती है। वह चारुदत्त के घर के द्वार के समीप खड़ी हो जाती है। चारुदत्त विदुषक को मातृदेवियों को बलि अर्पण करने के लिए चौराहे पर भेजता है। (मैत्रेय चतुष्पथे बलिमुपहर मातृभिः - चारुदत्त-अंक—1.)

सुबन्धु ने अपनी कृति स्वप्नवासवदन्ता³ में कात्यायनी देवी को वैताला नाम से भी पुकारा है तथा शुम्भ एवं निशुम्भमर्दिनी भी कहा है। उसी ने महिषासुर का भी नाश किया है।

मार्कण्डेय पुराण में देवी को विन्धवासिनी के रूप में भी स्मरण किया गया है क्योंकि उसका प्रादुर्भाव विन्ध्य पर्वत पर ही हुआ था। दशकुमार⁴ चरित में विन्धवासिनी दुर्गा का विशेष स्थान है। इस में देवी के वरदान से राजा को सन्तान प्राप्ति हुई बताई है तथा उसी की पुत्री ने शैशव काल से यौवन तक अच्छे पति की प्राप्ति की लिए देवी की आराधना की। एक अन्य स्थान पर देवी के मंदिर का उल्लेख है।

नागानन्द नाटक में नायिका भगवती गौरी की आराधना इस प्रकार करती है —

**उत्फुल्ल कमल केसर परागगौरद्युते मम हि गौरि।
अभिवांछित प्रसिध्यतु भगवती युष्मत्प्रसादेन॥**

नागानन्द 1-14

(खिले हुए कमल के केसर की धूलि को भाँति गौरी कान्ति को धारण करने वाली, हे ऐश्वर्य सम्पन्न भगवती गौरी आप मुझ पर दया कीजिए जिससे मेरी कामना पूर्ण हो।)

वाणभट्ट⁵ ने हर्ष चरित में चण्डीकानन का भव्य वर्णन किया है जिसे हर्ष के दरबार में पहुँचने के लिए लांघना होता है। उसी वन में देवी कात्यायनी की मूर्तियाँ वृक्षों पर खुदी हुई थीं। यात्री लोग उन को अर्चना करके ही उस वन को पार करते थे। वसुदेव शरण अग्रवाल का विचार है कि यह वन सोन एवं गंगा नदियों के मध्य में कहीं हो गा⁶।

कादम्बरी⁷ में बाण एक चण्डी मंदिर का वर्णन करता है जो सम्भवतः महिषासुमर्दिनी को समर्पित था। इसी कृति में रानी विलासवती द्वारा चण्डी मंदिर में गुगुलु जलाने का उल्लेख भी मिलता है।

मालतीमाधव के पंचम अंक में कराला देवी का मंदिर है जिसमें मालती को वध के लिए ले जाते हैं। यहाँ पर कपाल कुण्डला तथा अघोरघण्ट

पूजा के लिए आते हैं। दोनों भगवती चामुण्डा को नमस्कार करते हैं। (देवी भगवति, नमस्ते) तथा स्तुति भी करते हैं। उत्तराराम चरित के सप्तम अंक में जब सीता निराश होकर आत्मघात को उद्यत होती है तो देवी पृथ्वी प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर सीता को आदेश देती है कि 'मेरी आज्ञा से दूध छोड़ने के समय तक अपने पुत्रों की देख भाल करो। उसके अनन्तर जैसी रुचि होगी वैसा करूंगी।' (मन्त्रियोगतः स्तन्यत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व। परेण तु यथा रोच्यते तथा करिष्यामि।)

वाकपति⁸ मिश्र ने अपनी कृति गौडवहो में देवी के तत्कालीन भव्य मंदिर का पता बताया है जो विन्ध्य पर्वत पर था। इस क्षेत्र के मूल निवासी भयकर आदिवासी थे जिनसे सभी सभ्य लोग भयभीत थे।

द्वयाश्रय⁹ महाकाव्य में कई देवी देवताओं की अर्चना का विधान है जिनमें दुर्गा भी है। इसे चण्डी रूप तथा शिव की शक्ति का रूप भी दिया है जिसकी वसन्त ऋतु में विशेष रूप से पूजा होती थी।

विक्रमांकदेवचरित (श्लोक-4) में देवी को पर्वत राज हिमालय की पुत्री के रूप में प्रस्तुत किया है जो शिव के अर्द्धनारीश्वर होने पर उनकी वास्तव रूप में अर्द्धांगिनी है।

कल्हण ने राजतरङ्गिणी¹⁰ में भीमा देवी को विशेष महत्व दिया है। जो गंगा के स्रोत से पावन भेदगिरी पर स्थित है। सरोवर में देवी सरस्वती हंस रूप में दिखाई देती है। इस के अतिरिक्त शांदा देवी का भी काफी रोचक वर्णन है। (1.37)

पृथ्वीराजविजय¹¹ में शाकम्बरी का वर्णन है। शाकम्बरी देवी का एक नाम भी है जिसका उल्लेख देवी माहात्म्य में मिलता है। परन्तु इस कृति में शाकम्बरी का उद्गम लवण झील के लिए हुआ है जो विद्याधरों ने राजा वासुदेव को भेंट की।

बल्लाल¹² ने भोज प्रबन्ध में देवी का महामाया के रूप में ध्यान किया है। देवी माहात्म्य में भी महामाया देवी का ही स्वरूप है। (या देवी सर्वभूतेषु, महामायेऽति शब्दिता)। साथ ही उसके मंदिर का भी उल्लेख है।

कीर्तिकौमदी महाकाव्य¹³ आरम्भ में ही अन्य देवों सहित देवी की उपासना मंगलाचरण में करता है। साहित्य दर्पण (1.1) में ¹⁴कविराज ने गिरा देवी सरस्वती की वन्दना की है।

सन्दर्भ

1. Williams Monier. *Sanskrit English Dictionary*. P. 778
2. मृच्छकटिकम्, दशम अंक, Ns.P.ed. P. 282
3. Gray, Louis H. *Vasavadatta*. P. 77 (Delhi-1962)
4. दशकुमारचरित—अध्याय-6
5. हर्षचरित, Kane ed., Chapter-II, P. 26
6. अग्रवाल वसुदेवशरण, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 36.
7. कादम्बरी, ed., parab, P. 144
8. Keith, A. B., *A History of Sanskrit Literature*, PP. 150-151
9. Prabha Chandra. *Historical Mahakavyas*, P. 222 (New Delhi-1976)
10. राजतरङ्गिणी 1. 35
11. Prabha Chandra. *op. cit*, P. 149
12. भोजप्रबन्ध राज्यश्रीटीह का युक्तः, वाराणसी, 1961, पृ०-10
13. Prabha Chandra. *op. cit*, P. 238
14. साहित्यदर्पण, मोतीलाल बनारसीदास ed., P. 2

10

प्राचीन अभिलेखों में देवी का स्वरूप

भारतीय इतिहास (चाहे वह धार्मिक अथवा राजनैतिक हो) में पुरा अभिलेखों का अपना एक अलग महत्व है। साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं प्रजातांत्रिक क्षेत्र में इन अभिलेखों का विशेष स्थान है। इन अभिलेखों के माध्यम से भारतीय इतिहास की ऐसी अनेकों कड़ियों को इतिहासकार जोड़ने में सफल हुए हैं जिस में अन्य पुरा स्रोत पूर्णतः विफल हो गए थे। यह अभिलेख विशेष रूप से मौर्य काल से प्रारम्भ होते हैं और अनेकों भाषाओं जैसे, पाली, प्राकृत संस्कृत, ब्राह्मी, तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं जैसे, तमिल, कन्नड़, तेलगु, बंगला तथा मराठी आदि में उपलब्ध हैं। यह अभिलेख मुख्यतः प्रस्तर खण्डों, शिलाओं तथा ताम्रपत्रों में अंकित हैं।

इन अभिलेखों का मुख्य उद्देश्य जन साधारण को राजाज्ञा के किसी विशेष विषय से अवगत करवाना रहा है। ऐसे अभिलेख प्रस्तर खण्डों अथवा पाषाण शिलाओं पर अंकित किए जाते थे और साधारणतः ऐसी तत्कालीन भाषा इन में प्रयुक्त होती थी जो जन साधारण की समझ में आसानी से आ सके। अनेकों बार यह अभिलेख प्रस्तर प्रतिमाओं अथवा ताम्रपत्रों पर भी अंकित किए जाते थे। ऐसे अभिलेखों का उद्देश्य तत्कालीन शासकों अथवा अन्य धनाढ्य वर्ग द्वारा किए गए दान की साक्षी के रूप में प्रयोग होता था। वास्तव में प्राचीन युग में अनेकों धार्मिक स्थानों, बौद्ध बिहारों अथवा देव मंदिरों का निर्माण हुआ। तथा उन की देखरेख, जीर्णोद्धार तथा पूजा अर्चना के लिए भूमि, स्वर्ण एवं धनादि की व्यवस्था दान द्वारा की जाती थी जो शासक एवं धनाढ्य वर्ग देने में समर्थ था। ऐसे दान को ताम्रपत्रों द्वारा प्रमाणित कर दिया जाता था जिससे दान लेने वालों को भविष्य में कोई कठिनाई न हो।

इन अभिलेखों में विशेषकर ताम्रपत्रों में दान कर्ता नरेश के आध्यादेश के आरम्भ में मंगलाचरण के रूप में स्तुति की जाती थी। इसके अतिरिक्त राजकीय उपाधियों समेत सम्बद्ध नरेशों की वंशावली, उन के पूर्वजों की प्रशासनिक उपलब्धियाँ, उन की विद्वत्ता तथा गोत्र परिलक्षित किए जाते थे। इन अभिलेखों में अनेकानेक देवी देवताओं का वर्णन है जिसमें दुर्गा भी है। इस देवी के पुराणों में अनेकों स्वरूप हैं और पौराणिक साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह देवी अनेक अवसरों पर अपने विभिन्न स्वरूप धारण कर प्रकट हुई। दुर्गा, पार्वती, कात्यायनी, चण्डी, चामुण्डा तथा कौशिकी आदि इसी के स्वरूप हैं। वही नवदुर्गा के रूप में प्रकट होती हैं—

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।

तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकर्म।

पञ्चस्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।

सत्यमं कालरात्रीति महागौरिति चाष्टमम्।

नवमं सिद्धिदातृ च नव दुर्गा प्रकीर्तिता॥

भारतीय अभिलेखों के अध्ययन से देवी के अनेकों स्वरूपों के दिग्दर्शन होते हैं। यह अभिलेख अनेकों भाषाओं में हैं। तथा ईसा की कई शताब्दियों के हैं। इन सभी अभिलेखों का वर्णन इस पुस्तक में करना तो असम्भव ही है परन्तु कुछेक उत्कृष्ट अभिलेखों का कालानुक्रम से व्योरा नीचे प्रस्तुत है :—

समय	अभिलेख	देवी का स्वरूप
१. कन्नड़ भाषा		
(२) ई० ९७८	सोगल अभिलेख ^१ ,...	इस में देवी को उमा रूप में अर्चना की गई है जो शिव की पत्नी है।
(२) ई० ९७८	तैला द्वितीय। निरल्ली के कदम्ब ^२ ..	गणेश जननी गौरी
(३) ई० १०२८	शिलालेख संकिततयां (३-५) जयसिंह द्वितीय का कुलेनूर ^३ ...	चामुण्डा
(४) ई० १०२८	से प्राप्त शिलालेख। सूदीग्राम से प्राप्त विक्रमादित्य ^४	कात्याययनी
(५) ई० ११०२	चतुर्थ का लेख। लक्षमेश्वर के शिलालेख ^५ ...	शिव की पत्नी भवानी
(६) ई ११६५	(पंक्तियां २५-३२) कुरगोड़ से प्राप्त सोमेश्वर ^६	शिव की पत्नी भवानी
(७) ई० ११७२	चतुर्थ का शिलालेख। सूदी ग्राम से प्राप्त कालचूरी ^७ ..	गणेश जननी गौरी

- (८) ई० ११७२
 (९) ई० ११७३
 (१०) ई० ११७९
- शासक संकमा का शिलालेख।
 मदगीहल का शिलालेख^८ ... गणेश जननी गौरी
 कुरगोड़ से प्राप्त राजकुमार^९ शैलेन्द्र पुत्री-पार्वती
 रचमल्ल द्वितीय का शिलालेख
 रोण से प्राप्त राजा संकमा द्वाराभेंट^{१०} ... गजानन जननी गौरी।
 किया गया ताम्र पत्र (श्लोक-२०)

२- तमिल भाषा के अभिलेख

- (१) ई० ९८५
 (२) ई० दसवीं शती
 (३) —
 (४) —
 (५) ई० १०२९
 (६) ई०-१२४९-५०
- तन्जावुर के राजराजेश्वर मन्दिर^{११} ... उमा परमेश्वरी
 की दीवारों पर अंकित शिलालेख।
 सुन्दर चाला का ताम्रपत्र जो^{१२} .. शिव की पत्नी गौरी
 अनबिल ग्राम से प्राप्त हुआ।
 बैकुण्ठ परिमल मन्दिर, उत्तरमल्लूर,^{१३} ... दुर्गाभिष्टारी
 की उत्तरी दीवार का शिलालेख।
 टक्कोलम के जलनाथेश्वर मन्दिर^{१४} ... दुर्गाभिष्टारी
 की उत्तरी दीवार का शिलालेख।
 तिरुवंगलडू से प्राप्त राजेन्द्र चोला^{१५} .. भवानी
 का ताम्र पत्र।
 ग्राम पुडुपलयम (रामनाथपुरम)^{१६} .. गौरी
 से प्राप्त शिलालेख (५३३.६)

३- तेलगु भाषा के अभिलेख

- (१) ई० १००९
 (२) —
 (३) ई० १४०७
 (४) ई० १४११
- कैलाशनाथ मन्दिर, कांञ्जीवराम^{१७} ... दुर्गा
 का शिलालेख
 भीमवरम तालुक (आंध्रप्रदेश)^{१८} से .. कौशिकी
 प्राप्त ताम्र पत्र।
 पंचधारला मे स्थित धर्मलिङ्गेश्वर^{१९} .. पार्वती, दुर्गा
 मन्दिर के सभामण्डप के स्तम्भ
 का शिलालेख।
 दीर्घासी ग्राम (जिला गंजम)^{२०} से .. भगवती, महिषासुरमर्दिनी।
 प्राप्त वनपति के शिलालेख।

४- नन्दी नागरी (कन्नड़)

- (१) ई० २८२४-२५
- विरुपाक्ष के ताम्रपत्र^{२१} .. पार्वती, भवानी

५. बंगली भाषा

- (१) ई० आठवीं शती
 (२) ई० १९६५
 (३) ई० १९७१
 (४) ई० १७३९
- देवखडग की महारानी प्रभावती^{२२} .. सर्व्वाणी देवी (दुर्गा)
 द्वार निर्मित कांस्य प्रतिमा का लेख
 गोसानी देवी मन्दिर, गोसानी मारी,^{२३} .. भवानी
 दीन्हारा, कूचविहार का शिलालेख।
 दक्षिण काली मन्दिर,^{२४} .. श्री श्री काली शंकरा
 नालंका का शिलालेख।
 जगतारिनी मन्दिर, उला, (बीरनगर)^{२५} .. श्रीदुर्गा
 का शिलालेख।

(5) ई० 1742

सिद्धेश्वरी मंदिर, कालना (वरदवान)²⁶ ...श्री सिद्धेश्वरी
का शिलालेख।

(6) ई० 1766

हरिहर मंदिर, आमघाटा, कृष्णानगर,²⁷ उमा
का शिलालेख

(7) ई० 1775

दोलमांचा (बीरभूम) के शिव²⁸ दुर्गा
मंदिर का शिलालेख

(8) ई० 1818

दीनदायिनी मंदिर, उला, (बीरनगर)²⁹ दीनदयामयी
का लिखलेखा

(9) ई० २८४५

हरिहर धाम के मंदिर समूह³⁰ का गौरी
शिलालेख

6—मराठी भाषा

(१) ई० १०६०

दिवें आंगर ताम्र पत्र³¹ कालिका

(२) १०६६

कदम्ब मरूउदेव का सावरगांव³² अम्बा देवी
से प्राप्त शिलालेख

(३) ई०-१२८२

मंगलवेढ का चंद्रिकाई शिलालेख³³ चंडिका

(४) ई० १२५१

अक्षी के यादव रामचन्द्र देव³⁴ का कालिका, त्रिम्बकानी
शिलालेख।

(५) ई० १३५२

सामन्त नागदेव का पल्लिका³⁵ कालिका
ताम्र पट।

(६) ई० १३८८

बहमनी सुलतान फेरोजशाह³⁶ का तुलजा भवानी
शिलालेख।

(७) ई०-११७८

आपेगाँव से प्राप्त विज्ञानेश्वर³⁷ का श्री गिरिजा देवी।
शिलालेख।

7—संस्कृत भाषा

(1) ई० 547-591

भवंर माता मंदिर उदयपुर³⁸ का गौरी
(छोटी सदरी) अभिलेख

(2) ई० छठी शती

मौखारी नरेश अनन्तवर्मन³⁹ का कात्यायनी, महिषासुरमर्दिनी
बिहार स्थित नागारजूनी पर्वत का
शिलालेख

(3) ई० छठी शती

वाराणसी से प्राप्त शिलालेख⁴⁰ भवानी
में भवानी के मंदिर के निर्माण
का वर्णन है।

(४) ई०-६२४

भावनगर, गुजरात से प्राप्त बह्नी⁴¹ शंकरिका (पार्वती)
दान पत्र।

(५) ई० ६६१

शिलादित्य की सोमपाली से⁴² आरण्यवासिनी (वनवासिनी)
प्राप्त शिलालेख

(६) ई०-६६५

वसन्तगढ़ से प्राप्त वर्मलाट का⁴³ दुर्गा, शिवानी, क्षेमार्या, क्षेमंकरी
शिला लेख।

(७) ई०-८२०

देवापाल का नालन्दा से प्राप्त⁴⁴ स्कन्द माता पार्वती
ताम्र पत्र, (श्र्लोक-३१)।

(८) ई०-८२१	कवर्कराज सुवर्णवर्ष के समय ⁴⁵ के ताम्र पत्र	दुर्गा-शिव पत्नी
(९) ई०-नवीं शती	त्रिशिरारपल्ली के गुफा मंदिर के एक ⁴⁶ स्तम्भ पर अंकित शिला लेख	गिरिकन्या (पार्वती)
(१०) ई०-इवीं शती	कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर ⁴⁷ के शिलालेख।	उमा, (ईशा-शिवा)
(११) ई०-८२५	इन्द्रराज तृतीय के ताम्र पत्र ⁴⁸ (श्लोक-७)	भवानी जिसके नूपरों के शब्द से पर्वत श्रृंखला गूँज उठती है।
(१२) ई० ८२८	चालुक्य वंशी राजा भीम द्वितीय ⁴⁹ का ताम्र पत्र।	पार्वती
(१३) ई० ८४२	प्रतिहारवंशी राजा महेन्द्रपाल का ⁵⁰ शिला लेख	इसमें वटयक्षिणी देवी के मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए एक गाँव दान करने का उल्लेख है। इसी में (श्लोक, ३-४) में देवी को महिषासुर को नाश करनेवाली एवं दुर्गा के नामों से पुकारा गया है।
(१४) ई०-८७३	कालचूरी शासक प्रबोध शिव का ⁵¹ चन्द्रेही से प्राप्त शिला लेख (श्लोक-३)	चण्डी
(१५) ई०-८८०	उज्जैन से प्राप्त वाक्पति राजदेव ⁵² द्वितीय का ताम्र पत्र।	पार्वती
(१६) ई०-१०२२	पूर्वी चालुक्य वंशी राजा नरेन्द्र ⁵³ मृगराज के ताम्र पत्र।	कोशिकी (शिव की पत्नी)
(१७) ई०-१०७८	अर्थूना से प्राप्त परमार वंशी राज ⁵⁴ चामुण्डराज का शिलालेख	पार्वती (शिव की पत्नी)
(१८) ई०-१०८७	कुरुसपाल से प्राप्त सोमेश्वर देव ⁵⁵ का शिला लेख (दसवीं पंक्ति)	विन्ध्यवासिनी
(१९) ई०-११५०	चालुक्यवंशी शासक कुमारपाल की ⁵⁶ बड़नगर पशस्ति (श्लोक—६)	चामुण्डा
(२०) ई०-११६१	नागपुर संग्रहालय का नरवर्मन का ⁵⁷ प्रस्तर अभिलेख (नागपुर प्रशस्ति)	उमा
(२१) ई०-११७१	खरोद ग्राम, (विलासपुर, मध्यप्रदेश) ⁵⁸ से प्राप्त रत्नदेव तृतीय के शिलालेख (श्लोक-३५)	दुर्गा के मंदिर के निर्माण का उल्लेख है।
(२२) ई०-१२२३	छत्तीसगढ़ क्षेत्र के कंकर ग्राम से ⁵⁹ प्राप्त ताम्र पत्र।	कात्यायनी
(२३) ई०-११७३	मोडी का जय वर्मदेव द्वितीय का ⁶⁰ प्रस्तर खण्ड का अभिलेख।	ईशप्रिया पार्वती
(२४) ई०-१२६२	चाचिगदेव के सुन्धा पर्वत शिखर ⁶¹ से प्राप्त शिलालेख	पार्वती
(२५) ई० १५वीं शती	विरूपाक्ष के श्रीशैलम के ताम्र पत्र ⁶²	कात्यायनी

उपरोक्त साक्ष्य केवल उदाहरण मात्र ही हैं। अभिलेखों में यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो देवी के दिग्दर्शन किसी न किसी रूप में गुप्तकाल में ही होने आरम्भ हो जाते हैं। सम्राट समुद्रगुप्त के बिहार से प्राप्त स्तम्भ लेख में मद्राया⁶³ का वर्णन मिलता है जो देवी का ही एक रूप है। इसके अतिरिक्त माहेश्वरी, ब्राह्मी, चण्डी, चामुण्डा, वाराही, वैष्णवी, कौमारी एवं चर्चिका आदि मातृकाओं के विभिन्न स्वरूप भी इन अभिलेखों में परिलक्षित होते हैं। इसी संबंध में विष्णुपुराण⁶⁴ के साक्ष्य के अनुसार योगनिद्रा को सर्वप्रथम आधारस्थ देवी माना गया है। पश्चात् वही देवी आर्या, दुर्गा, देवगर्भा, अम्बिका, भद्रा, भद्र काली, मार्या तथा क्षेमकरी रूप में जानी लगी। कालान्तर में आर्या, भद्रा, क्षेमकरी, भद्रकाली, काली, दुर्गा, चामुण्डा, गौरी तथा अम्बा व अम्बिका शिव की शक्ति पार्वती के स्वरूप माने जाने लगी, जबकि लक्ष्मी, वैष्णवी आदि विष्णु की शक्ति के साथ हैं। ब्रह्म की शक्ति ब्रह्मनी अथवा सरस्वती ज्ञान दात्री के रूप में प्रसिद्धि पा गई।

ऐसा लगता है कि गुप्त काल में मातृपूजा को पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी। इस सम्बंध में गंगंधार अभिलेख के श्र्लोक-23 से यह प्रमाणित होता है कि गुप्त सम्राट के मंत्री म्यूराक्ष ने मातृकाओं के मंदिर का निर्माण किया था।⁶⁵

संदर्भ

1. E. I. Vol. XVI, pp. 4-12
2. पूर्वोक्त, Vol. XVI, pp 68 ff
3. पूर्वोक्त, Vol. pp 329-35
4. पूर्वोक्त, Vol. XV, pp 100-107
5. पूर्वोक्त, Vol. XVI, pp 31 ff
6. पूर्वोक्त, Vol. XIV, pp 265-74
7. पूर्वोक्त, Vol. XV, pp. 109-11
8. पूर्वोक्त, Vol. XV, pp. 318-25
9. पूर्वोक्त, Vol. XIV, pp. 275-78
10. पूर्वोक्त, Vol. XIX, pp. 232 ff.
11. S. I. Ins. Vol. II, pp. 18 ff.
12. E. I., Vol. XV, pp. 44—69
13. S. I. Ins., Vol. III, Part-III, IV, p. 335
14. पूर्वोक्त, Vol. III, Part-III, IV, p. 350
15. पूर्वोक्त, Vol. III, Part, III, IV, p. 413
16. पूर्वोक्त, Vol. XXVI, P. 362
17. E. I., Vol. XXI, pp. 28 ff
18. पूर्वोक्त, Vol. IX, pp. 131 ff.
19. पूर्वोक्त, Vol. XIX, pp. 164 ff.
20. पूर्वोक्त, Vol. IV, pp. 314 ff.
21. पूर्वोक्त, Vol. XVII, pp. 193. ff.
22. पूर्वोक्त, Vol. XVII, pp. 357, ff.
23. Bhattacharya A. K. A Corpus of Dedicatory Inscriptions from Temples of West Bengal, pp. 94-95, Pl. XXXVII
24. पूर्वोक्त, Vol. pp. 117-19, Pl. XL.
25. पूर्वोक्त, p. 232
26. पूर्वोक्त p. 135
27. पूर्वोक्त, 164
28. पूर्वोक्त, p. 172
29. पूर्वोक्त, p. 234
30. पूर्वोक्त, p. 243
31. तुलपुले शं० गो०, प्राचीन मराठी का शिलालेख pp. 18 ff. Pane, 1963
32. पूर्वोक्त, pp. 68, ff
33. पूर्वोक्त, pp. 207, ff.

34. पूर्वोक्त, pp. 217, ff.
35. पूर्वोक्त, pp. 276, ff.
36. पूर्वोक्त, Vol. pp. 289, ff.
37. पूर्वोक्त, pp. 337, ff.
38. Sarkar, Two Inscriptions of Gauri, Chahate Sadail Insception-457
39. C. I. I., III pp. 223 ff.
40. E. I. IX, pp. 59 ff.
41. पूर्वोक्त, XXI, pp. 181 ff.
42. पूर्वोक्त, Xx, pp. 97 ff.
43. पूर्वोक्त, IX, pp. 187 ff.
44. पूर्वोक्त, XVII, pp. 310. ff.
45. पूर्वोक्त, XXI, pp. 133 ff.
46. South India Inscreptions, Vol. I, (Pallawa Period) p. 23
47. पूर्वोक्त, Vol. I, (Pallawa Period) p. 23
48. E. I. IX, pp. 24 ff.
49. South Indian Inscreptions (Pallawa Period) pp. 47 ff.
50. E. I. XIV, pp. 176-83.
51. पूर्वोक्त, XXI, pp. 148 ff.
52. Mittal. A. C. Inscriptions of inperial Paramaras Ahmadabad, 1979, pp. 11 ff.
53. South Indian Inscreptions, (Pallawa Period), p. 35
54. E. I., XIV, p. 295
55. पूर्वोक्त, X, pp. 37 ff.
56. पूर्वोक्त, I, pp. 293 ff.
57. Mittal, A. C., पूर्वोक्त,, pp. 155 ff.
58. E. I., XXI, pp. 159 ff.
59. पूर्वोक्त, IX, pp. 166 ff.
60. Mittal, A. C., पूर्वोक्त, pp. 274 ff.
61. E. I., IX, pp. 70 ff.
62. पूर्वोक्त,, XV, pp. 7 ff.
63. C. I. I. Vol. III, (Inscriptions of Gupta Period), p. 135
64. विष्णु पुराण, 5. 1-2
65. C. I. I., Vol. III (Inscriptions of Gupta Period), p. 137

11

अन्य घर्मावलंबियों की दृष्टि में

प्राचीन काल से ही भारत के अनेक देशों से व्यापारिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं जिस कारण से अनेकों विदेशी यहाँ आते रहे हैं और उनमें से कई एक ने तत्कालीन भारत का सजीव चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त मुसलमानों के भारत में आगमन के पश्चात् कई विद्वानों ने मुस्लिम शासकों के बारे में लिखा है जिनमें उनकी अन्य शासकों की विजय आदि का वर्णन है। इन्हीं कृतियों में यदा कदा समकालीन भारत की धार्मिक मान्यताओं का दिग्दर्शन भी प्राप्य है जिनमें देवी की अराधना भी है।

(क) ग्रीक साहित्य

(1) सर्वप्रथम हम स्टोवियस का साक्ष्य लेते हैं। उसके अनुसार एक भारतीय राजदूत तत्कालीन शासक एन्टोनिनस के समय में आया जिसका शासन काल ई० 218-222 था (तृतीय शताब्दी ई०)। यह राजदूत जिसका नाम दण्डमिस कहा जाता है बर्देसेनस से मिला और उसे भारत के बारे में जानकारी दी। इसके अनुसार भारत में सर्वप्रथम शक्ति और शिव पूजा का अर्द्धनारीश्वर रूप में प्रचलन मिलता है।¹

“ They told me further that there was a large natural cave in every high mountain almost in middle of the country. wherein there is to be seen a statue of say ten, or twelve cubits high, standing upright, with its hands folded cross-wise. and the right half of its face was that of a man and the left that of a woman; and in the like manner the right hand and the right foot, and in that the whole right side was male and the left female, so that the spectator was struck with wonder at the combination. as he saw how the two dissimilar sides coalesced in an indissoluble union in a single body. In this statue was engraved, it is said, on the right was the sun, and the left the moon, while on the two arms was artistically engraved a host of angles and whatever the world contains, that is to say the sky, the mountains, and a sea, a river and ocean, together with plants and animals - in fact everything. The Indians allege that the deity had given this statue to a his son when he founded the world as a visible representation thereof. And I enquired, adds Bardisanes of what material this statue was made of, when assured me and others confirmed his words. that no man could tell what the material was, for it was neither gold nor silver, nor brass, nor stone, nor indeed any known substance, but though not wood, it most resembled a very hard wood, quite free from knot. And they told how one of their kings had tried to pluck out one of the hairs about the neck and how blood flowed out. where the king was so struck down with terror that, even with all the prayers of the Brahmans he hardly recovered his senses.”

उपरोक्त मूर्ति का जो विस्तृत वर्णन किया गया है उसकी सही पहचान तो नहीं हो पाई है परन्तु यह बात तो सिद्ध हो जाती है कि अर्द्धनारी स्वरूप में ही सही शिव के साथ शक्ति की आराधना तो प्रचलित थी। यहाँ यह कह देना भी उचित होगा कि अर्द्ध नारीश्वर की प्रतिमा का विधान जो शिल्प शास्त्रों में वर्णित है ऊरोक्त मूर्ति के लक्षण उसी में मेल खाते हैं।²

(ख) चीनी साहित्य

(2) चीनी यात्री फाह्यान (Fa-hian) भारत में 399 ई० में आया और कई वर्षों तक वह बौद्ध विहारों में रहा। उसने भी शिव के साथ पार्वती की पूजा के बारे में लिखा है। सम्भवतः po-lo-yo से उसका आशय पार्वती से ही था।

(3) एक अन्य चीनी यात्री हयून्त्सांग भारत में सातवीं शती में (629 से 664 तक) आया और वह नालन्दा विश्व विद्यालय का कई वर्षों तक स्नातक रहा। उसने अपनी कृतियों में देवी पूजा का साक्ष्य प्रस्तुत किया है। भगवान शिव को भीम रूप में भी स्मरण किया जाता है और पार्वती को भीमा देवी के रूप में। इसी चीनी यात्री के अनुसार “लगभग 50 ली पलूश-के उत्तर³ पूर्व को जाते हुए एक विशाल पर्वत है जिसका आकार शिव की शक्ति भीमा देवी जैसा है। यह पर्वत गहरे नीले रंग का है। लोगों की धारणा के अनुसार यह देवी की प्राकृतिक प्रतिमा है। और समस्त भारत से अनेकों यात्री यहाँ पर आकर एक सप्ताह तक व्रत रख कर पूजा अर्चना करते हैं। कभी कभी देवी प्रकट होकर श्रद्धालुओं की मनोकामना पूर्ण करती है। पर्वत की तलहटी में एक महेश्वर का मन्दिर है जिसमें भस्म रमाए जोगी ध्यान करते हैं।”

यही चीनी यात्री एक अन्य स्थान⁴ पर एक बड़े रोचक अनुभव के बारे में लिखता है जब उसे प्रयाग के समीप कुछ ठगों ने पकड़ लिया और उसे देवी दुर्गा को बलि देना निश्चय किया परन्तु इस भयंकर विपत्ति से उस चीनी यात्री की एक भीषण तूफान ने रक्षा की। इस तूफान से सभी दस्यु गण व्रस्त होकर जान बचाकर भाग गए और चीनी यात्री की दैव ने ही रक्षा की। देवी पर इस संदर्भ में नर बलि देने की प्रथा प्रचलित होने के बारे में संकेत मिलता है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि कुछ तान्त्रिक विद्वानों ने कालिका पुराण के इस श्लोकार्थ जिसमें “छागला शरभाश्चैव नरश्चैव यथाक्रमात्” (कालिकापुराण: 55.5) को नरबलि का द्योतक बताया है। परन्तु यह क्षेपक मालूम देता है क्योंकि कई संस्करणों में “नरश्चैव” के स्थान पर “नव चैव” भी देखा गया है। अतः यह श्लोक नर बलि का द्योतक सर्वथा अमान्य है।

हयून् त्सांग चीनी तुर्किस्तान⁵ में भी भीमा देवी के मन्दिर की ओर संकेत करता है। उसीके अनुसार भीमा देवी की तिघती ग्रन्थों में महादेवी के रूप में पूजा जाती है।

(ग) अर्बी साहित्य

(1) अल्बेरूनी⁶ जिसने भारत की यात्रा ग्यारहवीं शताब्दी में की और भारत की तत्कालीन धार्मिक, भौगोलिक, तथा अर्थव्यवस्था आदि के बारे में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराई इसके अनुसार भीतरी काश्मीर में बोलोर की पर्वत शृंखलाओं के समीप शारदा देवी की काष्ठ की बनी एक भव्य प्रतिमा है जिसकी बहुत मान्यता है और अनेक यात्री वहाँ आराधना के लिए आते हैं।

(घ) फारसी साहित्य

(1) फारसी साहित्य में सर्वप्रथम 'तारीखे यामिनी'⁷ का उल्लेख करना उचित होगा। यह अलउत्वी (1020) की कृति है। जो एक उच्च कोटि का लेखक था तथा सुलतान महमूद का सचिव भी। उसने भारत पर महमूद के आक्रमण का न्योता दिया। कांगड़े के देवी मन्दिर (जिसे भीमा देवी भी कहते) थे, का उसने उल्लेख किया है इसके नामकरण ही कांगड़े को भीम नगर भी कहते थे। अलउत्वी लिखता है कि भारत के समस्त राजा इस देवी की आराधना के लिए आते थे और देवी की मूर्ति बहुत विशाल थी। इसके अतिरिक्त उसने भीमनगर किले के विनाश के बारे में भी लिखा है।

(2) जैनुददीन⁸ बर्नी (1265ई०) में अपनी कृति 'तारीखे फीरोजे शाही' में लिखा है कि फीरोज शाह सुलतान ज्वालामुखी मन्दिर देखने गया था। इस सम्बंध में उसने परस्पर विरोधी प्रचार का उल्लेख किया है जिसके अनुसार मन्दिर में स्थित पुजारियों का कहना था कि सुलतान विशेष रूप से ज्वालामुखी मन्दिर में आया और उसने स्वर्ण छत्र देवी को भेंट किया। परन्तु मुस्लिम घर्माविलम्बियों ने इस बात का खण्डन किया है परन्तु मूर्ति को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाने के बारे में कुछ भी नहीं लिखा। इसका अर्थ तो स्पष्ट है कि सुलतान ने ज्वालामुखी के दर्शन तो किए।

(3) सोलहवीं शताब्दी में भारत पर मुगल शासकों का आधिपत्य था। सम्राट अकबर के समय में अबुलफजल⁹ ने आइने अकबरी का संकलन किया जिसमें उसने हिन्दु उत्सवों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि नगरकोट कांगड़ा का मन्दिर दुर्गा देवी को समर्पित था तथा नवरात्रों में तीर्थ यात्रियों की वहाँ भीड़ रहती थी।

(4) एक अन्य मुस्लिम¹⁰ इतिहासकार फरिस्ता ने अपनी कृति के प्राक्कथन में राजा राम देव का कांगड़ा मन्दिर में जाने का वर्णन किया है। उसके अनुसार रामदेव का उद्देश्य तो कांगड़ा दुर्ग पर अधिकार करना था परन्तु वहाँ के देवी मन्दिर के पुजारियों के परामर्श के अनुसार दोनों राजाओं में मित्रता हो गई और रामदेव पूजा अर्चना करके लौट गया।

(5) सोलहवीं शती के एक अन्य ग्रन्थ नजमुल¹¹ उलूम ने दुर्गा महिषासुरमर्दिनी को अष्टभुजी कहा है।

उन्नीसवीं शती के उर्दू विद्वान सर सैयद अहमद खान ने दिल्ली की प्राचीन स्थलों का अवलोकन किया है। इस में कालका देवी के मन्दिर का बहुत रोचक ढंग से उल्लेख किया गया है जिस में देवी चरित की रेखा चित्र-12 क-ख) व्याख्या में मार्कण्डेय पुराण का हवाला दिया गया है। इस की प्रतिलिपि परिशिष्ट-19 में उपलब्ध है।

संदर्भ

1. Majumdar R.C., *The Classical Accounts of India* Calcutta-1960, p.430
2. Samuel Beal, *Chinese Account of India*, iv p. 418, (F.N.80)
3. Watters Thomas, *On Yuan Chwang's Travels in India* vol. I, p. 221
4. *Ibid.* I, p.360
5. *Ibid.* II, p.303
6. Sachau, Edward. C., *Albiruni's India*, I, p. 117
7. Elliot and Dowson, *History of India as told by its own Historians* vol. II, p. 34
8. *Ibid.* vol III, p. 318
9. *Ain-i-Akbari*, Harratt ed: III, p. 350
10. Elliot and Dowson, *Op.cit.*, vol. vi, p.561
11. Kramrish Stella, *Survey of Paintings in Deccan*, London, 1933, pp. 120-134

12

प्रतिमा लक्षण

इससे पूर्व देवी की पूजा, वन्दना, एवं आराधना के प्रादुर्भाव तथा विकास से सम्बद्ध साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है जिसमें देवी के विभिन्न स्वरूपों के दिग्दर्शन होते हैं। गोपीनाथ राव के मतानुसार¹ जब एक वर्ष की आयु की देवी की आराधना की जाती है तो उसका स्वरूप सन्ध्या होता है। दो वर्ष की आयु का सरस्वती, सात वर्ष की आयु वाली का साम्भवी, नौवर्ष वाली का दुर्गा अथवा बाला, दश वर्ष की आयुवाली का गौरी, बारह वर्ष की आयु वाली तेरह वर्ष की आयु वाली का महालक्ष्मी, तथा 16 वर्ष की आयु वाली का नाम ललिता कहा गया है। कुछ नाम देवी को विभिन्न राक्षसों पर विजय प्राप्ति के उपरान्त मिले हैं, जैसे:-

- (1) दुर्गा- नाम राक्षस के विनाश के उपरान्त ही देवी दुर्गा कही जाने लगी। इस सम्बन्ध में देवीमाहात्म्य का साक्ष्य इस प्रकार है:-

तत्रैव च वदित्वा मि दुर्गमाक्ष्यं महासुरम्।

दुर्गा देवीति विक्ष्याति तदा यास्यम्यहं भुवि॥ 11.46

- (2) भीमा- हिमाचल में भीम रूप धारण कर राक्षसों के विनाश के पश्चात् देवी "भीमा देवी" के नाम से जानी जाने लगी:-

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले।

रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनिना त्राण कारणात्॥

तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्या नम्रमूर्तयः।

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।

- (3) चामुण्डा:- दैत्य सेनापति चण्ड एवं मुण्ड के वध के पश्चात् देवी चामुण्डा नाम से विख्यात हुई।

यस्माच्छण्डं च मुण्डं च ग्रहीत्वा त्वमुपागता।

चामुण्डेति ततो लोके क्षयाता देवी भविष्यति।

देवीमाहात्म्य-7.25.

- (4) महिषासुरमर्दिनी:- महिषासुर के विनाश के पश्चात् देवी महिषासुरमर्दिनी कहलाई।

पुराणों में देवी के अनेको स्वरूप परिलक्षित होते हैं। मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य में उसने स्वयं घोषणा की है कि "वैवस्वत मन्वन्तर" के द्वापर युग के अन्त में तथा कलियुग के आरम्भ में शुम्भ तथा निशुम्भ नाम के दैत्य उत्पन्न होंगे। तब मैं नन्दा रूप में नन्द गोप के घर में जन्म लूँगी और विन्ध्य पर्वत पर निवास करूँगी।

तदुपरान्त द्वापर युग के अन्त में विप्रचित्त वंशी दैत्यों का नाश करूँगी जिससे मेरी दंत पंक्ति रक्तरंजित हो जाएगी। इसी कारण लोग मुझे रक्त चामुण्डा के नाम से स्मरण करेंगे:-

वैवस्वते ऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतरिमे युगे।

शुम्भो विशुम्भश्चैवान्या वृत्पत्स्येते महासुरौ॥

नन्द गोप गृहे जाता यशोध्या गर्भ सम्भवा।

ततस्तो नाशयिष्यामि विन्ध्याचल निरासिनी॥

पुनरप्यति रौद्रेण रूपेण पृथिवी तले।

अवतीर्थ हनिष्यामि वैप्रचित्तान्महासुरान्॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान वैप्रचित्तान्महासुरान्।

रक्तदन्ता भविष्यन्ति दाडिमी कुसुमोपमाः॥

देवी माहात्म्य:-11.38-41

अतः देवी के कई नाम उसकी संहार शक्ति के प्रदर्शन के उपरान्त ही लोक विख्यात हुए हैं। मार्कण्डेय एवं अन्य पुराणों के आधार पर यह स्पष्ट है। कि देवी ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवताओं के तेज से ही प्रकट हुई। इस का मुख्य कारण असुरों का संहार मात्र था। आदि शक्ति एवं परा शक्ति उसका उनादि काल का स्वरूप है। परन्तु फिर परिस्थितियों वश उसी अनेक रूपों में प्रकट होकर असुरों का विनाश करना होता है। वैसे भी देवी की विशिष्टता उसे अन्य देवों की तुलना में शिव के अति निकट ले जाती है। और तान्त्रिक परम्पराओं ने इस सम्बन्ध को अधिक दृढ़ बना दिया है। इसी कारण से कई सन्दर्भों में काली, कात्यायनी, कौशिकी, दुर्गा, चामुण्डा आदि को शिव की पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। देवी के विभिन्न स्वरूपों की झलक हमें देवी प्रतिमाओं में मिलती है।

देवी के साधारण स्वरूप में जिसमें उसे शिव की पत्नी के रूप में दर्शाया गया है, उस की चार भुजाएँ हैं, तीन नेत्र हैं, मस्तक पर करण्ड मुकुट है तथा वह रेशमी वस्त्र पहनती है। उसके दो हाथों में पाश एवं अंकुश है तथा शेष दो वरद तथा अभय मुद्रा दर्शाते हैं। परन्तु यदि उसे शिव के साथ दिखाना हो तो उसके दो भुजाएँ ही होती हैं। इनमें से एक हाथ में कमल होता है तथा दूसरा नीचे लटकता रहता है। देवी की इस

प्रकार की प्रतिमा के दो नेत्र होते हैं तथा वह स्वर्णमयी आभा से युक्त होती है। यह आवश्यक नहीं है कि देवी को द्विभुजा वाली केवल शिव के साथ ही दिखाया जाए अपितु अलग से भी देवी दो भुजा वाली हो सकती है। अतः ऐसी स्थिति में दोनों हाथों में शूल अथवा पाश धारण करती है। परन्तु महिषासुरमर्दिनी दुर्गा के अनेकों स्वरूप हैं तथा वह विभिन्न मुद्राओं में कई एक भुजाओं, शस्त्रास्त्रों, वेशभूषा, मुद्राओं तथा आभूषणों को धारण किए हुए प्रदर्शित की जाती है। चित्र १ (क)-(घ)।

देवी महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाओं के लक्षण कई पुराणों तथा अनेकानेक तन्त्र एवं शिल्प ग्रन्थों में निहित हैं। इनमें से कुछेक का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत है:-

(1) मुखाकृति:- पुराणों के अनुसार देवी समय समय पर अनेको रूप रंगों में प्रकट होती रही है। कभी वह देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए प्रदर्शित की जाती है तो उसका मुख मण्डल अति सौम्य होता है। जब वह असुरों के साथ युद्धरत होती है तो उसके मुखमण्डल की आभा भयावह होती है। कभी कभी वह अपने अधरों पर मन्द मन्द मुस्कान² लिए होती हैं (प्रसन्नानाम्)। कभी उसका मुख³ चन्द्रमा के समान उज्ज्वल होता है तथा ओष्ठ सुन्दर⁴ आभायुक्त है (सुचारु दर्शानां तद्वत्पीनोन्मत्त पयोधरान्)। विष्णु-धर्मोत्तर के अनुसार उसका मुख मण्डल भयावह है। तथा कालिका⁵ पुराण के अनुसार उसके मुख की छटा पूर्ण चन्द्र के सदृश है।

(2) मस्तक एवं केश सज्जा:- मानसार में देवी प्रतिमाओं के अनेक प्रकार के मुकुट एवं केश सज्जा का विधान है। मुख्यतः करण्ड मुकुट, किरीट मुकुट, जटामुकुट, शिरस्त्राण, कुन्तल, केशवन्ध, धम्मिल्ल, तथा अलक चूड़ण इन में विशेष महत्व के हैं। इनमें से पहले चार तो विभिन्न प्रकार के मुकुट हैं तथा शेष केश सज्जा के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनमें से जटामुकुट साधारणतः ब्रह्मा, रुद्र-शिव तथा मनोमोहिनी आदि के सिरों की शोभा को बढ़ाता है। इस में जटाओं को सिर के ऊपर गोलाकार रूप में मुकुट के समान बाँध दिया जाता है। कभी कभी इस पर मणियों की मालाओं की सजावट भी कर दी जाती है। शिव के जटा मुकुट पर कभी कभी एक नरमुण्ड भी देखने को मिलता⁶ है। (रेखा चित्र :- 13-17)

किरीट मुकुट विष्णु अथवा नारायण तथा उसकी शक्तियों के प्रयोग में आता है। मानसार के अनुसार यह एक शंकु रूपी टोपी के समान होता है जिसके ऊपरी भाग में एक गोलाकार घुण्डी रहती है। श्री राव⁷ के अनुसार यह एक शंकु रूपी टोपी के समान होता है जिसके ऊपरी भाग में एक गोलाकार घुण्डी रहती है। श्री राव के अनुसार यह मुकुट कुछ कम महत्व की मूर्तियों में प्रदर्शित किया जाता है। महिषासुरमर्दिनी के लिए करण्ड⁸ मुकुट का विधान कई एक ग्रन्थों में है जिसके ऊपर अर्द्ध चन्द्र सुशोभित होता है। कुछ एक ग्रन्थों में किरीट मुकुट⁹ तथा अन्य प्रकार के मुकुटों का भी विधान है।

(3) नेत्र :- प्रतिमा विज्ञान एवं शिल्प शास्त्रों में देवी को दो अथवा¹⁰ तीन नेत्रों वाला बताया गया है। कभी कभी इन आँखों को नीलकमल के वर्णवाली तो कभी प्रबल तेजोमयी बताया गया है। कभी क्रोध¹¹ से चंचल तो कभी प्रज्वलित¹² अग्नि के समान उनकी उपमा दी गई है। देवी माहात्म्य में देवी को शताक्षी¹³ बताया गया है। उसे सहस्राक्षी¹⁴ भी कहा गया है।

(4) केश:- मार्कण्डेय एवं अन्य पुराणों के अनुसार देवी को यम ने काले केश उसके प्रादुर्भाव के समय प्रदान किए थे। इससे देवी का तरुणी अवस्था का आशय स्पष्ट है। अन्य ग्रन्थ भी केशों का काला¹⁵ तथा घुंघाराले¹⁶ होना दर्शाते हैं। मत्स्य पुराण में देवी के केश जटाओं¹⁷ वाले वर्णित हैं।

(5) आभूषण एवं अलंकार:- आभूषण प्रायः स्वर्ण आदि अनेक धातुओं से बनाने की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। और यही आभूषण देव प्रतिमाओं को भी सुशोभित करते हैं। यह आभूषण विभिन्न प्रकार के रत्नों से भी जड़े हुए होते हैं। हाथी दांत का प्रयोग तो आज भी विभिन्न प्रकार के आभूषणों के बनाने के काम आता है। इन आभूषणों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है।

(१) कर्णाभूषण :- इनमें पत्र कुण्डल, रत्न कुण्डल, नक्र कुण्डल साधारणतः देवी की प्रतिमाओं में देखने को मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कर्णाभूषणों में कर्णपूर (सरस्वती) कर्णिका (काली) मणिकुण्डल (लक्ष्मी) तथा कर्णावली (पार्वती) का प्रावधान भी शिल्प शास्त्रों में मिलता है। (रेखा चित्र - 18-21)

(२) ग्रीवाभूषण:- इनमें निष्क, हार ग्रैवेयक आते हैं। इसके अतिरिक्त कौस्तुभ एवं वैजयन्ती वैष्णव प्रतिमाओं में प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें कण्ठा, लम्बनम, अटकन, तथा किंजलिकनी माला भी देवी प्रतिमाओं को सुशोभित करती हैं। (रेखा चित्र - 22-23)

(३) वक्ष आभूषण :- श्रीवत्स, चन्वीर, कुचवन्ध (परिधान एवं अलंकार, दोनों ही) इस आशय से प्रयोग में आते हैं। (रेखा चित्र - 24-28)

(४) कटि आभूषण :- इसमें कटिवन्ध, मेंखला, और कांचीदाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। (रेखा चित्र - 20)

(५) वाहु एवं हस्ताभूषण :- इनमें कंकण, वलय, केयूर, अंगद, बीजू, मुद्रिका आदि का प्रयोग होता रहा है। (रेखा चित्र - 21)

(६) पादाभूषण :- इस वर्ग में नूपुर, कड़ा तथा मंजीर आदि का विशेष महत्व रहा है। (रेखा चित्र - 22-28)

(6) परिधान :- वस्त्रों में दो प्रकार के वस्त्रों का विशेष महत्व है जिनमें, उत्तरीय तथा अधोवस्त्र का उल्लेख मिलता है। इनमें सब से प्राचीन धोती है। यह उत्तरीय तथा अधोत्तरीय दोनों का काम देती थी। देवी मूर्तियों में इस परिधान का अत्यन्त सजीव चित्रण किया

गया है। इन परिधानों तथा बन्धों का व्योरा विवरण नीचे दिया गया है :-

- | | |
|--------------|------------------|
| (1) हार | (6) कंकण |
| (2) कटिबन्ध, | (7) भुजङ्ग वलय |
| (3) केयूर | (8) पीताम्बर |
| (4) कुचबन्ध | (9) रक्ता वस्त्र |
| (5) मेंखला | |

स्मरण रहे कि देवी के प्रादुर्भाव के समय समुद्र ने उसे दो रक्त वस्त्र प्रदान किए थे। प्राचीन काल से ही भारत में स्त्रियां तीन प्रकार के बिना सिलाई के वस्त्र पहनती थीं जिनमें अन्तरीय सूती वस्त्र होता था तथा उस पर बहुमूल्य कढ़ाई का काम किया हुआ रहता था। कायबन्ध को कमर में इस प्रकार से वान्धा जाता था कि उसकी गांठ सम्मुख रहे। इस के अतिरिक्त उत्तरीय कई प्रकार से प्रयोग में लाया जाता था।

- (7) वर्ण :- पुराणों में देवी को कालिका¹⁸ रूप, स्वर्णमय¹⁹ आमायुक्त तथा अतशी पुष्पो²⁰ के वर्ण का बताया गया है। कालिका पुराण²¹ में उस के वर्ण को चम्पा पुष्पों की संज्ञा दी गई है।
- (8) शारीरिक लक्षण :- देवी का प्रादुर्भाव असुरों के विनाशार्थ ही हुआ था। अतः उसका शारीरिक रूप से बलिष्ठ होना तो अवश्यम्भावी है। अतः पुराणों तथा शिल्प शास्त्रों में उसे स्वस्थ, सुडौल एवं उद्भूत सौन्दर्य की आभा से पूर्ण माना²² गया है। कालिका²³ पुराण तथा सुप्रभेदागम²⁴ में उसके ओष्ठों को कमल की संज्ञा दी गई है।
- (9) आयुध एवं हस्त मुद्राएँ:- देवी का प्रादुर्भाव महिषासुर के वध हेतु स्त्रीरूप में हुआ तथा अनेक देवताओं ने अपने शास्त्रास्त्र देवी को उसकी रक्षार्थ भेंट किए। यह शास्त्रास्त्र दो विभिन्न भागों में विभक्त किए जा सकते हैं:-

(1) विनाशकारी शास्त्रास्त्र : इनमें त्रिशूल, खड्ग, चक्र, अग्नि, गदा, हल, ढाल, पाश, अंकुश, धनुष, बाण, मूसल, शक्ति, वज्र, टड्क, खट्वांग, शक्त्यायुध, परसा, खेटक, दण्ड, भुसुण्डी एवं मुद्रगर मुख्य रूप से अनेकों ग्रन्थों में वर्णित है। इनके अतिरिक्त देवी के लिए कमण्डल, दर्पण, नरमुण्ड, कपाल मधुपात्र तथा अक्षमाला आदि का भी भारतीय धर्म ग्रन्थों में प्रावधान है।

(2) संगीत-वाद्य उपकरण:- इनमें मुख्यतः शंख, डमरु तथा मृदंग, घंटा ही विशेष महत्व के हैं।

इसके अतिरिक्त देवी की प्रतिमाओं में अनेकों मुद्राएँ प्रदर्शित की जाती रही हैं। इन मुद्राओं में दण्ड हस्त, कटिहस्त, गजहस्त, वरद हस्त, अभय हस्त का प्रयोग होता रहा है। सम्राट्गण सूत्रधार में वर्णित ये हस्त मुद्राएँ भरत के नाट्य शास्त्र में प्रतिपादित हस्त मुद्राओं की ही अवतरणा मात्र हैं और प्रतिमा शास्त्र में उनके विनियोग की उदभावना भी। वैसे देवी की प्रतिमाओं में अधिकतर अभय, वरद, तर्जनी एवं कटिहस्त मुद्राएँ ही देखने को मिलती हैं।

R.K.Poduval ने इन हस्त मुद्राओं के तीन बृहद् भाग किए हैं। जैसे वेदिक तान्त्रिक तथा लौकिक। उनका दावा है कि वह कला में 64 मुद्राओं और तन्त्र में 108 मुद्राओं का अनुसन्धान एवं समीक्षा कर चुके हैं। वेद पाठ में आवश्यक हस्त मुद्राओं की परम्परा का आज भी प्रचलित है। पादुवल महाशय ने जिन मुद्राओं का कला प्रदर्शन प्रस्तुत किया है उनमें बहुसंख्यक मुद्राओं का सम्बन्ध पूजा की मुद्राओं से तो है ही, साथ ही साथ पूजक एवं पूजोपचारों से भी है। सम्राट्गण सूत्रधार में प्रस्तुत हस्त मुद्राओं की तालिका इस प्रकार से है :- (रेखा चित्र - 31-35)

(क) असंयुत हस्त :-

पताक, त्रिपताक, कर्तरीमुख, अर्धचन्द्र, अराल, शुकतुण्ड, मुष्टि, शिखर, कपित्थ खटकामुख, सूची मुख, पद्मकोश, हंसवक्त्र, हंस पक्ष, सन्दंश, मुकुल, अर्णनाभ, ताम्र चूड़, सर्प, शिर, मृग शीर्ष, कांगूल, अलपद्म, चंतुर तथा भ्रमर।

(ख) संयुक्त हस्त :-

अञ्जलि, कपोत, ककट, स्वस्तिक, खटक, उत्सङ्ग, दोल, पुष्पुट, मकर, गजदन्त, अवहित्य, वर्धमान।

(ग) नृत्य हस्त :-

चतुश्च, विप्रकीर्ण, पद्मकोष, अरालखटकामुख, आविद्धवक्रक, सूचीमुख, रेचितहस्त, उत्तानवन्वित, अधरिचित, पल्लव, केशबन्ध, लताहस्त, कटिहस्त, पक्षवन्वितक, पक्ष पच्योतक, गरुड़ पक्ष, उर्ध्व मण्डलि, पार्श्वमण्डलि, उरोमण्डलि, उरः पार्श्वार्धमण्डलि।

(10) पाद मुद्राएँ:- वैष्णव ध्रुवभेराओ के याग भोग, वीर एवं आमिचारिक वर्गीकरण की चतुर्विधा में स्थानक, आसन, शयन प्रभेद से द्वादश वर्ग सर्वविदित है ही। तदनुरूप स्थानक (standing) आकृति (posture) से सम्बन्धित पादमुद्राओं के सम्राट्गण की दिशा से छ प्रभेद :- वैष्णवम्, समपादम्, वैशाखम्, मण्डलम् एवं आलीढम् आदि परिगणित किए गए हैं। सम्राट्गणसूत्रधार (अध्याय 80) में स्त्री स्थानक मूर्तियों की भी पाद मुद्राओं का संकेत मिलता है। इन आकृतियों की विवेचना इस प्रकार से है।

(1) वैष्णवम्:- स्थानक चेष्टा के इस नाम में भगवान् विष्णु के आदि देवत्व का संकेत है। विष्णु रत्नाधिदैवतम् - स० सू० 8051 इस स्थानक चेष्टा में पैरों की एक दूसरे से दूरी 2 1/2 ताल होनी चाहिए। अतः एक पंख सम (poised) तथा दूसरा व्यथ्र (a bit in

triangular position) तथा दोनों जंघाएँ थोड़ी झुकी हुई होनी चाहिए।

- (2) समपादम् :- इसमें शरीर सीधा तथा दोनों पांव पर समान रूप से खड़ा होना चाहिए।
- (3) वैशाखम् :- इस चेष्टा में दोनों पैरों की दूरी $3 \frac{1}{2}$ ताल होनी चाहिए जिसमें एक पैर अग्र तथा दूसरा पक्षस्थित हो।
- (4) मण्डलम् :- इसमें पादावकाश 4 ताल, तथा एक पाद व्यग्र तथा दूसरा पक्षस्थित हो।
- (5) आलीढ :- इस स्थानक चेष्टा में आगे फैलाए हुए दक्षिण पैर से पीछे वाले वाम पैर में 5 ताल की दूरी होनी चाहिए।
- (6) प्रत्यालीढ :- आलीढ की एकदम विपरीत अवस्था प्रत्यालीढ है।

- (11) भुजाएँ :— देवी के प्रादुर्भाव के समय अनेकों देवताओं ने उसे अपने आयुध प्रदान किए जिन का प्रयोग हाथों द्वारा ही हो सकता था। ऐसा लगता है कि प्रारम्भ से ही देवी को अनेक भुजाओं वाली शक्ति के रूप में ही जाना गया था। अतः अनेकानेक ग्रन्थों में उसे अनेकों भुजाओं वाली बताया गया है। इस सम्बन्ध में एक बात जो विशेष रूप से विचारणीय है वह यह है कि देवी की मूर्ति का सर्वप्रथम आविर्भाव कुषाण काल में हुआ है। उस काल की मूर्ति में देवी की दो ही भुजाएँ हैं। यही नहीं इन प्रतिमाओं में देवी को महिष की ग्रीवा पकड़कर उसका वध करते हुए दिखाया गया है। अर्थात् महिष की ग्रीवा नहीं काटी गई है। मार्कण्डेय पुराण में इस सम्बन्ध में ये श्लोक विशेष महत्व के हैं।

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽउरूढा तम महासुरम्
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूले नैनमताडयत्॥
ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तथा निजमुखाततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण सवृतः॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासो युध्यमानो महासुरः।
तथा महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः॥

देवीमाहात्म्य—40-42.

अतः सर्वप्रथम महिष के सिर काटने तथा उसमें से महिष का मनुष्यरूप में निकलना इस बात का प्रमाण दिखाई देता है कि देवी की प्रतिमाएँ जिन में देवी को महिष की ग्रीवा उठाकर उसके हनकी की अभिव्यक्ति की गई है वह कहीं इस बात की साक्षी तो नहीं है कि वे देवी की उस काल की प्रतिमाओं को परिलक्षित करती हैं जो मार्कण्डेय पुराण के पूर्व काल की थी। इसी संदर्भ में यह भी कहना युक्ति संगत होगा कि हिमाचल से प्राप्त लाक्षणा देवी की कांस्य प्रतिमा में भी देवी ने महिष की पूँछ पकड़ कर ऊपर उठाया हुआ है। उसमें महिष के सिर काटने का दृश्य नहीं है। यह प्रतिमा मेरुवर्मन के समय की सातवीं शती ई० की है। इसमें देवी की चार भुजाएँ हैं। जबकि देवी की अहिच्छत्र, भीटा, पालेखेडा, नगर (राजस्थान) आदि मूर्तियों जो कुषाण काल की हैं दो भुजाओं वाली हैं। अतः यह तो स्पष्ट है कि देवी की प्राचीनतम उपलब्ध प्रतिमाएँ दो भुजाओं वाली ही हैं। (रेखा चित्र 36-37)

एक अन्य तथ्य जो विशेष रूप से उभर कर सामने आता है वह यह है कि देवी के प्राचीनतम स्वरूप में दो भुजाएँ होते हुए भी किसी प्रकार के शस्त्र का प्रयोग नहीं किया है। इस सम्बन्ध में पाठकों का ध्यान अहिच्छत्र से प्राप्त मृण्मय प्रतिमाओं की ओर आकृष्ट करना होगा। इन का चित्र Ancient Indian-4 plate XLVII (B) में छपा है। इस चित्र में पाँच प्रतिमाओं में से एक सं. 122 विशेष महत्व की है। इसमें देवी ने महिष का अग्रभाग बाएँ हाथ से उठाया हुआ है और दाएँ हाथ से उस पशु की पीठ को सशक्त रूप से दबा रही है। इस प्रतिमा में केवल शरीरिक बल के आधार पर ही वह महिष पर विजय पाना चाहती हैं। इसमें किसी भी अस्त्र का प्रयोग दिखाई नहीं देता है। उसी स्थान से प्राप्त दो (सं. 121, 124) मृण्मय खण्डों में भी देवी द्वारा महिषासुर के हनन का दृश्य है परन्तु इनमें दाएँ हाथ में त्रिशूल का पिछला भाग स्पष्ट दिखाई देता है।

ऊपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मृण्मय खण्डों में उपलब्ध यह देवी का प्राचीनतम स्वरूप हो सकता है जिसे मार्कण्डेय पुराण में एक आख्यान का रूप दे दिया गया। (चित्र 77-78)

देवी की भुजाओं के बारे में विभिन्न ग्रन्थों ने विभिन्न रूप से लिखा है जिनका विवरण इस प्रकार है—

- (1) दो भुजाएँ :—देवी की दो भुजाएँ होने के साक्ष्य का सर्वथा अभाव है। परन्तु ई० की प्रथम शती से छठी सातवीं शती तक देवी की दो भुजाओं वाली प्रतिमाएँ प्राप्त हैं। जैसे कि इससे पूर्व भी कहा जा चुका है। देवी की प्रतिमाएँ जो अहिच्छत्र आदि से प्राप्त हुई हैं उनमें उसे दो भुजाओं वाली ही दर्शाया गया है। कुछेक प्रारम्भिक प्रतिमाओं में उसे बैठे हुए दाएँ हाथ में लिए त्रिशूल से महिष को आघात रत दिखलाया गया है। इलाहाबाद संग्रहालय में रखी हुई एक देवी की प्रतिमा महिष को पूँछ से वाम हस्त से पकड़ कर ऊपर उठाती हुई त्रिशूल से वह महिष को आघात कर रही है। अतः देवी जब दो भुजाओं वाली होती है तो उसके दक्षिण हाथ में त्रिशूल रहता है।

गोपीनाथ राव महोदय का मत है कि यदि देवी को अपने पति (शिव) के साथ दर्शाना हो तो उसे दो भुजाओं से ही सुशोभित किया जाता है। ऐसी अवस्था में उसके एक हाथ में कमल अथवा कतक मुद्रा रहती है जिससे प्रति दिन नया अथवा ताज़ा पुष्प उसमें रखा जा सके। दूसरा हाथ नीचे लटकता रहता है। देवी के इस स्वरूप में उसके केवल दो नेत्र ही रहते हैं, उसका सौन्दर्य युक्त मुखमण्डल और वर्ण स्वर्णमय रहता है। कभी कभी देवी को अकेले में भी दो भुजाओं सहित प्रदर्शित किया जाता है जिनमें त्रिशूल एवं पाश रहता है।

- (2) चार भुजाएँ :—देवी के चतुर्भुज स्वरूप का वर्णन अनेक ग्रन्थों में मिलता है। ऐसी परिस्थिति में देवी के हाथों के शास्त्रों आदि का व्योरा इस प्रकार से है (रेखा चित्र :-38-39) :—

वामहस्त

दक्षिण हस्त

(1) महिष की पूँछ एवं घण्टा

त्रिशूल एवं ³⁰खड्ग

(2) धनुष एवं बाण, अथवा शूल तथा पाश.....

शंख एवं ³¹चक्र

(3) खड्ग एवं त्रिशूल.....

शंख एवं ³²चक्र

(4) नरमुण्ड एवं कमल	मधुपात्र एवं ³³ अक्षमाला
(5) पाश एवं अंकुश	धनुष तथा ³⁴ बाण
(6) पाश एवं अंकुश	अक्षमाला तथा अभय ³⁵ मुद्रा
(7) धनुर्बाण एवं अंकुश	त्रिशूल तथा ³⁶ पाश
(8) अंकुश तथा पाश	वरद तथा अभय ³⁷ मुद्राएँ
(9) पाश एवं खेटक	त्रिशूल एवं ³⁸ खड्ग

(3) षड्भुजी प्रतिमाएँ :— देवी के इस स्वरूप³⁹ की प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव है। इस रूप में देवी चक्र, खड्ग, त्रिशूल, धनुर्बाण, चक्र एवं तर्जनी मुद्रा अपने छः हाथों में धारण करती है।

(4) अष्टभुजी प्रतिमाएँ:—देवी ने इस रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि पाई है और उसके द्वारा धारण किए जाने वाले शस्त्रास्त्र आदि इस प्रकार से है (चित्र-72,76):—

(क) पशु खेटक, शंख एवं वहद मुद्रा बाएँ हाथ में तथा त्रिशूल खड्ग, धनुर्बाण एवं चक्र दाएँ हाथ⁴⁰ में।

(ख) ढाल, शंख, गदा, पाश बाएँ हाथ में तथा मूसल, चक्र, धनुष एवं बाण दाएँ हाथ में।

(ग) घण्टा, त्रिशूल, हल, एवं शंख दाएँ हाथ में तथा मूसल, चक्र, धनुष एवं बाण दाएँ हाथ में⁴¹।

(घ) चक्र, गदा, खड्ग, एवं ढाल दाएँ हाथ में तथा पाश, धनुष, बाण, तथा तर्जनी मुद्रा बाएँ हाथ में।

(5) दशभुजी प्रतिमाएँ:—देवी की दशभुजी प्रतिमाओं का भी पर्याप्त प्रचलन रहा है और उनमें धारण किए हुए शस्त्रास्त्रों की तालिका इस प्रकार से है। (चित्र-75)

वाम हस्त

दक्षिण हस्त

(1) धनुष, पाश, अंकुश, घण्टा एवं परशु

त्रिशूल, बाण, गदा, खड्ग तथा चक्र⁴²

अथवा

त्रिशूल, खड्ग, शक्त्यायुध, धनुर्बाण आदि⁴³

अथवा

त्रिशूल, खड्ग, चक्र, बाण एवं शक्ति⁴⁴

खड्ग, त्रिशूल, चक्र, बाण एवं शक्ति⁴⁵

त्रिशूल, खड्ग, चक्र, बाण, एवं शक्ति⁴⁶

त्रिशूल, खड्ग, चक्र, बाण एवं शक्ति⁴⁷

शूल, खड्ग, वज्र, चक्र, तथा बाण⁴⁸

त्रिशूल, खड्ग, चक्र, गदा, तथा बाण⁴⁹

(2) नागपाश, ढाल, परशु धनुष एवं त्रिशूल

(3) खेटक, धनुष, पाश, घण्टा तथा अंकुश

(4) खेटक, मधुपात्र, पाश, घण्टा एवं अंकुश

(5) खेटक, धनुष, पाश, घण्टा तथा अंकुश

(6) धनुष, परिध, भुशुण्डी, शंख तथा नरमुण्ड

इसके अतिरिक्त अभिलयितार्थ⁵⁰ चिन्तामणि में भी देवी की दश भुजाओं का उल्लेख है परन्तु उनमें धारण किए हुए शस्त्रास्त्रों का व्योरा नहीं दिया गया है। (रेखा चित्र 38(1-12), 39(1-6))

(6) द्वादश भुजी प्रतिमाएँ :— मत्स्य पुराण⁵¹ में देवी को द्वादश भुजाओं वाली कहा गया है। उसके बाएँ हाथों में धनुष, पाश, अंकुश, घण्टा, परशु एवं नरमुण्ड हैं जबकि दाएँ हाथों में देवी त्रिशूल, खड्ग, चक्र बाण, शक्ति तथा खड्ग धारण करती है। उदयगिरि विदिशा से प्राप्त महिषासुरमर्दिनी की गुप्त कालीन प्रतिमा 12 हाथों से युक्त है।

(6) षोडशभुजी प्रतिमाएँ:—शिल्प शास्त्रों में षोडश भुजाओं वाली प्रतिमाओं का उल्लेख कम ही मिलता है परन्तु जितेन्द्रनाथ बैनरजी महोदय ने पश्चिम दीनाजपुर⁵² से एक अठारह भुजाओं वाली प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसके आस-पास अष्ट भुजी तथा 16 भुजाओं वाली महिषासुरमर्दिनी की अन्य प्रतिमाएँ भी देखी जा सकती है। (चित्र-70)

(7) अष्टादश भुजी प्रतिमाएँ:—वामन,⁵³ देवीभागवत,⁵⁴ पुराणों तथा जर्मनाथ⁵⁵ कृत दुर्गापाठ में देवी को अष्टादश भुजाओं वाली कहा गया है। अग्नि पुराण⁵⁶ भी देवी के इसी स्वरूप में उसे नागपाश, खेटक, परशु, अंकुश, घण्टा, ध्वजा, गदा, दर्पण, मुद्गर बाएँ हाथों में तथा त्रिशूल, चक्र, भाला, खड्ग, पाश, खेटक, आयुध, डमरू, एवं शक्ति दाएँ हाथों में धारण किए हुए बताता है। देवी माहात्म्य⁵⁷ के अनुसार देवी अपने 18 हाथों में अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, कमल, धनुष, कमण्डलु, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घंटा, मधुपात्र त्रिशूल, पाश एवं चक्र धारण करती है। राजस्थान के एक चित्र में देवी को अष्टादश भुजी दिखाया गया है। (चि०-82)

(8) विंश भुजी प्रतिमाएँ:— विष्णुधर्मोत्तर में देवी की बीस भुजाओं का वर्णन मिलता है जिनमें वह नागपाश, खेटक, परशु, अंकुश, धनुष, घण्टा, ध्वजा, गदा, दर्पण, मुद्गर बाएँ हाथों में तथा त्रिशूल, खड्ग, शंख, चक्र, बाण, शक्ति, वज्र, डमरू अभयमुद्रा तथा छत्र दाएँ हाथों में धारण करती है। वराह पुराण⁵⁹ भी देवी को इसी स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए उसे धनुष, खड्ग, शक्ति बाण,

माला, गदा, परशु डमरू, घण्टा, मुद्गर, दण्ड, भुषुण्डी, माला, बरछी, ढाल, मूसल, दण्ड, पाश, ध्वजा, तथा कमल धारण किए हुए बताता है। कुछ अन्य ग्रन्थ भी देवी की बीस⁶⁰ भुजाओं का उल्लेख करते हैं।

- (9) द्वात्रिंश-भुजी प्रतिमाएँ:— शिल्प शास्त्रों में इस प्रकार की प्रतिमाओं का उल्लेख तो कम ही मिलता है परन्तु बैनरजी महोदय⁶¹ ने बंगाल से प्राप्त एक महिषासुरमार्दिनी की प्रतिमा का वर्णन किया है जिसके 32 हाथ हैं।
- (10) सहस्र भुजी देवी :— अनेक धर्मग्रन्थों देवी को सर्वशक्तिमयी, जगत जननी कहते हुए उसे सहस्र भुजाओं से भी सुशोभित करते हैं। देवी भागवत⁶² पुराण में देवी को सहस्र भुजाओं वाली कहा गया है।
- (11) भुज वनम्:— प्राचीन भारतीय साहित्य में किसी भी देवी अथवा देवता की शक्ति उस की भुजाओं से आंकी जाती थी। इस सम्बन्ध में “सहस्र शीर्षः पुरुषः सहस्रोक्षाः सहस्र पाद” विशेष रूप से विचारणीय है। इसमें आदि पुरुष को सर्वशक्तिमान मानते हुए उसकी सहस्रों आँखों, भुजाओं तथा पैरों की कल्पना की गई है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में इस मान्यता में कुछ हास हुआ जिस कारण से देवी की प्राचीनतम प्रतिमाएँ केवल दो हाथ वाली ही उपलब्ध हैं। उसी प्राचीन विश्वास को बाण ने चण्डी शतक⁶³ में फिर से प्रज्वलित किया है जब वह देवी की स्तुति करते हुए उसे “भुजवनं” के विशेषण से स्मरण करता है। तात्पर्य यह है कि देवी की भुजाएँ वन में वृक्षों की भाँति फैली हुई हैं अथवा अनगिनत हैं।
- (12) आसन:— पाद मुद्राओं के अर्न्तगत आलीढ एवं प्रत्यालीढ आसनों के बारे में लिखा जा चुका है। ये दोनों आसन देवी के महिषासुर से युद्धरत होने पर प्रयोग में लाए जाते रहे हैं। इसके अतिरिक्त देवी को खड़ी हुई स्थिति में इन आसनों में देखा जा सकता है:—
- (क) समभंग अथवा अभंग:— इसमें देवी को सीधी (erect position) में खड़े हुए दर्शाया जाता है।
- (ख) द्विभंग:— इसमें देवी के स्थानक शरीर में दो स्थानों पर कुछ टेढ़ापन (bends) होता है।
- (ग) त्रिभंग:— इस अवस्था में देवी के स्थानक स्वरूप में शरीर के तीन स्थानों पर झुकाव अथवा टेढ़ापन (bends) होता है। देवी जब सौम्य रूप में हो तो साधारणतः वह समभंग मुद्रा में रहती है। परन्तु द्विभंग अथवा त्रिभंग स्वरूप में तो वह युद्धरत ही दिखाई⁶⁴ देती है। कभी कभी वह सिंह पर आरुढ़⁶⁵ दिखाई देती है तथा कभी वह महिष के सिर के ऊपर विराजमान⁶⁶ रहती है। प्रत्यालीढ आसन में उसका दक्षिण पाद सिंह के ऊपर स्थित होता है तथा वाम पाद महिष के शरीर पर रहता है। (रेखा चित्र-40, क, ख)
- (13) वाहन:— कतिपय ग्रन्थों में देवी का वाहन सिंह दर्शाया गया है। यह सिंह देवी का वाहन मात्र न रह कर युद्ध में उसका विश्वस्त एवं शक्तिशाली साथी भी है। इसीलिए कभी कभी तो देवी को सिंहारुढ़ दर्शाया जाता है तो कभी युद्ध में वह महिषासुर पर सशक्त आक्रमण करता हुआ भी दिखाई देता है। कई एक प्रतिमाओं में वह एक मूक दर्शक की भाँति देवी और महिषासुर के युद्धरत होने पर एक कोने में खड़ा भी दिखाई देता है।
- (14) महिषासुर:— महिषासुर प्राचीन काल में महिष के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है है जिसका साक्ष्य हमें अहिच्छत्र तथा अन्य स्थानों से प्राप्त अवशेषों में मिलता है। परन्तु मार्कण्डेय पुराण में उसने देवी के साथ युद्ध के समय कई अन्य रूप भी बदले हैं। जैसे:—

इति क्रोध सभाध्मातमापतनतं महासुरम्।
 दृष्ट्वा सा चण्डिका कोप तद्वधाय तदाकरोत्॥
 सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
 तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि वद्धो महामृधे॥
 ततः सिंहो ऽभवत् सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
 छिन्नति तावत्पुरुषः खड्ग पाणिरदृशत।
 ततः एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।
 तं सङ्ग चर्मणा सार्द्धं ततः सोऽ मून्महागजः॥
 करेण च मासिहं तं चकर्ष जगर्ज च।
 कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत॥
 ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
 ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
 तथैव क्षोमयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

देवी माहात्म्य -28-83

(जब देवी चण्डिका ने क्रोध की आग में जलते हुए महादानव महिषासुर को अपनी ओर दौड़ते देखा तब वह उसका वध करने के लिए क्रुद्ध हो उठी। उन्होंने तत्काल वरुण से मिले पाश को उस पर फँका और उससे उस महासुर को जकड़ दिया। एक क्षण में उसने अपने को सिंह रूप में बदल दिया और जैसे अम्बिका देवी उसका सिर काटने को उद्यत हुई, वैसे ही वह हाथ में खड्ग धारण कर मनुष्य रूप में दिखाई दिया। तभी बड़ी शीघ्रता के साथ देवी ने ढाल तलवार लिए उस मानुष रूपी महिषासुर को बाणों से विक्षत कर डाला। परन्तु

एक ही क्षण में उसने एक विशालकाय गजराज का रूप धारण कर लिया। अपनी सूंड से देवी के वाहन सिंह को पकड़ कर अपनी ओर खींचकर घोर गर्जन करने लगा। परन्तु जैसे ही उसने सिंह को सूंड से पकड़ कर खींचा वैसे ही देवी ने अपनी तलवार से उसकी सूंड काट दी। तदनन्तर उस महासुर ने फिर अपना रूप बदलकर महिष रूप धारण कर लिया और समस्त चराचर जगत में खलबली मच गई।

उपरोक्त संदर्भ महिषासुर के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इसमें उसके कई वेश बदलने के बारे में लिखा है जिनमें गजराज, सिंह, तथा महिष के अतिरिक्त मानव शरीर भी शामिल है। देवी भागवत पुराण में इनके अतिरिक्त महिषासुर के आठ पैर वाले शरभ का रूप धारण करने का भी वर्णन है। परन्तु देवी की प्रतिमाओं में उसके महिष रूप की प्रधानता ही रही है।

महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाओं में यदि मुख्यरूप से देखा जाए तो उसके चार अथवा इससे अधिक हाथ होंगे जिनमें विभिन्न आयुध धारण किए होंगे। उसके दो अथवा तीन नेत्र होते हैं। शरीर सुन्दर सुडौल एवं स्वस्थ होता है। उसके मस्तक पर किरीट अथवा करण्ड मुकुट रहता है तथा उसके शरीर पर अनेको आभूषण शोभायमान होते हैं। शास्त्रास्त्रों के अतिरिक्त वह अपने हाथों से अभय, वरद, कटिहस्त, एवं तर्जनी मुद्रा भी प्रदर्शित करती है। वह रक्त वस्त्रों से सुसज्जित रहती है। विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित देवी प्रतिमा लक्षण की झलक परिशिष्ट-16 में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त देवी के 108 नामों की सूची, परिशिष्ट- 14 पर अवलोकन की जा सकती है।

संदर्भ

- (1) Gopinatha Rao, T. A., *Elements of Hindu Iconography*, Vol. I, Pt. II, pp. 332-33.
- (2) देवी माहात्म्य, अध्याय-2 ध्यान।
- (3) मत्स्य पुराण, 260 57-58
- (4) मयदीपिका, (As quoted by T. A. gopinath Rao)
- (5) कालिका पुराण 61.12
- (6) Banerjca, J. N., *Development of Hindu Iconography*, P. 286
- (7) पूर्वोक्त, pp. 286-87.
- (8) देवी भागवत पुराण, 5. 18.1-7. मत्स्य पुराण, 260.57-58.
- (9) मत्स्य पुराण, 260 57-58ए कालिका पुराण, 69 12.
- (10) मत्स्य पुराण, 260. 57-58
- (11) प्रपञ्चसारतंत्र, पृ० 229-30.
- (12) प्रपञ्चसारसारसंग्रह, पृ० 229-30.
- (13) देवीमाहात्म्य, 11.45
- (14) पूर्वोक्त, 11. 18
- (15) शिव पुराण, 5.46. 14-18.
- (16) वराह पुराण, 90.16.19
- (17) मत्स्य पुराण 260.57-58. कालिका पुराण, 61.12
- (18) वराहपुराण, 90.17-19.
- (19) विष्णुधर्मोत्तर पुराण
- (20) मत्स्य पुराण 260-57-58
- (21) कालिका पुराण, 61. 13
- (22) मत्स्य पुराण, 260-57 58
- (23) कालिका पुराण, 61-14
- (24) Gopinath Rao . T. A., *Op cit*, Pt. I, Vol. II., P. 340
- (25) Kala, S. C., *Terracottas from Allahabad Museum*, Pl. 197.
- (26) *Ancient India* No., 4, Pl. X
- (27) Gopinath Rao, T. A., *Op cit*, Pt. I, Vol. II, PP. 338-39
- (28) पूर्वोक्त, Pt. I, Vol. II, P. 240
- (29) अंशुभेदागम
- (30) Banerjea, J. N., *Op cit*, P. 498.
- (31) सुप्रभेदागम, अध्याय—40. 1

- (32) देवीमाहात्म्य, अध्याय—4 का ध्यान मंत्र।
- (33) पूर्वोक्त, अध्याय—6 का ध्यान मंत्र।
- (34) पूर्वोक्त, अध्याय—8 का ध्यान मंत्र।
- (35) पूर्वोक्त, अध्याय—9 का ध्यान मंत्र।
- (36) पूर्वोक्त, अध्याय—10 का ध्यान मंत्र।
- (37) पूर्वोक्त, अध्याय—11 का ध्यान मंत्र।
- (38) पूर्वोक्त, अध्याय—12 का ध्यान मंत्र। पूर्व कारणागम अध्याय-12.
- (39) प्रपञ्चसारतन्त्रम्-32-8.
- (40) श्रीप्रपञ्चसारसार संग्रह pp. 320-330 (T. S. S. Library, Thanjavour)
- (41) वराह पुराण, 28.22 24; पूर्वकारणागम-अध्याय-12.
- (42) मत्स्य पुराण, 260-55.
- (43) शिल्परत्न; Gopinath Rao, T. A., पूर्वोक्त, Vol.I, Part II, PP. 345-46.
- (44) रूपमण्डन, अध्याय—27.
- (45) अग्नि पुराण, 50.1.
- (46) रूपावतार (गोपीनाथ राव द्वारा वर्णित)
- (47) मयदीपिका (गोपीनाथ राव द्वारा वर्णित)
- (48) शुल्क द्विजेन्द्र नाथ, प्रतिमा विज्ञान, पृ0-226.
- (49) कालिका पुराण, 61.12-14.
- (50) अभिलषितार्थ चिन्तामणि, 3.1.803.
- (51) मत्स्य पुराण, 260.59-65.
- (52) Banerjea, J. N., *Op cit*, P. 500.
- (53) वामन पुराण, 19.6.
- (54) देवी भागवत पुराण, 5.9.46.
- (55) दुर्गा पाठ-19वीं शती की जर्मनाथ की कृति (यह श्री रणवीरेश्वर पुस्तकालय, जम्मू में प्राप्य है।)
- (56) अग्नि पुराण, 56.16.
- (57) देवीमाहात्म्य, अध्याय—2.
- (58) Banerjea, J. N., *op Cit*, P. 346.
- (59) वराह पुराण, 95-41.
- (60) चण्डीकल्प (श्री तत्त्वनिधि), पृ० 3; विश्वकर्मा शिल्पशास्त्र (चतुर्वर्ग-चिन्तामणि हेमाद्रि कृत)-2. 76; रूपावतार-अध्याय—49
- (61) Banerjea, J. N., *Op cit*, p. 500; Majumdar, *History of Bengal*, Vol. I, pp. 453-54.
- (62) देवीभागवत पुराण, 5.8.46.
- (63) बाण कृत चण्डीशतक, 39—44; Wilkins, W. J., *Hindu Mythology*, 1972, pp. 247-49.
- (64) सुप्रभेदागम-अध्याय—40.
- (65) पूर्वकारणागम-अध्याय—12.
- (66) मत्स्य पुराण-230-59-64.

13

भारतीय कला में प्रस्तुति

मार्कण्डेय पुराण के रचयिता ने देवी माहात्म्य की रचना करते समय देवी को महिषासुर का वध करते समय महिष का सिर काट दिए जाने के पश्चात् असुर को मनुष्य रूप में इसकी कटी हुई ग्रीवा वाले धड़ से निकलते हुए का वर्णन किया है। भारतीय कला में देवी का प्रदर्शन मार्कण्डेय पुराण की परम्परा पर मिलता है जिसमें देवी द्वारा काटे गए सिर के पश्चात् वह असुर मनुष्य रूप में धड़ में से निकलता हुआ दिखाया गया है। परन्तु ऐसा प्रदर्शन तो उत्तर गुप्त काल अथवा मध्य कालीन प्रतिमाओं में मिलना आरम्भ होता है। इससे पूर्व कुषाण काल में देवी की प्रतिमाओं में महिष को देवी, ग्रीवा अथवा पूँछ से उठाए हुए त्रिशूल द्वारा उसका हनन करती दिखाई गई है। इन पूर्ववर्ती प्रतिमाओं में महिष का सिर काटने का सर्वथा अभाव है। इसके विपरीत महिष का सम्पूर्ण शरीर इन मूर्तियों में मिलता है।

ऐसी प्रतिमाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो वह जिन में महिष की ग्रीवा देवी ने अपने बाएँ हाथ से उपर उठाई हुई है और दाएँ हाथ से उसकी पीठ दबाने का यत्न कर रही दिखाई गई है अथवा दाएँ हाथ में पकड़े हुए त्रिशूल से महिष की पीठ पर प्रहार करती दिखाई गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि मार्कण्डेय पुराण की देवी माहात्म्य की परम्परा से पूर्व भी देवी की प्रतिमाओं को बनाने की परम्परा थी। इस सम्बन्ध में वसुदेवशरण¹ अग्रवाल का मत है कि महर्षि मार्कण्डेय ने देवीमाहात्म्य की रचना तत्कालीन प्रचलित दन्तकथाओं अथवा आख्यानों के आधार पर की थी। और अहिच्छत्र,² भीटा, पालेखेड़ा तथा नगर (राजस्थान) से प्राप्त महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाएँ जो ईसा की प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी की हैं इस धारणा की पुष्टि करती हैं कि उस समय में देवी द्वारा महिष के सिर छेदन की परम्परा नहीं रही होगी जिसका भारतीय कला में प्रचलन ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी में अधिक प्राप्य है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि इस काल के पश्चात् सम्पूर्ण महिष को प्रस्तुत करने वाली प्रतिमाएँ सातवीं-आठवीं शताब्दी के पश्चात् सर्वथा लुप्त हो गई क्योंकि इसी परम्परा की अभिव्यक्ति अठारहवीं शताब्दी की एक वसोहली चित्र³ में भी दिखाई गई है। परन्तु उनमें पर्याप्त कमी अवश्य देखने में मिलती है। वैसे तो गुप्त काल में भी देवी की प्रतिमाएँ अधिकतर महिष के सम्पूर्ण पशुरूप को ही दर्शाती हैं। इसी संदर्भ में गुप्तकालीन दो प्रतिमाओं एवं कन्नोज⁴ में मिली गुप्तकालीन प्रस्तर देवी की प्रतिमा तथा हिमाचल की लाक्षणा⁵ देवी की कांस्य प्रतिमा के उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें देवी ने महिष को पूँछ से उठाकर उस पर त्रिशूल से आघात किया है। यही प्रवृत्ति दक्षिण भारत की प्रतिमाओं में भी मिलती है और इस तथ्य की पुष्टि के रूप में सातवीं शती की बीजापुर तथा आलमपुर⁶ से प्राप्त देवी की प्रतिमाओं का उल्लेख किया जा सकता है। (चित्र-1-5)

एक अन्य तथ्य जो विचारणीय है वह यह कि देवी की भुजाओं में वृद्धि किस समय हुई। इसमें तो संदेह नहीं है कि देवी को भारतीय कला सर्वप्रथम दो भुजाओं वाली ही दर्शाया गया परन्तु शीघ्र ही उसकी चार भुजाएँ भी दिखाई जाने लगीं। आशय इस बारे में यह प्रतीत होता है कि जितने अधिक हाथ होंगे उतनी ही अधिक देवी शक्तिशाली होगी। कालान्तर में वह अनेको भुजाओं वाली दर्शाई जाने लगी और इस प्रवृत्ति का आरम्भ गुप्त काल में ही हो गया था जिसका निरन्तर विकास होता रहा तथा मध्य काल में तो यह प्राकाष्ठा पर जा पहुँची।

प्रथम शती ई० पर्यन्त देवी को दो भुजाओं⁷ के साथ ही दर्शाया गया है। इस संदर्भ में अहिच्छत्र, भीटा, पालेखेड़ा, और कौशाम्बी से प्राप्त मृण्मय एवं प्रस्तर प्रतिमाओं का उदाहरण दिया जा सकता है। देवी इन प्रतिमाओं में एक हाथ में त्रिशूल तथा एक में महिष को पकड़े दिखाई गई है। (चित्र-1-3)

मार्कण्डेय पुराण, सुप्रमेदागम एवं पूर्वकारणागम, देवी के चतुर्भुजी रूप की आराधना करते हैं जो शंख, चक्र, पाश एवं अंकुश धारण करती हैं। भारतीय कला में कलाकार भी इन्हीं लक्षणों से युक्त देवी की प्रतिमाओं का निर्माण करता आया है। चतुर्भुजी देवी की मूर्तियों में दो कुषाण कालीन प्रतिमाएँ नगर⁸ (राजस्थान) से प्राप्त हुई हैं। इनका समय प्रथमशती ई० पू० माना जाता है। इनकी प्राचीनता के बारे में विद्वानों में मतभेद है। उसका कारण है कि इनमें से एक प्रतिमा में देवी का वाहन सिंह उपस्थित है। इस सिंह का इतनी अधिक प्राचीन प्रतिमा में होना इन्हें स्वीकार्य⁹ नहीं है। इनका मत है कि सिंह देवी के वाहन रूप में गुप्त काल में ही प्रकट हुआ क्योंकि इस प्रकार की सिंह समेत देवी की प्रस्तुति भीटा, अहिच्छत्र, राजघाट, उदयगिरि (विदिशा), शिवमन्दिर भूमा तथा कारवारन (कायवरोहन) में प्राप्य है।

देवी की मान्यता गुप्त काल में अधिक लोकप्रिय हो गई थी और उसका प्रतीक भूमा से प्राप्त देवी की एक प्रस्तर प्रतिमा से मिलता है जिसमें वह प्रत्यालीढ मुद्रा में महिष पर अपना दक्षिण पाद रखे दिखाई गई है। उसके दोनों वामहस्त खट्वांग धारण किए हैं और दाएँ हाथ में त्रिशूल से वह महिष के पिछले भाग पर प्रहार करती हुई दिखाई गई है।

मार्कण्डेयश्वर¹² मन्दिर, भुवनेश्वर से प्राप्त देवी की प्रतिमा में भी देवी द्वारा महिष को पूँछ से उठाया हुआ है और दाएँ हाथ से त्रिशूल द्वारा महिष को आघात कर रही है। श्रीरंगभ के शिव मन्दिर में देवी की प्रतिमा का समय ई० 620-728 माना जाता है। देवी महिष के कटे सिर वाले धड़ पर स्थित है। उसका वाम पाद भूमि पर है जबकि दक्षिण पाद महिष पर रखा है। साथ ही दो देवी के उपासक उसकी आराधना में लीन एक ओर घुटनों के बल बैठे हैं। उनमें से एक अपना मांस काटकर देवी को अर्पण करता दिखाया¹³ गया है।

मार्कण्डेय पुराण की परम्परा, जिसमें से देवी को महिष का सिर काटने पर उस पर आरूढ़ होने का उल्लेख है गुप्त काल में सम्भवतः उत्तर भारत में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर पाई थी तथा वह मध्य युग में ही अधिक प्रचलित रही। देवी की भुजाओं का विकास भी सर्वत्र समान रूप से नहीं हुआ। इस विषय पर हिमाचल से प्राप्त लाक्षणा देवी की प्रतिमा का उल्लेख अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रतिमा का समय मेरुवर्मन का कहा जाता है। इसमें देवी के चार हाथ होते हुए भी महिष का सिर कटा नहीं है। देवी द्वारा महिष के विनाश का दृश्य इस प्रतिमा में मार्कण्डेय पुराण की परम्परा से सर्वथा अछूता रह कर भी भूमा की परम्परा जिसमें देवी ने महिष को पूँछ से उठा कर त्रिशूल से उस पर आघात किया है,

अधिक निकट है। बैर्नजी महोदय के मतानुसार इन दोनों उदाहरणों में देवी माहात्म्य का प्रभाव दिखाई देता¹⁴ है परन्तु यह वास्तविकता से परे है क्योंकि मार्कण्डेय पुराण में देवी द्वारा महिष का सिर कटने पर उसकी ग्रीवा से महिष का मानव रूप में परिवर्तित होकर निकलने का वर्णन है जो इन दोनों मूर्तियों में नहीं है।

देवी की चतुर्भुजों मूर्तियाँ भारतीय शिल्प कला में विभिन्न स्वरूपों में उपलब्ध हैं। इनमें तो पूर्ववर्णित वह स्वरूप है जिसमें देवी को महिष की ग्रीवा पकड़े हुए दिखाया गया है। यह देवी का प्राचीनतम स्वरूप है। इस स्थिति में देवी त्रिशूल से महिष को आघात करती हुई दर्शाई गई है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ संधोल (पंजाब) तथा इलोरा¹⁵ की गुफाओं से प्राप्त हुई हैं। रामेश्वर गुफा इलोरा से प्राप्त देवी की प्रतिमा चतुर्भुजी होते हुए भी महिष का मुख निचले बाएँ हाथ से पकड़े हुए आलीढ़ आसन में स्थित है। उसका दायाँ पग महिष की पीठ पर रखा है तथा बाएँ पग पर वह खड़ी है। दो मानव प्रतिमाएँ हाथों में ढाल तलवार लिए देवी के दोनों ओर खड़ी हैं। यह मानव रूप में महिष हो सकता है। हेमवती से प्राप्त एक ऐसी ही प्रतिमा की डगलीस बैरट¹⁶ (Douglas Baratt) ने व्याख्या की है। परन्तु इस प्रतिमा में देवी महिष को त्रिशूल द्वारा आघात करती हुई दर्शाई गई है।

अन्य वर्ग की प्रतिमाओं में देवी महिष को पूँछ से पकड़ कर ऊपर उठाती हुई दर्शाई गई है। इस प्रकार की प्रतिमाओं में सिंह उपस्थित नहीं दिखाई देता। देवी अपने बाएँ हाथ में महिष की पूँछ तथा दाएँ हाथ से महिष पर प्रहार करती दिखाई जाती है। परन्तु हिमाचल¹⁷ तथा भूमरा से प्राप्त प्रतिमाओं में अपवाद यह है कि देवी बाएँ हाथों में महिष को पकड़ कर उसी पर त्रिशूल से प्रहार करती दिखाई देती है।

ऐसा लगता है कि देवी माहात्म्य का प्रभाव मूर्तिकारों पर सातवीं आठवीं शती से होना आरम्भ हो गया था। तभी तो मध्य युग के आरम्भ में देवी की प्रतिमाओं में महिष कटे सिर से दानव, मानव रूप में निकलता दिखाई देता है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ¹⁸ जनेश्वर (अलमोड़ा) तथा अन्य कई स्थानों से प्राप्त हुई हैं। यहां पर एहोल¹⁹ की एक प्रतिमा विशेष ध्यान देने योग्य है क्योंकि उसमें द्विदेहक असुर महिष के कटे सिर वाले धड़ से बाहर निकल रहा है। उसका शरीर तो मनुष्य का है परन्तु सिर महिष का है। पंजाब से प्राप्त एक मृण्मुद्रा पर भी इसी प्रकार का दृश्य है। छतरारी (हिमाचल) के भीति चित्र में तो एक आश्चर्य जनक दृश्य है जिसमें महिष के देवी द्वारा काटे गए सिर को सिंह मुंह में दबाए लिए जा रहा है।

दक्षिण भारत में देवी द्वारा गिराए गए महिष के कटे हुए सिर से मानव रूप में निकलते हुए असुर को दशानि की परम्परा पल्लव नरेशों के राज्य काल में अधिक लोकप्रिय हुई। इस प्रकार की प्रतिमा वृहदीश्वर²⁰ मन्दिर में प्राप्य है। चतुर्भुजी देवी अपने हाथों में चक्र, शङ्ख, अभय एवं कटिहस्त मुद्राएँ धारण किए हैं। इसी प्रकार की एक प्रतिमा अर्केश्वर मन्दिर, अहर²¹ में स्थित है।

चतुर्भुज देवी की प्रतिमाओं का एक विशेष वर्ग दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित रहा है जिसमें देवी को सौम्य रूप में सीधे-अभंग, द्विभंग अथवा त्रिभंग मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ मध्य युग में अधिक प्रचलित रही हैं। इनमें चतुर्भुजी देवी के दाएँ हाथों में चक्र तथा अभय मुद्रा तथा बाएँ हाथों में शंख एवं कटिहस्त मुद्राएँ दर्शाई गई हैं। देवी महिष के सिर के ऊपर खड़ी दिखाई देती है। सम्पूर्ण प्रतिमा में महिष का सिर ही देवी को महिषासुमर्दिनी होने का बोध कराता है। ऐसी प्रतिमाएँ अन्य स्थानों के अतिरिक्त अर्केश्वर मन्दिर, मैसूर; भोगनन्देश्वर मन्दिर नन्दी; तिरुविलेगुडी शिव मन्दिर, सरीयूर (जिला त्रिची); मुकुन्दमीश्वर मन्दिर कालाथूर, (चिंगलपट); एकाम्बेश्वर मन्दिर, सेतूर (पांडीचरी); शिवस्तनेश्वर मन्दिर, कांचीपुरम, (चिंगलपट); स्वयंभूनाथ स्वामी मन्दिर, नेदुगंदूर, तथा ईश्वर मन्दिर, धन्यकरकोटाई (कोडम्बेटूर) प्रमुख हैं। इनमें से प्रायः सभी मूर्तियों में देवी को अभय एवं कटिहस्त मुद्राओं में दिखाया गया है परन्तु ईश्वर मन्दिर वाली प्रतिमा में देवी वरद एवं अभय मुद्राएँ धारण किए हुए हैं। इसके अतिरिक्त देवी अनेकों आभूषणों एवं करण्डमुकुटे से सुशोभित है। उत्तरीय तथा अधोवस्त्र भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। शरीर स्वस्थ एवं सुडौल है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्तिकार ने इन प्रतिमाओं को बड़ी लगन एवं उत्साह से रचा है और उसे मानव शरीर रचना का पूर्ण ज्ञान था नहीं तो इतनी कलात्मकता से मूर्ति को सजीव बनाना कठिन है। इसी सम्बन्ध में वृहदीश्वर मन्दिर, तेन्जोर से प्राप्त प्रतिमा का उल्लेख भी युक्ति संगत होगा क्योंकि उसमें विशेषता यह है कि महिष के जिस सिर पर वह खड़ी है वह भय से खुला हुआ है और उसकी आँखें बाहर निकलती दिखाई गई हैं। एक अन्य विशेषता इसमें यह है कि देवी के हाथ अभय मुद्रा, चक्र एवं शंख तो धारण किए हैं परन्तु कटि हस्त के स्थान पर नीचे का बायाँ हाथ आगे को आधा खुला दिखाया गया है। ऐरावतेश्वर मन्दिर, तेन्जोर से प्राप्त प्रतिमा में देवी के साथ सिंह भी उपस्थित है तथा वह कटिहस्त मुद्रा में त्रिभंग स्थिति में खड़ी है। (चित्र-1, 6, 15)

चतुर्भुजी देवी प्रतिमाओं में एक वर्ग ऐसा भी है जिसमें देवी माहात्म्य की परम्परा प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है। नवीं शती ई० की अबनेरी से प्राप्त प्रतिमा में देवी के मुख पर मुस्कान है तथा वह आलीढ़ आसन में दायाँ पग महिष के सिर कटे धड़ पर रखे हुए उसपर त्रिशूल से आघात कर रही है। महिष की कटी ग्रीवा से मनुष्य रूप में असुर बाहर निकल रहा है परन्तु देवी ने अपने बाएँ हाथ से उसका सिर इतनी तीव्र शक्ति से दबाया हुआ है कि उसका सम्पूर्ण शरीर ही दोहरा हो गया है। महिष का कटा हुआ सिर नीचे भूमि पर पड़ा है तथा देवी का वाहन सिंह भी महिष को पीछे से आक्रमण कर रहा है। कुछ इसी प्रकार की ही देवी की प्रतिमाएँ इलोरा से प्राप्त हुई हैं।

उत्तर मध्य युग की हाम्पी से प्राप्त प्रतिमा में देवी प्रत्यालीढ़ आसन में महिष पर अपना बायाँ पग रखे हुए, दाएँ हाथ में धारण की त्रिशूल से आघात कर रही है जिसका मुख उसने निचले बाएँ हाथ से पकड़ कर ऊपर खींचा हुआ है। (देवी का वाहन सिंह उसके पास खड़ा है)। मुकुन्दमीश्वर मन्दिर, कालाथूर (चिंगलपट) से प्राप्त प्रतिमा में देवी आलीढ़ आसन में महिष पर स्थित है; यह प्रतिमा पर्याप्त क्षतिग्रस्त है। परन्तु धारवार (कर्नाटक) से प्राप्त प्रतिमा में अछूता दृश्य प्रस्तुत किया गया है। इसमें देवी के चार हाथ हैं। ऊपर के दोनों में शंख तथा चक्र हैं। नीचे के दाएँ हाथ में त्रिशूल है जिससे वह मनुष्य रूप में दानव पर आघात कर रही है जिसका सिर उसने अपने निचले बाएँ हाथ में पकड़ रखा है। महिष पशु रूप में बैठा हुआ है तथा उसके नीचे भी मनुष्य रूप में असुर गिरता दिखाई देता है। देवी की दाईं ओर भी एक मानव आकृति हाथों में ढाल तथा खड्ग लिए युद्धरत दिखाई गई है। भुवनेश्वर से प्राप्त एक खण्डित प्रस्तर प्रतिमा में देवी को महिष को पूँछ से उठाए हुए दर्शाया है। उड़ीसा से प्राप्त कांस्य प्रतिमा में भी देवी ने महिष को पूँछ से पकड़ रखा है परन्तु असुर मानव रूप में उपस्थित नहीं है। यहीं चित्रण, देवी की लाखामण्डल से प्राप्त प्रस्तर प्रतिमा में भी है। अघोresh्वर मन्दिर, लक्केरी (शिमोगा) से प्राप्त प्रस्तर प्रतिमा में महिष का मुख देवी के बाएँ हाथ में पकड़ा है और दाएँ

हाथ से उस पर त्रिशूल से आघात कर रही है। महिष के सिर एवं मानव देह वाला एक द्विदेहक दाईं ओर सिंह दुबक कर बैठा है। नेपाल से प्राप्त एक चित्र में महिषासुर देवी के साथ मानव देह से युद्ध कर रहा है तथा महिष पशु रूप में उपस्थित नहीं है। (चित्र-19-26)

षडभुजी देवी की प्रतिमाएँ अधिक प्राप्य नहीं हैं न ही उनका अधिक उल्लेख ही ग्रन्थों में मिलता है। फिर भी प्रपञ्चसारतन्त्र तथा प्रपञ्चसारसार संग्रह में देवी की छः भुजाओं वाली कहा गया है। अतः इस रूप में देवी शंख खड्ग, त्रिशूल तथा धनुर्वाण धारण करती है। मथुरा संग्रहालय में अनेकों कुषाण कालीन²² देवी की प्रतिमाएँ हैं जिनमें देवी को षडभुजी दिखाया गया है। उन सभी में देवी ने महिष की ग्रीवा तोड़ने हेतु इसे पकड़ रखा है। एक विशेषता उसमें यह है कि देवी का वाहन सिंह किसी में भी उपस्थित नहीं है। इन्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, में भी एक ऐसी ही प्रतिमा है जिसमें देवी के छः हाथ²³ हैं। (No. 8622) कुषाण काल की ही एक प्रस्तर प्रतिमा बेसनगर से प्राप्त हुई है जिसमें देवी के छः हाथ²⁴ हैं। परन्तु इस प्रतिमा को सी अग्रवाल महोदय ने पाँचवीं शती की कहा²⁵ है।

तिरुअलंदरी²⁶ महादेव मन्दिर, किप्पलवर के अर्द्ध मण्डप के गलियारे में एक देवी की प्रतिमा छः हाथ वाली है। जो महिष के मस्तक पर खड़ी है। इसी प्रकार की एक प्रतिमा अचिलेश्वर मन्दिर, तिरुवरूर²⁷ में भी है। कामेश्वर मन्दिर त्रिभुवनम् में षडभुजी प्रतिमा में देवी को चक्र, शंख, ढाल, अभय एवं कटि हस्त मुद्राएँ धारण किए हुए महिष के कटे मस्तक पर खड़े दिखाया गया है। दारासुरम् के ऐरावतेश्वर मन्दिर की प्रतिमा के दाएँ हाथों में शंख, खड्ग, अभय मुद्रा है तथा बाएँ हाथों में शंख, चौरी (?) एवं कटिहस्त दर्शाए गए हैं। देवी महिष के मस्तक पर आरुढ़ है। इस प्रतिमा की शोभा देखते ही बनती है। देवी के प्रत्येक अंग प्रत्यंग बहुत सुन्दर एवं आकर्षक ढंग से गढ़े गए हैं और वास्तविकता की प्रत्यक्ष झलक प्रदान करते हैं। देवी के मुख मण्डल पर मन्द मन्द मुसकान है, सिर पर करण्डमुकुट शोभायमान है तथा कंकण, कुण्डल, केयूर, पायल एवं नूपुर आदि सभी आभूषणों से देवी को अलंकृत किया गया है। वह बहुत ही महीन (transparent) वस्त्रों से सुसज्जित है। महिष के मस्तक पर भय के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। वृहदीश्वर मन्दिर, गंगाईकोण्डाचोलापुरम्, की देवी की मूर्ति भी इसी प्रकार की ही है परन्तु सिंह देवी के दाईं ओर खड़ा है। (चित्र-27)

राजस्थान के जगत नामी स्थान से प्राप्त देवी की बडमुजी प्रतिमा उग्र रूप में असुर के मस्तक को काट कर उसमें से मानव रूपी असुर को निकलते हुए दर्शाती है। देवी का वाहन सिंह भी इस युद्ध में सम्मिलित है।

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली की मालवा की सत्रहवीं शती के एक चित्र में देवी को छः हाथ वाली तथा सिंह पर आरुढ़ दिखाया गया है। महिष का पशु शरीर कटे धड़ समेत सामने पड़ा है। तथा असुर मानव देह पर पशु मुख तथा शृंग धारण किए देवी के साथ युद्धरत है। महिषासुर का एक अन्य सैनिक भी धनुर्बाण लिए देवी पर आक्रमण करते दिखाई देता है। कुछ योद्धा रणभूमि पर धराशायी हो गए हैं। देवी अपने पाश से एक असुर योद्धा को बाँध कर खींच रही है। एक विचित्र बात जो इस चित्र में देखने को मिलती है वह यह है कि हनुमान भी अपनी गदा लिए राक्षासों से युद्ध करता हुआ दिखाया गया है जिसका किसी शिल्प (चित्र-28) शास्त्र में विधान नहीं है।

अनेकों पुराण एवं अन्य ग्रन्थ देवी के अष्टभुजी रूप की वन्दना करते हैं जिनमें वराह पुराण, देवी माहात्म्य, तथा शिल्प रत्न, पूर्वकारणगम आदि कई ग्रंथ मुख्य हैं। इस अष्टभुजी स्वरूप में देवी मुख्यतः पाश, शंख, त्रिशूल, खड्ग, धनुर्वाण, चक्र एवं गदा के साथ वरद, अभय, कटिहस्त तथा तर्जनी मुद्राएँ धारण करती है। इसमें सन्देह नहीं कि देवी की मूर्तिकला में प्रस्तुति कई धर्म ग्रन्थों में व्यापक रूप से प्रतीत होती है, परन्तु कलाकार अपनी रुचि के अनुसार देवी के विभिन्न रूप दर्शाता आया है। इसका कुछ विवरण नीचे प्रस्तुत है।

देवी माहात्म्य में देवी की परम्परागत प्रतिमाओं में उसे महिषासुर के महिष रूप में कटे सिर से दानव को मानव रूप में निकलता कहा गया है। परन्तु कलाकार ने महिष की स्थिति कई प्रकार से अपनी कला में प्रदर्शित की है।

(1) पशु रूप में महिष:-

जगत से प्राप्त दसवीं शती की एक प्रस्तर प्रतिमा में देवी को आलीढ़ आसन में महिष पर अपना दायँ पग रखे दर्शाया गया है। महिष खड़ा है तथा उसका खुला हुआ मुख देवी ने ऊपर उठाया हुआ है। देवी के बाएँ हाथ का अंगुष्ठ महिष के मुँह में है तथा दाएँ हाथ में स्थित त्रिशूल महिष के शरीर में प्रवेश कर चुका है तथा उसका थोड़ा भाग बाहर दिखाई देता है। (चित्र-29)

(2) द्विदेह धारी महिष:-

महिष को पशु के अतिरिक्त द्विदेह धारी भी दर्शाया जाता रहा है जिसमें उनका सिर महिष के सींगों से युक्त होता है अवस्था मानव देह पर महिष का मुख होता है। एलोरा की गुफाओं में देवी की एक प्रतिमा शिला पर बनी है जिसमें सींग युक्त मानव देह वाला महिष उपस्थित है तथा देवी उसे सिर से पकड़ कर ताड़ना दे रही है।

थन्जावर से प्राप्त देवी की मूर्ति में भी महिष इसी प्रकार दिखाया गया है परन्तु उसके सिर पर सींगों के साथ करण्ड मुकुट भी है तथा सिंह भी असुर पर आक्रमण कर रहा है। देवी ने अपना दायँ पग महिष की पीठ पर रखा है जो दाएँ हाथ में खड्ग तथा बाएँ हाथ में ढाल लिए है। (चित्र-30-31)

दक्षिण भारत से प्राप्त हुई एक गच्च प्रतिमा में भी महिष की यही स्थिति है परन्तु उसके सींग नहीं हैं जबकि सिंह पर करण्ड मुकुट तो है ही। देवी के अन्य आयुधों के अतिरिक्त दाएँ हाथ में एक डमरू भी हैं। देवी की भुवनेश्वर से प्राप्त प्रतिमा में महिष के सींग हैं और देवी उसे मनुष्य रूप में ही दाएँ हाथ में त्रिशूल से आघात पहुंचा रही है। हैदराबाद से प्राप्त देवी की प्रतिमा में महिषासुर महिष के सिर से युक्त मानव देह धारी प्राणी है। उसके बड़े सींग हैं जिनमें से एक सींग को पकड़ कर देवी उसकी वक्षस्थल पर त्रिशूल से प्रहार कर रही है। इन्डियन म्यूजियम, कलकत्ता से प्राप्त एक कांस्य प्रतिमा में भी महिष को मानव रूप में प्रकट किया गया है। उसके सिर पर मुकुट है तथा देवी ने उसे बाएँ हाथ में उसके केशों से पकड़ रखा है और दाएँ हाथ से उस पर त्रिशूल से आघात कर रही है। (चित्र-32,35)

(3) महिष को टाँगों से उठाए हुए।

खजुराहो से प्राप्त एक प्रस्तर प्रतिमा में महिष को एक अदभुत रूप में दिखाया गया है। इसमें देवी ने महिष को बाएँ हाथ से पिछली दोनों जंघाओं से उठाया हुआ है तथा उसका शरीर उलट गया है जिससे देवी की त्रिशूल (जो अब दूट गई है,) महिष के पेट में आघात कर रही है। महिष की ग्रीवा तथा सिर भी पीछे को बल खा गए हैं तथा दाईं ओर से सिंह उस पर आक्रमण करता हुआ दिखाई देता है। (चित्र-36)

(4) महिष पशु तथा मनुष्य रूप में उपस्थित

हाम्पी से प्राप्त एक प्रस्तर प्रतिमा में महिषासुर मुख्य रूप से हाथों में ढाल एवं तलवार लिए एक साधारण मानव है जिसके मुकुट युक्त सिर पर देवी ने आलीढ़ आसन में अपना दाँया पग रखा है। परन्तु पशु रूप में महिष का सिर दाईं ओर कोने में देखा जा सकता है। इसी स्थान से प्राप्त एक अन्य प्रतिमा में देवी का मुख्य रूप से आक्रमण तो माव रूपधारी असुर पर ही है जिस पर वह अपना दायाँ पग आलीढ़ आसन में रखे है परन्तु साथ ही महिष पर भी खड्ग से प्रहार कर रही है। देवी का वाहन सिंह भी असुर से बाईं ओर युद्धरत है। (चित्र-37-38)

(5) अछिन्न मस्तक वाला महिष।

एक अन्य वर्ग की प्रतिमाओं में पशुरूप में महिष तो उपस्थित है परन्तु देवी ने उस पर आघात न कर केवल आलीढ़ आसन में अपना दायाँ पग महिष की पीठ पर रखा है और मनुष्य रूप में असुर पर प्रहार कर रही हैं। इस प्रकार की प्रतिमाएँ होयशाल कालीन हैं जो माण्ड्या में मिली हैं। महिष का यही स्वरूप नागहल्ली तथा हालिबिडु से प्राप्त देवी की प्रतिमाओं में मिलता है परन्तु अन्तर केवल यह है कि देवी प्रत्यालीढ़ आसन में स्थित अपना वाम पाद महिष के ऊपर रखे हुए है। (चित्र-39,40,41,42,43)

(6) देवी का पग चाटता हुआ महिष

बिल्ली से प्राप्त एक प्रस्तर प्रतिमा में तो मूर्तिकार की भावना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई मालूम होती है क्योंकि इसमें मूर्तिकार ने पशु रूप में महिष को देवी के बाएँ पग का तलुआ चाटते हुए प्रस्तुत किया है जो कि अपने आप में एक अदभुत दृश्य है। इस प्रकार का उल्लेख किसी धर्म ग्रन्थ में नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि कलाकार ने पशु को पालतू बनाने का प्रयत्न किया है। एक अन्य विशेषता इस प्रतिमा में यह है कि असुर को महिष की पीठ से उभरते दिखाया गया है जिसके शरीर में देवी ने अपना खड्ग घोंप दिया है। (चित्र-44)

(7) महिष का आधा कटा सिर

कुछ प्रस्तर प्रतिमाओं में दानव को पशु रूपी महिष के आधे कटे सिर से मनुष्य रूप में उभरता दिखाया गया है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ उदयपुर, हालिबिडु एवं वेल्लोर से प्राप्त हुई हैं। (चित्र-45,46,47,48)

(8) देवी माहात्म्य की परम्परा

देवी की प्रतिमाओं में एक वर्ग ऐसा भी है जिसमें देवी को देवी माहात्म्य की परम्परा के अनुसार महिष का वध करते दिखाया गया है। ऐसी मूर्तियों में देवी पशु रूपी महिष के सिर कटने के पश्चात् दानव मनुष्य रूप में पशु की ग्रीवा से बाहर निकलता हुआ दर्शाया जाता है तथा देवी उस पर त्रिशूल से प्रहार करती है। देवी की ऐसी अष्टभुजी प्रतिमाएँ आगरा, माधवपाश(बंगाल), विक्रमशिला, खजुराहो, भुवनेश्वर, आलमपुर, हालिबिडु तथा हैदराबाद से मिली हैं। (चित्र-49-56)

(9) महिष को पूँछ से उठाए हुए

नेपाल के एक हस्तलिखित ग्रन्थ में अष्टभुजी देवी को महिष की पूँछ से पकड़ कर बाएँ हाथ से ऊपर उठाए हुए दर्शाया गया है। मनुष्य रूप में असुर देवी के समक्ष स्थित है जिस पर देवी त्रिशूल से प्रहार कर रही है। तथा देवी का वाहन सिंह भी उसपर आक्रमण कर रहा है। (चित्र-57)

दशभुजी प्रतिमाएँ

मत्स्यपुराण,³² शिल्परत्न,³³ रूपमण्डन,³⁴ मयदीपिका,³⁵ प्रतिमाविज्ञान,³⁶ तथा हेमाद्रि कृत अभिलषितार्थ चिन्तामणि,³⁷ आदि अनेकों ग्रन्थों में देवी के दशभुजी रूप शक्ति, धनुर्बाण, शूल, वज्र, अंकुश, पाश आदि आयुध तथा वरद, अभय, तर्जनी, एवं कटिहस्त मुद्राओं सहित दर्शाया है।

देवी के इसी रूप की अभिव्यक्ति भारतीय कला में भी मिलती है। इलाहाबाद³⁸ संग्रहालय की एक प्रस्तर प्रतिमा में दशभुजी देवी महिष के शरीर पर नृत्य करती दिखाई गई है। महिष का सिर कटा हुआ है। अन्य आयुधों के अतिरिक्त देवी के एक हाथ में नरमुण्ड का खपड़ा है। खजुराहो³⁹ के लक्ष्मण मन्दिर की देवी प्रतिमा के भी दस हाथ हैं और उसने अपना त्रिशूल महिष के नीचे गिरे शरीर में गड़ा रखा है। मानभूम से प्राप्त देवी की दस हाथ की प्रतिमा इन्डियन म्यूजियम कलकत्ता में सुरक्षित है। उसमें देवी खड्ग, ध्वजा, चक्र तथा त्रिशूल, (दाएँ हाथों में) तथा धनुष, अंकुश, पाश, ढाल तथा महिष के केश (बाएँ हाथों में) धारण किए हुए प्रत्यालीढ़ आसन में खड़ी है। उसका एक पग तो सिंह की पृष्ठ पर है तथा बाँया पग महिष के कटे सिर वाले धड़ पर रखा है। महिष का कटा हुआ सिर नीचे भूमि पर गिरा है तथा पशु रूप महिष की ग्रीवा से मानव रूप में दानव निकल रहा है। देवी के मुख मण्डल पर मन्द मन्द मुस्कान है। वह करण्ड मुकुट सहित सभी आभूषणों से अलंकृत है। बंगाल से प्राप्त एक कांस्य प्रतिमा में भी देवी को दसभुजी रूप दिया गया है परन्तु एक त्रिशूल के अतिरिक्त कोई भी आयुध अब उपलब्ध नहीं है। महिषासुर इसमें मानव रूप में ही उपस्थित है और देवी का त्रिशूल दानव की ग्रीवा में आघात कर रहा है। देवी प्रत्यालीढ़ आसन में एक पग सिंह पर तथा एक पग दानव के देह पर रखे खड़ी है। गुलेर शैली के एक पहाड़ी चित्र में भी सिंहारूद्ध दशभुजी देवी हाथों में धनुष, बाण, असि, ढाल, पाश, अंकुश, घण्टा, गदा एवं त्रिशूल धारण किए हुए है। दानव मनुष्य रूप में महिष की कटी ग्रीवा से हाथों में ढाल एवं तलवार लिए निकल रहा है। उसके चरण साधारण मानव के न रह कर पक्षियों के पंजे जैसे हैं। (चित्र-61,62)

हिसार (हरयाणा) से प्राप्त एक प्रस्तर प्रतिमा में भी देवी का यही स्वरूप है परन्तु महिष का सिर कटा हुआ नहीं है फिर भी मानव रूप में

असुर महिष के शरीर से निकलता दिखाई दे रहा है। हालिबिडु से प्राप्त प्रस्तर प्रतिमा में भी लगभग यही दृश्य है। देवी का बायां पग प्रत्यालीढ़ आसन में महिष की पृष्ठ पर रखा है।(चित्र-61,62)

द्वादश भुजी प्रतिमाएँ

मत्स्य पुराण⁴⁰ में देवी के द्वादश (12) हाथों का वर्णन है। उदयगिरि⁴¹ गुफाओं से प्राप्त एक प्रस्तर प्रतिमा मत्स्य पुराण की इस परम्परा पर बनी है। वास्तव में यह आश्चर्य मय है कि इतनी प्राचीन (गुप्त कालीन) प्रतिमा में देवी के इतने अधिक हाथ दिखाए गए हैं जिनमें वह अनेकों आयुध धारण किए हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके पीछे के दोनों दाएँ एवं बाएँ हाथों में गोधा है। एक हाथ में महिष को उसकी पूँछ से पकड़ कर ऊपर उठाया हुआ है तथा दूसरे हाथ से महिष की पीठ को दबा रही है।

मध्य कालीन देवी की खजुराहो⁴² से प्राप्त प्रतिमा की द्वादश भुजाएँ हैं जिनमें से दो के अतिरिक्त सभी खण्डित हैं। यह दोनों भुजाएँ ऊपर को उठी हैं तथा उनमें सम्भवतः चक्र पकड़ा हुआ है। कांगड़ा से प्राप्त देवी की प्रतिमा द्वादश भुजाओं वाली होती हुई भी खण्डित है। पूँछ से प्राप्त एक लघुचित्र देवी को सिंह पर आरूढ़ दानव से युद्धरत दर्शाता है और मानव रूप में असुर महिष की कटी ग्रीवा से बाहर निकलने का प्रयास कर रहा है।(चित्र-63,64)

षोडश भुजी प्रतिमाएँ

देवी की षोडश भुजी प्रतिमाओं के निर्माण का विधान धार्मिक सूत्रों में तो कम ही देखने में मिलता है परन्तु भारतीय मूर्तिकला में ऐसे कई उदाहरण देखने में आए हैं जिनमें देवी को इस रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। बैर्नजी महोदय ने राजशाही संग्रहालय की एक ऐसी प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसमें मध्यवर्ती प्रतिमा में देवी के अष्टादश हाथ हैं परन्तु प्रभावली में प्रदर्शित देवी की प्रतिमाओं में उसके आठ अथवा सोलह हाथ हैं। काश्मीर से प्राप्त एक प्रतिमा में भी देवी के सोलह हाथ हैं। बैजानाथ अलमोड़ा, खजुराहो, कांगड़ा, हालिबिडु, वाराणसी से भी देवी की षोडश भुजी प्रतिमाएँ मिली हैं। (चित्र-66,67)

अष्टादशभुजी प्रतिमाएँ

अग्नि, देवीभागवत⁴⁵ वामन⁴⁶ तथा भविष्य⁴⁷ पुराणों में देवी की अष्टादशभुजी के रूप में आराधना की गई है। भारतीय कला में भी देवी के इस रूप का सजीव चित्रण प्राप्य है। इस प्रकार की प्रतिमाएँ अधिक प्राचीन न होकर कतिपय अर्वाचीन हैं। चिदाम्बरम मन्दिर की एक प्रतिमा में अष्टादश भुजी देवी द्विदेह वाले असुर का संहार करती दिखाई गई है। असुर का सिर महिष का है जिस पर दो सींग भी हैं। नागस्वामी⁴⁸ के अनुसार देवी की प्रतिमा के नीचे देवी का नाम “त्रिपुरसुन्दरी” अंकित है।

गंगाईकोण्डा⁴⁹ चोलापुरम से प्राप्त एक प्रतिमा देवी को इसी रूप में दर्शाती है। नेपाल⁵⁰ से मिली एक प्रस्तर प्रतिमा में भी देवी के 18 हाथ हैं। वह भी मध्य कालीन ही है। इसमें महिष को देवी ने पूँछ से उठाया हुआ है, उसका कटा सिर भूमि पर पड़ा है। मानव रूप में असुर महिष की ग्रीवा से निकलने का प्रयास कर रहा है। अठारहवीं शती का चम्बा⁵¹ से प्राप्त एक लघुचित्र यही दृश्य प्रस्तुत करता है परन्तु महिष की ग्रीवा से निकलने वाले असुर का सिर महिष का ही है।

कांगड़ा शैली का अठारहवीं शती का एक लघुचित्र देवी का अष्टादश भुजी रूप प्रस्तुत करता है। देवी हाथों में अनेको आयुध लिए सिंहारूढ़ अवस्था में है। उसका दायां पग सिंह पर तथा बायां पग महिष के कटे सिर वाली ग्रीवा पर रखा है जिसमें से महिष मानव रूप में हाथों में ढाल एवं खड्ग लिए निकल रहा है। असुर का सिर दो सींग युक्त महिष का है तथा शेष मानव शरीर है।

बीस-भुजी प्रतिमाएँ

देवी को कई ग्रन्थों बीस भुजाओं वाली कहा गया है। बराह पुराण के अनुसार जब देवी के साथ युद्धार्थ महिष पहुंचा तो उसने बीस हाथ धारण कर लिए:—

तत्रैवसोसुरः प्रायाद् यत्र देवी व्यवस्थिता।

साच दृष्ट्वा तमायन्तं विशद्वस्ता बभूवह॥

बराहपुराण:—94.48.

इसके अतिरिक्त अग्नि पुराण में भी देवी के बीस हाथ होने का उल्लेख है। (चण्डी विंशती बाहु स्याद्विंशती दक्षिणैः करैः।) तथा विष्णुधर्मोत्तर भी उसके बीस भुजाओं वाले स्वरूप की ही आराधना करता है:—

कृशमध्या विशालाक्षी चारु पीन पयोधरा।

एकवक्ता तु सुग्रीवा बाहु विंशति संयुता॥

भारतीय कला में देवी के बीस हाथ वाली प्रतिमाओं का प्रचलन पर्याप्त देरी से हुआ। इनमें से एक उत्तर मध्य युग की चिदाम्बरम से प्राप्त हुई है। इस प्रस्तर प्रतिमा में देवी को महिष से युद्धरत दिखाया गया है। महिष के शरीर पर देवी आलीढ़ मुद्रा में खड़ी है। नेपाल से प्राप्त एक ऐसी ही प्रतिमा में देवी का त्रिशूल महिष की ग्रीवा में गड़ा है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि इसमें देवी को चतुर्भुजी रूप दिया गया है जिसका विधान धार्मिक ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। भेराघाट से प्राप्त देवी की प्रतिमा के भी बीस हाथ हैं जिनमें से अधिकांश खण्डित हैं। इसमें महिष रूप में असुर सिर कटने पर भी अपनी अगली टाँगों को ऊपर उठाए हुए है तथा देवी ने उस की पीठ प्रत्यालीढ़ आसन में अपना दायां पग रखा हुआ है। देवी का चक्र महिष के शरीर में आधा प्रविष्ट हो चुका है तथा देवी का वाहन सिंह उस पर पीछे से आक्रमण कर रहा है। (चित्र-65)

द्वात्रिंश भुजी प्रतिमाएँ

देवी की बत्तीस भुजाओं वाली प्रतिमाओं का विधान अपने धर्म ग्रन्थों में तो नहीं मिलता परन्तु पश्चिम दीनाजपुर⁵² के बेतना ग्राम से उपलब्ध एक प्रस्तर प्रतिमा में देवी को बत्तीस भुजाओं सहित दर्शाया गया है जिसमें वह विविध शास्त्रास्त्र धारण किए हुए सिंहारुद्ध है। जिन असुरों का वह नाश कर रही है वह महिषासुर न होते हुए भी देवी की इतनी अधिक भुजाएँ होना विशेष महत्व रखता है। बैनर्जी महोदय⁵³ की अनुसार देवी की इतनी अधिक भुजाएँ होना सर्वशक्तिमयी देवी के रूप का द्योतक है।

ऊपरोक्त संदर्भ में देवी प्रतिमाओं का भारतीय कला में उद्गम एवं विकास दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। देवी की अति प्राचीन प्रतिमाएँ कुषाण काल की हैं तथा उनमें भी जो दो हाथ वाली है वे सम्भवतः अधिक प्राचीन है तथा जो चार हाथ की है वह कुछ उनके बाद की है। ऐसा लगता है कि इन दो हाथ वाली प्रतिमाओं में अहिच्छत्र से प्राप्त वह प्रतिमा जिसमें देवी ने किसी शस्त्र का प्रयोग न कर के महिष की ग्रीवा एक हाथ में पकड़ रखी है तथा दाएँ हाथ से उसकी पीठ को दबा कर उसकी हत्या का प्रयत्न कर रही है, अधिक प्राचीन है। अन्य प्रतिमाओं में देवी ने अपने हाथ में पकड़े हुए त्रिशूल का प्रयोग किया है परन्तु अहिच्छत्र वाली ऊपरोक्त प्रतिमा में कोई अस्त्र प्रयोग नहीं किया गया है।

एक अन्य तथ्य जो हमारे सम्मुख आता है वह यह कि देवी के प्राचीनतम स्वरूप में देवी द्वारा महिष के सिर कटने का दृश्य नहीं मिलता है। उसे देवी ग्रीवा से अथवा पूँछ से ऊपर उठाकर अपने हाथ से अथवा त्रिशूल से आघात करती हुई दर्शाई गई है। देवी के चार हाथ तथा महिष का इस स्थिति में हनन सम्भवतः मध्य काल के आरम्भ तक चलता रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि देवी माहात्म्य की परम्परा जिसमें देवी द्वारा महिष पर आरुढ़ होकर उसका सिर त्रिशूल से काटना तथा कटे हुए महिष की ग्रीवा से दानव का मनुष्य रूप में उद्गम के पश्चात् देवी द्वारा उसे खड्ग से विनाश करने की परम्परा मध्य युग के आरम्भ तक प्रचलित नहीं हो पाई थी।

मध्य काल के आरम्भ के पश्चात् देवी के स्वरूप में तिरन्तर बदलाव आते रहे। वह अब चतुर्भुजी न रहकर षष्ठ भुजी, अष्टभुजी, दशभुजी, द्वादशभुजी, षोडश भुजी एवं विंशभुजी आदि के रूप में भी कला में प्रकट होने लगी। भारतीय इतिहास में यह द्रष्टव्य है कि मध्यकाल में देश में विदेशी आक्रमण कारियों का आतंक बढ़ता जा रहा था और सम्भवतः यही कारण है कि मध्य काल से ही भारतीय कला एवं साहित्य में अधिक भुजाओं वाले देवी देवताओं की परिकल्पना की गई क्योंकि अधिक भुजाओं से वह अधिक शक्ति के प्रतीक हो सकते थे।

संदर्भ

- (1) Nagar, S.L., *Mahishasuramardini in Indian Art*, p.64.
- (2) वही- चित्र, 1-6,8,9,
- (3) वही- चित्र-7
- (4) *Indian Archaeology*, 1978-79, L11(B)
- (5) Nagar, S.L., पूर्वोक्त, Pls.10,12.
- (6) इसमें सन्देह नहीं कि देवी को कटे हुए सिर के साथ प्रदर्शन अधिकतर सातवीं-आठवीं शती के उपरान्त ही मिलता है परन्तु पैडाभुडियम-आंध्र प्रदेश (Nagar, S.L., पूर्वोक्त, चित्र-11) में प्रदर्शित प्रस्तर फलक में अन्य देवों के साथ चतुर्भुजी महिषासुरमर्दिनी को महिष के कटे सिर वाले धड़ पर आलीढ़ मुद्रा में खड़े दिखाया गया है। यह प्रतिमा इतनी प्राचीन न होकर सातवीं-आठवीं शती की प्रतीत होती है। पहले दी हुई तिथि में कुछ अशुद्धि दिखाई पड़ती है।
- (7) Nagar, S.L., पूर्वोक्त, चित्र 1-6 8-9
- (8) वही-चित्र-8-9
- (9) Iyer, K.Bharatta; "An Early Beal of Mahishasuramardini" *Artibus asie*, XXXI, 1969, p.180, fig-8
- (10) वही-पृ०-179
- (11) वही-पृ०-180
- (12) Panigrahi, K.C., *Achaeological Remains at Bhuhaneshwar*, p.134.
- (13) Mishra, V., *Mahishasuramardini*, p.38.
- (14) Banerjee, J.N., *Op. cit.*, p.493
- (15) Nagar, S.L., *Op. cit.*, pls.14,18.
- (16) Vogel, J. ph., *Antiquities of Chamba State*, p.138,pl.vII-B.
- (17) Narar, S.L., *Op. cit.*, p.80, pls.10, 12 ad 20.
- (18) वही, पृ०.80, pls.15,161, 21, 23, 2b, 30.
- (19) वही, पृ०-80
- (20) Mishra, V., *Op. cit.*, p.40.
- (21) वही पृ०-42.
- (22) मूर्ति सं०-875,889,1784, तथा 2037 में देवी षड्भुजी है।

- (23) U.P. *Historical Society Journal* (old series), ed.xxvII, 1949, Lucknow.
- (24) *Proceedings of Indian History Congress*, Delhi, 1948, pp.96-109; a note by D.H. Patil.
- (25) *Artibus Asiae*, vol.xxI-2, 1958.
- (26) Mishra, V., *Op. cit.*, p.42.
- (27) *Ibid.*
- (28) शुक्लाम्बर धरा कन्या खक्किरीटज्ज्वलानना।
अष्टभिर्बाहुभिर्युक्ता दिव्यप्रहरणोद्यता॥
वराह पुराण-28.22
- (29) देवीमाहात्म्य, अध्याय-5 एवं 12. ध्यान मन्त्र।
- (31) चतुर्भुज समायुक्तामष्टभिर्दोर्भिरन्विताम्।
पूर्वकारणागम- द्वादशपटले।
- (32) मत्स्य पुराण-260.57-58.
- (33) वक्ष्ये कात्यायनीं देवीं शिव नाराणान्विताम्।
बाहुभिर्दर्शभिर्युक्तां जटा मुकुट मण्डिताम्।
शिल्परत्न।
- (34) कात्यायनीं ततो वक्ष्ये दशहस्तां महाभुजाम्।
तेजः प्रतापदा नित्यं नृपाणां सुखबोधनी॥
रूपमण्डन।
- (35) कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा।
त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम्।
मयदीपिका।
- (36) कात्यानीं ततो वक्ष्ये क्षत्रयोद्भूतां शासनीं।
तेजः प्रतापदा नित्यं नृपाणां सुखबोधिनी।
शूल खड्ग वज्र चक्रे वाणो दक्षिण बाहुषु।
चापखेटक पाशाश्च घण्टा वामेषु चांकुशम्॥
प्रतिमाविज्ञान
- (37) अमिलाषितार्थचिन्तामणि-3.1.803
- (38) इस प्रतिमा की सं०.656 है।
- (39) Mishra, V., *Op. cit.*, p.78, pl.54
- (40) मत्स्य पुराण, 260.59-65
- (41) Banerjea, J.N., *Op. cit.*, p.500, pl.xLI, fig.4.
- (42) वही
- (43) वही
- (44) आदौमध्ये तथेन्द्रथा नवत्तवात्मभिः क्रमात्।
अष्टादश भुजैरेका तु दक्षेमुण्डे च खेटकम्॥
अग्नि पुराण
- (45) अष्टादश भुजां दिव्यां सर्वाभरण भूषिताम्।
सर्व लक्षण सम्पन्नां वरायुधधरां शुभाम्॥
देवीभागवत पुराण
- (46) महेश्वाद् वक्त्रमथो बभूव
नेत्र त्रयं पावक तेजसा च।
याम्येन केशा हरितेजसा च
भुजास्तथाष्टादश संप्रजज्ञिरे॥
वामन पुराण-19-9
- (47) अष्टादश भुजैका तु पीन वक्षोरुहोरुहा।
सर्वालंकार संयुक्त सर्वसिद्धि प्रदायिनी॥

भविष्य पुराण।

- (48) Nagaswami, R., *Tantric Cults of South India*, p.179, pl.54
- (49) Nagar, S.L., *Op. cit.*, p.9
- (50) वही- चित्र-75
- (51) वही
- (52) *History of Bengal*, Vol.I, p.454, pl.1.5 (as quoted by Banerjea J.N.)
- (53) Banerjea, J. N., *Op.cit.*, p.500

14

भारतीय सिक्के एवं मुद्राएँ

भारतीय साहित्य के इतिहास में सिक्कों का एक विशेष स्थान है। इनके द्वारा ही भारतीय इतिहास की अनेकों कड़ियों को जोड़ने में पुरातत्ववेत्ता सफल हुए हैं। यह सिक्के अन्य प्रयोजनों के अतिरिक्त, प्राचीन भारतीयों की उपासना की परम्परा को भी समुचित रूप में दर्शाते हैं। इन सिक्कों पर जो प्रतीक अथवा प्रतिमा चित्र मुद्रित हैं उन में प्रायः सभी देवों और देवियों के दिग्दर्शन होते हैं। इनमें शिव और वासुदेव-विष्णु की प्रधानता तो है ही, साथ ही लक्ष्मी, सूर्य, कार्तिकेय, कुमार, इन्द्र अग्नि आदि के साथ देवी की प्रतिमाएँ भी अंकित हैं। इससे पौराणिक बहु देववाद की झलक भी प्राप्य है। इन सिक्कों में जिन देवी प्रतिमाओं का प्राधान्य है उसका विवरण नीचे तालिका में प्रस्तुत है।

देवी का स्वरूप	स्थान	राजवंश	समय
(1) गज लक्ष्मी	कौशाम्बी		तृतीय शती ईसा पूर्व
(2) "		विशाखदेव	"
(3) "		शिवदत्त	"
(4) "	अयोध्या	वासुदेव	"
(5) "	उज्जयिनी	"	"
(5) "	"	"	"
(6) लक्ष्मी	"	"	द्वितीय शती ई० पू०
(7) "	मथुरा के	ब्रह्ममित्र	प्रथम शती ई०
	हिन्दु राजा		
(8) "	"	दृढमित्र	"
(9) "	"	सूर्यमित्र	"
(10) "	मथुरा के	शिवदत्त	"
	क्षत्रप		

यहां यह कहना भी उचित होगा कि गजलक्ष्मी की मुद्रा इतनी लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध थी कि बहुत से efJeosMeer MeemekeâeW ves भी इसे अपनाने में संकोच नहीं किया। इनमें Azilises, Rajuvula तथा Sodasa विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। कुमारस्वामी के मत के अनुसार इन विदेशियों की मुद्राओं पर पद्मवासिनी कमलालया लक्ष्मी अंकित है। उधर भारतीय-यूनानी राजा पंतलेन (Pantaleon) तथा Agathokles के सिक्कों पर चित्रित स्त्री प्रतिमा को कुमार स्वामी ने "श्री लक्ष्मी" कहा है जिसे जितेन्द्रनाथ बैनरजी ने "यक्षिणी अश्व मुखी" माना है। इसके अतिरिक्त भारतीय सीथियन (Indo-Scythian) राजवंश की एक अनुपम स्वर्ण मुद्रा मिली है। उस पर चित्रित स्त्री प्रतिमा को गार्डनर ने पुष्कलावती माना है परन्तु वह लक्ष्मी प्रतिमा ही है। वास्तव में लक्ष्मी प्रतिमा के बाहुल्य से यह अनुमान ठीक ही है कि धन, ऐश्वर्य राजसत्ता वैभव एवं विपुलता की प्रतीक एवं अधिष्ठा देवी "लक्ष्मी" की पौराणिक परम्परा का उस सुदूर अतीत में न केवल भारतीयों में ही वरन विदेशियों में भी पर्याप्त प्रचार था।

देवी अर्चना कालान्तर में शक्ति पूजा की ओर भी अग्रसर हो गई। इस प्रवृत्ति का प्रभाव भारतीय सिक्कों में भी द्रष्टव्य है। इस विषय में दुर्गा प्रसाद का मत है कि भारत के अति प्राचीन पञ्चमार्क सिक्कों में प्रस्तुत कुछ चिन्ह तान्त्रिक शक्ति पूजा के हो सकते हैं। परन्तु जितेन्द्र नाथ बैनरजी को यह मान्य नहीं है। उनका विचार है कि प्राचीन सिक्कों पर पाई जाने वाले चिन्ह एवं स्त्री मूर्तियाँ लक्ष्मी अथवा गज लक्ष्मी के विभिन्न रूप हैं। एलन¹ (Allan) के अनुसार भद्रघोष के सिक्कों पर एक स्त्री प्रतिमा है जो कमल के पुष्प पर खड़ी है जिसे देवी भद्रा के नाम से जानते हैं। यह भी गज लक्ष्मी का ही स्वरूप है। परन्तु कोई स्त्री आकृति जिसके हाथ में कमल की डाली हो लक्ष्मी अथवा गज लक्ष्मी नहीं मानी जा सकती। परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि हाथ में कमल लिए हुए उत्तर गुप्त काल की स्त्री आकृतियाँ दुर्गा का प्रतीक हो सकती हैं। उनके साथ कभी कभी कोई न कोई पशु भी रहता है। कई बार तो इनकी पहचान उनके साथ उपलब्ध पशु के आधार पर ही होती है। उदाहरणार्थ कुनिन्दा शासकों के सिक्कों पर मृग अकसर देखने को मिलता है। जो देवी के साथ पृष्ठभूमि में रहता है। इस प्रकार की देवी का वर्णन वेनकटेश्वर के अनुसार श्रीसूक्त में उपलब्ध² है। महामायूरी³ ग्रन्थ के अनुसार उष्ट्रपाद यक्ष की तत्कालीन कुनिन्दा शासकों में विशेष रूप से पूजा होती थी। उष्ट्रपाद का अर्थ ऐसा प्राणी है जिसके पांव ऊंट जैसे हों। उष्ट्र पाद पशु जो कुनिन्दा सिक्कों में मिलता है उसके समक्ष खड़ी स्त्री प्रतिमा लक्ष्मी हो सकती है। एज़िज़ (Azes) के सिक्कों में भी लक्ष्मी की प्रतिमाएँ मिलती⁴ हैं।

कुषाण⁵ कालीन सिक्कों में एक स्त्री प्रतिमा पाई गई है जिसकी पहचान दुर्गा से की गई है। कुछ सिक्कों में तो वह सिंह पर आरूढ़ दिखाई गई है।

भारतीय सिक्कों का विवेचन करते समय एक अन्य बात जो विचारणीय है वह यह है कि V.V.Mirashi ने रायचूर एवं कोण्डापुर (आंध्र प्रदेश) में मिले कुछ सिक्कों को महिष वंश द्वारा चलाए गए बताया⁶ है उनके मत के अनुसार महिष वंश के राज्य में आधुनिक मानघाता अथवा महेश्वर

जो नर्मदा के तट पर स्थित है, शामिल था। उस तथ्य का D. C. Sarkar ने जोरदार खण्डन किया है। उनका कहना है कि महिषवंश के नाम के शक राजा के दक्षिण में राज्य करने के कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते⁷।

भारतीय मुद्राओं का पुरातत्वीय अवशेष में अपना एक अलग स्थान है और ये प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक उत्खनन स्थलों पर पर्याप्त रूप से प्राप्त हुई हैं। वैसे तो सिन्धु घाटी सभ्यता के हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो स्थलों पर अनेकों मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं जिनकी पहचान देवी अथवा शक्ति पूजा के रूप में की गई है। उदाहरणार्थ इन स्थानों से मिली लिंग एवं योनि को प्रदर्शित करती हुई वस्तुओं को शिव और शक्ति का रूप ही माना गया है। इसी प्रकार एक ऐसी मुद्रा भी है जो देवी को शाकम्बरी रूप में प्रदर्शित करती है। इसमें एक स्त्री प्रतिमा के गर्भ से एक पेड़ को उगते दिखाया गया है। भीटा की भी एक मुद्रा पर एक स्त्री मूर्ति की ग्रीवा से एक पेड़ को निकलता दर्शाया गया है। यही नहीं इन मुद्राओं में दुर्गा महिषासुरमर्दिनी को भी विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है जिनमें दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी, उमा, लक्ष्मी एवं महालक्ष्मी आदि भी शामिल हैं। उदाहरणार्थ नालन्दा की मुद्रा क्र० S.1.688 को ही लीजिए। इसमें देवी की दो भुजाएँ हैं और वह दो वृक्षों के बीच आसीन है। उसका दक्षिण हस्त वरह मुद्रा में है जबकि वामहस्त त्रिशूल⁸ धारण किए हैं। इसी प्रकार की ग्रामजनपद की एक मोहर पर देवी को अष्टभुजी दिखाया गया है जिनमें वह ढाल, त्रिशूल तथा धनुष आदि आयुध धारण⁹ किए हुए सिंह पर आरुढ़ है। एक अन्य मुद्रा पर देवी मकर पर आरुढ़ दिखाई गई है। यहां यह कहना उचित होगा कि मकर मौर्य काल के गोलकार-पाषाण खण्डों (Ring stones) पर भी मिलता है। वास्तव में मकर पर सवार काली देवी कालीग्राम जनपद की उत्कृष्ट¹⁰ कृति है। मुद्रा क्र० S.I.800 सिंह वाहिनी दुर्गा को, हाथ में त्रिशूल धारण किए हुए दर्शाती है। नालन्दा में ही मुद्रा क्र० क.9.305 देवी के चण्डी रूप को दर्शाती है। इसमें चामुण्डा कंकाल वेश में देवी के चण्डी रूप को दर्शाती है। इसमें चामुण्डा कंकाल वेश में मृतक देह पर आसीन है। चारों हाथों में कपाल, खड्ग, हँसिया तथा त्रिशूल धारण किए हुए है।

मीटा से प्राप्त एक मुद्रा में देवी बैल के सहारे खड़ी है। उसकी ग्रीवा के नीचे बालचन्द्र है। वह अपने हाथों में धनुष, बाण, आदि धारण¹¹ किए हुए है। राजघाट से प्राप्त मुद्रा जो भारत कला भवन में सुरक्षित है, देवी को चौकी पर खड़ी दिखाती है। वह अपने हाथों में माला तथा चार नोक वाला आयुध धारण किए हैं। उसकी दाईं ओर सर्प है तथा केश घुंघराले हैं। राजघाट से प्राप्त एक अन्य मुद्रा में जो भारत कला भवन में है, देवी को दक्षिण हाथ नीचे लटकाए तथा वाम हाथ को ऊपर उठाए दिखाया¹² है।

बनारस विश्व-विद्यालय के भारतीय पुरातत्व इतिहास एवं संस्कृति विभाग में एक मुद्रा में महिषासुरमर्दिनी¹³ दुर्गा को ऊपर के दक्षिण हाथ में शूल धारण किए हुए तथा नीचे के हाथ में महिष को पूछें से पकड़ कर उठाया हुआ दर्शाया गया है। वाम हाथों में खड्ग एवं ढाल है। इसी मुद्रा पर अन्य प्रतिमाओं के अतिरिक्त एक प्राचीन लेख भी है। देवी का शरीर कृश है तथा उसने बलिष्ठ हाथ से महिष को उठाया हुआ है जो उसकी शक्ति का प्रतीक है। रोपड़¹⁴ से प्राप्त एक मुद्रा में देवी को महिष का संहार करते दर्शाया गया है। (चित्र-73)

उपरोक्त विवरण से देवी की किसी न किसी रूप में भारतीय सिक्कों तथा मुद्राओं में प्रादुर्भाव की अभिव्यक्ति निहित है। इस सम्बन्ध में एक बात जो विशेषध्यान देने योग्य है वह यह कि देवी की प्रतिमा से अंकित मुद्राओं का नालन्दा जैसे बौद्ध केन्द्र में भी पर्याप्त प्रचलन था।

संदर्भ

- (1) Banerjea, J.N., *Development of Hindu Iconography*, pp.133-137.
- (2) Nagar, S. L., *The Universal Mother, That r*, p.197.
- (3) महामायूरी, श्लोक 82 क
- (4) Nagar, S.L., *Op.cit*, p.197
- (5) Cunningham, A., *Coins of Indo-Scythians and Kushanas*, p.13, p.l.xxII, F.19.
- (6) Numismatic Series No.3, - 'Some Coins of Mahisa Dyanasty,' 'Hyderabad Museum, 1950, with illustration of Kondapur and Maski coins, published in the *Indian Historical quarterly*, Vol.xxII.
- (7) Sircar, D.C., *Studies in Indian Coins*, pp.127 ff,
- (8) *MAI*, No.66, p.42, pl.IV(a)
- (9) *Ibid*, p.46, S.9..R.19, pl.IV, J.
- (10) *Ibid*, p.47, S.9. R.55.
- (11) *ASIAR*, p.50, No.27.
- (12) No. 49.193.
- (13) No.424.
- (14) Thaplyal, K. K., *Studies in Ancient Indian Seals*, p.274.

15

जैन धर्म में देवी का स्वरूप

जैन धर्म भारत में कोई नया धर्म नहीं है अपितु द्विजेन्द्र नाथ शुल्क के मतानुसार यह हिन्दू धर्म का ही एक अंग मात्र¹ है। जैन धर्म हिन्दू धर्म

में तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं की प्रतिक्रिया के रूप में उभरा, जिसमें यशों में असंख्य पशुओं की ही नहीं नरबलि तक का प्रचलन था। इसी बलि प्रथा के विरुद्ध जैन धर्म के अनुयाइयों ने, जिन्हें विधर्मी कहा जाता था, विरोध किया। कालान्तर में उन्होंने अलग धर्म की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य अहिंसा परमो धर्म ही रहा। जैन धर्मावलम्बियों ने अपने शास्त्रों एवं पुराणों की रचना की जिनमें अनंग तथा सूत्र ग्रन्थों का विशेष महत्व है।

जैन धर्म का अपना एक अलग अस्तित्व होने पर भी हिन्दु धर्म के कुछ देवी देवता उसमें मान्यता को प्राप्त हुए जिनमें गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा आदि उल्लेखनीय हैं। जैन धर्म के एक अति प्राचीन ग्रन्थ "आचार दिनकर" में देवियों को तीन भागों में विभक्त² किया है :-

- (1) प्रासाद देवियां अथवा स्थापित मूर्तियां।
- (2) कुल देवियां अथवा तान्त्रिक देवियां जिनकी आराधना मन्त्र के अनुसार होती है। इनमें चण्डी एवं चामुण्डा आदि सम्मिलित हैं।
- (3) सम्प्रदाय देवियां

इसके अतिरिक्त अनेकों तान्त्रिक देवियां जैन धर्म में किसी न किसी समय प्रवेश कर गईं। आचार दिनकर³ ने उन में काली, कंकाली, करली, महाकाली, चामुण्डा, भद्रकाली, दुर्गा एवम् अम्बिका को भी सम्मिलित किया है। ज्वालामुखी, कामाक्षा, कपालिनी, गौरी तथा त्रिपुरा देवियों⁴ को भी जैन धर्म में मान्यता मिली। इनमें से चामुण्डा, जो महिषासुरमर्दिनी का ही एक स्वरूप है, का वर्णन प्रतिष्ठासार संग्रह (MSS-Arrah) में इस प्रकार से है।

चामुण्डा देवता भीमा हरिद्वर्णा चतुर्भुजा।

अक्षासूत्रं च यष्टिं च धत्ते मकर वाहना॥

इसके अतिरिक्त प्रतिष्ठासारोद्धार में भी चामुण्डा की व्याख्या इसी प्रकार से की गई है। काली⁶ महाकाली⁷ तथा गौरी⁸ की भी आराधना जैन धर्म में बड़ी श्रद्धा से की गई है। यह तो हुई दुर्गा के अनेक रूपों की जैन धर्मग्रन्थों में साक्ष्य परन्तु वोगल महोदय (J.ph.Vogel) ने जोधपुर क्षेत्र स्थित ओसिया में सच्चिया माता मन्दिर का उल्लेख किया है जिसका ओसवाल जैन सम्प्रदाय के लिए विशेष धार्मिक महत्व है। वह लोग अपने बच्चों को मुण्डन के लिए वहाँ लाते हैं। देवी की पूजा आराधना के पश्चात् वे लोग रात्रि को वहाँ नहीं रहते। उनकी ऐसी मान्यता है कि रात्रि को वहाँ रुकने से वह विपदा ग्रस्त हो जाएंगे। इस मन्दिर का मुख्य द्वार पूर्व की ओर है। इसमें गर्भगृह तथा प्रदक्षिणापथ है। मन्दिर का ऊपरी भाग आठ स्तम्भों पर टिका है। मन्दिर के चारों ओर कई कोष्ठक हैं जिनमें अनेकों देवी देवताओं की प्रतिमाएँ हैं।

इनमें ही चामुण्डा, महिषासुरमर्दिनी तथा शीतला देवियों की भी प्रतिमाएँ स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त भैरव की प्रतिमा भी है जिस पर एक शिलालेख है जिसपर सं० 1234 चैत्र सुदि गुरु अंकित है। इसका प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि साधु गयापाल ने जो गोदमसेर गोत्र का था, मन्दिर में चण्डिका, शीतला, सच्चिका, क्षेमडकरी आदि मूर्तियों की स्थापना की थी। इनमें से क्षेमडकरी महिषासुरमर्दिनी का ही दूसरा रूप है। सच्चिका माता का मन्दिर वास्तव में आठवीं शती ई० का है। परन्तु यह जैन धर्मावलम्बियों का पूजा स्थान कब बना यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः यह मध्य काल में (बारहवीं शती) में जैन धर्म का तीर्थ स्थान बना।

आर० सी० अग्रवाल⁹ महोदय के मतानुसार माहिषासुरमर्दिनी की आराधना राजस्थान में इतनी प्रचलित एवं लोकप्रिय थी कि जैन धर्मानुयाई भी इसकी सच्चिका अथवा सच्चियां माता के नाम से पूजा करने लगे। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक शिला लेख युक्त संगमरमर की बनी एक सच्चिका की प्रतिमा की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है जो इस समय सरदार संग्रहालय, जोधपुर में सुरक्षित है। इस प्रतिमा पर भी वि० सं० 1234 की तिथि दी गई है। हिन्दु धर्म में देवी का मातृ स्वरूप भी है। देवी माहात्म्य में इस तथ्य की घोषणा भी मिलती है (या देवी सर्व भूतेषु, मातृ रूपेण संस्थिता)। इसी मातृ शक्ति का स्वरूप जैन धर्म में अम्बिका अथवा कूष्माण्डी यक्षी के रूप में मिलता है। यहाँ यह नेमिनाथ की यक्षी है। जैन परम्परा के अनुसार इस सिंहवाहना यक्षी के करों में आम्रलम्बि एवं बालक के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेताम्बर परम्परा के अधीन निर्वाण कलिका में सिंह वाहना कूष्माण्डी¹⁰ चतुर्भुजा है। उसके दहिने हाथों में मातुलिंग एवं पाश और बाएँ हाथों में बालक एवं अंकुश है।

प्रवचनासारोद्धार-(पृ० 94) तथा आचार दिनकर (34-पृ० 170) में देवी के समान लक्षण दर्शाते हुए मातुलिङ्ग के स्थान पर आम्रलुम्बि का उल्लेख है। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थ प्रतिष्ठासारसंग्रह¹¹ में सिंहवाहिनी कूष्माण्डी को द्विभुजा और चतुर्भुजा बताया गया है परन्तु आयुधों का उल्लेख नहीं। अपराजितपृच्छा में द्विभुजा अम्बिका के करों में फल एवं वरद मुद्रा का वर्णन है। देवी के समीप ही उनके दोनों पुत्रों के प्रदर्शन का विधान है जिनमें से एक गोद में बैठा होगा¹²।

अम्बिका तारक ग्रन्थ में अम्बिका¹³ के भयंकर स्वरूप का विवरण है। उसे इसमें शिवा, शङ्करा, स्तम्भिनी, मोहिनी, शोषणी, भीमनादा, चण्डिका चण्डरूपा, अधोरा आदि नामों से पुकारा गया है। तान्त्रिक ग्रन्थों में जैन अम्बिका इन रूपों और करों में शंख और चक्र के साथ सिंह वाहन प्रदर्शन की जाती है, वह निस्सन्देह हिन्दु धर्म की अम्बा एवं दुर्गा का ही प्रतिरूप है।

संदर्भ

- (1) शुल्क द्विजेन्द्रनाथ, वास्तुशास्त्र, II, अध्याय-VII, पृ-1
- (2) प्रतिष्ठाविधि, आचार दिनकर:-

तंत्र देव्य स्त्रिधा- प्रासाददेव्यः सम्प्रदाय देव्यः कुलदेव्यश्च। प्रासाद देव्यः पीठोपपीठेषु क्षेत्रेषु गुहास्थिताः प्रासादस्थिता लिङ्गरूपा वा स्वयंभूत रूपा मनुष्य निर्मित रूपा वा। सम्प्रदाय देव्यः अम्बासरस्वती त्रिपुराताराप्रभृतयो गुरूपदिष्ट मन्त्रो पासनीयाः। कुलदेव्यः चण्डी चामुण्डा कण्ठेश्वरी

सरीसत्यका (?) सुशयना व्याघ्रराजी प्रभृतयः।

- (3) पूर्वोक्त,..... कंकाल्यैनमः। काल्यैनमः। महाकाल्यै नमः। चामुण्डायै नमः। भद्रकाल्यै नमः। महाकाल्यै नमः। चामुण्डायै नमः। भद्रकाल्यै नमः। दुर्गायै नमः। अम्बिकायै नमः। ललितायै नमः।
- (4) Bhattacharya B.C., *The Jaina Iconography*, p.16
- (5) प्रतिष्ठासरोद्धारः— चामुण्डा याष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरिता।
मकरस्थाचर्यते पञ्चदशदण्डोन्तेश भाक्।
- (6) पूर्वोक्त, यस्तन्तार्या भज कालि सूर्यप्रभा मगस्था मुसलासि हस्ता। मृभाकाल्यैनमः। अम्बिकायै नमः। ललितायै नमः। कुरुकुल्लायै नमः।
- (7) आचार दिनकर :- नर वाहना शशधरोपलोज्ज्वला रुचिराक्षसूत्रफलविस्फुरकरा
शुभधण्टिका पवित्रेण्यधरिणी महाकाली।
-निर्वाण कालिकाः— महाकालीं देवीं पुरुषवाहनां चतुर्भुजामक्षसूत्र वज्रान्वितं
दक्षिण कराम् अभय घण्टा, 5 लङ्कृत वाम भुजाम्।
- (8) निर्वाण तालिकाः— गौरीं देवी गोधा वाहनां चतुर्भुजां वरद मुसलयुत दक्षिण करामक्षामालालङ्कृत वामहस्ताम्।
- (9) *Artibus asiae*, xxi. p.130 xvii.No 8.3-4, pp. 232-34
- (10) कूष्माण्डीं देवीं कनकवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां मातुलिङ्ग पाशा युक्त दक्षिण करां पुत्राङ्कुशान्विवाम करां चेति॥ निर्वाण कलिका-18.22
- (11) देवी कूष्माण्डिनी यस्य सिंहगा हरितप्रभा।
चतुर्हस्त जिनेन्द्रस्य महा भक्ति विराजितः॥
द्विभुजा सिंहमारुद आम्रदेवी हरितप्रभा॥ प्रतिष्ठासार संग्रह-5.64.66
- (12) हरिद्वर्णा सिंहस्था द्विभुजा च फलं वरम्।
पुत्रेणोपास्यमाना च सुतोत्संग तथाम्बिका॥ अपराजितपृच्छा-222.26
- (13) तिरारी मारुति नन्दन, जैनप्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, 1981, 223-24

16

बौद्ध धर्म में देवी का स्वरूप

जैन धर्म के समान बौद्धधर्म में भी हिन्दु देवी देवताओं का समावेश होता रहा है। इनमें देवी के कई रूप हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दु देवी देवताओं को बुद्ध धर्म में यथोचित सम्मान नहीं मिल पाया तथा कई उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें बौद्ध देवी देवताओं के पैरों के नीचे हिन्दु देवी देवताओं को कुचले जाते भी दर्शाया गया है परन्तु फिर भी ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जिसमें बौद्ध संस्थाओं में हिन्दू देवी देवता समान आदर एवं आराधना के पात्र भी थे। कुछेक का तो स्वरूप बदल दिया गया। तान्त्रिक बौद्ध परम्पराओं में इनका बाहुल्य है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि महिषासुरमर्दिनी दुर्गा, तिब्बत की बौद्ध परम्पराओं में वज्रवाराही¹ के रूप में मानी जाने लगी। इस संदर्भ में लाहौल, हिमाचल प्रदेश के मर्कुला देवी मन्दिर का उल्लेख पर्याप्त युक्ति संगत होगा। यह मन्दिर महिषासुरमर्दिनी दुर्गा को समर्पित है तथा उसकी अष्टभुजी प्रतिमा की वहां पूजा अर्चना होती है। उसके बाँए हाथों में वह त्रिशूल, चक्र, महिष की पूछ तथा वरद मुद्रा धारण किए हुए है जबकि उसके दाँए हाथों में शंख, गदा, वज्र एवं पाशा हैं। पाशा ने महिष को जकड़ा हुआ है। वह महिष के धड़ के ऊपर आरूढ़ है जिसे उसने अपने त्रिशूल से आघात किया है। महिष के शरीर पर तीन सिंह आक्रमण करते दर्शाए गए हैं जो देवी की प्रत्यक्ष रूपसे सहायता में रत हैं। मर्कुला देवी के मन्दिर लाहौल निवासियों (बौद्ध एवं हिन्दुओं) की असीम श्रद्धा का केन्द्र है। लाहौल के बौद्ध धर्मावलम्बी मर्कुला देवी को rdo-phang-mo-अर्थात् वज्रवाराही² के नाम से मानते हैं।

यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो वज्रवाराही³ के लक्षण पूर्णरूप से महिषासुरमर्दिनी से मेल नहीं खाते फिर भी तिब्बत तथा तिब्बती परम्पराओं को मानने वाले लाहौल क्षेत्र में इसका विशेष महत्व है और वह इन दो रूपों में कोई अन्तर नहीं मानते।

निष्पन्नयोगावली⁴ में दुर्गा का चामुण्डा रूप दर्शाया गया है। इसके चार हाथ हैं जिनमें वह कर्तृ, कपाल तथा अञ्जलि मुद्राधारण किए रहती है। इसके अतिरिक्त गौरी (पार्वती) के आठ रूप भी साधनामाला⁵ तथा निष्पन्नयोगावली में वर्णित हैं। अनेकों बौद्ध तीर्थों से भी देवी की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें नालन्दा, विक्रमशिला तथा सांची विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। (चित्र - 71)

संदर्भ

(1) Grunwedel, *Mythologic des Buddhismus in Tibet under Mongolei*, p.156.

- Jaschke, *Tibetan-English Dictionary*,
(London-1881), p.289,SV, rdo-rje-phag-mo.)

(2) वही

- (3) साधनमाला में वज्रवाराही की रक्त वर्णवाली, निर्वस्त्रा, तथा द्विभुजा तान्त्रिक देवी के रूप में व्याख्या की है। तदनुसार वह शिव के ऊपर प्रत्यालीढ़ आसन में विराजमान रहती है।
- (4) Bhattaehary Benoytosh, *The Indian Boddhist Iconography*, Calcutta- 1958, p.365.
- (5) वही, pp. 309-12

17

विलक्षण एवं विकृत आकृतियाँ

विश्व के अन्य देशों के समान भारत के अतीत की परम्पराओं में विलक्षण एवं विकृत आकृतियों का बाहुल्य रहा है। इसी भावना की प्रस्तुति महिषासुर मर्दिनी के कथानक में स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है। जहाँ देवी को दो से लेकर बीस भुजाओं सहित दर्शाया गया है वहीं परमहिषासुर को भी अनेक रूपों में उपस्थित किया गया है। उसे जन्म से यह क्षमता प्राप्त है कि वह इच्छानुसार अपना स्वरूप बदल सकता है। इसी धारणा की भारतीय कला में भी उसे अनेको स्वरूप देकर अभिव्यक्ति की जाती रही है।

वास्तव में इन विलक्षण अथवा विकृत आकृतियों का इतिहास अति प्राचीन है। विश्व के कई देशों में ईसा पूर्व की अनेको शताब्दियों में यह द्रष्टव्य है जिनमें मिश्र सर्व प्रथम कहा जा सकता है। आधुनिक काल में भी कई वन्य तथा आदिवासियों में अभी भी यह प्रथा है कि वे अनेकों पर्वों एवं उत्सवों में पशुओं के मुखौटे पहनकर अनेक प्रकार के नृत्यों के समय सभी नर्तक महिष का चर्म तथा उसका सिर एवं सींग अपने सिर पर अवश्य सजाते हैं। ऐसा करके वह अपने देवताओं को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं जिससे उनके धन धान्य की वृद्धि तथा आखेट में सफलता प्राप्त हो। यही प्रथा योरोप की प्राचीन गैलली (Celtic) जाति के आदिवासियों में तथा टूटामी के आदिवासियों में भी प्रचलित रही है। इस प्रथा के अनुसार (Teutonic-Germany) पर्व के अवसर पर लोग पशुओं की चर्म एवं सींगों से सुसज्जित होकर एक शोभा यात्रा में निकल कर भव्य समारोह में सम्मिलित होते थे। यही प्रथा ईसा की कई शताब्दियों पर्यन्त चलती रही जिसे ईसाई मतानुयाईयों ने बन्द करा दिया। प्राचीन फांस के गॉल (Gaulish) सिक्कों में अश्वमुखी मानव आकृतियाँ मिलती हैं। इन से तथा आयरलेण्ड की अनेकों प्राचीन कथाओं में श्वान, अज तथा अन्य पशुओं के मुख वाले प्राणी दर्शाए गए हैं। आधुनिक योरोप के लोकनृत्यों में लोग मृग-श्रृंग, मृग-मस्तक, अथवा अन्य पशुओं के सींगों से सुसज्जित होकर नृत्य करते हैं। ऐसी सभी प्रथाओं में वास्तविक भावना मानव एवं पशु को विलक्षण एवं मिश्रित रूप में प्रस्तुत करना अथवा देव पूजा (Tolemism) अनुमानित की जा सकती है। कई देशों में पशु के सींग अथवा सिर का प्रयोग न कर के मुखौटे पहन कर सभी कार्य सम्पन्न कर लिया जाता है।

प्राचीन समय में जब भी किसी पशु अथवा पक्षी विशेष को आराध्य होने का श्रेय मिला तो कलाकार ने अपनी कृतियों में विलक्षणता प्रदान कर, उसे पशु-पक्षी के मस्तक को मानव शरीर पर जोड़कर एक मिश्रित कृति की रचना कर डाली जिसका वास्तविकता से तनिक भी सरोकार न था। सम्भवतः विश्व के सभी प्राचीन धर्मों में, यह प्रथा, किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित रही। कुछ देशों में तो कालान्तर में ऐसी कृतियाँ विलुप्त प्रायः हो गई परन्तु कुछ देशों में इनका प्रचलन बना रहा। यूनान (ग्रीक) में भी जहाँ पर ऐसी कृतियों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था ऐसी कृतियों के अवशेष मिलते हैं। वहाँ पर डिमीटर (Demeter) की मानव देह पर अश्वमुख होने का साक्ष्य है। आर्केडिया के उत्खनन में ऐसी स्त्री आकृतियाँ मिली हैं जिनके सिर भेड़, बकरी, तथा गौ के हैं। यूनान का ग्राम देवता अजमुख वाला है तथा अपोलो (Apollo) का मुख भेड़ का है। मिश्र में भी कई देवी देवताओं के मुख पशुओं अथवा पक्षियों जैसे रहे हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला की एक अनूठी देन कुछ ऐसी विचित्रताएँ हैं जिनकी छवि विश्व के अतीत साहित्य एवं कला में भी दिखाई देती है। इनमें से कुछ है पशु अथवा पक्षियों द्वारा मानव भाषा का प्रयोग तथा संयुक्त आकार के देवी देवता तथा अन्य प्राणि भारतीय प्राचीन सभ्यता का अंग रहे हैं। पशु पक्षियों द्वारा मानुषी भाषा का प्रयोग हमें सर्वप्रथम रामायण में उपलब्ध है जिसमें बानर राज बालि एवं सुग्रीव तथा उनकी बानर सेना सर्वथा मानवी भाषा का प्रयोग करती दिखाई गई है। शिव के वाहन नन्दी भी यदा कदा मानवी भाषा में वार्तालाप करते हुए पुराणों में दर्शाए गए हैं। इस सम्बन्ध में पक्षी भी किसी प्रकार पीछे नहीं हैं। विष्णु का वाहन गरुड तो मानव भाषा में वार्तालाप ही नहीं करता अपितु गरुड पुराण जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ जिसमें अन्य विषयों के अतिरिक्त जीवात्मा के लोकपरलोक की यात्रा का सविस्तर वर्णन है का रचनाकार माना जाता है। इसके अतिरिक्त महर्षि शुक्रदेव तथा कागभुषुण्डी तो पुराणों में ज्ञान के अगाध स्रोत माने गए हैं।

इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय साहित्य में कुछ ऐसे देवी देवताओं एवं अन्य प्राणियों का भी उल्लेख है जिनकी शारीरिक रचना पूर्णतः मानवी न होकर मानव देह के साथ पशु अथवा पक्षियों के अंग सम्मिलित किए गए थे। इन विचित्र देहधारियों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

- (1) ऐसे प्राणी जिनकी उत्पत्ति दिव्य रूप से हुई। इस श्रेणी में मत्स्यावतार कूर्मावतार, नृवराह, नरसिंह, हयग्रीव तो विष्णु के रूप हैं ही साथ ही गरुड, नन्दी, गण्डभेरुण्ड, शिवगण, यक्ष, नैगमेश, राक्षस, गन्धर्व, तथा किन्नर आदि भी इसी वर्ग के अन्तर्गत कहे जा सकते हैं।
- (2) ऐसे जीव जो द्विदेहक होते हुए भी मानव शरीर से उत्पन्न हुए। इनमें महिषासुर, गोकर्ण, ऋष्यभृंग आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
- (3) ऐसे जीव जिन को शल्य प्रक्रिया द्वारा द्विदेहक बना दिया गया था। इस वर्ग में गणपति, तथा दक्षप्रजापति को लिया जा सकता है।

- (4) ऐसे प्राणी जिनकी कल्पना दो देहधारी पशुओं अथवा पशु एवं पक्षी की आकृतियों के रूप में की गई है। जैसे शुक-व्याल, गज-व्याल आदि।

ऐसी विलक्षण आकृतियों का उल्लेख ऋग्वेद में सर्व प्रथम मिलता है। परन्तु वाल्मीकि रामायण में राक्षसी प्राणियों को ही मुख्यतः इन विकृत रूपों से युक्त बताया है। हनुमान सीता की खोज में लंका में प्रवेश करता है तथा वहाँ वह अनेक प्रकार के विकृत रूप वाले राक्षसों को देखता है:-

ददर्श मध्ये गुल्में राक्षस्य चरान बहून्।
दीक्षितञ्जकुटिलान् मुण्डान् गोऽजिनाम्बर वाससः॥
दर्भमुष्टि प्रहरणनग्नि कुण्डायुधास्तथा।
कूटमुद्गर पाणीश्च दण्डायुधधरानपि॥
एकाक्षानेककर्णाश्च लम्बोदर पयोधरान्।
करालान् भुग्न वक्त्राश्च विकटान् वामानांस्तथा॥
धन्विनः खड्गिनश्चैव शतध्नी मुसलायुधान्।
परिष्कोत्तम हस्ताश्च विचित्र कवचोज्ज्वलान्॥
नातिस्थूलान् नातिकृशान् नातिदीर्घाति ह्रस्वकान्।
नाति गौरान नाति कृष्णान् नाति कुब्जान् वामनान्॥
विरूपान् बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः।
ध्वजिनः पताकिनश्चैव दर्दश विविधायुधान्॥

वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्डम्, 4.15-20.

(नगर के मध्य भाग में उन्हें रावण के बहुत से गुप्तचर दिखाई दिए। उनमें कोई योग की दीक्षा लिए हुए, कोई जटा बढ़ाए, कोई मूँडाए, कोई गोचर्म या मृग चर्म धारण किए और कई नंग-धड़ंग थे। कोई मुट्ठी भर कुशों को ही अस्त्र रूप से धारण किए हुए थे। किन्हीं के एक ही आँख थी तो किन्हीं के रूप बहुरंगे थे। कितनों के पेट और स्तन बहुत बड़े थे। कोई बड़े विक्राल थे। किन्हीं के मुँह टेढ़े थे। कोई विकट और कई बौने थे। किन्हीं के पास धनुष खड्ग, शतध्नी और मूसल रूप आयुध थे। किन्हीं के हाथों में उत्तम परिध विद्यमान थे और कोई विचित्र कवचों से प्रकाशित हो रहे थे। कुछ निशाचर न तो अधिक मोटे थे, न अधिक दुर्बल, न बहुत लम्बे थे न अधिक छोटे थे न बहुत मोटे थे न अधिक काले थे। न अधिक कुबड़े थे न विशेष बौने ही थे। कोई बड़े थे, कोई अनेक प्रकार के रूप धारण कर सकते थे। किन्हीं का रूप सुन्दर था। कोई बड़े तेजस्वी थे। किन्हीं के पास ध्वजा, पताका और अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र थे।)

रामायण के अतिरिक्त महाभारत (अनुशासन पर्व) में शिव के गणों का वर्णन है। पुराणों में भी शिव गणों को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मत्स्य पुराण में दक्ष की सृष्टि का विलक्षण स्वरूप इस प्रकार से है:-

द्विपदश्चाभवन् केचित् केचित् बहुपदा नराः।
बलीभुखा शंकुर्कणा कर्णप्रावरणस्तथा॥
अश्व ऋक्षमुखा केचित् सिंहाननस्तथा।
श्वशूकर मुखा केचित् केचिदुष्ट मुखा तथा॥

(दक्ष ने एक अदभुत प्रकार के जीवों की सृष्टि की। उसकी सन्तान में कई दोनों पैर वाले थे कुछ के दो से अधिक पाद थे। कुछ लम्बकर्ण थे तो कुछ चौड़े कानों वाले थे। कुछ अश्वमुख वाले थे तथा अन्य के मुख सिंह, श्वान, ऋक्ष तथा उष्ट्र जैसे थे।)

परन्तु शिव के गणों का वर्णन मत्स्य पुराण में बहुत ही विलक्षण रूप में मिलता है। जैसे:-

गवाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते विस्मयताननाः।
यावन्तस्ते कृशा दीर्घा ह्रस्वा स्थूला महोदराः॥
व्याघ्रेभ्रववदनाः केचित् केचिन्मेषाजरूपिनः।
अनेक प्राणि रूपाश्च ज्वालास्याः कृष्ण पिङ्गलः॥
सौम्याः भीमाः स्मितमुखाः कृष्ण पिङ्ग जटासटाः।
नाना विहंगवदनाः नानाविधमृगाननाः॥
कौशेय चर्मवसना नग्नाश्चान्ये विरूपिणाः॥
गोकर्णाः गजकर्णाश्च बहुवक्त्र क्षणेदराः॥
बहु पादा बहुभुजा दिव्य नानाऽस्त्र पाणयः।
अनेक कुसुमापीड नान व्याल विभूषणाः॥

**वृत्ताननयुधधराः नाना कवच भूषणाः।
विचित्र वाहनारूढाः दिव्यरूपा विधच्यराः॥**

मत्स्यपुराण, 154.531-36

(उनमें कुछ कृश थे कुछ मोटे कुछ अधिक लम्बे तथा कुछ अधिक बौने, कुछ लम्बोदर थे। कुछ एक के मुख सिंह, गज, भेड़, बकरी आदि के थे। कई विचित्र रूप और वेशभूषा के थे। कुछ प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान थे, कुछ कृष्ण तथा कुछ पीत वर्ण के थे। कुछ सौम्य एवं मन्द मन्द मुस्कान लिए थे। कुछ के काले तथा कुछ के भूरे रंग के केश थे। कुछ की आकृति पक्षियों जैसी थी। कुछ के मुख अनेक प्रकार के मृगों के सदृश थे। कुछ विकृत रूप के थे। कुछ के कर्ण, गज, जैसे थे। कुछ के अनेको मुख, अनेकों नेत्र, अनेको उदर, हाथ एवं पाद थे। कई पुष्प कई नागों के आभूषण, तो कई एक अनेकों अस्त्र तथा अनेक प्रकार के कवच धारण कर, अनेकों वाहनों पर आरूढ़ थे।)

मत्स्य पुराण में ही हिरण्यकशिपु के नृसिंह द्वारा उद्धार के आख्यान में उसकी राक्षसी सेना में भी राक्षसों की विकृत आकृतियों का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार से है।

**खरा खरमुखाश्चैव मकराशी विषाननाः।
ईहामृग मुखाश्चान्ये वराह मुख संस्थिता ॥
बालसूर्य मुखाश्चान्ये धूकेतु मुखास्तथा।
अर्द्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्त मुखास्तथा॥
हंस कुक्कुट वक्त्राश्च व्यदितास्या भवाचहा।
सिंहास्यलेलिहानाश्च काक गृध्र मुखास्तथा॥
द्विजिह्वाकवक्त्राशीर्षास्तथोल्का मुख संस्थिता।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः॥**

भक्त्यपुराण, 163.1-4

(इन राक्षसों में से कई तो गदर्भ, मकर, मत्स्य, सर्प, मृग, वराह, अरुणोदय, धूकेतु, अर्द्धचन्द्र, हंस, प्रज्वलित अग्नि, कुक्कुट, सिंह, काग, गृध्र, शृंगाल, उल्का, के समान थे तथा कुछ की दो दो जिह्वें थीं कुछ के मुखमण्डल प्रचण्ड अग्नि शिखा के समान थे)

बहानपुराण(213.93-99) में राक्षसों की आकृतियों का वर्णन भी कम रोचक नहीं है। इस ग्रन्थ के अनुसार वह नाना प्रकार के आयुधों से युक्त अनेक वेशधारी महाबली, कछुए तथा मुर्गे के समान मुख वाले, खरगोश तथा उलूक के समान, मुंह वाले, गधे, ऊंट, सूअर विलाड़, घड़ियाल, मयूर, भेड़े, वृषभ, बकरे महिष, गोह, साही, चूहे, मेंढक, भेड़िये, ग्राह, कराकुल (क्रौन्च) तथा अश्व के समान मुख वाले थे। उनमें से कई तो गजचर्म, मृगचर्म, धारी तथा कुछ एक ने अपना शरीर नीले वस्त्रों से ढका हुआ था। कई पगड़ी, कुण्डल तथा मुकुट धारी राक्षस थे। किन्हीं की 'चोटी लम्बी थी, ग्रीवा शंख के समान थी तथा कई एक ने अनेक मालाएँ पहन रखी थीं तथा कई राक्षसों ने अपने शरीर पर लेप कर रखा था। इसी प्रकार के विलक्षण आकृतियों वाले राक्षसों का वर्णन, वायु (101.260,264): पञ्च श्रष्टिखण्ड (40.476-66): लिंग (1.103;13.34); हरिवंश (2.109;63-84) तथा विष्णुधर्मोत्तर आदि अनेकों पुराणों में भी है।

इसके अतिरिक्त कालिदास ने भी रघुवंश में एक ऐसे दानव का वर्णन किया है जिसका आधा शरीर हाथी तथा आधा मछली का है और वह समुद्र में छलांग लगाता है। उसे मातंगकर की उपाधि दी गई है। अपराजितपृच्छा में भी 16 व्यालों का उल्लेख है (इति षोडश व्यालानि उक्तानि मुखभेदतः॥)। नवीं शती ई० के धनंजयनाममाला में भी ईहामृग तथा व्यालों का सविस्तार वर्णन है। गोस्वामी तुलसीदास भी ऐसे विलक्षण प्राणियों को कैसे भुला सकते थे। उन्होंने भी रामचरितमानस में शिव विवाह के समय शिवगणों का वर्णन इस प्रकार किया है:—

**तनु क्षीण कोऊ अति पीन पावन कोई अपवन तनुधरे॥
भूषण कराल कपालकर सवसद्य शाणित तनुभरे॥
खरश्वान सुअर शृगाल मुख गण मेष अगणित को गिनै॥
बहु जिनिस प्रेत पिशाच योगि जमाति वर्णत नहीं वने।**

वालकाण्ड

(कोई दुर्बल कोई बलवान, कोई पवित्र कोई अपवित्र शरीर धारण किए हुए, गहने अति तीक्ष्ण, हाथों में खोपड़ी, जिसमें रुधिर भरा था तथा शरीर में भी लिपटा हुआ था। उन गदहे, श्वान, शूकर, शृगाल के मुख वाले गणों के अनगिनत भेष, कौन गिने? बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच तथा योगियों की जातियों का वर्णन नहीं हो सकता।)

अब देखना यह है कि महिषासुर जिसकी गणना ऐसी ही विलक्षण आकृतियों वाले प्राणियों में होती आई है, का अस्तित्व क्या है। इस विषय पर विशेष चिन्तन के लिए हमें देवी भागवत का आश्रय लेना पड़ेगा। महिषासुर को पुराणों में विकृत देह धारी राक्षस प्रदर्शित किया गया है जिसका मस्तक तो महिष का था परन्तु देह मानवी थी। ग्रन्थाकारों के अनुसार उसका जन्म तीन वर्ष की महिषी से हुआ। देवी भागवत में देवी उसे स्वयं एक नृशंस प्राणी के रूप में देखती है जो घास फूस चरता है (तृणादस्त्वं जडाकृति- देवी भागवत्, 5.3-2)। जब महिषासुर देवी से प्रणय याचना करता है

तो देवी उत्तर देती है कि कौनसी नारी संसार में एक महिष को पति बनाएगी:-

**का मूढा यामिनी लोके महिषं हि पति भवेत्।
मादृशीं मन्द बद्धे किं पशुभावं मजेदिह॥**

देवी भागवत-5.10.60.

यही नहीं देवी ने तो उसे पूर्ण रूप से पशु कहा-भविष्यति चतुष्पादं दिवि च गिरि कन्दरो। इसके उपरान्त देवी ने उसे ऐसा पशु कहा जो चार पैर दो सींग तथा पूँछ वाला है तथा महिषी के गर्भ से उत्पन्न हुआ घास खाने वाला प्राणी है।

**यथा ते महिषी माता प्रौढा यवस भक्षिणी
नाहं तथा शृंगवती लम्ब पुच्छ महोदरी**

देवी भागवत का ऊपरोक्त साक्ष तो महिषासुर को पशु रूप में प्रस्तुत करता है। परन्तु यह भी सम्भव है कि देवी ने उसे पशु उसकी क्रूरता अथवा नृशंसता के कारण ही कहा हो।

एक अन्य सम्भावना यह भी है कि दानव का मानव शरीर हो। इसके पक्ष में सब से बड़ी दलील यह है कि वह मानवी भाषा का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त वह एक विशाल एवं सुगठित सेना का नेता है जिसके अनेकों बलिष्ठ सेनापति हैं। वह देवी का पता चलने पर एकदम उसे पकड़ने नहीं दौड़ा। इसके विपरीत वह अपने सभी मन्त्रियों, सेनापतियों तथा सलाहकारों को बुलाता है। उनकी बैठक में प्रस्ताव रखा जाता है जिसपर बहस होती है तथा जो विचार सभा का एक मत से पास होता है उसीके अनुसार देवी के पास दूत भेजा जाता है। जब दूत देवी के पास पहुँचता है तो वह उसके सामने अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी प्रस्ताव रखता है कि महिषासुर उसके पास मनुष्य रूप आ सकता है (मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति)। अनन्तर महिषासुर युद्धस्थल पर भी मनुष्य रूप में उपस्थित होता है। (मानुषं देहमादाय संग्रामं गन्तुमिच्छतः।)

देवी भागवत में महिषासुर की माता उस महिषी के चरित्र का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। उस महिषी के गर्भाधान के पश्चात् एक अन्य महिष ने जिसका नाम नम्र था महिषी को भ्रष्ट करने की चेष्टा की। वह अपना सतीत्व बचाने लिए यक्ष की शरण में गई। परन्तु नम्रने महिषी के पति रम्म की हत्या कर दी। उसके पश्चात् महिषी ने अपने पति के शव के साथ अग्नि में प्रवेश किया और बालक महिषासुर जलती चिता से मातृगर्भ से निकला। महिषी का यह चरित्र समक्ष रखने से इस बात की अधिक सम्भावना दिखाई देने लगती है कि महिषासुर का मनुष्य रूप अवश्य था। जो वह इच्छानुसार बदल सकता था और इस प्रक्रिया के लिए मुखोटों का प्रयोग भी हो सकता है।

एक अन्य सम्भावना यह है कि महिषासुर मनुष्य रूप में होते हुए भी उसका सिर महिष का था। इस सम्बन्ध में नीचे लिखित तीन बातों को ध्यान में रखना होगा।

- (1) देवी ने महिषासुर के प्रणय के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उसे सींग युक्त महिष की संज्ञा दी थी।
(क्वाहं कवः महिषः शृंगी सम्बन्धं कीदृशीं भवेत्)
- (2) एक अन्य स्थान पर महिषासुर को गजः तुल्यं विषाणनम् कहा है।
- (3) दानव महिष का रूप त्याग कर मानव रूप इस आशा से बदल लेता है कि देवी उसे पशु रूप में अस्वीकार कर देगी-शृंगीणं महिषं नूनं विमना सा भविष्यति।

ऊपरोक्त तथ्यों के आधार पर महिषासुर के अस्तित्व के बारे कुछ भी सुनिश्चित करना कठिन है। यह सम्भावना है कि वह एक मानव ही था जो कई प्रकार के वेश बदल कर मंच पर आता रहा जिसकी तुलना आज कई आदिवासी जातियों में प्रचलित प्रथाओं से की जा सकती है जिस में पशुओं के सींग लगाकर अपने इष्ट देवों को प्रसन्न करते हैं।

जहां तक भारतीय कला में विकृत कृतियों की प्रस्तुति का सम्बन्ध है यह कहा जा सकता है कि आज से लगभग पाँच सहस्र वर्ष पूर्व की सिंधु घाटी सभ्यता में भी ऐसी कृतियों के अवशेष मिले हैं। वहां पर ऐसी कई मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं जिनके ऊपर अनेक प्रकार की विकृत आकृतियाँ बनी हैं। एक मुद्रा में एक पुरुष को सींगों तथा पूँछ सहित तीव्रगति से चलता हुआ दिखाया गया है जबकि एक सिंह मुखी मानव एक शृंग युक्त सिंह से युद्धरत दिखाया गया है। एक और मुद्रा में एक सिंहमुखी मानव एक शृंग युक्त सिंह से युद्धरत दिखाया गया है। एक और मुद्रा में एक ऐसी अकृति है जिसका अग्र भाग मानवीय है तथा पृष्ठ भाग सिंह का है। एक अन्य मुद्रा में तीन ग्रीवाओं वाले शृंग युक्त प्राणी का प्रदर्शन है जिसका धड़ सिंह का है।

ऐसी ही विकृत गरुड़ की आकृतियाँ तिब्बत से प्राप्त कांस्य प्रतिमाओं में भी उपलब्ध हैं हुआ है। में भी उपलब्ध हैं जिनका प्रदर्शन बहुत ही रोचक ढंग से हुआ है। (रेखा चित्र:-41-43)

भारतीय प्राचीनसाहित्य में ईहामृगों, नर-व्याल, शुकव्याल, गज-व्याल का अनेकों बार वर्णन आया है। उदाहरण के रूप में महाभारत के साक्ष्य के अनुसार, पाण्डु पुत्र भीम को एक बार ईहामृग से संघर्ष करना पड़ा था। इस ईहामृग का अग्रभाग मानव का तथा पृष्ठ भाग सिंह का था। इसी प्रकार के कई विकृत आकृति वाले जीव भरहुत, साँची अमरावती एवं मथुरा के पाषाण खण्डों पर अंकित हैं जो शृंगकुषाण काल के माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त उदयगिरि-खण्डगिरि (उड़ीसा) की गुफाओं में भी ऐसे पंख युक्त सिंहों का प्रदर्शन है जिनके मुख मानव, अश्व, शुक आदि के समान हैं। कुछ एक में मानव देह के साथ सिंह का धड़ जुड़ा है तो कुछ एक में मृग को पंख लगाए हुए है। कई सिंह आकृतियों को भेड़ तथा शुक के मुख लगा दिए गए हैं। अहिच्छत्र से भी कुछ मृण्मय फलक किन्नर तथा शिव के गणों को दर्शाते हुए मिले हैं। (रेखा चित्र:-46-57)

इस प्रकार की आकृतियों की परम्परा भारत में अनादिकाल से चली आई है जिनका वर्णन भारतीय प्राचीन साहित्य में शिव के गुणों, अथवा

राक्षसों आदि के रूप में मिलता है। महिषासुर को भी भारतीय कला में महिष के द्विदेह में होने का एक उदाहरण हमें महाबलिपुरम से प्राप्त है। (रेखा चित्र-52)

भारतीय कला में इस प्रकार की आकृतियों का प्रदर्शन यदा कदा होता रहा है। उनमें से एक रोचक दृश्य एक लघुचित्र में प्रस्तुत किया गया है जिसमें निशुम्भ दैत्य सिंहासन पर विराजमान है। दैत्य का मुख तो मानव जैसा ही है परन्तु उसके मस्तक पर दो टेढ़े सींग हैं। वह एक हाथ में गदा लिए है जबकि एक तलवार उस के समक्ष रखी हुई है। वह अपने सभासदों से घिरा हुआ है और उन सभी के सिर पर सींग हैं। एक अन्य चित्र में जो रामायण के फारसी अनुवाद से लिया गया है राम एवं (रं.चि०-2) राक्षसी ताड़का के युद्ध का दृश्य दिखाया गया है। इस चित्र में राक्षसी को भयंकर मुखाकृति वाली दर्शाया गया है। उसके दोनों पांव पक्षियों जैसे हैं। (चित्र-81; रंगान चित्र-2)

18

ऋषियों की भूमिका

महिषासुरमर्दिनी के आख्यान के कई एक ऋषियों की अपनी अलग-अलग भूमिका है। सर्वप्रथम हम मेधा ऋषि को ही लें। देवी माहात्म्य के अनुसार स्वरोचिष मन्वन्तर में सुरथ नाम के एक राजा थे जो चैत्र वंशज थे तथा उनका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था परन्तु कालान्तर में वह अपने शत्रुओं द्वारा परास्त हो वनवन भटकने लगे। सुरथ का प्रभुत्व नष्ट हो चुका था। वन में उन्होंने विप्रवर मेधा मुनि का आश्रम देखा जहाँ कितने ही भयंकर सिंह आदि जीव परमशान्त भाव से परस्पर विरोध त्याग विचार रहे थे। मुनि के अनेकों शिष्य उस वन की शोभा बढ़ा रहे थे। जब राजा सुरथ ऋषि आश्रम में पहुँचे तो मुनि ने उनका सत्कार किया तथा आश्रम में विचरने लगे। तभी राजा को मोह उत्पन्न हुआ कि पूर्वकाल में मेरे पूर्वजों ने जिस पृथिवी का पालन किया वही धरा आज मुझ से वंचित है। एक दिन उन्होंने विप्रवर मेधा के आश्रम में एक वैश्य को देखा तथा उससे उसका परिचय पूछा। वह वैश्य भी अधिक शोक ग्रस्त थे तथा उन्होंने राजा सुरथ को बताया कि वह एक धनियों के कुल में उत्पन्न वैश्य थे तथा उसके धन वैभव को उसके पुत्रों ने छीन लिया था अतः वह दुखी हो वन में चला आया था। (रेखा चित्र-58)

तभी दोनों दुखी प्राणि, राजाओं में श्रेष्ठ सुरथ तथा समाधि नामक वैश्य दोनों साथ साथ मेधा मुनि की सेवा में उपस्थित हुए। तथा मुनि श्रेष्ठ से पूछने लगे, "भगवन! मेरा चित अपने अधीन न होने के कारण वह बात मेरे मन को बहुत दुख देती है। जो राज्य मेरे हाथ से चला गया है, उसमें तथा उसके महत्वपूर्ण अंगों में मेरी ममता बनी हुई है। मुनिश्रेष्ठ यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है अज्ञानी की भाँति मुझे उसके लिए दुख होता है। इसका क्या कारण है? इधर यह वैश्य भी घर से अपमानित हो कर आया है। स्वजनों ने भी इसका परित्याग कर दिया है तो भी वह उनके प्रति हार्दिक स्नेह रखता है। इस प्रकार हम दोनों बहुत दुखी हैं। जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा गया है उस विषय के लिए भी हमारे मन में ममता जनित आकर्षण पैदा हो रहा है। क्यों हम विवेक शून्य पुरुष की भति हम मूढ़ों की भाँति आचरण कर रहे हैं।"

राजा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर ऋषि मेधा ने उनको देवी माहात्म्य की कथा कहते हुए उन्हें उपदेश दिया कि विषय मार्ग का ज्ञान सभी जीवों को है। इसी प्रकार विषय भी अलग अलग है। कुछ प्राणि दिन में नहीं देखते तथा कुछ ऐसे हैं जो रात्रि में नहीं देख सकते। केवल मनुष्य ही समझदार नहीं होते अपितु पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणियों में यथोचित बुद्धि होती है।" इसके पश्चात् मेधा ऋषि ने देवी महिमा का ज्ञान इन दोनों महानुभावों को दिया जिसके उपरान्त दोनों ने देवी की आराधना की तथा अपना खोया राज्य राजा सुरथ ने तथा समाधि नाम वैश्य ने अपनी खोई हुई सम्पत्ति पुनः प्राप्त की।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षमः।

सूर्याजन्म समासाद्य सार्वर्णि भविता मनुः॥

देवी को कात्यायनी भी कहा गया है क्योंकि उसका आविर्भाव कात्यायन ऋषि के आश्रम में हुआ था। शिवराममूर्ति महोदय ने कात्यायन को महर्षि माना है। उनके वचनानुसार पाणिनि, पतञ्जलि तथा कात्यायन तीनों महर्षियों में गिने जाते हैं क्योंकि संस्कृत व्याकरण की परमरागत पद्धति उन्हीं की देन है।

"In fact, Panini, Katyayana and Patanjali are all the three taken as Maharshis, and everyday, according to tradition study of *vyakarana*, the first salutation is composed of three verses that offers obeisance to the three rishis."

मोमियर विलियम² को अनुसार कात्यायन वर्तिकाओं का रचयिता भी माना जाता है तथा उसे वररुचि के नाम से भी पहचाना जाता है। इसी कारण से इस महर्षि को महान् वातीकार भी माना गया है:—

वाक्यकारं वररुचि भाष्यकारं पतञ्जलिम्।

पाणिनिं सूत्रकारं च प्रणतोस्मि मुनित्रयम्॥

कात्यायन को महादेव के गण पुष्पदन्त³ का अवतार भी माना जाता है जो महादेव के श्रापवश मनुष्य योनि को प्राप्त हुआ। पुराण कथाओं के अनुसार उसने छिप कर एक बार शिव और पार्वती की गुप्त वार्ता सुनकर अपनी पत्नी को सुना दी। पता चलने पर शिव ने उसे मानव रूप में जन्म लेने का श्राप दिया।

इसी कात्यायन ऋषि के आश्रम में देवी का ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के तेज से प्रादुर्भाव हुआ तथा वह कात्यायनी कहलाई।

तच्चैतकां पर्वत कूट सन्निभं जगाम तेजः प्रवराश्रमे मुने।

कात्यायनस्याप्रतिमस्य तेन महिषणा तेज उपाकृतं च॥

वामन पुराण-19.7

अतः देवी के आख्यान में कात्यायन ऋषि का विशेष महत्व है क्योंकि देवी उसी के आश्रम में प्रकट होकर फिर विन्ध्य पर्वत पर चली गई जहां जाकर उसने पर्वत की सर्वोच्च चोटी पर निवास किया।

इस संदर्भ में एक अन्य तथ्य ध्यान में रखने योग्य है वह यह कि जिस विन्ध्य पर्वत पर देवी ने निवास किया वह ऋषि अगस्त्य द्वारा निम्न किया गया था। वामन पुराण⁴ के अनुसार नारद द्वारा पूछे जाने पर महर्षि पुलस्त्य ने बताया कि प्राचीन काल में विन्ध्य ने गगन विहारी शृंखलाओं से सूर्य की गति को रोक दिया। तदनन्तर सूर्य ने महर्षि अगस्त्य के पास जाकर कहा कि "विन्ध्याचल मेरा मार्ग रोक रहा है। अतः आप विन्ध्याचल को नीचा करने का यत्न करें। कुम्भ जन्मा अगस्त्य ने सूर्य की प्रार्थना सुनकर उसे अभय दान दिया तथा विन्ध्य पर्वत को जाकर कहा कि मैं अति पवित्र तीर्थ को जा रहा हूँ और वृद्ध होने के कारण तुम्हारे ऊपर चढ़ने में असमर्थ हूँ। अतः तुम तत्काल नीचे हो जाओँ"। (रेखा चित्र-83)

विन्ध्य पर्वत को पार करने के उपरान्त महर्षि ने पर्वत को पुनः आदेश दिया कि "जब तक मैं पवित्र तीर्थ से स्नान करके न लौटूँ तब तक तुम्हें नहीं बढ़ना चाहिए। और अवज्ञा करने पर मैं तुम्हें घोर श्राप दूँगा।" ऐसा कह कर भगवान् अगस्त्य दक्षिण दिशा की ओर चले गए तथा "उचित समय से फिर जाऊँगा" ऐसा कह कर पर्वत को उन्होंने उसी दशा में रोक दिया। इसी प्रकार अगस्त्य ऋषि ने विन्ध्य को निम्न शृंखला वाला कर दिया। उसीके ऊर्ध्व शृंग पर मुनि संस्तुता दुर्गा दानवों के विनाशार्थ स्थित हुई।

एवं त्वगस्तेन महाचलेन्द्रः स नीच शृंगोहिकृतो महर्षे।

तस्योर्ध्वशृंगे मनिसंस्तुता सा दुर्गा स्थिता दानव नाशनार्थम्॥

वामन पुराण:19.36

पुराणों के अनुसार महर्षि अगस्त्य का जन्म मित्र एवं वरुण के वीर्य द्वारा हुआ जिसका पतन इन्द्र की अप्सरा उर्वशी को देखने से हुआ। उस वीर्य को एक कुम्भ में रखा गया। कालान्तर में इससे अगस्त्य का जन्म हुआ। जन्म से अगस्त्य मुनि बहुत छोटे (बौने शरीर वाले थे। उनका वर्ण कृष्णमय था।)

अगस्त्य का प्रभाव दक्षिण भारत में अधिक रहा है। एक आख्यान के अनुसार एक बार हिमालय में सभी ऋषियों का समागम हुआ परन्तु उन ऋषियों के ज्ञान का भार इतना अधिक था कि पृथिवी नीचे धसने लगी। अतः सभी ऋषियों ने उसे बचाने के लिए अगस्त्य से प्रार्थना की क्योंकि उनका ज्ञान अन्य सभी एकत्रित ऋषि समूह के ज्ञान से अधिक था। अतः अगस्त्य ने गंगा जल, अन्य ऋषियों की सन्तानों, द्वारका से कुछ शसकों की सन्तानों को, राजपुत्रों तथा अन्य कई लोगों को साथ लेकर दक्षिण में, विन्ध्य पर्वत लाँघ कर प्रवेश किया। इन सभी लोगों की संख्या 18 करोड़ थी। (रेखा चित्र - 59 ख)

अगस्त्य ऋषि को दक्षिण भारत का भगवान् भी कहा जाता है। कहते हैं एकबार अगस्त्य ऋषि ने अपने पूर्वजों को अन्धकूप में उलटे लटकते देखा जिसका कारण यह था कि उसने पुत्र उत्पन्न नहीं किया था। तब ऋषि ने विवाह करने का निश्चय किया था एक ऐसी स्त्री जाति की रचना की जिसमें पक्षियों, पशुओं, पुष्पों, तथा वृक्षों के सौम्य तत्वों का सम्मिश्रण था। उसका नाम लोपमुद्रा रखा गया तथा वह विदर्भ राजवंश में पलने लगी। कालान्तर में उसका विवाह ऋषि अगस्त्य से हो गया। यह कथा अतिप्राचीन है क्योंकि लोपमुद्रा एवं अगस्त्य का आख्यान ऋग्वेद में भी मिलता है। इसके अनुसार वह अपने पति अगस्त्य को उपालम्भ देती है कि उसने कई वर्षों पर्यन्त ऋषि की सेवा की परन्तु उसे अपनी शारीरिक वासना की तृप्ति नहीं हुई जबकि उसके शरीर में यौवन ढलने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं।

पूर्विरहं शरदः शशमाणा दोषा वस्तोरुषसों जरयन्तीः।

मिनाति श्रियं जरिमातनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः

ऋग्वेद-1.179.1

पत्नी लोप मुद्रा के इस प्रकार कहने पर ऋषि अगस्त्य को इस तथ्य की अनुभूति हुई तथा उन्होंने माना कि तपस्या में जुटे रहने के कारण वह लोपमुद्रा की भावनाओं की अवहेलना करते रहे हैं तथा अब वह उसे पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक सुख देंगे:-

नदस्य मा रुधतः काम आगान्ति आज्ञातों अमुतः कुतश्चित्।

लोपमुद्रा वृषणं नी ऋणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्॥

ऋग्वेद:1.179.4

इसके उपरान्त ऋषि अगस्त्य ने लोपमुद्रा से अत्यन्त शक्तिमान, बलिष्ठ एवं बुद्धिमान सन्तान को जन्म दिया:-

अगस्त्य खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।

उभौः वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगामः॥

ऋग्वेद-1.179.6

अगस्त्य ऋषि का देवी माहात्म्य की गाथा से विशेष सम्बन्ध है क्योंकि उन्होंने ही सर्व प्रथम विन्ध्य पर्वत जो इससे पूर्व किसी से न लांघा गया था, पार किया उसके पश्चात् ही महिषासुरमर्दिनी के महिष से युद्ध होने की सम्भावना हुई। अगस्त्य का विन्ध्य को पार करना एक ऐतिहासिक घटना है। समुद्रगुप्त सम्राट ने अपनी सेना समेत विन्ध्य को अगस्त्य ऋषि के पश्चात् दक्षिण में प्रवेशकर वहां अपना अधिकार जमाया जिसका साक्ष्य इलाहाबाद की समुद्रगुप्त के शिलालेख में उपलब्ध है।

रामायण में भी अगस्त्य को दक्षिण के सभी ऋषियों में अग्रगण्य कहा है। जो विन्ध्य पर्वत की कुन्जर नाम की चोटी पर निवास करते थे। अगस्त्य

ऋषि ने राम को वनवास के समय विष्णु का धनुष प्रदान किया तथा अन्य नीतिसंगत उपदेश भी दिए।

देवी माहात्म्य जिसमें देवी चरित का सविस्तर वर्णन है मार्कण्डेय ऋषि की रचना मानी जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ विद्वान देवी माहात्म्य के मार्कण्डेय पुराण को एक क्षेपक के रूप में मानते हैं परन्तु यह यदि क्षेपक है तो भी पर्याप्त प्राचीन है। मार्कण्डेय ऋषि मृकुण्डु की सन्तान हैं तथा अष्ट चिरन्जीवियों में से एक हैं।

मार्कण्डेय बलिव्यासो हनुमन्तश्च विभीषणः।

परशुरामो कृपोद्वैणी सर्वे ते चिरजीविनः॥

पुराण कथा के अनुसार ऋषि मृकुण्डु ने पुत्र प्राप्त के लिए घोर तपस्या की। भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उसे बारह वर्ष की आयु वाला एक पुत्र अथवा अनेको मूर्ख पुत्र लम्बी आयु वाले मांगने को कहा। मृकुण्डु ने कम आयु वाला एक पुत्र मांग लिया। परन्तु जैसे जैसे बालक बड़ा होता गया माता पिता चिन्तित रहने लगे। जब बालक को अपने मातापिता की चिन्ता का कारण ज्ञात हुआ तो उसने भगवान् शिव की आराधना आरम्भ कर दी। जब बारह वर्ष आयु के समाप्त हो गए तो यमराज ने आकर बालक को शिवलिंग की पूजा में मग्न था, के गले में पाश बांधकर उसे खींचने लगा। तभी लिंग से भगवान् शिव ने प्रकट होकर यम को लात से प्रहार किया जिससे वह मूर्छित हो उठा। अन्त में भगवान् शिव ने मार्कण्डेय को सदैव सोलह वर्ष का ही बने रहने का वरदान दिया तथा यम को निराश हो लौटना पड़ा। यही कथा भारतीय कला में शिव के कालारिमूर्ति के रूप में दर्शाई जाती रही है। ऐसी ही एक कृति इलोरा की गुफाओं में प्राप्त हुई है जिसमें बालक मार्कण्डेय की ग्रीवा यम के पाश से बन्धी है तथा शिव यम के वक्षस्थल पर पाद प्रहार कर रहे हैं। बालक मार्कण्डेय शिवलिंग से चिपक कर बैठा है। (रेख चित्र :- 59, 59क; चित्र-83)

मार्कण्डेय ऋषि पाण्डवों को वन में मिलने गए तथा युधिष्ठिर को ज्ञान का उपदेश दिया। इस प्रकार देवी के आख्यानों में मेधा, मार्कण्डेय, कात्यायन एवं अगस्त्य, इन चारों ऋषियों की एक विशेष भूमिका है जो अपने आपमें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

सन्दर्भ

- (1) Sivaramamurti, c., *Rishis in Indian Art and Literature*, p.167,
- (2) Williams. Monier: *Sanskrit English Dictionary*, p.270,
- (3) Kielhorn. F. *Katvayana and Patanjali*, pp.1-10
- (4) वामन पुराण-अध्याय-19

19

विदेशों में देवी की प्रस्तुति

इससे पूर्व के अध्यायों में यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार देवी की मान्यता का भारत भूमि में उद्गम एवं निरन्तर विकास हुआ तथा किस प्रकार इसकी आराधना शासक वर्ग में ही नहीं जनसाधारण में भी लोकप्रिय होती गई। उसकी आराधना के अनेकों स्वरूप थे तथा कलाकार ने भी उसकी छवि को मृण्मय, कांस्य, प्रस्तर एवं अन्य धातुओं में अंकित करने की सजीव चेष्टा की है। देवी की यह मान्यता भारत में ही सीमित न रहकर भारत की सीमाओं को लांघ कर विदेशों में पहुँच गई जिसका साक्ष्य इन देशों की प्राचीन मूर्ति कला में आज भी उपलब्ध है।

देवी की उपस्थिति को विदेशों में खोजते समय हमें देवी के वाहनों तथा उसके शस्त्रों को ध्यान में रखना होगा। मैके (Mackey) ने हडप्पा से प्राप्त एक मुद्रा (seal No. 279) में इसका अवलोकन किया था। इस मुद्रा में एक महिष को तीक्ष्ण सींगों सहित प्रस्तुत किया गया है। महिष के नीचे पशुओं की नाँद है। बाईं ओर एक मानव आकृति ने एक हाथ से महिष का सींग पकड़ रखा है तथा दूसरे हाथ में माला है जिससे वह महिष की पृष्ठ पर आघात कर रही है। इसी प्रकार की प्रस्तुति अन्य मोहनजोदड़ो की मुद्राओं में भी देखी जा सकती है।

मैके महोदय¹ ने इसे शिव द्वारा दुम्भुभी पर आक्रमण का दृश्य कहा है। बैनर्जी महोदय² ने उक्त दृश्य को देवी माहात्म्य में वर्णित दुर्गा द्वारा महिषासुर वध करना नहीं माना है। उनका विचार है कि इस मुद्रा में प्रदर्शित मानव आकृति स्त्री की न हो कर पुरुष की है। मैके की एक अन्य मुद्रा³ (Seal No. 510) में एक महिष को प्रस्तुत किया गया है जिसने कई लोगों को नीचे धराशायी कर दिया है। एक अन्य मुद्रा में एक मानव आकृति को दो सिंहों से युद्धरत दिखाया गया है। प्रत्येक सिंह मानव आकृति के दाईं एवं बाईं ओर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा है। एक अन्य मुद्रा में एक मानव आकृति वृक्ष पर मचान बनाकर बैठी है तथा सिंह उसके समक्ष है। मानव आकृति का सिंह के साथ युद्धरत होना देवी चरित के साथ तो जोड़ना कठिन है परन्तु यह बात अवश्य है कि पौराणिक आख्यानों के अनुसार महिषासुर ने देवी के साथ युद्ध के समय कई वेश बदले जिनमें एक सिंह भी था।

इस सम्बन्ध यह कहना अनुचित न होगा कि सिंह के साथ मानव द्वन्द्व युद्ध प्राचीन काल में अधिक प्रचलित था। इस विषय में इटली की गोरगोन⁴ (Gorgon) देवी का हवाला दिया जा सकता है। इटली से प्राप्त एक छठी शती ई० की प्रतिमा में देवी को भूमि पर बैठे हुए दर्शाया गया है जिसके दोनों हाथ दोनों दिशाओं में फैले हैं तथा प्रत्येक हाथ से वह एक सिंह को बलपूर्वक पकड़े हुए है। देवी के मुखमण्डल पर उस पीड़ा के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं जिस कारण वह दोनों सिंहों को अलग कर रही है देवी की किसी न किसी रूप में अन्य देशों में उपस्थित नीचे दी जाती है। (रेख चित्र - 62, 63)

(1) फ्रांस:-

इस देश के पाषाण युग के शिला आश्रय स्थलों से एक प्रस्तर पट्टिका प्राप्त हुई है जिसमें एक निर्वस्त्र स्त्री अपने

दाएँ ऊपर उठे हाथ में एक महिष का वक्री सींग उठाए हुए दर्शाई गई है। उस स्त्री मूर्ति का मुख बाईं ओर मुड़ा हुआ है तथा उसको ठोड़ी कन्धे से जुड़ी है। उसके स्तन लम्बे हैं तथा बाएँ हाथ की पाँचों अंगुलियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं जो कटिहस्त मुद्रा में स्थित हैं। पाषाण युग की होने के कारण इस प्रतिमा का अपना एक अलग महत्व है क्योंकि ऐसा लगता है कि देवी अपने हाथ में महिष का सींग उठाकर उस पर विजय पाने की ओर इंगित कर रही हैं। (रे०चि०:-60)

(2) नूबिया (अफ्रीका):-

नूबिया में नूबियन राज्ञी के मन्दिर में एक प्रतिमा है जिसमें राज्ञी को खड़े हुए दर्शाया गया है। उसके दोनों हाथों में एक एक खड्ग है। बायाँ हाथ खड्ग सहित ऊपर को उठा है जबकि दायाँ हाथ खड्ग तथा अनेक हाथों तथा सिरों वाले जीव को ऊपर से पकड़े हुए है। देवी के सिर पर नाग फन है। देवी के पीछे सिंह है जो बहुमुखी तथा अनेक हाथ वाले प्राणी पर आक्रमण करता दिखाई देता है। स्मरण रहे कि भारतीय परम्परा में देवी के अनेकों हाथों की परिकल्पना की गई है परन्तु यहां पर देवी द्वार परास्त दानव(?) अनेक हाथों तथा सिरों वाला है। देवी के वस्त्रों पर पंखों जैसा चित्रण किया हुआ है। उसके सिर से कुछ ऊपर एक बाज़ पंजों में सर्प लिए मंडरा रहा है। उपरोक्त प्रतिमा को भारतीय देवी महिषासुरमर्दिनी के साथ तुलना कर पाना सम्भव तो नहीं परन्तु उससे सम्बद्ध कुछ समानताओं की अनदेखी भी नहीं की जा सकती। (रे०चित्र:-61)

(3) उत्तरपश्चिम सीमा प्रांत (पाकिस्तान):-

बैनर्जी महोदय⁵ ने पेशावर से प्राप्त एक देवी प्रतिमा का वर्णन किया है जो बहुत क्षतिग्रस्त है। उसमें देवी का मुकुट, शरीर का ऊपरी भाग तथा पशु का शरीर एवं टांगें स्पष्ट दिखाई देती हैं।

(4) अफगानिस्तान:-

यहां से कई प्रस्तर गुप्त कालीन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें देवी को विभन्न रूपों में दर्शाया गया है। एक खण्डित प्रतिमा काबुल⁶ संग्रहालय में है जिसमें महिष को कटे हुए सिर के साथ बैठे हुए दर्शाया गया है। महिष की कटी हुई ग्रीवा से असुर मानव रूप में निकलने के लक्षण उपलब्ध हैं। महिष की जिह्वा बाहर निकल रही है। इसके अतिरिक्त देवी की अनेको प्रस्तर प्रतिमाएँ खण्डित रूप में काबुल संग्रहालय में हैं जो छटी-सातवीं शती की हैं। (चि० 79,80)

(5) श्रीलंका :-

भारत के श्रीलंका के साथ धनिष्ठ सम्बन्ध अनादि काल से चले आए हैं। अशोक ने महेन्द्र एवं संघमित्रा को दूत बनाकर श्री लंका में भेजा था। अतः इस देश से भारत के अतीत परम्परागत ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। हिन्दु देवी देवताओं की मान्यता भी श्रीलंका में थी जिनमें महिषासुरमर्दिनी भी है। चिदीकुलम⁷ से एक देवी की प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें देवी का उसका अष्टभुजी रूप प्रदर्शित है। यह प्रतिमा दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की है। इसमें देवी दक्षिण हाथों में सर्प तथा वाम हाथों में चक्र, खड्ग, कटिहस्त तथा अभय मुद्रा धारण किए हुए हैं। वह करण्डमुकुट, सभी आभूषण तथा वस्त्र पहने हुए है। (चित्र - 84)

(6) इन्डोनेशिया:-

इन्डोनेशिया में भारतीयों का पदार्पण ईसा की प्रथम से छठी शताब्दियों में हुआ। सबसे पूर्व भारतीय पश्चिमी तटों पर पहुँचे तथा कालान्तर में यह मध्य जावा में जा पहुँचे। यही जावा का स्वर्ण युग कहा जाता है तथा इसी समय यहां पर अनेकों हिन्दु एवं बौद्ध मन्दिरों की स्थापना हुई जिनमें बोरोबोद्वर एक है। यहां पर अनेकों हिन्दु देवी देवताओं की प्रतिमाएँ प्राप्त हुईं जिनमें महिषासुरमर्दिनी भी है। (चित्र - 85)

देवी का एक अष्ट भुजी रूप, जावा डींग पठार (Dieng Plateau) से प्राप्त हुआ है। यह प्रतिमा जर्मनी के बटेविया संग्रहालय में है। इसमें देवी महिष की पीठ पर खड़ी है। महिष का सिर आधा कटा है जिस में से असुर निकल रहा है। असुर की चोटी देवी के हाथ में है। देवी अपने अन्य हाथों में पाश, खड्ग, शंख, तथा ढाल धारण किए हुए हैं। यह प्रतिमा चण्डी सिंगश्री मन्दिर में थी तथा उसका समय 1280-1292 ई० का है। यह प्रतिमा लीडिन (Leyden) में सुरक्षित है।

Museum of fine Arts, Boston में भी एक अष्टभुजी देवी की प्रतिमा है जिसको जावा से वहां ले जाया गया था। कुमारस्वामी⁸ का कहना है कि इस प्रतिमा जैसी देवी की अनेकों प्रतिमाएँ जावा से प्राप्त हुई हैं। (चित्र - 85)

(7) बंगलादेश:-

महास्थान¹⁰ संग्रहालय में देवी की चतुर्भुजी प्रतिमा है जिसमें देवी को महिष के ऊपर बैठे हुए दिखाया गया है। उसके दक्षिण हाथों में खड्ग तथा महिष का मुख है तथा वाम हाथों में त्रिशूल तथा महिष है। देवी ने महिष पर त्रिशूल से प्रहार किया है। भट्टशाली¹¹ महोदय ने एक दसहाथ वाली देवी प्रतिमा का उल्लेख किया है जो ढाका संग्रहालय में सुरक्षित है।

(8) नेपाल:-

सुन्दरी चौक पाटन¹² से पीतल तथा कांस्य की बनी देवी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें देवी प्रत्यालीढ़ आसन में खड़ी है। उसका बायाँ पग सिंह पर तथा वाम पग महिष के सिर पर स्थित है। महिष को देवी ने बाएँ हाथ से पृष्ठ पकड़ कर उठाया हुआ है। पृष्ठ में देवी की एक छोटी से प्रतिमा है जिसके हाथों में नागपाश है। प्रभाभण्डल पर नवदुर्गा की प्रतिमाएँ हैं। (चित्र - 74)

वहीं पर देवी को चतुर्भुजी¹³ तथा बीस हाथ वाली भी दर्शाया गया है जो आलीढ़ आसन में स्थित है। उसका दायाँ पग सिंह पर रखा है तथा अपने मुख्य हाथों में वह बिन्दु मुद्रा तथा खप्पड़ धारण किए हुए है तथा अन्य दायाँ हाथों में डमरू, खड्ग त्रिशूल, महिषासुर की चोटी, अंकुश, शंख, कमल चक्र, बाण तथा बाएँ हाथ में ढाल धनुष, दण्ड, वज्र, एवं सर्प धारण किए हुए हैं। उसके दोनों ओर एक एक यादवा बैठा है जो तलवार लिए युद्ध के लिए तत्पर है।

सुन्दरी चौक् में ही देवी की एक अष्टादश¹⁴ भुजाओं वाली प्रतिमा भी प्राप्त हुई है जिसमें देवी प्रत्यालीढ़ आसन में अपना दाया पग सिंह पर रखे तथा बाया पग महिष के शरीर पर रखे खड़ी है। मानव रूप में असुर महिष की कटी ग्रीवा से निकल रहा है। देवी मुख्य दाएँ हाथ में नाग पाश तथा त्रिशूल धारण किए हुए है जिससे वह महिष को आघात कर रही है। देवी के अन्य दाएँ हाथ टूटे हुए है। उसके बाएँ हाथों में असुर की चोटी, ढाल, धनुष, ध्वजा, परशु अंकुश, शंख, घण्टा, नागपाश तथा महिष की पूंछ है। वह पाँच चोटियों वाला मुकुट धारण किए है। उसके कानों में पत्र कुण्डल तथा शरीर पर अन्य आभूषण हैं।

इसी प्रकार की एक अन्य अष्टादश¹⁵ भुजी प्रस्तर प्रतिमा भी नेपाल से मिली है।

(9) जापान:—

जापान में जुनेतिकान्नन अथवा चण्डी¹⁶ बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का ही रूप मान गया है। वह अनेक बुद्धों की जननी मानी जाती है। विद्वानों का विचार है कि दुर्गा को ही जापान में मातृ शक्ति का प्रतीक¹⁷ माना गया है। चण्डी को जुनती बुत्सुबों के नाम से भी पुकारा जाता है जो चण्डी भगवती का ही रूपान्तर है। इसके अतिरिक्त एक अन्य नाम शिचिगुती-बुत्सुबों भी है जिसका संस्कृत पर्याय सप्तकोटिबुद्धमातृ है।

हान्ची-इन(Hanchi-in)के तौजोकाई (Taizo-kai)मन्दार में जुनेती को अष्टादश भुजाओं सहित दर्शाया गया है। ‘शीचीगुती-बुत्सुबो-जुनती-दरनी क्यो’ नामक ग्रन्थ में भी देवी की अठारह भुजाएँ एवं तीन नेत्रों का उल्लेख है। ‘काकुजेन-बुत्सुबो-जुनती-दैम्यो-क्यो-’ नामक ग्रन्थ में देवी को पीतवर्ण वाली कहा गया है। इसी ग्रन्थों के अनुसार वह सुन्दर वस्त्र तथा पुष्पों से सुसज्जित है तथा कटि प्रदेश के नीचे वह धवल वस्त्र पहनती है। ऊपरी शरीर का भाग उसका कृश है तथा उसमें वह दिव्य वस्त्र धारण करती है। एक कशीदाकारी से युक्त मेखला उसके कटि प्रदेश में सुशोभित है। उसके केयूरों में सात प्रकार के रत्न जड़े हैं तथा कंगन श्वेत शंखों से बने हैं। उसकी सभी अंगुलियों में मुद्रिकाएँ हैं। उसके मस्तक पर तीसरा नेत्र है। उसकी अठारह भुजाएँ हैं। जिनमें से दो विभिन्न मुद्राएँ प्रदर्शित करती है तथा अन्य हाथों में विभिन्न आयुध है। देवी की अनेकों प्रतिमाएँ जापान में उपलब्ध¹⁸ है।

संदर्भ

- (1) Mackay, E., *Further Excavations at Mohenjodaro*, vol. II, p. 336, pl. LXXXVIII, fig. 279.
- (2) Banerjea, J. N., *Op. cit.*, p. 166.
- (3) *Ibid*
- (4) Newman, Erich., *The Great Mother*, p. 169, fig. 40.
- (5) Banerjea, J. N., *Op. cit.*, p. 500, pl. XLII, fig. 1.
- (6) Nagar, S. L. *Mahishasuramardini* in *Indian Art*, p. 99, pl. 80
- (7) *Ibid*, p. 99, pl. 42.
- (8) *Portfolio of Indian Art*, Fine Art Boston with descriptive text, DB. Taraporawala Sons & Co., Bombay, 1923, Pl. XVIII.
- (9) Nagar, S. L., *Op. cit.*, p. 101
- (10) Mishra, V., *Mahishasuramardini*, p. 61, pl. 1
- (11) Bhattashali, N. K., *Iconography of Buddhist and Brahminical Sculptures in Dacca Museam*, Dacca, 1929, p. 198. pl. LXVI, 1
- (12) Deva, K., *Images of Nepal*, p. 48, N.D., 1984
- (13) *Ibid*, p. 47
- (14) *Ibid*, p. 48
- (15) *Ibid*, p. 54
- (16) बौद्ध ग्रन्थों में चण्डी को विरुपाक्ष की पुत्री कलकन्नो के रूप भी प्रस्तुत किया गया है।
- (17) Mastunga, Alicia., *Buddhist Philosophy of Assimilation*, pp. 129.
- (18) Bakshi, D. N., *Hindu Divinities in Japanese Buddhist Pantheon* pp. 139-40, pl XXXV. figs. land 3.

कसिद्धपीठ एवं शक्तियाँ

भारत में महिषासुरमर्दिनी आख्यान शक्तिपूजा से सम्बद्ध है। यहाँ आदिशक्ति की महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा दुर्गा आदि अनेक स्वरूपों में आराधना की जाती है। इस उद्देश्य के लिए अनेक शक्तिपीठ भारत में यत्र तत्र सर्वत्र फैले हुए हैं। जो पावन तीर्थ स्थल माने जाते हैं।

इन शक्ति पीठों के प्रारम्भ एवं विकास की खोज करते समय धार्मिक ग्रन्थों पर विशेष रूप से निर्भर रहना पड़ेगा। इन शक्ति पीठों के बीज ऋग्वेद में सर्वप्रथम प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद¹ में ही प्रजापति द्वारा अपनी ही दुहिता से अनैतिक सम्बन्ध का उल्लेख है जिसकी झलक शतपथ² ब्राह्मण में भी मिलती है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार प्रजापति जो यज्ञ की परम्परा का द्योतक है एक बार अपनी दुहिरता द्यौ अथवा उषा की ओर आकृष्ट हुआ। उसके इस कृत्य से ऊबकर देवताओं ने जाकर भगवान् रुद्र से प्रजा कि प्रताड़ना के लिए प्रार्थना की। रुद्र ने अपने बाण से प्रजापति पर आक्रमण किया जिससे प्रजापति के रेत का स्खलन हुआ। चूँकि प्रजापति यज्ञ का ही प्रतिरूप है। अतः उसके शरीर का कोई भाग यज्ञ में काम आए बिना नहीं रह सकता। देवताओं ने उस रेतस को भग को दिया जो यज्ञवेदों की दक्षिण दिशा में रहता है। जैसे ही भग ने रेतस को देखा तो उसके नेत्र जल उठे। देवतागण तब रेतस को पूषण के पास ले गए। जब उसने रेतस को मुख में धारण किया तो पूषण की दन्तपंक्ति गिर गई।

गोपथ ब्राह्मण³ के अनुसार यज्ञ करते समय प्रजापति ने रुद्र को उसका यथोचित भाग अर्पण न किया, जिससे क्रुद्ध होकर रुद्र ने उसका एक अंश काट दिया जिस पर दृष्टि डालते ही भग नेत्रहीन हो गया तथा पूषण का दन्तपंक्ति गिर गई। यही कथा वराह पुराण⁴ में भी वर्णित है जिसके अनुसार एक बार दक्ष प्रजापति ने सभी देवताओं को आमन्त्रित कर एक महान यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञ में पितरों सहित आदित्यादि देवता, वसुगण विश्वेदेव, गन्धर्व, मरुद्गण यज्ञ भाग के अधिकारी हुए। वे लोग हवि में दिए गए अपने अपने भागों को जब ग्रहण कर रहे थे तो उसी समय जल से शीघ्र ही ब्रह्मा के क्रोध से रुद्र प्रकट हुए जो पहले महा समुद्र में लीन हो गए थे। सहस्र सूर्य तुल्य कान्ति वाले वह रुद्र जल से प्रकट हुए। उन से ही रुद्र सृष्टि उत्पन्न हुई। उसी समय उन्होंने यज्ञ के मंत्रों की ध्वनि सुनी तथा उसके द्वारा की गई सृष्टि को देख, क्रोधित हो कर रुद्र दक्ष के यज्ञ को गए। देवताओं ने अपने शास्त्रास्त्रों से रुद्र पर आक्रमण कर दिया। इस संग्राम में रुद्र ने एक बाण के प्रहार से भग के नेत्रों को विद्ध दिया तथा पूषण की दन्त पंक्ति उखाड़ दी। तत्पश्चात् रुद्र द्वारा पूषण को दन्त हीन तथा भग को नेत्र हीन देखकर सभी देवगण वहाँ से भाग गए—

तस्य दन्तास्तदा दृष्ट्वा पूष्णो रुद्रेण पातितान्।

दुद्रवुः वसवो दिक्षु रुद्रास्त्वेकादश द्रुतम्॥

वराह पुराण—21.47

महाभारत तथा अन्य पुराणों में दक्ष के यज्ञ के विध्वंस का कारण भगवान् शिव की पत्नी सती के अपमान के कारण हुआ बताया गया है। इस आख्यान के अनुसार दक्ष ने अपने यज्ञ में सती के अतिरिक्त अपनी सभी कन्याओं को आमन्त्रित किया था। शिव ने अपने समेत सती को आमन्त्रित न किए जाने पर कोई क्षोभ प्रकट न किया। तब सभी बहनें पिता के घर गईं यह जानकर सती बिना बुलाए ही पिता के घर चली गईं। पिता ने और कन्याओं की अपेक्षा सती का कम आदर किया। तब क्रोध से आकुल सती ने अपने पिता से कहा—

यवीयसीम्यः श्रेष्ठाऽहं किं न पूजसि मां प्रभो ।

असत्कृतमवस्थां यः कृतवानसि गर्हिताम् ॥

अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा च मां त्वं सत्कर्तुमार्हसि ।

ब्रह्म पुराण—34.14

(प्रभो मैं छोटी बहनो से बड़ी हूँ। फिर आप मुझे सम्मान क्यों नहीं देते। मेरा निरादर करके मेरी अवस्था को क्यों बुरी बना रहे हैं। मैं श्रेष्ठा एवं ज्येष्ठ हूँ। मेरा भी सत्कार कीजिए।)

सती की यह बात सुनकर दक्ष ने क्रुधित होर कहा, तुम से श्रेष्ठ उत्तम तथा पूज्य मेरी छोटी पुत्रियाँ हैं। उनके जो स्वामी हैं वह सभी सम्माननीय हैं। वे सभी शिव से अधिक धर्मात्मा एवं प्रशंसनीय हैं। पिता का यह उत्तर सुनकर सती अतीव क्रुधित होर उठीं तथा उसने अपनी देह को त्याग दिया।

सती के शरीर त्यागने पर भगवान् शंकर क्रुद्ध हो उठे तथा अनेक गणों ने यक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया। इधर शिव सती का शरीर अपने कन्धों पर रख कर सर्वत्र भ्रमण करने लगे। देवताओं की परामर्श से शनि ने सती के शरीर में प्रवेशकर उसके शरीर को छिन्न भिन्न कर दिया। सती के शरीर के वस्त्रभूषण तथा अंग प्रत्यंग जहाँ जहाँ भी गिरे वहाँ पर शक्तिपीठों की स्थापना हो गई।

महाभारत के आख्यान से सती ने शिव को दक्ष द्वारा किए गए अपमान के बारे में अवश्य कहा है परन्तु वह वहाँ दक्ष की कन्या के रूप में प्रकट नहीं होती न ही व अपनी देह त्याग करती है। कालिदास ने कुमारसम्भव में सती को यज्ञ के हवन कुण्ड में जलने का उल्लेख किया है।

ऊपरोक्त सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित आख्यानो जिसमें प्रजापति ने अपनी ही दुहिता का अपमान किया तथा शिव के दक्ष द्वारा अपमान को समुचित ढंग से जोड़ा गया है। अन्य पुराणों में दक्ष के यज्ञ का नाश करने के साथ ही उसका सिर काट दिया गया था तथा देवताओं के प्रार्थना करने पर दक्ष के मानव शरीर पर बकरे का सिर जोड़ दिया गया था। कुछ अन्य स्रोतों के अनुसार दक्ष के यज्ञ को शिव के गण वीरभद्र ने नष्ट किया था। विभिन्न ग्रन्थों में दक्ष प्रजापति के आख्यान का विकास परिशिष्ट-15 पर देखा जा सकता है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि शिव प्रारम्भिक काल में आर्यों के देव नहीं थे अपितु भारत के आदिवासियों द्वारा ही पूजनीय माने जाते थे। जिनकी कालान्तर में ब्राह्मण धर्म में मान्यता होने लगी। इसी कारण से यक्ष के यज्ञ के विध्वंस के आख्यान को ब्राह्मण ग्रन्थों तथा अन्य पुराणों में विभिन्न रूप से प्रदर्शित किया गया है तथा पुराणों में उसी आख्यान का पर्याप्त विकसित स्वरूप मिलता है।

देवी भागवत में योग की तन्त्र विद्या तथा शैव मत का समावेश देखने को मिलता है। यही नहीं इसी ग्रन्थ में शैव एवं वैष्णव धर्म का संगम भी है। जिसकी छवि वामन पुराण में भी देखने को मिलती है। एक बार जब देवताओं ने भगवान् विष्णु के निवास स्थान के बारे में प्रश्न किया तो उन्होंने ने यह उत्तर दिया।

तमूचुनैव पश्यामः स्वतो वै त्रिपुराश्रतकम्।
सत्यंवद सुरेशान् महेशानः क्व तिष्ठति॥
ततो ऽव्ययात्मा स हरिः स्वहृत्पंकजशायनम्।
दर्शयामास देवनाङ्ग मुरारि लिङ्ग मैश्वरम्॥
अथोवाच सुरा विष्णुरेष तिष्ठति शंकरः।
महेहे किं न पश्यध्वं योगं प्राप्य प्रतिष्ठितम्॥

वामन पुराण—62.2-23

दूसरी ओर भगवान् शिव एक बार अपने गणों के कहते हैं कि “यदि आप मेरे शरीर को टुकड़े टुकड़े कर दोगे तोभी आप विष्णु भगवान् को मेरे हृदय में विराजमान पाओगे।

यत्नात् क्रकचमादाय छिन्दध्वं मम विग्रहम्।
तथापि दृश्यते विष्णु रमदेहे सनातनः॥

वामन पुराण—67.37

एक अन्य पुराणिक आख्यान में कुछ पाठ भेद है जिसके अनुसार जब भगवान् शिव सती का पथिव शरीर कन्धों पर रख कर घूमने लगे तो विष्णु ने अपने चक्र द्वारा सती के शरीर को काट दिया और जिस स्थान पर सती के अंग प्रत्यंग तथा वस्ताभूषण गिरे वहाँ पर शक्ति पीठ स्थलों की स्थापना हुई। सरकार⁵ महोदय के अनुसार जम्बूद्वीप में शक्ति पीठस्थलों तथा भगवान् बुद्ध की अस्थियों के वितरण जिसके द्वारा इन अस्थियों को कई स्मारकों में रखकर इनकी पूजा की जाने लगी, कुछ सम्बन्ध हो सकता है। कुछ ऐसी ही साभ्यता मिश्र में प्राप्त एक आख्यान में भी मिलती है जिसका सम्बन्ध मिश्र⁶ की ओसीरिस की कथा से है। इसके अनुसार—

“Osiris’ brother Set put Osiris in a wooden Coffin, which he nailed up and cast into the sea; the waves bore it to Syria where long after Osiris, sister and wife Isis found it and took the body to Egypt; there unfortunately Set found it and scattered the bones far and wide whence came to innumerable relics of Osiris shown to the faithful of later days in the temples of Egypt”.

पीठ स्थलों के इतिहास में देवी की योनी तथा स्तन के स्थान अधिक प्राचीन प्रतीत होते हैं। महाभारत के तीर्थयात्रा पर्व में जिसका समय विद्वानों ने प्रारम्भिक गुप्त काल माना है, शक्ति के दोनों स्तनों के तीर्थों का वर्णन है। इनमें से एक भीमस्थान (पंजाब) का योनी कुण्ड है जो उदयत पर्वत की चोटी पर स्थित कहा गया है तथा गौरी शिखर पर स्थित स्तन कुण्ड है जो हिमालय में स्थित है। महाभारत के अनुसार गौरी शिखर तथा उदय पर्वत भारत के पूर्व में आधुनिक गया खंड के समीप हो सकते हैं। इन दोनों स्थानों की वास्तविक स्थिति के बारे में कुछ कहना कठिन है परन्तु पीठनिर्णय ने गौरी शिखर को कामरूप में दर्शाया है। भीमस्थान को आधुनिक शहबाज़गढ़ी पेशावार (पाकिस्तान) के निकट कहा है। मार्कण्डेय पुराण (जिसकी गिनती प्राचीन शाक्त ग्रन्थों में आती है) में भीमा देवी का स्थान हिमांचल में कहा है। भीमास्थान की यात्रा सातवीं शती में चीनी यात्री ह्वान⁷ त्याग नेकी। इस चीनी यात्री के अनुसार “पलूश के उत्तर-पूर्व में लगभग 50 ली (7 मील) की दूरी पर एक महान पर्वत है जो गहरे नीले रंग का है तथा वह भीमा देवी का स्थान अति पवित्र माना जाता है। लोगों के विश्वास के अनुसार भीमा देवी की स्वयम्भू प्रतिमा है। यात्रीगण यहाँ पर बहुत दूर दूर से श्रद्धा पूर्वक आते हैं तथा एक सप्ताह पर्यन्त व्रत रखकर देवी की पूजा अर्चना करते हैं। देवी कभी-कभी अपने भक्तों को दर्शन भी देती है। पर्वत के नीचे महेश्वर शिव का मंदिर है जहाँ पर भस्म रमाए तीर्थक (योगी) लोग शिव की पूजा अर्चना करते हैं।” इस चीनी यात्री का साक्ष्य भीमा देवी की मान्यता की प्राचीनता का प्रतीक है। साथ में इस चीनी यात्री ने देवी मंदिर के समीप भैरव मंदिर होने की भी पुष्टि की है जो शक्ति पीठ का एक अभिन्न अंग माना जाता है।

मालतीमाधव नाम की अपनी रचना में भवभूति एक ऐसी स्त्री का वर्णन करता है जो श्रीपर्वत पर कापालिक व्रत का अनुष्ठान करती है तथा अघोरघण्ट की अपनी शिष्या कपालकुण्डला की भयंकर पूजा विधि का भी वर्णन करता है जिसके अनुसार मालती को देवी के मन्दिर पर बलि देने का यत्न किया जाता है। इस सन्दर्भ से यह बात उजागर होती है कि मातृदेवी अथवा शक्ति पीठों पर नरबलि का प्रचलन भी था तथा कापालिक मतानुयायी देवी तथा शिव दोनों की आराधना करते थे।

मुस्लिम लेखक-अबुल फजल के आईन अकबरी⁸ में नगर कोट (कांगड़ा) के शक्ति पीठ के बारे में बड़ा रोचक वर्णन किया है। उसके अनुसार “नागरकोट का नगर एक पर्वत पर स्थित है। जिसका दुर्ग कांगड़ा है। इस नगर में महामाया का मंदिर है जिस के दर्शन करने यात्री दूर दूर से आते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि अपना भक्ति भाव प्रकट करने के लिए वह अपनी जिह्वा को काटकर देवी को अर्पण कर देता है। कुछेक की जिह्वा तो उसी समय उग आती है और कुछेक की दो अथवा तीन दिन में निकल आती है। आयुर्विज्ञान के अनुसार कटी जिह्वा उगने का प्रावधान तो है

परन्तु इतनी शीघ्रता से जिह्वा का उगना एक आश्चर्य ही है जिसे देवी की शक्ति ही माना जाता है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार महामाया शिव की पत्नी थी। ऐसी मान्यता है कि अपने पिता द्वारा अपने पति के निरादर के कारण उसने अपने शरीर के अनेकों अंशों में काट दिया। उसके शरीर के मुख्य अंग चार स्थानों पर गिरे। उसका मस्तक तथा अन्य अंग उत्तरी पर्वत शिखर पर काश्मीर में कामराज के स्थान पर गिरे जहाँ पर शारदा पीठ है। इसके अन्य अंग बीजापुर (दक्षिण भारत) में गिरे जिसे तुलजा भवानी कहते हैं। कुछ अंश कामरूप में गिरे जो कामाक्षा देवी के नाम से प्रसिद्ध है। शेष अंग जालान्धर में गिरे और उसका नाम जालन्धरी पीठ था।

उन चार देवी पीठस्थलों के नाम, जिनका वर्णन सोलहवीं शती में मिलता है इस प्रकार है।

- (1) शारदापीठ-काश्मीर
- (2) तुलजाभवनी-बीजापुर-दक्षिण
- (3) कामाक्षा-कामरूप
- (4) जालान्धरी-नगरकोट, काँगड़ा।

अबुल फजल ने उद्दियाना के स्थान पर काश्मीर का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त वह ज्वालामुखी का वर्णन भी करता है। परन्तु जालन्धरी पीठ के बारे में मौन है। दक्षिण में तुलजा देवी की विशेष महत्ता थी। इसी कारण शिवाजी ने जावली के निकट प्रतापगढ़ दुर्ग में तुलजा भवानी की प्रतिमा की स्थापना की थी।

शक्ति पीठस्थलों का वर्णन मुख्यतः पुराणों तथा अन्य तान्त्रिक ग्रन्थों में मिलता है। जिन्हें शक्ति पीठों, उप-पीठों तथा महापीठों की संज्ञा दी गई है। कुछ शक्ति पीठों की तालिकाएँ विभिन्न स्रोतों पर आधारित हैं परिशिष्ट के रूप में उपलब्ध हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—

ग्रन्थ	पीठ स्थलों की संख्या	परिशिष्ट
१. देवी भागवत पुराण	१०८	४ (क) (ख)
२. पीठनिर्णय (महापीठ निरूपण)	५१	५, १२, १३
३. शिव चरित	५१ पीठस्थल	
	२६ उप पीठ स्थल	६
४. तन्त्र चूड़ामणि	५१	७
५. बृहन्नील नामक बगला ग्रन्थ		११
६. अन्नदा मंगल ग्रन्थ		१०

सन्दर्भ

- (1) ऋग्वेद, मण्डल-10, 61-5-7

प्रथिष्ठ यस्यवीर कर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत्।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभूतमनर्वा॥
मध्या यत्कर्त्तव्यमभवदभी के कामं कृण्वाने पितिरि युवत्याम्।
मनानग्रेतो जहतु र्वियन्ता सानो निषिक्तं सुकृतस्य योनौ॥
पिता यत्सवां दुहितरयधिष्कन् क्षमया रेतः संजग्मानो निषिन्वत्।
स्वाध्वोऽजनयन ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्॥

(गृहस्थ का लक्ष्य सन्तान उत्पादन करना है। तदर्थ वीर्य सेचना करने पर कमनीय सन्तान को दोहने वाली पत्नी में वह पुष्ट होकर सन्तान के रूप में उत्पन्न हो जाता है और वह युवा बन जाता है। तब पिता उस पुत्र परम्परा चलाने के लिए उत्साहित करता है। जब वह पुत्र पुत्रवान् बन जाता है तो फिर उसका पिता गृहस्थ को त्याग कर अन्य मनुष्यों के हितार्थ कार्य करता है। युवती भार्या में पुत्रोत्पादन के लिए वीर्य निषेक करना कर्तव्य होता है। जीवित पिता के रहते कम से कम प्रजा को उत्पन्न करे। इसके लिए गृहस्थाश्रम पुण्य का स्थान है। विशेष सेवनीय जगत् में सन्तान परम्परा के लिए निषेक करना आवश्यक है। यह ग्रहस्थाश्रम की परम्परा है। यदि पुरुष के पत्नी समागम पर पुत्र को प्राप्त न कर केवल कन्या को प्राप्त करता है तब वह कन्या पितृकुल की रक्षिका तथा पिता के घर की सम्पत्ति की स्वामिनी होती है।)

- (2) शतपथ ब्राह्मण, 1.7.4., 2.4.7-8
- (3) गोपथ ब्राह्मण, 2.1
- (4) वराह पुराण, 21.18
- (5) Sarkar, D. C., *Select Inscriptions*, I, pp. 84, 102, 120 ff.
- (6) *Cambridge History of India*, I, p. 332,

- (7) Watters, Thomsas: *On Yhan Chwang's Travels in India*, I, p. 221
 (8) *Aine-Akbari*, Jarrett's trams, II, pp. 312-14.
 (9) Sarkar, J. N., *History of Aurangzeb*, IV, p. 32.

21

शक्ति उपासना में तन्त्र, मन्त्र, एवं यन्त्र/चक्र की भूमिका

आधुनिक युग में शक्ति उपासना में तंत्र, मंत्र एवं यन्त्रादि की विशेष भूमिका है। इन सभी का शक्ति पूजा में क्या महत्व है और कब से है इन पर विचार करने के लिए सर्वप्रथम हमें “शक्ति” के अर्थ को पूर्णरूप से जानना होगा। विद्वानों के मतानुसार “परा शक्ति वह शक्ति है जिसके लिए संसार का कोई भी भाग अदृष्ट नहीं है। कोई ऐसा नरेश अथवा शासक नहीं जो उसके नियन्त्रण में न हो, कोई ऐसा शास्त्र नहीं जिसका उसे ज्ञान न हो।” योगिनी तन्त्र में ऐसा उल्लेख मिलता है कि “मैं कारणावस्था को प्राप्त होकर सदैव ब्रह्म रूप में रहती हूँ” यह सब दृष्टि गोचर होने वाला मेरा ही कार्य है। मैं सदैव ही अक्षर रूपिणी परा शक्ति हूँ। कार्य वस्थापना होकर मैं प्रकृतिरूपिणी जो जाती हूँ। उसी समय से ब्रह्मादि देव तथा अन्य सभी उत्पन्न होते हैं।”

कारणावस्थापना सदाहं धातुरूपिणी।

नाकार्य मे हि यत् किञ्चित्सदाहं ह्यक्षरा परा॥

कार्यभाव समापना सदा प्रकृति रूपिणी।

सदा ब्रह्मादयाः सर्वे सर्वे सर्वेत्यार्विभ्रन्ति हि॥

महिर्ष आत्रेय ने अपनी संहिता में शक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम्।

धर्माथी स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः॥

चरकसंहिता, चिकित्सा स्थान, अध्याय—२

(प्रीति विशेष प्रकार से स्त्रियों में ही होती है। सन्तान की जाननी भी वही होती है। धर्म उनमें रहता है। इसीलिए उनको धर्मपत्नी कहते हैं। अर्थ उनमें रहता है इसीलिए उनमें लक्ष्मी का निवास मानते हैं। वे शक्ति-रूपा हैं उनमें ही सारा विश्व प्रतिष्ठित है।)

ब्रह्मसूत्र (2.1) में कहा गया है—सर्वेषिता तद्दर्शनात्—वह पराशक्ति सर्व सामर्थ्य से युक्त है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखी जासकती है। उसके बिना सृष्टि का उत्पादन नहीं कर सकते क्योंकि वह शक्ति के बिना क्रियाशील नहीं हो सकते—

न हि तया बिना परमेश्वरस्य स्रष्टव्यं सिध्यति।

शक्ति रहितस्य यस्य प्रवृत्त्यनुपपेतः॥

ब्रह्मसूत्र, शंकर भाष्य (1.4.3.)

स्वामी शंकराचार्य ने शक्ति के स्वरूप में दिग्दर्शन इस प्रकार किए हैं—

अव्यक्तनाम्नी परमेश शक्ति साद्य विद्या त्रिगुणात्मका परा।

कार्यानुमेया सुधिदैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥

“ईश्वर की अव्यक्त नाम वाली शक्ति जिसने इस समस्त जगत की सृष्टि की है, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका और जगत रूपी कार्य” से परे है। कार्य रूपी जगत को देखकर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।”

वास्तव में देखा जाए तो शक्ति एक व्यापक तत्त्व है। विश्व की प्रत्येक वस्तु चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन, उसमें द्रष्टव्य है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसीके चमत्कार दिखाई देते हैं। शारीरिक शक्ति की कौन उपेक्षा कर सकता है। संसार के सभी कार्य इसी के माध्यम से होते हैं। इसीके अभाव का नाम रोग है। जहाँ इसका निवास हो वहाँ रोगों के कीटाणु आक्रमण नहीं कर सकते। मानसिक शक्ति का भी हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी निर्बलता से ही चिन्ताएँ, शोक, पाप, संताप आदि में मानव लिप्त हो जाता है। बौद्धिक शक्ति का विकास मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। आज विज्ञान के क्षेत्र में जितने भी आधुनिक आविष्कार हमें देखते हैं वह सभी इसी महाशक्ति का परिणाम हैं। शाश्वत सुख शान्ति के लिए आत्मबल की अपेक्षा रहती है। परमात्म बल सर्वोपरि है। जिसके स्पर्श मात्र से प्रत्येक क्षेत्र में शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं। इस शक्ति का लाभ तभी उठाया जा सकता है जब हमारी श्रद्धा शक्ति का विकास हो चुका हो। यह परमात्मशक्ति के आवाहन की युक्ति है।

समाज कल्याण के लिए, सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा पाने के लिए, दोषों एवं कुप्रवृत्तियों के शमन के लिए संघशक्ति की अपेक्षा रहती है। राष्ट्रीय उन्नति के लिए भी शक्ति को विकसित करना होता है। विश्वशक्ति की नींव में भी यही काम करती है। अनेकों क्षेत्रों में तो इसे प्रत्यक्ष रूप में देखा जा सकता है। विद्युत शक्ति से सभी कल कारखाने चलते हैं जिनमें विभिन्न जन उपयोगी वस्तुओं का निर्माण होता है जिनमें सहस्रों मानव अपनी जीविका चलाते हैं। तंत्र के अनुसार शक्ति के विभिन्न स्वरूप इस प्रकार दिए हैं।

1. शक्ति जब गौरी अथवा लक्ष्मी का रूप धारण करती है तो वह परमात्मा की सभी कामनाओं को पूर्ण करने की क्षमता रखती

- है। इसी कारण वह शक्ति कहलाती है। इच्छा तथा माया के भेद से यह दो प्रकार की कही जाती है। दोनों प्रकार की शक्तियों में उत्पत्ति और विनाश, परा व अपरा का भी उदाहरण आता है।
2. तन्त्रों में सात्विक, राजसिक एवं तामसिक ऐसी तीन प्रकार की शक्तियों का वर्णन है। इन में ज्ञान, इच्छा, क्रिया, आदित्य, अग्नि, वायु; महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली; लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री जिनका वर्ण श्वेत, रक्त तथा कृष्ण है, भी सम्मिलित हैं।
 3. पाँच प्रकार की शक्तियों में राधा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती तथा सावित्री के नाम आता है।
 4. 13 वर्ष से 25 वर्ष की युवतियों में जो प्रसूता न हुई हैं उनमें रूप, यौवन, शील तथा सौभाग्य, यह चार प्रकार के भेद होते हैं।

भौतिक शक्तियों ताप, तड़ित, चुम्बक, मध्याकर्षण (Energy of Gravitation) आलोक तथा रासायनिक आदि छः प्रकार की हैं। तंत्र में षट् शक्ति के पराशक्ति, ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति, क्रियाशक्ति, कुण्डलिनी शक्ति तथा मातृ शक्ति, छः नाम हैं। शक्ति को साधारण रूप से power अथवा Energy भी कहते हैं। संसार की किसी भी वस्तु को उसके गुण धर्म और विशेषता के कारण सम्मानित किया जाए अथवा उसकी उपयोगता को अनुभव किया जाए, उसके मूल में शक्ति ही विद्यमान रहती है।

व्यवहारिक रूप में शक्ति का अर्थ बल है परन्तु देवी भागवत (9.2.10) में शक्ति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दर्शाई गई है—

ऐश्वर्यवचनः शश्रः कितः पराक्रम एव च।

तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥

(श नाम ऐश्वर्य का है और कित नाम पुरुषार्थ का है। ऐश्वर्य और पुरुषार्थ स्वरूप दोनों को देने वाली शक्ति कहलाती है।)

परन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार स्मृद्धि, वृद्धि सम्पत्ति और यश-इन चार अर्थों का प्रकट करने वाला 'भग' शब्द होता है। इससे युक्त शक्ति भगवती है और वह स्वयं सदा भाग रूप वाली है।

समृद्धि बुद्धि सम्पत्ति यशसां वचनोः भगः।

तेन शक्ति भगवती भग रूपा च सा सदा।

अमर कोश के अनुसार शक्लशक्तौ धातु से 'कितन्' प्रत्यय लगने पर शक्ति शब्द बनता है। जिस पदार्थ में जो गुण होता है अथवा उसमें कार्य उत्पन्न करने की जो योग्यता अथवा क्षमता होती है उसे उस पदार्थ से अलग नहीं किया जा सकता है। जैसे अग्नि को उसकी दाह शक्ति से। इसी को शक्ति कहते हैं।

कास्त्र सामर्थ्यतो शक्ति ।

शक्ति पराक्रमः प्राणः ।

पद् गुणाश्शक्त्यास्तस्त्र ।

मार्कण्डेय पुराण में शक्ति शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि सद् एवं असद् दोनों प्रकार की वस्तुओं में जो सत्ता सत्तद् वस्तुता है वही शक्ति है।

एक महान् विद्वान् के मतानुसार "शक्ति का आशय उस सत्ता से है जो समग्र श्रृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय का मूल है। वास्तव में जैसा सामान्यतः माना जा रहा है, देवी पूजा कोई सम्प्रदाय अथवा किसी प्रकार के "तांत्रिक चक्र" का ग्रह भेद नहीं है। अथवा जैसा जन साधारण का विश्वास है यह देवी किसी देवता, जैसे विष्णु अथवा शिव की अर्द्धाङ्गिनी के रूप में भी नहीं है। देवी अथवा शक्ति का उल्लेख हम सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् चराचर जगत् की उत्पत्ति के कारण रूप में ही करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण अक्षर ब्रह्म का व्यक्त रूप ही शक्ति है। परमात्मा इसी दिखाई पड़ने वाली शक्ति के द्वारा ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति करता है। शक्ति के द्वारा ही संरक्षण संहार और उसके द्वारा ही लय करता है। शक्तिमान् एक ही है। सत्ता और शक्ति के मूल को पृथक् नहीं किया जा सकता है।

इसी लिए शक्ति पूजा का अर्थ प्रभु की महिमा और प्रभुत्व तथा सर्वोपरि होने की पूजा है। वह सर्वशक्तिमान् की आनन्दमयी सेवा है। यह बड़े खेद की बात है कि कितने लोग उसे "रक्त की प्यासी हिन्दु देवी के नाम से भी पुकारते हैं।" यह देवी केवल हिन्दुओं के ही आराध्यदेवी नहीं हैं। प्राचीन काल के साक्ष्यों के आधार पर यह माना जाता है कि देवी की पूजा पाषाण युग में भी विश्वभर में किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। इस विषय में पर्याप्त सामग्री इसी संकलन में एक अन्य स्थान पर उपलब्ध है।"

शक्ति का मानवी स्वरूप

देवी का मानवी स्वरूप जो देवी भागवत तथा अन्य पुराणों अथवा तंत्रशास्त्र के ग्रन्थों में पाया जाता है वह बड़ा अद्भुत है। उसमें कहीं तो उसका स्वरूप ऐसा वीभत्स जान पड़ता है कि उससे साधारण मानव भयभीत हो सकता है। एक स्थान पर काली देवी का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया गया है।

मेघाङ्गी शशि शेखरां त्रिनयनां रक्ताम्बर बिभ्रतीं।

पाणिभ्यामभयं वरं च विकसदरक्तार विन्दस्थिताम्॥

**नृत्यन्तं पुरतो निपीय मधुरं मध्वीकमद्यं महा-
कालं वीक्ष्य प्रकाशितानन परामाद्यां भजे कालिकाम्।**

(जिसका वर्ण मेघ के समान श्याम है, ललाट में चन्द्र रेखा प्रकाशमान है, जिसके तीन नेत्र हैं, शरीर पर रक्त वस्त्र धारण किए हैं। जिस के दोनों हाथों में वरद एवं अभय मुद्राएँ प्रदर्शित हैं। जो प्रफुल्लित रक्त पुष्प पर खड़ी है। जिसके सम्मुख पुष्पों का मधुर रस पारकर महाकाल नृत्य कर रहा है। उसकी ऐसी अवस्था को देखकर देवी हँस रही है। उसी आदिशक्ति कालिका का मैं भजन करता हूँ।)

देवी भागवत में यही शक्ति देवी अपने स्वरूप की व्याख्या करते हुए घोषणा करती है कि जगत में मैं ही सब कुछ सनातन हूँ। मुझ से अलग कोई तत्त्व नहीं है। (सर्वं खल्वदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।) देवी माहात्म्य में वर्णित आख्यान के अनुसार जब शुम्भ-निशुम्भ से देवी का घोर युद्ध हुआ और निशुम्भ—मारा गया तो शुम्भ ने देवी पर आरोप लगाया कि “तुम्हारा अहंकार वयर्थ है तुम दूसरों के बल पर युद्ध करती हो। इस पर देवी ने उत्तर दिया, “इस विश्व में मैं एक ही हूँ दूसरा कोई नहीं है। यह जो अन्य शक्तियाँ दिखाई दे रही हैं। मेरी ही अनुभूतियाँ हैं। मुझ में इन सभी का प्रवेश हो रहा है।” इतना कहने पर सभी शक्तियाँ उस देवी में लीन हो गईं तथा वह देवी अकेली ही रह गई।

**एकैवाहं जगत्पत्रं द्वितीया का ममापरा।
पशूता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद विभूतयः॥
ततं समस्तास्ता देव्यो ब्रह्मणी प्रभुखालयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका॥**

देवी माहात्म्य।

शक्तिसंघमंत्र में शिवोत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इसी आदि शक्ति ने अपने पति आदिनाथ को विश्व के सृजन कार्य के लिए अपने मन से उत्पन्न किया—

**तं विलोक्य महेशानि सृष्ट्युत्पाद कारणात्।
आदिनाथ मानसिकं स्वभर्तारं प्रकल्पयेत्॥**

ऋग्वेद के देवीसूक्त में इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया जिसके अनुसार देवी शक्ति जगतपिता (हिरण्यगर्भ) को प्रसव करती है। उसके ऊपर वह समस्त भुवन में अनुप्रविष्ट होकर अवस्थित है। वह अपने ऊंचे शरीर से स्वर्ग का स्पर्श करती है।

**अहं सुवे पितृहमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनाद्यु विश्वो तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥**

देवी भागवत के अनुसार जब देवी ने हिमालयको अपना विराट रूप दिखाया तो उसे देवता भी देख रहे थे। उस समय देवी की सहस्रों भुजाएँ एवं सहस्रों मस्तक तथा चरण थे। कोटि कोटि सूर्यों की उसकी आभा थी।

तन्त्र :-

शक्ति की व्याख्या के पश्चात् तन्त्र के बारे में कुछ जानना अवश्यम्भावी होगा। शब्द कोश की व्याख्या के अनुसार तंत्र एक ऐसा प्रबन्ध है अथवा व्यवस्था है जिसके अनुसार घर गृहस्थी, राज्य, समाज आदि का नियन्त्रण अथवा संचालन किया जाता है। परन्तु हमारा उद्देश्य उस तंत्र से है जो हिन्दु धर्म का प्रसिद्ध शास्त्र है तथा जो शिव-प्रोक्त कहा गया है। इसमें शिव तथा शक्ति की उपासना, पूजन आदि के द्वारा विभिन्न प्रकार की क्रियाओं और मंत्रों से अनेक प्रकार के लौकिक तथा पारलौकिक उद्देश्य सिद्ध करने के विधान हैं।

इस शास्त्र का मुख्य सिद्धान्त यह है कि कलियुग में वैदिक मंत्रों, यज्ञों आदि का नहीं बल्कि तांत्रिक उपासना विधि और यंत्र मंत्रों का ही अनुष्ठान होना चाहिए। सभी प्रकार के अभिचार, भैरवी चक्र पूजन, उच्चारण मारण, मोहन आदि षट्कर्म इसी तंत्र सार के अन्तर्गत आते हैं। यह शाक्तों का प्रधान शास्त्र है और इसके मंत्र प्रायः एकाक्षरी और अर्थहीन होते हैं। बौद्ध धर्मावलम्बियों ने उस शास्त्र का चीन तथा तिब्बत में विशेष प्रचार तथा प्रसार किया।

व्युत्पत्ति :-

‘तंत्र’ शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते समय यह ध्यान रखना होगा कि ‘तंत्र’ शब्द तन् धातु के छन प्रत्यय लगाने से बना है जिसका अर्थ है-विस्तार। सर्वोल्लास तंत्र के अनुसार तंत्र शब्द की व्याख्या है-तन्त्यते विस्तारयते ज्ञानम् अनेन इति तन्त्रम्। अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाए वही तंत्र है। तंत्र शब्द का सम्बन्ध तन् धातु के अतिरिक्त तत् अथवा तन्तु धातु से भी है जिसका अर्थ है व्याख्यान करना। हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार तंत्र बीजगणित के सूत्र के समान अति सूक्ष्म सूत्र रूप है। जिनमें मंत्रों के अनेक वर्णों की समष्टि निहित है। मानव जीवन के मनोभाव तथा वासना आदि के समस्त क्षेत्रों के व्यवहारिक प्रयोग का साधन तंत्र सार है। तंत्र के द्वारा काम शक्ति चेतना, मनोवैज्ञानिक स्वस्थता तथा मानस प्रभुत्व के विभिन्न स्तर में निहित की जा सकती है। यह व्यवहार, विनम्रता, शुद्धता, शारीरिक एवं यौन आकर्षण का साधन है। इसके अतिरिक्त ‘तंत्र’ शब्द व्यापक अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे—ज्योतिष के अंक विशेष को तंत्र कहते हैं। सांख्याकारिका (70) के अनुसार सांख्यदर्शन को भी ‘तंत्र’ कहा गया है। ब्रह्म सूत्र के (2.1.1) के शंकर भाष्य के शंकराचार्य ‘तंत्र’ नामक एक स्मृति का भी संकेत करते हैं।

गोपीनाथ कविराज ने ‘तंत्र’ के शब्द की पूर्वोक्त व्युत्पत्ति को स्वीकार करते हुए ‘तंत्र’ का अर्थ ‘विस्तार पूर्वक रक्षा करना’ स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ‘तंत्र’ शब्द का अर्थ ‘विज्ञान सहित ज्ञान’ भी माना है। तंत्र पर आनन्द का विज्ञान है। यह नाद, बोध एवं यौन संसर्ग का

मार्ग है।

‘तन्’, तन् का ही मूल रूप है जिसका अर्थ “व्याख्यान करना” है। ईशानशिवगुरुदेव मिश्र, तत् (जानने के अर्थ में) से तंत्र की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं तथा तंत्र को शैव सम्प्रदाय के पशु, पाश, पति, शक्ति, विचार और क्रियाचार आदि छः तत्त्वों की व्याख्या करने वाला शास्त्र मानते हैं। पिङ्गला के अनुसार सब ओर से अथवा हर प्रकार से वस्तु या प्रमेय का ज्ञान करवाने वाला शास्त्र “आगम” एवं विस्तार, त्राण तथा व्याख्या करने वाला शास्त्र “तंत्र” कहलाता है।

आज्ञा वस्तु समान्ताच्च गम्यत इत्यागतो मतः।

तनुते त्रायेत नित्यं तन्त्रमित्यं विदुर्बुधा॥

ईशानशिवगुरुदेवपद्धति, भाग-3, पृ-28

“त्र” वर्ण “रक्षा में है। तात्पर्य यह है कि जिससे ज्ञान का विस्तार हो तथा जो रक्षा करे उसी शास्त्र का नाम तन्त्र है।”

तनोति विपुलान् अर्थान् तत्त्वमन्त्र समन्वितान्।

त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यमिधीयते॥

अतः यह स्पष्ट होता है कि कष्टों से प्राणियों की रक्षा करने वाला, तथा उनमें ज्ञान का विस्तार करने वाला शास्त्र ही “तन्त्र” कहलाता है।

भारत में तंत्र का प्रयोग कब से आरम्भ हुआ यह कहना कठिन है परन्तु तान्त्रिक वाङ्मय की भाषा पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि इसका अभ्युदय ईसा पूर्व की कुछ एक शताब्दियों में हुआ। परन्तु इन ग्रन्थों में किसी विशेष साधन पद्धति का सर्वथा अभाव है। फिर भी एक तथ्य जो इन ग्रन्थों के अध्ययन से उभर कर आता है वह यह है कि तान्त्रिक विद्या वेदिक वाङ्मय से भी प्राचीन हो सकती है। सिन्धु घाटी तथा कालीबंगन के उत्खनन से प्राप्त चक्र, यंत्र तथा शिव एवं योनि के अवशेष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। कि तंत्र का प्रचलन पर्याप्त अतीत से है। ऐसा लगता है कि तंत्र का प्रयोग ईसा से तीन सहस्र वर्ष भी आदिवासियों में पर्याप्त लोकप्रिय था। पाश्चात्य विद्वान फिलिप रासन¹ के मत में ईसा से बीस सहस्र वर्ष पूर्व यूरोप की पुरापाषाण कालीन प्राकृतिक विशाल गुफाओं में ऐसे प्रतीक हैं जो आधुनिक युग के तान्त्रिकों द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले प्रतीकों के समान हैं। इस सम्बन्ध में रमाशंकर² मिश्र का मत है कि, “यह सम्भव है कि आर्य संस्कृति से वह पूर्व संस्कृति अभिभूत हो गई हो। और वेदिक संस्कृति के प्रभाव से तान्त्रिक संस्कृति के नैरन्तर्य में एक दीर्घ अन्तराल आ गया हो तथा वेदिक वाङ्मय की सीमा समाप्त होते ही शनैः शनैः, यत्र तत्र बिखरे हुए तान्त्रिक संस्कृति के अवशेष पुनः प्रतिष्ठापित हो गए हों। तान्त्रिक वाङ्मय का विपुल भण्डार यह पुष्ट करता है कि वेदिक वाङ्मय की तुलना में इसकी महत्ता किसी भी प्रकार कम नहीं है। जहाँ-जहाँ भी तान्त्रिक साधना के बीज पड़े होंगे, अवसर पाकर वे ऋषियों की अनुश्रवण परम्परा से पुनः अस्तित्व में आ गए होंगे।” परन्तु इन तथ्यों के पुष्टि के लिए साक्ष्य जुटाने पड़ेंगे। शब्द व्युत्पत्ति-विज्ञान³ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मौलिक रूप से तंत्र शब्द प्राचीनग्रन्थों में किसी धार्मिक महत्व का नहीं था। वेदिक वाङ्मय में तंत्र का अस्तित्व पर्याप्त धुन्धला सा है। श्रौत सूत्र तंत्र⁴ शब्द को एक ऐसे कार्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिसके कई भाग हों तथा उनमें अनेकों कार्य साधना की क्षमता हो। बाद के समय में मीमांसा⁵ परम्परा के तंत्र को एक ऐसी कार्यविधि के रूप में जाना जाने लगा जिससे किसी वस्तु विशेष की रचना की जा सके। महाभाष्य तंत्र शब्द ज्ञान की एक शाखा की ओर संकेत करता है जबकि अन्य विद्वानों ने तंत्र निर्युक्ति शब्द अनेक आयुर्वेदिक सिद्धान्तों की व्याख्या आदि के लिए प्रयुक्त किया है। विज्ञान के लगभग सभी ग्रन्थ भारत में तंत्र के रूप में ही प्रस्तुत किए गए हैं। अतः तंत्र शब्द का प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार से प्रयोग हुआ है परन्तु कालान्तर में यह एक ऐसे ज्ञान के रूप में विकसित हुआ जिसके अन्तर्गत मंत्रज्ञान, मंत्रोपचार तथा गुरुत्व तथा अन्य तान्त्रिक क्रियाओं का प्रभुत्व था। इस सम्बन्ध में मुनीशचन्द्र⁶ जोशी का कहना इस प्रकार है—

“यह स्मरणीय है कि शाक्त मतानुसार तन्त्राचार के अन्तर्गत मंत्रज्ञान, मंत्रोपचार तथा गुरुत्व पूर्णतः समाविष्ट है परन्तु तंत्र शब्द का दार्शनिक सिद्धांत अथवा धार्मिक क्रियानुष्ठान के सन्दर्भ में प्रयोग ईसा की पहली-दूसरी शती से पहले होने की सम्भावना नहीं जान पड़ती है। पुरातात्विक साक्ष्यों को ध्यान में रखकर यह कहि जा सकता है कि पाञ्चवीं शती ईसवी के दूसरे दशक शाक्त तंत्रों की परम्परा पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुकी थी क्योंकि 422-23 ई० का गंगधर (राजस्थान) अभिलेख तंत्र शब्द के साथ तंत्राचार का उल्लेख करता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शक्ति पूजा की तान्त्रिक पद्धति का विकास कई अवस्थाओं से हुआ और उसका मूल प्राचीन मातृदेवी तथा दूसरे देवताओं की पूजा परम्परा से कहीं जुड़ा हुआ है।”

वास्तव में देखा जाए तो तंत्रों का जो भी समय रहा हो अथवा उनकी प्रामाणिकता के विषय में जो भी मत हों किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि उनमें ऐसे आचार निर्दिष्ट हैं जो उनकी अति प्राचीनता की पुष्टि करते हैं। वैसे तंत्र एक ऐसी आराधना पद्धति है जिसका अनुसरण कर साधक अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकता है।

मन्त्रः—

मन्त्र साधना शक्ति आराधना का एक अभिन्न अंग है। ‘मंत्र’ को भारतीय वैदिक साहित्य में देवता से की जाने वाली प्रार्थना के रूप में जाना जाता रहा है। जिसमें उसकी स्तुति भी हो। वैदिक काल में मंत्र तीन प्रकार के होते थे। उनमें से वे जो छंदोबद्ध अथवा पद्य के रूप में होते थे उनका उच्चारण उच्च स्तर से किया जाता था। उन्हें ‘ऋचा’ कहते थे। गद्य रूप में होने वाले मंद स्वर से कहे जाने वाले मंत्रों को ‘यजुः’ कहते थे और पद्य रूप में गाए जाने वाले मंत्रों को साम कहते थे। इसके अतिरिक्त निरुक्त मंत्रों के तीन और भेद बतलाए गए हैं। जिन मंत्रों में देवता को परोक्ष में मानकर प्रथम पुरुष में उनकी स्तुति की जाती है वे ‘परोक्ष कृत’ कहलाते हैं। जिनमें देवताओं को प्रत्यक्ष मानकर मध्यम पुरुष में उनकी स्तुति की जाती है उन्हें प्रत्यक्ष कृत कहते हैं। और जिन मंत्रों में स्वयं अपने आप में आरोप करके उत्तम पुरुष में स्तुति की जाती है वे आध्यात्मिक कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे मंत्र भी होते हैं जो एकाक्षरी अथवा बिना स्पष्ट अर्थ वाले होते हैं। उन्हें तंत्र शास्त्र में बीज मंत्र कहते हैं। जन

साधारण के लिए मंत्र कोई ऐसा शब्द वाक्य अथवा पद है जो देवी शक्ति से युक्त माना जाता है तथा जिसका उच्चारण किसी देवी अथवा देवता को प्रसन्न करके उससे अपनी कामना पूर्ण करने के लिए किया जाता है।

मंत्र से अभीष्ट फल प्राप्ति के लिए साधना करने की आवश्यकता होती है। मंत्र साधना में ध्यान भाव प्रधान होता है। कारण यह कि कारणब्रह्म एवं कार्यब्रह्म दोनों ही कार्यमय होते हैं। कार्यब्रह्मतो भावमय रूप में दिखाई देता है। किन्तु मन एवं वाणी से अगोचर कारणब्रह्म केवल भावमय होता है। जिस प्रकार मंत्र शब्द से सम्बद्ध होता है उसी प्रकार शब्द अर्थ से तथा अर्थ भाव रूप से सम्बद्ध होता है। इसीलिए प्रत्येक मंत्र का एक विशेष अर्थ, भाव एवं रूप होने से उसका ध्यान भी विशिष्ट होता है। यही कारण है कि मंत्र शास्त्र में प्रत्येक मन्त्र के ध्यान का पृथक्-पृथक् वर्णन मिलता है।

मंत्र सिद्धि के लिए किया गया प्रयत्न साधना कहलाता है तथा उसके उपयोगी उपकरणों को साधन कहते हैं। साधना के बिना साधना की ओर प्रवृत्त होना सम्भव नहीं। अतः मंत्र साधना के साथ-साथ मंत्र साधना का सम्यक् ज्ञान भी परमावश्यक है।

वास्तव में मंत्र साधारण शब्द मात्र नहीं है। वह इष्ट देव से अभिन्न होते हुए भी उसके स्वरूप का बोध कराता है। मंत्र जिस अर्थ अथवा लक्ष्य का संकेत करता है, साधक को यदि उसकी जानकारी हो जाए तो साधना में सुविधा रहती है और वह लक्ष्यभ्रष्ट नहीं होता। मंत्र शब्द का धातुगत अर्थ गुप्त भाषा है। परन्तु साधक के लिए वह गुप्त नहीं स्पष्ट होनी चाहिए।

गायत्री मंत्र के अनुसार “मनन” के करण ही “मंत्र” की अभिधान किया जाता है। इसके द्वारा जीव बन्धन से मुक्त हो, स्वर्ग का आनन्द, मोक्ष तथा चतुर्वर्ग की प्राप्ति करता है। मानसिक क्रिया के द्वारा ग्रहण किए जाने के कारण “मंत्र” की संज्ञा व्यवहृत होती है। “मंत्र” पद “मनन” के प्रथम अंश से तथा “त्र” त्राणा अथवा बन्धन से मुक्ति के अर्थ का ग्रहण किया जाता है। “मन्” एवं “त्र” का समन्वित रूप ही मंत्र है जो चतुर्वर्ग का आमन्त्रण करता है। वर्गों से ही मंत्र की रचना होती है। वर्ण और उसकी सन्निधि से शब्दों का प्रकाश होता है जो ब्रह्म स्वरूप माने जाते हैं। जो शब्द मुख से निकलते हैं, कानों से सुने जाते हैं, वह सभी सर्जिका शक्ति के स्वरूप हैं। सामान्यतया मंत्र ऐसी ध्वनियाँ हैं जो पूजा अथवा साधना में प्रयुक्त होती हैं, जिनमें विशेष ध्वनियों में आबद्ध कुछ वर्ण होते हैं, जो प्रतीकात्मक रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं। कुलार्णवतंत्र (17-58) के अनुसार परमात्मा का तेजोमय रूप मनन करने तथा सब प्रकार के भय से रक्षा करने के साधन के रूप में भी “मंत्र” संज्ञा का अभिधान किया जाता है।

मननातत्त्वरूपस्य देवस्यामित तेजसः।

त्रायते सर्वभयतस्तस्मान्मंत्र इतिरितः॥

पिंगलामत में कहीं पर विश्व विज्ञान के मनन, संसार बन्धन के त्राण तथा संसिद्धि करने वाले को मंत्र कहते हैं—

मननं विश्व विज्ञानं त्राणं संसार बन्धतात्।

यतः करोति संसिद्धि मंत्र इत्युच्यते तदा।

प्रत्येक मंत्र में दो शक्तियाँ होती हैं। वाक्य शक्ति तथा वाचक शक्ति। प्रतिपाद्य देवता वाच्य शक्ति है और मंत्रमय देवता जो मंत्र का स्वरूप है वह वाच्य शक्ति कहलाती है। साधना के द्वारा जब मंत्र के रूप में शक्ति का जाग्रण होता है तब वह शक्ति अद्वैत सत्य का द्वार खोलती है, और ब्रह्माण्ड के तत्त्व अथवा सार की अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार मंत्रशक्ति साधना शक्ति के द्वारा जागृत होती है, जिस साधना शक्ति को साधक साधना द्वारा प्राप्त करता है। साधना शक्ति तथा मंत्र शक्ति के सामन्जस्य से ही मंत्र-साधना का फल प्राप्ता होता है। साधना-अर्चना अथवा पूजा के द्वारा ही सुगुण-शक्ति जागृत होती है। सुगुण देवता मंत्र का अधिष्ठातृ देवता है, जिस प्रकार निर्गुण ईश्वर अथवा ईश्वरी मंत्र की वाच्य शक्ति है। सुगुण निर्गुण शक्ति एक ही है, परन्तु साधक अथवा जीव अपने स्वभाव एवं गुणों के कारण सर्वप्रथम स्थूल स्वरूप का चिन्तन करता है और कालान्तर में सूक्ष्म स्वरूप का अनुभव करके मुक्ति प्राप्त करता है।

यंत्र/चक्र :-

देवी पूजा और विशेषकर तान्त्रिक देवी पूजा पद्धति में यंत्रों तथा चक्रों के प्रयोग का विशेष रूप से विधान रहा है। वैसे तो यंत्र शब्द का भारतीय परम्पराओं, तथा साहित्य में कई प्रकार से प्रयुक्त हुआ है, परन्तु तान्त्रिक क्षेत्रों में यंत्र रेखाओं आदि के द्वारा कोष्ठकों आदि के रूप में बनी हुई आकृतियाँ हैं जिनमें कुछ विशिष्ट-शक्तियों का निवास माना जाता है और जिनका प्रयोग तंत्र साधना में विशिष्ट उपयोगी होता है। उक्त प्रकार के कोष्ठों को तान्त्रिक साधक अनेक प्रकार के अनुष्ठान करने के लिए प्रयोग में लाते हैं। इस प्रकार के अनेकों यंत्र भारतीय पुरावशेषों में प्राप्त हैं जिनमें कालीयन्त्र, श्रीयंत्र तथा बगुलायंत्र आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

जहाँ तक चक्र शब्द का सम्बन्ध है इस शब्द का शाब्दिक अर्थ, वृत्त, मण्डल, दल, अस्त्र, क्षितिज आदि है। परन्तु साधना जगत में जब चक्र शब्द का प्रयोग होता है तो वह उपासक के आलम्बन रूप में ग्रहण होता है। सूक्ष्म साधना के क्षेत्र में साधकों ने अपनी साधना का विषय शरीर के उन अवयवों को बनाया है जो स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जा सकते। यह अदृश्य अवयव साधना के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन्हीं अवयवों से होकर वायवीय शक्तियाँ प्रवाहित होती रहती हैं, जो शरीर को जीवित रखती हैं। दिव्य द्रष्टा को ही यह सूक्ष्म विषय दिखाई पड़ता है। शरीर के एक स्थान से दूसरे स्थान तक विद्युत-प्रवाहित करने वाले सन्धि स्थलों के रूप में चक्र हैं। तनिक सी भी दिव्य दृष्टि रखने वाले व्यक्ति इन चक्रों को देख सकते हैं। शरीर में अविकसित स्थिति में ये चक्र 2 इन्च के व्यास में व्यवस्थित होते हैं। जब यह जागृत किए जाते हैं, तब इनका आकार बढ़ जाता है तथा यह लघु सूर्यों के समान प्रतीत होते हैं। हरिणपदी पुष्प की भर्वरदार पंखड़ियों के समान चक्रों के स्वरूप को जाना जा सकता है। प्रत्येक चक्र में कोई न कोई दिव्य शक्ति अवश्य रहती है। प्रत्येक शक्ति दूसरे चक्रों में भी अपना प्रभाव स्थापित किए रहती है। चक्रों की अवस्थित प्रत्येक शरीर में होती है, परन्तु जिस शरीर में चक्र विकसित नहीं है उस शरीर में वे निष्क्रिय बन जाते हैं। विकसित होने पर वे नई चेतना तथा शक्ति देने वाले

होते हैं। इसके द्वारा मनुष्य में असाधारण सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। प्रत्येक मनुष्य में चक्रों का आकार तथा चमक भिन्न-भिन्न है। एक ही मनुष्य के शरीर में यह सम्भव है कि कुछ चक्र विकसित हों और कुछ अविकसित। चक्रों को तीन वर्गों अर्धः, मध्यम तथा उच्च में रखा जा सकता है। यह चक्र शरीर में अद्भुत शक्ति प्रदान करते हैं। आध्यात्मिक⁷ वर्ग में आज्ञा तथा सहस्रार की गणना की जाती है।

ये चक्र एक प्रकार के प्रतीकात्मक यंत्र हैं जिन का एक-एक कर के अथवा समूह में ध्यान किया जाता है। ये मनुष्य में यद्यपि सूक्ष्म संयंत्र रूप में हैं तथापि मानव में ये उच्च स्तरीय आध्यात्मिक क्षमता प्रदान⁸ करते हैं।

साधना जगत् में मूलाधार आदि षट् चक्रों की विशेष प्रसिद्धि मानी जाती है। इन चक्रों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के देवी देवताओं, शक्तियों तथा प्रयोजनों की दृष्टि से तंत्र साहित्य में अनेक प्रकार के तंत्रों का वर्णन मिलता है। इन चक्रों के विषय में रुद्रयामल⁹ तंत्र के द्वितीय पटल में अनेक चक्रों के नाम दिए हैं जिनमें प्रमुख इस प्रकार से हैं।

- (१) अकडम चक्र
- (२) कुलाकुल चक्र
- (३) राशि चक्र
- (४) कूर्म चक्र
- (५) शिव चक्र
- (६) विष्णु चक्र
- (७) ब्रह्म चक्र
- (८) दैव चक्र
- (९) उल्का चक्र
- (१०) वामा चक्र
- (११) चतुश्चक्र

कुण्डलिनी योग—

“परमात्मा अथवा परमलक्ष्य की प्राप्ति के दो प्रमुख मार्ग स्वीकार किए जाते हैं—ध्यान अथवा भावना तथा क्रिया अथवा हठ योग। कुण्डलिनी योग-क्रिया योग अथवा हठ योग से सम्बद्ध है। जिस प्रकार वृक्ष के फल की प्राप्ति के लिए पक्षी उड़ता हुआ फल पर ही बैठता है तथा मनुष्य उसी फल की प्राप्ति के लिए वृक्ष की शाखाओं को पार करता हुआ अन्त में फल प्राप्त करता है। उसी प्रकार परम लक्ष्य एक ही है। किन्तु अधिकार भेद से उसकी प्राप्ति का मार्ग अलग-अलग है। इन मार्गों पर उत्तम तथा मध्यम का विभाजन नहीं किया जा सकता। ध्यान योग का साधक निःस्पृह होने के कारण दीर्घायु निरोग और बलवान् होने की आकांक्षा से रहित होता है। इसीलिए यह योगी परम स्थिति को प्राप्त करके भी रोगी बन सकता है। किन्तु कुण्डलिनीयोग का साधक आध्यात्मिक उपलब्धि के समय आदिभौतिक उपलब्धि का भी अधिकारी होता¹⁰ है।”

स्वरूप तथा स्थान

“डा० वसन्त¹¹ जी रेले के अनुसार कुण्डलिनी शरीर के अन्दर दाहिनी वेगस नाड़ी (राइट वेगस नर्व) है जहाँ से कुण्डलियोग में वर्णित समस्त अंगों के स्थानों का योग (कनैकशन) रहता है। सर जान उडरफ ने इसे वह संग्रहीत शक्ति कहा है जो व्यष्टि-शरीर में विश्वमहाशक्ति की प्रतिनिधि के रूप में विश्व को उत्पन्न तथा धारण करती है। इन्हीं के अनुसार इस शक्ति के दो रूप हैं—स्वर या संग्रहीत तथा कर्तृशील रूप है।”

सन्त¹² ज्ञानेश्वर ने गीता ज्ञानेश्वरी (अध्याय-6, श्लोक 14 का भाष्य) में कुण्डलिनी के विषय में अपने विचार रखते हुए कहा है कि जिस प्रकार नागिन का बच्चा कुमकुम में नहा हुआ सा शरीर को गिंडुली बना कर सोया रहता है उसी प्रकार कुण्डलिनी अपनी देह को 3 1/2 बार लपेट कर अधोमुखी होकर सोती है। जागृत होकर वह प्राण स्वरूप हो जाती है।

मानव शरीर में 72,000 नाड़ियाँ हैं जिनमें 14 प्रमुख हैं। इनमें से तीन इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना सर्व प्रमुख हैं। मेरूदण्ड के बाहर बाई ओर से इडा तथा दाई ओर से पिंगला लिपटी हुई है। मेरूदण्ड के भीतर सुषुम्ना नाड़ी कन्द से होकर सहस्रार (ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। कदलीस्तम्भ की पत के समान सुषुम्ना के अन्दर ब्रह्म चित्रिणी (चित्रा) और ब्रह्म नाड़ी है। इसी ब्रह्म नाड़ी के द्वारा योगिक क्रियाओं के प्रभाव से महाशक्ति कुण्डलिनी ब्रह्म रन्ध्र तक जाकर स्वतः लौटती है। ब्रह्म नाड़ी हो षट् चक्रों की अवस्थिति है। इन्हीं चक्रों का भेदन करती हुई कुण्डलिनी सहस्रार तक जाती है। प्राणायाम से यह शक्ति जागृत होकर विद्युल्लता के रूप में ब्रह्म नाड़ी में प्रविष्ट होकर ऊपर ऊर्ध्वगमनशील होती है। इस प्रकार साधना करने वाला योगी “ऊर्ध्वरेतस” कहलाता है। चक्रों के देव तथा शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चक्र	देवता	शक्ति
1. मूलाधार	ब्रह्मा	डाकिनी
2. स्वाधिष्ठान	विष्णु	डाकिणी
3. मणिपूर	रुद्र	लाकिनी
4. अनाहत	ईशानरुद्र	काकिनी

5. विशुद्ध पञ्चवक्र सदाशिव शाकिनी
6. आज्ञा इतरलिंग हाकिनी

मूलाधार से सहस्रर तक का 'कुण्डलिनी-गमन' ही 'षट्चक्र भेदन' या 'कुण्डलिनी जाग्रण के नाम से प्रसिद्ध है। ध्यातव्य है कि महाशक्ति का जाग्रण हठ प्रदीपिका (3/2) के अनुसार साधना के विभिन्न सोपानों के निरन्तर अभ्यास तथा सद्गुरु की कृपा पर अवलम्बित है। कुण्डलिनी-जाग्रण के लिए अनेक आसनों में से सिद्धासन को सबसे उपयोगी माना गया है। इस सन्दर्भ में यह कहना भी समुचित होगा कि प्राणायाम तंत्र साधना का एक अभिन्न अंग है। प्राणायाम के पूरक कुम्भक तथा रेचक ये तीन अवयव हैं। हठ योग की मान्यता के अनुसार "भस्त्रिका कुम्भक" के द्वारा कुण्डलिनी—जाग्रण किया जाता है। प्राणायाम के प्रसंग में "बन्ध" की भी अपरिहार्यता साधकों ने स्वीकार की है, क्योंकि प्राणायाम के समय ही "बन्ध" किया जाता है। बन्ध के तीन भेद हैं—मूल प्रबन्ध, उड़ीयान बन्ध तथा जालन्धर बन्ध। बन्ध में अवस्थिति पूर्वक इस प्राणायाम द्वारा वायु को सुषुम्ना में प्रवेश कराया जाता है। मूलबन्ध और जालन्धर बन्ध की सहायता से अपान वायु को ऊपर की ओर तथा प्राण वायु का कण्ठ-स्थान के नीचे की ओर नाभि-स्थान में संगम करते रहने से प्रायः वायु का सुषुम्ना में प्रवेश होता है। यह साधना विशेषकर मणिपूर चक्र को जागृत करती है। सुषुम्ना में वायु के प्रविष्ट होने पर मूलाधार में अग्नि (ऊष्मा) प्रदीप्त होती है, और उस उष्णता से सुषुप्त कुण्डलिनी का जाग्रण होता है। तब यह अपना कुण्डलाकार स्वरूप त्याग कर सीधी होकर सुषुम्ना मार्ग में प्रविष्ट होती है। तथा षट्चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है।

पूर्वोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शक्ति उपासना में तंत्र, मंत्र तथा चक्र एवं यन्त्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तंत्र एक उपासना पद्धति है जबकि मंत्र एक साधन है जिसके प्रयोग से साधक अपने अभीष्ट की प्राप्ति में संलग्न होता है तथा चक्र अथवा तंत्र सिद्धि प्राप्ति के सहायक होते हैं।

अब प्रश्न यह है कि महिषासुरमर्दिनी की आराधना में तंत्र का प्रभाव कब और कैसे हुआ। इस सम्बन्ध में जोशी महोदय¹³ का कथन है "ईसवी सन् के आरम्भ के आस-पास भारत में कुछ महत्वपूर्ण धार्मिक आन्दोलन हुए जिन्होंने शाक्त तंत्र के स्वरूप को प्रभावित किया। इन में मुख्य नना, या नाना का दुर्गा और कालान्तर में महिषमर्दिनी में रूपान्तरण, लकुलीश पाशुपत धर्म की स्थापना तथा महायान दर्शन का उदय है। दुर्गा और महिषमर्दिनी की मूर्तियाँ कुषाण काल में विशेषकर मथुरा में बनने लगी थीं। लकुलीश पाशुपत विचार धारा के पशु एवं पाश की कल्पना शाक्त सम्प्रदाय में आई और शिव को सर्वश्रेष्ठ गुरु के रूप में मान्यता दी गई। महायान से प्रेरित शून्यवाद एवं महाकरुणा के आदर्श को शाक्त परम्परा ने अपनी मान्यताओं के अनुसार स्वीकृत किया। मथुरा में ईसवी सन् की प्रारम्भिक शक्तियों में सप्त मातृकाओं की साथ स्कन्द से जुड़ी षष्टिमाता की प्रतिभाएँ बननी शुरू हो गई थीं।"

सन्दर्भ

- (1) Rowson, Philip; *Tantra-The Indian Cult of Ecstasy*, p.1, New Delhi, 1973
- (2) मिश्र, रमाशंकर; रुद्रयामल तंत्र, पृ-11
- (3) ऋग्वेद-१०.७१.९, अथर्ववेद-१०.७.४२; तैत्तिरीय ब्राह्मण-११.५.५.३;
पाणिनि ने तंत्रक (५.२.७०) शब्द का अर्थ कर्षे से निकले हुए वस्त्र के लिए प्रयोग किया है।
- (4) आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १. १५.१; शायन श्रौत सूत्र, १.१६.६
- (5) Bhattacharya, N. N., पूर्वोक्त, पृ-२
- (6) जोशी, मुनीश चन्द्र; ऐतिहासिक संदर्भ में शक्ति तंत्र, पृ०-१८
- (7) Leadbeater, C. W., *The Chakras, A Monography*, pp. ९-१०
- (8) Satyananda, Swami; *Tantra of Kundaliniyoga*, p. १
- (9) मिश्र, रमा शंकर; रुद्रयामल उत्तर तंत्र; पृ०-१८५
- (10) वही
- (11) वही
- (12) ज्ञानेश्वरी, ६/२२२-२२३, (हिन्दी अनुवाद, पृ०-१३६)
- (13) जोशी, मुनीश चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ०-२२

22

उपसंहार

महिषासुरमर्दिनी की मान्यता अति प्राचीन समय से भारत में प्रचलित रही है। इसका प्रारंभ कब और कैसे हुआ यह कहना कठिन है परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य हमें अवश्य सम्मुख रखकर विचार करना होगा। 'देवी माहात्म्य' जो देवी के चरित्र का चित्रण करता है सबसे प्राचीन माना जाता है। इस देवीमाहात्म्य के संकलन के समय देवी की उपासना पर्याप्त लोकप्रिय हो चुकी दिखाई देती है। इस विषय पर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत पर्याप्त महत्वपूर्ण है जिसके अनुसार मार्कण्डेय ऋषि द्वारा इस काव्य की रचना समकालीन लोककथाओं के आधार पर की थी। इस तथ्य की पुष्टि देवी के स्वरूप के साक्ष्य से हो जाती है। देवी की कुषाण कालीन प्रतिमाओं के अवलोकन के यह स्पष्ट होता है कि उनमें महिषासुर की हत्या देवी माहात्म्य के अनुरूप नहीं हो सकी है। देवीमाहात्म्य के अनुसार देवी ने पशुरूप महिष के सिर कटने पर उसकी देह से मानव रूप में असुर के आधा निकलने पर त्रिशूल से उस महिष पर आरूढ़ होकर उसे मार गिराया। परन्तु अहिच्छत्र, भीटा, पालेखेडा तथा मथुरा आदि स्थानों से प्राप्त कुषाण कालीन प्रतिमाओं में देवी महिष पर आरूढ़ नहीं हैं अपितु देवी को महिष का सिर ऊपर उठाकर उसकी पीठ को हाथ से दबा कर अथवा त्रिशूल से पीठ पर आघात करते प्रदर्शित किया गया है। यह प्रस्तुति देवी माहात्म्य से मेल नहीं खाती। ऐसा लगता है कि कुषाण काल की देवी की प्रस्तुति देवी का प्राचीनतम स्वरूप भारत में था। अतः देवी की जिन प्रतिमाओं में महिष का सिर कटा होकर मानव रूप में असुर को उसकी ग्रीवा से निकलते हुए दिखाया जाता है उन पर अवश्य ही देवी माहात्म्य का प्रभाव है। ऐसा लगता है कि देवी की मूर्तियों के निर्माण में दो परम्पराओं—पूर्व कालीन देवीमाहात्म्य एवं देवी माहात्म्य, का प्रभाव रहा है। उन कृतियों में जिन में महिष का सिर कटा नहीं है उनका आधार देवी माहात्म्य न होकर उससे पूर्व की लोक कथाएँ हैं तथा अन्य में देवी माहात्म्य का प्रभाव स्पष्ट है।

एक अन्य तथ्य जो विचारणीय है वह है सिंह की देवी के वाहन के रूप में प्रस्तुति। पुराणों एवं शिल्प शास्त्रों में देवी का वाहन सिंह दर्शाया गया है परन्तु मूर्ति कला में यह वाहन गुप्तकाल के पश्चात् ही दृष्टिगोचर होता है। मध्ययुग में तो वह देवी का महत्वपूर्ण अंग बनकर असुर के साथ युद्ध में सम्मिलित हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि नगर राजस्थान से प्राप्त एक मृण्मय फलक में जो कुछ विशेषज्ञों द्वारा कुषाण काल की मानी गई है सिंह उपस्थित है, परन्तु इस फलक की अधिक प्राचीनता के बारे में विद्वानों में एकमत नहीं है अतः निश्चितरूप से इस बारे में कुछ कहना कठिन है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि मूर्तिकला में सिंह देवी के साथ गुप्त काल के पश्चात् ही अधिकतर देखने में आया है।

दक्षिण भारत में देवी के एक अन्य स्वरूप को पर्याप्त मान्यता मिली जिसमें वह महिष के सिर पर आरूढ़ दिखाई जाती है। इसमें देवी का महिष से संघर्ष का नितांत अभाव है। देवी ऐसे दृश्यों में शान्त भाव से खड़ी रहती है। तथा उसके पैरों के नीचे महिष का सिर बना रहता है। इस प्रकार के देवी के स्वरूप का उत्तर भारत में सर्वथा अभाव है।

देवी की प्राचीनता का अवलोकन करते समय यह विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि फ्रांस से एक मातृ देवी की प्रतिमा हाथ में श्रृंग धारण किए हुए उपलब्ध हुई है। यह उत्तर पाषाण युग की है। इस के अतिरिक्त पश्चिमेशिया से भी कुछ ऐसी आकृतियाँ मिली हैं जिनमें एक मानव आकृति को दो सिंहों से युद्ध रत दिखाया गया है। ऐसी ही एक आकृति हमें इटली में भी प्राप्त हुई है जिसमें गोरगोन देवी को दो सिंहों से युद्ध रत दिखाया गया है। कई विद्वानों ने मोहनजोदड़ों के अवशेषों में भी महिषमर्दिनी के दिग्दर्शन किए हैं जबकि अन्य विद्वद्गण को यह मान्य नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि महिषासुरमर्दिनी की मान्यता, भारत में पश्चिम एशिया से कुषाण काल में आई। इसके समर्थन में वह इन तथ्यों को जोड़ने का यत्न करते हैं कि भारत में कुषाण काल में देवी की प्रतिमाएँ अधिक प्राप्य हैं। परन्तु कुछ निश्चित साक्ष्य के बिना यह मानना सम्भव नहीं है। हो सकता है कि महिषासुर वध की कथा अतीत में कई देशों में किसी न किसी रूप में प्रचलित रही हो परन्तु कुछ निश्चित आधार के बिना इस कथा का जन्म स्थान भारत के अतिरिक्त कोई अन्य स्थान मानना कठिन है।

देवी का वह स्वरूप, जिसमें वह देवी माहात्म्य की परम्परा के अनुसार महिष पर आरूढ़ हो कटी हुई है महिष की ग्रीवा से मानव रूप असुर को निकलते दिखाया गया रहा है, भी उत्तर गुप्त काल में ही अधिक प्रचलित हुआ। इसके अनन्तर उसकी मूर्तिकला में अभिव्यक्ति पर्याप्त लोकप्रियता को प्राप्त हुई। मध्ययुग में तो इस स्वरूप को अधिक मान्यता दी जाने लगी। इसका कारण सम्भवतः यह भी था कि मध्ययुग की प्रारम्भिक शताब्दियों में भारत में पश्चिमोत्तर से विदेशी आक्रमणकारियों का एक तांता सा बन्ध गया था जिससे भारत का जन साधारण आक्रान्त था। ईसा की दसवीं शती में तो विदेशी शासकों ने भारत में अपना राज्य ही स्थापित कर लिया था। अतः जन साधारण जो पूर्ण रूप से विदेशी शासकों तथा आक्रमणकारियों से पीड़ित था एक ऐसी शक्ति जो अत्यन्त उग्ररूप में शत्रुओं का संहार करने में सक्षम थी, की उपासना करने लगा। यही कारण है कि मध्य युग में देवी की अनेकों प्रतिमाओं में उसे चतुर्भुजी, षड्भुजी, अष्टभुजी, दशभुजी, द्वादश, षोडश, अष्टादश एवं वीस तथा वत्तीस भुजाओं से युक्त दर्शाया जाने लगा। इस का कारण सम्भवतः यही है कि जितनी अधिक देवी की भुजाएँ होंगी वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली होगी।

प्राचीन भारतीय साहित्य में देवी दो पर्वतों, हिमालय एवं विन्ध्यचल से जुड़ी है। देवी का उद्गम स्थान हिमालय माना जाता है। जिसके कारण उसे उमा, हेमवती, पावती अथवा गिरिकन्या भी कहा गया है। उसे ब्रह्म, विष्णु तथा शिव के तेज से कात्यायन ऋषि के आश्रम में उत्पत्ति के कारण कात्यायनी नाम से भी पुकारा गया है। चूँकि उसकी उत्पत्ति देवताओं के तेज से हुई थी इसीलिए उसे अयोनिजा की संज्ञा भी दी गई है। मानवी देह प्राप्त करने के पश्चात् उसने विन्ध्यचल की उच्चतम चोटी पर अपना निवास रखा इसी कारण से उसकी विन्ध्यवासिनी देवी के रूप में भी आराधना की जाने लगी। यह विन्ध्यपर्वत श्रृंखला भारत के उत्तर को दक्षिण अलग करती है। उत्तर भारत से अगस्त्य ऋषि पहले व्यक्ति थे जिन्होंने ने सर्व प्रथम इस पर्वत श्रृंखला को पार किया तथा दक्षिण में जाकर ज्ञान का प्रचार किया। प्राचीन भारतीय साहित्य के साक्ष्य के अनुसार महिषासुर की विशाल चतुरङ्गिणी सेना थी तथा वह उस विशाल सैन्य समूह सहित आसानी से विन्ध्यपर्वत श्रृंखला को पार कर सकता था। देवी भागवत पुराण का साक्ष्य इस सम्बन्ध में अधिक महत्वपूर्ण है। देवता लोग अपनी सेना को विन्ध्य के पार ले जाने में सक्षम नहीं थे। विन्ध्य पर्वत के रहस्य ऋषि अगस्त्य के उसे पार करने के पश्चात् ही देवताओं को उपलब्ध हो सके। देवी का विन्ध्य पर्वत की उच्चतम चोटी पर अपना स्थान ग्रहण करके अपना एक अलग

ही महत्व है क्योंकि शत्रु की गति विधियों का निरीक्षण पर्वत की उच्चतम चोटी से अधिक आसानी से हा सकता है। यही कारण है कि देवी के ऐसा करने पर महिषासुर की गतिविधियों की उसे समुचित जानकारी प्राप्त हो सकी थी अन्त में वह उस महान असुर को, जिसने सभी देवताओं को आंतकित कर रखा था, संहार करने में सक्षम हुई।

कुछ अन्य तथ्य जो महिषासुरमर्दिनी के बारे में विचारणीय हैं उनका सम्बन्ध इतिहास से है। वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि मार्कण्डेय ऋषि की देवीमाहात्म्य की रचना, जैसे कि पहले कहा जा चुका है, तत्कालीन लोक कथाओं पर आधारित थी। यह लोक कथाएँ सर्वथा काल्पनिक नहीं हुआ करती। कभी-कभी तो यह किसी ऐसी घटनाओं पर आधारित रहती हैं कि जिनकी गहरी छाप तत्कालीन समाज को इतना प्रभावित करती है कि वह उसे काव्य का रूप देकर अपनी भावी सन्तति के लिए धरोहर के रूप में छोड़ देती है। ऐसा ही कुछ महिषासुरमर्दिनी के आख्यान में हुआ प्रतीत होता है वास्तव में यदि देखा जाए तो भारत में सभी देवी देवताओं की क्षाति किसी न किसी आसुरी शक्ति के विनाश के उपरान्त ही हुई है। भगवान् राम की मान्यता राक्षस कुल एवं रावण के विनाश से हुई। भगवान् कृष्ण का व्यक्तित्व महाभारत के युद्ध में ही उभरा। इसी प्रकार महिषासुरमर्दिनी की महिमा भी महिषासुर वध के पश्चात् ही हुई। इस सम्बन्ध में कुछ ऐसे तथ्य पिछले अध्यायों में दर्शाए गए हैं जिनसे महिषासुरमर्दिनी के महिषासुर के युद्ध को ऐतिहासिक घटना होने का आभास मिलता है। परन्तु कुछ स्पष्ट तथ्यों के बिना कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता जबकि इसकी ऐतिहासिकता को पूर्णतः नकारा भी नहीं जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि अगस्त्य के विन्ध्याचल पारगमन के पश्चात् दक्षिण भारत के कई भेदों अथवा तथ्यों जो इससे पूर्व अज्ञात थे देवताओं को उनका बोध हो गया। इससे पूर्व महिष के पास इतने सशक्त साधन थे कि वह अपनी समस्त सेना सहित विन्ध्यपर्वत को पार कर उत्तर में आया और देवताओं पर विजय प्राप्त करके स्वयं इन्द्र पद पर अधिकार जमा लिया। (इन्द्रोभून्महिषसुरः)। परन्तु देवताओं के पास विन्ध्यपार करने की क्षमता नहीं थी। यह तथ्य उन पर अगस्त्य ऋषि के विन्ध्य पार करने के उपरान्त खुले। प्राप्त साक्ष्यों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सभी देवताओं की सेनाएँ जो दिव्य अस्त्रों से सुसज्जित थीं—जैसा विष्णु की सेना चक्रधारिणी, शिव की त्रिशूलधारिणी, तथा इन्द्र की वज्रधारिणी, वरुण की पाशधारिणी थी, ब्रह्मा की कमण्डलु धारिणी हो सकती है जो अन्य सेना को जलपान की व्यवस्था कर सकती थी। इस प्रकार सभी सेनाएँ एकीकृत आदेश (unified command) के अन्तर्गत रख दी गई जिससे महिषासुर पर विजय सम्भव हो सकी। महिषासुर को मैसूर का सम्राट् कई विद्वानों ने माना है जो बहुतशक्तिशाली था तथा मैसूर का नाम महिषासुर का ही विकृत रूप से हो सकता है। अतः महिषासुरमर्दिनी का कथानक यदि किसी विशाल युद्ध का प्रतीक हो तो हमें आश्चर्य चकित नहीं होना चाहिए। इस विषय पर अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि कुछ समय पूर्व तक पाश्चात्य विद्वान् महाभारत के युद्ध को एक कल्पना मानते थे। परन्तु अब कुछ एक उसे एक ऐतिहासिक घटना मानने लगे हैं। अतः हो सकता है कि भविष्य में अधिक अनुसंधान से महिषासुरमर्दिनी के वास्तविक युद्ध के बारे में अधिक तथ्य समाने आएँ।

तंत्र साहित्य में देवी की विशेष मान्यता है। यह तंत्र विद्या ब्रह्मणों की पूजा पद्धति का अंग न रहकर बुद्ध एवं जैन धर्मावलम्बियों में भी अतीत में प्रचलित रही है। नालन्दा, तक्षशिला, वलभी, तथा विक्रमशिला तो बौद्ध तान्त्रिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्र रहे हैं जिनमें विदेशों से भी विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे। ब्राह्मणधर्म में विभिन्न शक्तिपीठ तंत्र अध्ययन के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार 108 शक्ति पीठ थे जहाँ पर शक्ति पूजा ही मुख्य रूप से होती थी। प्रत्येक शक्ति पीठ के साथ एक भैरव जुड़ा रहता था।

धार्मिक ग्रन्थों में देवी के अनेकों स्वरूप एवं नाम हैं। कभी वह द्विभुजा है तो कभी उसके चार, छः, आठ, दस, बारह, चौदह, सोलह, अठारह बीस तथा बत्तीस हाथ हैं। कवि वाण ने तो उस “भुजवनम्” भुजाओं के वन वाली की उपाधि दी। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि उस की अनन्त भुजाएँ हैं। देवी को कात्यायनी, चण्डी, चाण्डिका, चामुण्डा, कौशिकी, शताक्षी, शाकाम्भरी, महालक्ष्मी, महासरस्वती, काली एवं महाकाली आदि नामों से पुकारा जाता है। वास्तव में देवी मातृशक्ति का प्रतीक है जिसे देवी माहात्म्य में स्पष्ट रूप से दर्शाया है—

या देवी सर्वभूतेषु मातृ रूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यैः नमस्तस्यैः नमस्तस्यैः नमोनमः॥

परिशिष्ट-1

देवताओं के तेज से देवी के विभिन्न अंगों का प्रादुर्भाव

क्र०	देवता का नाम	शिव पुराण	मार्कण्डेय पुराण	वामन पुराण	देवीभागवत पुराण
1.	शिव	मुखमण्डल	मुखमण्डल	मुखमण्डल	मुखमण्डल
2.	यम	केश	केश	—	केश
3.	विष्णु	भुजाएँ	भुजाएँ	अठारह भुजाएँ	अठारह भुजाएँ
4.	चन्द्रमा	वक्षस्थल	वक्षस्थल	वक्षस्थल	—
5.	इन्द्र	कटि प्रदेश एवं अँगुलियाँ	कटि प्रदेश	कटि प्रदेश	वक्षस्थल एवं कटि प्रदेश
6.	वरुण	जंघाएँ	जंघाएँ	—	—
7.	पृथ्वी	नितम्ब	नितम्ब	—	जंघाएँ एवं नितम्ब
8.	ब्रह्मा	चरण	चरण एवं पाँव की अँगुलियाँ	—	—
9.	सूर्य	केश	हाथ एवं अँगुलियाँ	अँगुलियाँ	अँगुलियाँ

10.	वसु		हाथ एवं अंगुलियाँ	अंगुलिया	अंगुलियाँ
11.	कुबेर (धनद)	नासिका	नासिका	—	नासिका
12.	अग्नि	नेत्र	तीनों नेत्र एवं भुवें	तीन नेत्र	तीन नेत्र
13.	वायु	दोनों कान	दोनों कान	दोनों कान	दोनों कान
14.	प्रजापति	दन्तपंक्तियाँ	दन्तपंक्तियाँ	दन्तपंक्तियाँ	दन्तपंक्तियाँ
15.	यक्ष			नासिका	
16.	सन्ध्या	भुएँ		भुएँ	भुएँ
17.	कार्तिकेय				ऊपरी होंट

परिशिष्ट-2

विभिन्न देवताओं द्वारा देवी के शास्त्रास्त्रों आदि की भेंट।

क्र०	देवता का नाम	शिव पुराण	मार्कण्डेय पुराण	वामन पुराण	देवीभागवत पुराण
1.	शिव	त्रिशूल	त्रिशूल	त्रिशूल	त्रिशूल
2.	विष्णु/कृष्ण	चक्र	चक्र	चक्र	चक्र
3.	वरुण		शंख	शंख	शंख
4.	अग्नि	शक्ति	भाला	भाला	शक्ति
5.	मरुत	तरकस	धनुर्वाण	धनुष	धनुर्वाण
6.	इन्द्र	बज्र	बज्र तथा घंटा	वज्र	वज्र तथा घंटा
7.	यम	दंड	दंड	लोह दंड	—
8.	प्रजापति		मोतियों की माला		
9.	वरुण		पाश		पाश
10.	ब्रह्मा	कमण्डल	मृण्मय कमण्डल	अक्षमाला, कमण्डल	कमण्डल
11.	सूर्य		रश्मि	तरकस	रश्मि
12.	काल	ढाल एवं तलवार	ढाल एवं तलवार	ढाल एवं तलवार	ढाल एवं तलवार
13.	समुद्र		मोतियों की माला		माला एवं दो वस्त्र
14.	विश्वकर्मा	परशु	परशु एवं आभूषण	परशु आभूषण, अस्त्र	आभूषण
15.	हिमवान्	सिंह	सिंह	सिंह	
16.	कुबेर		पान पात्र	गदा	स्वर्ण पात्र
17.	शेषनाग		नागहार		

परिशिष्ट-3

पुराणोक्त महिषासुर सेनापतियों की सूची

देवी भागवत पुराण (खण्ड 5, 9, 10)	मार्कण्डेय पुराण (52.39-40)	वामन पुराण (21.1-38)	वराह पुराण (93.5-11)	शिव पुराण
1. चिक्षुर	चिक्षुर	चण्ड	रक्ताक्ष	विद्युत्प्रभा चिक्षुर
2. विडाल	विडाल	मुण्ड	विद्युज्जिह्वा	विघस चामर
3. ताम्र	ताम्र	दुन्दुभी	अंतिकाय	अन्जन उदग्र
4. अग्र	उग्र	चिक्षुर	दीर्घबाहु	प्रगस कराल

(१२९)

5. असिलोभ	असिलोभ	नम्र	कृतान्तक	नीलकुक्षी	उदत्त
6. त्रिनेत्र		उग्र	काल	मेघवर्ण	वाष्कल
7. वाष्कल	वाष्कल	कराल	हर्ण	बलाहक	अन्धक
8. अन्धक	अन्धक	वाष्कल	मित्र	उदराक्ष	दुर्दर
9. महाहनु	महाहनु	उदत्त	अनिल	ललिताक्ष	दुर्मुख
10. विडालाक्ष	चामर	उग्राक्ष	ब्राह्म	सुभीम	त्रिनेत्र
11. विरुपाक्ष	उदग्र	उग्रकारमुख	विरुपाक्ष	स्वरभानु	महाहनु
12. दुर्मुख	दुर्मुख	दुर्दर	गोधाना	ध्वंक्ष	
13. महाबाहु		दुर्मुख	स्त्रिघ्न	भीम	
14. उग्रकारमुख	उग्र दर्शन	विडालनयन	सम्बर्तक	ध्वस्तकर्ण	
15. दुर्दर	दुर्दर			शंकुकर्ण	
16. उग्रवीर्य	उग्रवीर्य			वज्रकाय	
				विद्युन्माली	

देवी भागवत में वर्णित सिद्ध पीठ एवं शक्तियाँ। सिद्ध पीठ और शक्तियाँ।

ततस्ते तु वनोद्देशे हिमाचलतटाश्रयः।
मायाबीजं जपासक्तास्तपश्चरुः समाहिताः॥ 1
ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्पू।
ततः प्रसन्ना देवी सा प्रत्यक्ष दर्शनं ददौ॥ 2
दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टु बुर्मननयोऽमलाः।
नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये॥ 3
नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमाऽव्याकृतमूर्तये।
नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये॥ 4
नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये।
इति स्तुत्वा जगद्वात्री भक्तिगद्गदया गिरा॥ 5
प्रणमुश्चरणभोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलाः।
ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी॥ 6
वरं ब्रूत महाभाग वरदाऽहं सदा मता।
तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरिविष्ण्वोस्तनोः शमम्॥ 7
तयोस्तच्छक्तिलाभं च वन्निरे नृपसत्तम।
दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देव कुले मम॥ 8
भवेत्तवाम्ब येनाहं कृतकृत्यो भवे इति।
जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विविधानि च॥ 9
वद मे परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम्।
मच्छक्त्योर व मानाच्च जातावस्था तयोर्द्वयोः॥ 10
नैतादृशः प्रकर्तव्यो मेऽपराधः कदाचन।
अधुना मत्कृपालेशाच्छरीरे स्वस्थता तयोः॥ 11
भविष्यति च ते शक्तिं त्वद्गृहे क्षीरसागरे।
जनिष्यतस्तत्र ताभ्यां प्राप्स्यतः प्रेरिते मया॥ 12
मायाबीजं हि मन्त्रों में मुख्यः प्रियकरः सदा।
ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पुनः स्थितम्॥ 13
सच्चिदानन्दरूपं वा स्थानं सर्वं जगन्मम।
युष्माभिः सर्वदा चाहं पूज्या ध्येया च सर्वदा॥ 14
उत्पुक्त्वाऽर्द्धे देवी मणिद्वीपाधिवासिनी।
दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययः॥ 15
ब्रह्मणे सर्ववृतांतं कथयातमासुरादरात्।
हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृपा॥ 16
जातौ परांबाकृपया गर्वेण रहितौ सदा।
कदाचिदथ काले तु महःशाक्तमवातरत्॥ 17
दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत्।
देवाः प्रमुदितः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे॥ 18
तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः।
ददौ पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याऽभवत्॥ 19
सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृपा।
पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत् तन्महः॥ 20
त्रैलोक्यप्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृपा।
वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः॥ 21
त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाऽभवत्।

ब्रह्मादयस्तदा देवाः शंकरं शरणं ययुः॥ 22
जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरिश्वरः।
अभयं दत्तवांस्तेभ्यो बस्तक्वत्रेण तं मनुम्॥ 23
अजीव यन्महात्माऽसौ ततः खिन्नो महेश्वरः।
यज्ञवाटमुपागम्य रुरोद भृशदुः खितः॥ 24
अपश्यतां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम्।
स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः॥ 25
बभ्राम भ्रातचितः सन्नानादेशु शंकरः।
तदा ब्रह्मादयो देवाश्चित्तमा पुरनुत्तमाम्॥ 26
विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः।
चिच्छेदावयवान्सत्यास्त तत्स्थानेषु तेऽपतन्॥ 27
तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्ननामूर्तिधरो हरः।
उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम्॥ 28
भजति परया भक्त्या तेषां किञ्चिन् दुर्लभम्।
नित्यं सन्निहिता यत्र निजांगेषु परांबिका॥ 29
स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकमिणा।
तेषां मंत्राः प्रसिध्यन्ति मायाबीजं विशेषतः॥ 30
इत्युक्त्वा शंकरस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः।
कालं निन्द्ये नृप्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः॥ 31
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि सांप्रतम्।
येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः॥ 31
वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी।
क्षेत्रे वै नेमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिंगधारिणी॥ 33
प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गंधमादने।
मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा॥ 34
विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरणी।
गोमन्ते गोमती देवी मन्दरे कामचारिणी॥ 35
मदोत्कटा चैत्ररये जयन्ती हस्तिनापुरे।
गौरी प्रोक्ता कान्यकुब्जे रम्भा तु मलायाचले॥ 36
एकाम्पीठे सम्प्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि।
विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे॥ 37
केदारपीठे सम्प्रोक्ता देवी सन्मार्गदायिनी।
मन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका॥ 38
स्थानेश्वरी भवानी तु बिल्वके विल्वपत्रिका।
श्रीशैले माधवी प्रोक्ता भद्रा भद्रेश्वरे तथा॥ 39
वाराहशैले तु जया कमला कमलालये।
रुद्राणी रुद्रकोट्यां तु काली कालंजरे तथा॥ 40
शालग्रामे महादेवी शिवलिंगे जलप्रिया।
महालिंगे तु कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी॥ 41
मायापुर्यां कुमारी स्यात्संताने ललितांबिका।
गयायां मंगलौ प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे॥ 42
उत्पलाक्षी सहस्रोक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला।
विपाशायामामोघाक्षी पाडला पुंड्रवर्धने॥ 43

नारायणी सुपाश्वे तु त्रिकूटे रुद्रसुन्दरी।
 विपुले विपुला देवी कल्याणी मलयाचले॥ 44
 सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका।
 रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती॥ 45
 कोटवी कोटतीर्थे तु सुगांथा माधवे वने।
 गोदावर्या त्रिसन्ध्या तु गंगोद्वारे रतिप्रिया॥ 46
 शिवकुण्डे शुभानंदा नंदिनी देविकातटे।
 रूक्मिणी द्वारवत्यो तु राधा वृन्दावने वने॥ 47
 देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी।
 चित्रकूटे तथा सीता विन्धे विन्ध्याधिवासिनी॥ 48
 करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके।
 आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥ 49
 अभयेत्युष्णतीर्थेषु नितम्बा विन्ध्यपर्वते।
 माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे॥ 50
 छगलण्डे प्रचण्डा तु चंडिकाऽमरकण्टके।
 सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती॥ 51
 देवमाता सरस्वत्यां पारावारा तटे स्मृता।
 महालये महाभागा पयोण्या पिंगलेश्वरी॥ 52
 सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिके त्वतिशङ्करी।
 उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे॥ 53
 माता सिद्धवने लक्ष्मीरङ्गा भरताश्रमे।
 जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते॥ 54
 देवदारुवेन पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले।
 भीमा देवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरी तथा॥ 55
 कपालमोचने शुद्धिर्माया कायावरोहणे।
 शंखोद्धरे धरा नाम धृतिः पिंडारके तथा॥ 56
 कला तु चन्द्रभागायामाच्छेदे शिवधारिणी।
 वेणायामामृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा॥ 57
 औषधिशोचत्तुरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका।
 मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी॥ 58
 अश्वत्ये वंदनीया तु निधिवर्धव्रणालये।
 गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ॥ 59
 देवल्लोके तथैन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती।
 सूर्यार्बिबे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी मता॥ 60
 अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्मा।
 चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम्॥ 61
 इमान्यष्टशतानि स्युः पीठानि जनमेजय।
 ततसंख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परिकीर्तिताः॥ 62
 सतीदेव्यगभूतानि पीठानि कथितानि च।
 अन्यान्यपि प्रसंगेन यानि मुख्यानि भूतले॥ 63
 यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि नामाष्टशतमुत्तमम्।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं परं व्रजेत्॥ 64
 एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यान्नाविधानतः।
 सन्तर्पयेच्च पित्रादीन्ष्टाद्वानीनि विधाय च॥ 65
 कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या विधानतः।
 क्षमापयेज्जगद्वात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः॥ 66
 कृतकृत्यं स्वमात्यमानं जानीयाज्जनमेजय।
 भक्ष्यभेज्यादिभिः सर्वान्ब्राह्मणान्भेजयेत्ततः॥ 67
 सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकादीस्तथा नृपा।
 तस्मिन्क्षेत्रे स्थिता य तु चांडालाद्या अपि प्रभो॥ 68

देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते।
 प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषु क्षेत्रेषु वर्जयेत्॥ 69
 यथाशक्ति पुरश्चर्या कुर्यान्मन्त्रस्य सत्तमः।
 मायाबीजेन देवेशीं तत्तपीठाधिवासिनीम्॥ 70
 पूजयेदनिशं राजन्मुरश्चरणकृद्भवेत्।
 वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवीभक्तिपरो नरः॥ 71
 य एवं कुरुते यात्रां श्रीदेव्याः प्रीतमानसः।
 सहस्र कल्पपर्यंतं ब्रह्मलोके महत्तरे॥ 72
 वसन्ति पितरस्यत्य सोऽपि देवीपुरे तथा।
 अन्ते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवांबुधेः॥ 73
 नामाष्ट शतजापेन बहवः सिद्धतां गताः।
 यत्रैतल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वापि तिष्ठति॥ 74
 ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवन्ति हि।
 सौभाग्य वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः 75
 न तस्य दुर्लभं किञ्चिन्नामाष्टशतजापिनः।
 कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्तिपरायणः 76
 नमन्ति देवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः।
 सर्वथा पूज्येते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमम् 77
 श्राद्ध काले पठेदेतन्ना माष्टशतमुत्तमम्
 तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्॥ 78
 इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च।
 सिद्धपीठानि राजेन्द्र संश्रयेन्मतिमान्नरः॥ 79
 पृष्टं यत्तत्तवया राजन्मुक्तं सर्वं महेशितुः।
 रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ 80

देवी भागवत में वर्णित 108 सिद्ध पीठों की तालिका

(7.30,55-83)

स्थान	देवी	स्थान	देवी
१. वाराणसी	विशालाक्षी	३६. हिरण्याक्ष	महोत्पला
२. नैमिषारण्य	लिंगधारिणी	३७. विपाशा	अमोधाक्षी
३. प्रयाग	ललिता	३८. पुण्ड्रवर्द्धन	पाटला
४. गन्धमादन	कामुकी	३९. सुपर्शव	नारायणी
५. दक्षिणमानस	कुमुदा	४०. त्रिकूट	रुद्रसुन्दरी
६. उत्तर मानस	विश्वकामा	४१. विपुल	विपुला
७. गोमन्त	गोमती	४२. मलयाचल	कल्याणी
८. मन्दर	कामचारिणी	४३. सहयाद्रि	एकवीरा
९. चैत्ररथ	मदोत्कटा	४४. हरिश्चन्द्र	चन्द्रिका
१०. हस्तिनापुर	जयन्ती	४५. रामतीर्थ	रमणी
११. कान्यकुब्ज	गौरी	४६. यमुना	मृगावती
१२. मलय	रम्भा	४७. कोटितीर्थ	कोटवी
१३. एकाग्र	कीर्तिमती	४८. मधुबन	सुगन्धा
१४. विश्व	विश्वेश्वरी	४९. गोदावरी	त्रिसंध्या
१५. पुष्कर	पुरुहूता	५०. गंगाद्वार	रतिप्रिया
१६. केदार	सन्मार्ग दायिनी	५१. शिवकुण्ड	शुभानन्दा
१७. हिमवतपृष्ठ	मन्दा	५२. देवी का तट	नन्दिनी
१८. गोकर्ण	भद्रकार्णिका	५३. द्वारावती	रुक्मिणी
१९. स्थानेश्वर	भवानी	५४. वृन्दावन	राधा
२०. बिबल्क	बिल्वपत्रिका	५५. मथुरा	देवकी
२१. श्रीशैल	माधवी	५६. पाताल	परमेश्वरी
२२. भद्रेश्वर	भद्रा	५७. चित्रकूट	सीता
२३. वराहशैल	जया	५८. विन्ध्य	विन्ध्यवासिनी
२४. कमलालय	कमला	५९. करवीर	महालक्ष्मी
२५. रुद्रकोटि	रुद्राणी	६०. विनायक	उमा देवी
२६. कालन्जर	काली	६१. वैद्यनाथ	आरोग्या
२७. शालग्राम	महादेवी	६२. महाकाल	महेश्वरी
२८. शिवलिंग	जलप्रिया	६३. उष्ण तीर्थ	अभया
२९. महालिंग	कपिला	६४. विन्ध्य पर्वत	नितम्बा
३०. महाकोट	मुक्तेश्वरी	६५. माण्डव्य	माण्डवी
३१. मायापुरी	कुमारी	६६. माहेश्वरीपुर	स्वाहा
३२. सन्तान	ललिताम्बिका	६७. छगलण्ट	प्रचण्डा
३३. गया	मंगला	६८. अमरकण्टक	चण्डिका
३४. पुरुषोत्तम	विमला	६९. सोमेश्वर	वरारोहा
३५. सहस्राक्ष	उत्पलाक्षी	७०. प्रभास	पुष्करावती

७१. सरस्वती
७२. तट
७३. महालय
७४. पयोष्णी
७५. कृतशौच
७६. कार्तिक
७७. उत्पलावर्तक
७८. शोण संगम
७९. सिद्धवन
८०. भरताश्रम
८१. जालन्धर
८२. किष्किन्धा
८३. देवदारुवन
८४. काश्मीर मण्डल
८५. हिमाद्रि
८६. विश्वेश्वर
८७. शंखोद्वार
८८. पिण्डारक
८९. चन्द्रभाग
९०. अच्छोद
९१. वेणा

- देवमाता
- परावाहा
- महाभागा
- पिंगलेश्वरी
- सिंहिका
- अतिशंकरी
- लीला (लोला)
- सुभद्रा
- लक्ष्मी
- अनंगा
- विश्वमुखी
- पर्वत तारा
- पुष्टि
- मेघा
- भीमा
- तुष्टि
- धरा
- धृति
- कला
- शिवधारिणी
- अमृता

९२. बदरी
९३. उत्तर कुरु
९४. कुशद्वीप
९५. हेकूट
९६. कुमुद
९७. अश्वत्थ
९८. कुबेरालय
९९. वेदवदन
१००. शिवसन्निधि
१०१. देवलोक
१०२. ब्रह्ममुख
१०३. सूर्य विम्ब
१०४. मातृमध्य
१०५. सतीमध्य
१०६. स्त्रीमध्य
१०७. चित्र मध्य
१०८. सर्वप्राणीवर्ग

- उर्वशी
- औषधि
- कुशोदका
- मन्मथा
- सत्यवादिनी
- वन्दनीया
- विधि
- गायत्री
- पार्वती
- इन्द्राणी
- सरस्वती
- प्रभा
- वैष्णवी
- अरुन्धती
- तिलोत्तमा
- ब्रह्म कला
- शक्ति

परिशिष्ट-5

पीठ निर्णय एवं महापीठ निरूपण में वर्णित शक्ति पीठ

पीठ का नाम	अंग प्रत्यंग	देवी	भैरव
1. हिगुला/हिगुलाट	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टरी, कोट्टवी, कोट्टरीशा	भीमलोचन
2. कारवीर, शरकरार	त्रिनेत्र	महिषमर्दिनी	क्रोधीशा, क्रोधेश
3. सुगन्ध	नासिका	सुनन्दा, सुगन्धा	त्रयम्बक
4. काश्मीर	कण्ठ	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वर, त्रिनेत्रेश्वर
5. ज्वालामुखी	जिह्वा	सिद्धिदा अम्बिका	उन्मत्त
6. जालन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरनाशिनी	भीष्म ईशान
7. वैद्यनाथ	हृदय	जयदुर्गा	वैद्यनाथ
8. नेपाल	जानु	महामाया	कापाली
9. मनसा मालव	दक्षिण हस्त	दाक्षायिनी	हरिहर अमर

10. विरजक्षेत्र	नाभि	विमलाविजया	जगन्नाथ
11. गण्डकी/गण्डक	गण्ड	गण्डकी, चण्डी	चक्रपाणि/ जगन्नाथ
12. बाहुला	वामबाहु	बाहुला बहुला	भीरुका/ तीव्रक
13. उज्जैनी, उजनी, उज्जनी, उरजनी उर्जयनी	कूर्परा	मंगला/मंगल चण्डी	कपिलाम्बर कपिलेश्वर
14. चत्ताला (चन्द्रशेखर)	दक्षिण बाहु	भवानी	चन्द्रशेखर
15. त्रिपुरा	दक्षिणापाद	त्रिपुरा त्रिपुरसुन्दरी	नल, त्रिपुरेश्वर
16. त्रिष्टा, तिरोटा	वाम पाद	भ्रामरी, आम्नी	ईश्वर, अम्बर, अमर
17. कामगिरि, कामरूपा (यहाँ पर दस शक्ति पीठे थीं)	महामुद्रा (योनि)	कामाक्षा	उमानन्द, शिवानन्द, रामानन्द, रावानन्द
18. युगाद्या क्षीर ग्राम	दक्षिण पादांगुष्ठ	युगाद्या	क्षीराखण्ड क्षीरकण्ठ
19. कालीपीठ कालपीठ (कालीघाट)	दक्षिण पदांगुली	काली	नकुलेश, नकुलीश, नलीश
20. प्रयाग	हस्तांगुलि	ललिता	भव
21. जयन्ति जयन्ता	वाम जंगा	जयन्ती	क्रमदीश्वर
22. किरीट किरीट कोण्डा	किरीट	भुवनेशी	सिद्धिरूप, सम्प्रत
23. मणिकर्णिका (वाराणसी)	कुण्डल	विशालाक्षी	काल
24. कन्याश्रम	पृष्ठदृष्टि	सरवानी	निमिश
25. कुरुक्षेत्र	दक्षिणगुल्फ	सावित्री	स्थान, स्नायु
26. मणिवेद मणिवेदिका मणवेदका	मणिवन्ध	गायत्री	सर्वानन्द
27. श्रीशैले श्रीहट्ट	ग्रीवा	महालक्ष्मी महामाया	सम्बर्णानन्द, समरानन्द
28. काञ्ची	कडाल	देवगर्भा	रुरु
29. कालमाधव	नितम्ब	काली	अष्टांग
30. नर्मदा, शोन, शैल	नितम्ब	सोना, नर्मदा	भद्रसेन
31. रामगिरि राजगिरि रामाकिनी	स्तन नासा नला	शिवानी	चण्डा
32. वृन्दावन(उमावन)	केशजाल केश	उमा, कात्यायनी	सम्हार
33. सूची अनल	ऊर्ध्व दन्त	नारायणी	महारुद्र
34. पञ्चसागर	अधोदन्त	वाराही	वामन,
35. करतोयातत	वामकर्ण	अपर्णा	

36. श्री पर्वत	दक्षिण कर्ण, तल्प, गुल्फ
37. विमास	वाम गुल्फ
38. प्रभास	उदर, अधर
39. भैरव पर्वत	ऊर्ध्व ओष्ठ
40. जनस्थान जलस्थल	चिवुक
41. गोदावरीतीर	(वाम) गण्ड
42. रत्नावली	दक्षिण स्कन्द
43. मिथिला	वाम स्कन्द
44. नलहारी	नला
45. कालीघाट (कालीपीठ)	मुण्ड
46. वक्रेश्वर	मनस
47. यशोर	पाणि
48. अट्टहास	ओष्ठ
49. नन्दीपुर	हार
50. लंका	नूपुर
51. विराट	पादांगुली

कामरूप की दश पीठाएँ

सुन्दरी
भीमरूपा, कापाली
चन्द्रभाग
अवन्ती
भामरी
विश्वेशी
डाकिनी
कुमारी, शिवा
उमा, महादेवी
काली
जयदुर्गा
महिषमर्दिनी
यशोरेश्वरी
फुल्लरा
नन्दिनी
इन्द्राक्षी
अम्बिका

वामेश
सुन्दरानन्द
कपालिनी
वक्रतुण्ड
लम्बकर्ण, नम्रकण
विकृत
विश्वेश, दण्डपाणि,
वत्सनाम
शिव कुमार
महोदर
योगीश, योगेश
क्रोधीश, क्रोधेश
वक्रनाथ
चण्डा, चण्डेश
विश्वेश
नन्दिकेश्वर
रक्षेश्वर, नन्दिकेश्वर
अमृत, अमृताक्ष

परिशिष्ट-6

शिवचरित में वर्णित महापीठों एवं उपपीठों का तालिका

पीठ नाम	अंग, प्रत्यंग	देवी	भैरव
1. हिंगुला	ब्रह्मरन्ध्र	कोट्टरी	भैरव
2. शरकरा	त्रिनेत्र	महिषमर्दिनी	क्रोधीश
3. तारा	नेत्रांश	तारा, तारिणी	उन्मत
4. कतोयातत	वामकर्ण	अपर्णा	वामेश
5. श्रीपर्वत	दक्षिण कर्ण	सुन्दरी	सुन्दरानन्द
6. सुगन्धा	नासिका	सुनन्दा	त्र्यम्बक
7. वक्रनाथ	मनस	पापहरा	वक्रनाथ
8. गोदावरी	वामगण्ड	विश्वमातृका	विश्वेश
9. गण्डकी	दक्षिणगण्ड	गण्डकी	चक्रपाणि
10. अनल	ऊर्ध्व दन्त	नारायणी	संकूर
11. पन्वसागर	अर्धाद	वाराही	महारुद्र

12. ज्वालामुखी	जिह्वा	अम्बिका	वटकेश्वर, उनमत्त
13. काश्मीर	कण्ठ	महामाया	त्रिसन्ध्या
14. श्रीहट्ट	ग्रीवा	महालक्ष्मी	सर्वानन्द
15. भैरव पर्वत	ओष्ठ	अवन्ती	नामकर्ण
16. प्रमास	अधर	चन्द्रभाग	वक्रतुण्ड
17. प्रभासखण्ड	मर्म	सिद्धेश्वरी	सिद्धेश्वर
18. जनस्थान	चिबुक	भ्रामरी	विकृताक्ष
19. प्रयाग	द्विहस्तांगुली	कमला	वेणिमाधव
20. मानसरोवर	दक्षिणहस्तार्ध (वाम हस्त)	दाक्षायिनी	हर
21. छत्त ग्राम	दक्षिणहस्तार्ध	भवानी	चन्द्रशेखर
22. मिथिला	वामस्कन्ध	महादेवी	महोदर
23. रत्नावली	दक्षिणस्कन्ध	शिवा	शिव, कुमार
24. मणिबन्ध	वाममणिबन्ध	गायत्री	शंकर, सर्वण
25. मणिवेद	दक्षिणमणिबन्ध	सावित्री	स्थानु
26. उजानी	वामकफोनी	मंगल चण्डी	कपिलाम्बर
27. रणखण्ड	दक्षिणकफोनी	बगुलाक्षी	महाकाल
28. बहुला	वामबाहु	बाहुला	भीरूक
29. वक्रेश्वर	दक्षिणबाहु	वक्रेश्वरी	वक्रेश्वर
30. जालन्धर	वामस्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण
31. रामगिरी	दक्षिणस्तन	शिवानी	चण्ड
32. वैवस्वत	पृष्ठ	त्रिपुरा	शमनकर्मण
33. वैद्यनाथ	हृदय	नवदुर्गा, जयदुर्गा	वैद्यनाथ
34. उत्कल	नाभि	विजया	जया
35. हरिद्वार	जठर	भैरवी	वक्र
36. कोकमुख	कुक्षि	कोकेश्वरी	कोकेश्वर
37. काञ्ची	कंकाल	वेदगर्भा	रुरु
38. कालमाधव	वामनितम्ब	काली	असिताड
39. नर्मदा	दक्षिण नितम्ब	सोनाक्षी	भद्रसेन
40. कामरूप	महामुद्रा (योनि)	कामाक्षा, नीलपार्वती	रावणानन्द उमानन्द
41. मालव	वाम जानु	शुभचण्डी	ताम्र
42. त्रिस्तोता	दक्षिण जानु	चण्डिका	सदानन्द
43. जयन्ती	वाम जंघा	जयन्ती	क्रमदीशवर
44. नेपाल	दक्षिण जंघा	महामाया	नवदुर्गा,
45. तिरहुत	वाम पद	अमरी	अमर
46. त्रिपुर	दक्षिण पाद, अंगुष्ठ	त्रिपुरा	नल
47. क्षीरग्राम	दक्षिणापादांगुलि	कालिका	क्षीरखण्ड
48. कालीघाट	दक्षिण पादांगुलि	कालिका	नकुलेश
49. विभास	वाम गुल्फ	भीमरूपा	कापाली
50. कुरक्षेत्र	दक्षिण गुल्फ	सम्बरी	सर्वत
51. विन्ध्यशिखर	वामपादांगुलि	विमला	पुण्यभाजन
		विन्ध्यावासिनी	

उप पीठ

1. किरीटकोणा	किरीट	भुवनेशी	किरीटि
2. केशजाल	केश	उमा	भूतेश
3. वाराणसी	कुण्डल	विशालाक्षी	कालभैरव
4. उत्तर	वामगंडांश	उत्तरिणी	उत्सादन
5. नलस्थान	दक्षिणगण्डांश	भ्रामरी	विरुपाक्ष
6. अट्टहास	ओष्ठांश	फुल्लरा	विश्वनाथ
7. सम्हार	दन्तांश	सुरेशी	सुरेश
8. नीलाचल	उच्छिष्ट	विमला	जगन्नाथ
9. अयोध्या	कण्ठहार	अन्नपूर्णा	हरिहर
10. नन्दीपुरा	हारांश	नन्दिनी	नन्दीश्वर
11. श्रीशैल	ग्रीवांश	सर्वेश्वरी	चर्चितानन्द
12. कालीपीठ	शिरांश	चण्डेश्वरी	चण्डेश्वर
13. चक्रद्वीप	अस्त्र	चक्रधारिणी	शूलपाणि
14. यशोर	पाणि	यशेश्वरी	प्रचण्ड
15. सतीस्थल	करांश	सुनन्दा	सुनन्द
16. वृन्दावन	स्कन्दांश	कुमारी	कुमार
17. गौरीशेखर	वसा	युगाद्या	भीम
18. नलहारी	शिरानली	सेफलिका	योगीश
19. सर्वशैल	कुक्षांश	विश्वमाता	दण्डपाणि
20. शोन	नितम्बांश	भद्रा	भद्रेश्वर
21. त्रिस्तोत	पादांश	पार्वती	ईश्वर
22. लङ्का	नूपुर	इन्द्राक्षी	राक्षेश्वर
23. कटक	चर्मांश	कटकेश्वरी	वामदेव
24. पुण्ड्र	लोम	सर्वाक्षिणी	शर्व
25. तैलंग	लोमखण्ड	चण्डदायिका	चण्डेश
26. श्वेतवन्ध	भगनांश	जया	महाभीम

परिशिष्ट-7

तन्त्र चूड़ामणि के अनुसार शक्ति पीठ तालिका

स्थान	अंग/आभूषण	शक्ति	भैरव
1. हिंगुला	ब्रह्म रन्ध्र	कोट्टवीशा	भीमलोचन
2. शर्कहार	तीनचक्षु	महिषमर्दिनी	क्रोधीश
3. सुगन्धा	नासिका	सुनन्दा	त्रयम्बक
4. काश्मीर	कण्ठदेश	महामाया	त्रिसन्ध्येश्वर
5. ज्वालामुखी	महाजिह्वा	सिद्धिदा	उन्मत्तभैरव
6. जालन्धर	स्तन	त्रिपुरमालिनी	भीषण
7. वैद्यनाथ	हृदय	जय दुर्गा	वैद्यनाथ

8. नेपाल	जानु	महामाया	कपाली
9. मानस	दक्षिणहस्त	दाक्षायनी	अमर
10. उत्कल में विरजाक्षेत्र	नाभिदेश	विमला	जगन्नाथ
11. गण्डकी	गण्डस्थल	गण्डकी	चक्रपाणि
12. बहुला	वाम बाहु	बहुला देवी	भीरुक
13. उज्जैनी	कर्पूर	मंगल चण्डिका	कपिलांवर
14. त्रिपुरा	दक्षिणा पाद	त्रिपुर सुन्दरी	त्रिपुरेश
15. चहल	दक्षिण बाहु	भवानी	चन्द्रशेखर
16. त्रिखोता	वाम पाद	भामरी	भैरवेश्वर
17. कामगिरी	योनिदेश	कामाख्या	उमानन्द
18. प्रयाग	हस्तांगुलि	ललितता	भव
19. जयन्ती	वामजङ्घा	जयन्ती	क्रमदीश्वर
20. युगाद्या	दक्षिणागुष्ठ	भूतधात्री	क्षीर खण्डक
21. कालीपीठ	दक्षिणापादांगुलि	कालिका	नकुलीश
22. किरीट	किरीट	विमला	सम्बर्त
23. कन्याश्रम	पृष्ठ	सर्वाणी	निमिष
24. वाराणसी	कर्णकुण्डल	विशालाक्षी, मणिकर्णी	कालभैरव
25. कुरूक्षेत्र	गुल्फ	सावित्री	स्थाणु
26. मणिबन्ध	दो मणिबन्ध	गायत्री	सर्वानन्द
27. श्रीशैल	ग्रीवा	महालक्ष्मी	शम्बरानन्द
28. काञ्ची	अस्थि	देवगर्भा	रुरु
29. कालमाधव	नितम्बक	काली	असितांग
30. शोणदेश	नितम्बक	नर्मदा	भद्रसेन
31. रामगिरि	अन्यस्तन	शिवानी	चण्डभैरव
32. वृन्दावन	केशपाश	उमा	भूतेश
33. शुचि	ऊर्ध्वदन्त	नारायणी	संहार
34. पञ्चसागर	अधेदन्त	वाराही	महारुद्र
35. करतोयातट	गुल्फ	अपर्णा	वामन भैरव
36. श्रीपर्वत	दक्षिणगुल्फ	श्रीसुन्दरी	सुन्दरानन्द भैरव
37. विभाष	वामगुल्फ	कपालिनी	सर्वानन्द
38. प्रभास	उदर	चन्द्रभागा	वक्रतुण्ड
39. भैरव पर्वत	ऊर्ध्व ओष्ठ	अवन्ती	लम्ब कर्ण
40. जनस्थल	दोनों चिबुक	भामरी	विकृताक्ष
41. सर्व शैल	वाम गण्ड	डाकिनी	वत्सनाभ
42. गोदावरी तीर	गण्ड	विश्वेश्वरी	दण्डपाणि
43. रत्नावली	दक्षिणा स्कन्ध	कुमारी	शिव
44. मिथिला	वामस्कन्ध	उमा	महोदर
45. नलहारी	नला	कालिका देवी	योगेश
46. कर्णाट	कर्ण	जयदुर्गा	अभीरू
47. वक्रेश्वर	मनः	महिषमर्दिनी	वक्र नाथ

48. अट्टहास

ओष्ठ

फुल्लरा

विश्वेश

49. नन्दीपुर

कण्ठहार

नन्दिनी

नन्दीकेशवर

50. लङ्का

नूपुर

इन्द्राक्षी

राक्षसेश्वर

विराट

पादांगुलि

अम्बिका

अमृत

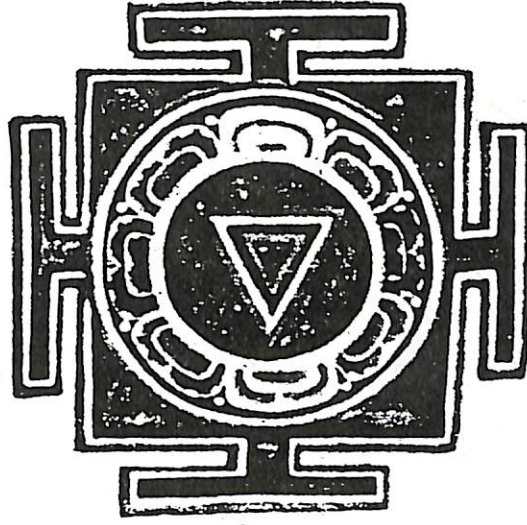
मगध

दक्षिणजङ्घा

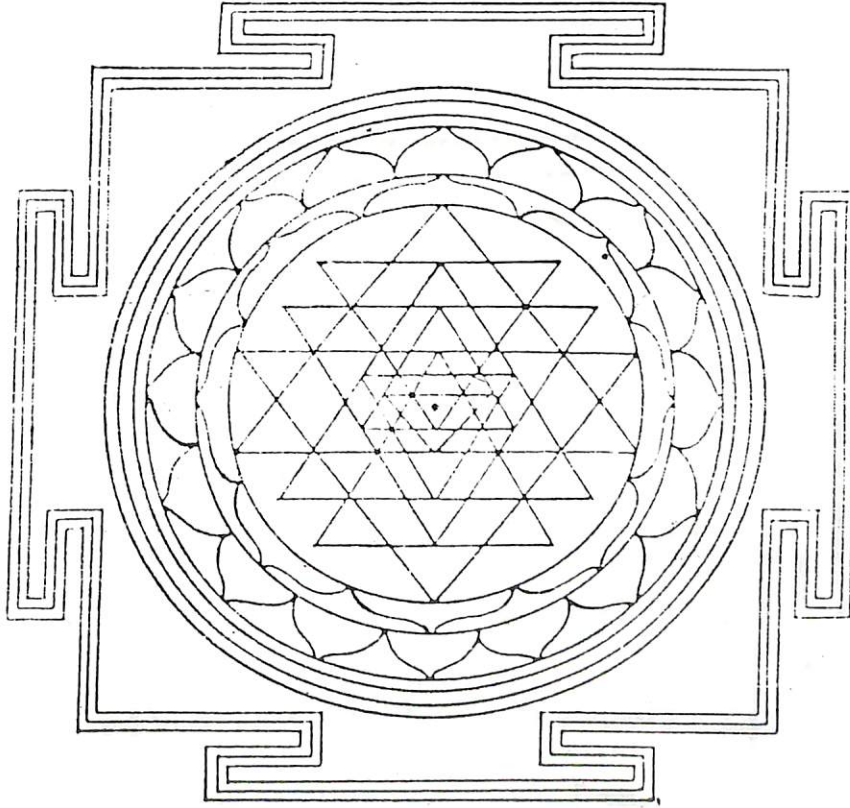
सर्वानन्दकरी

व्योमकेश

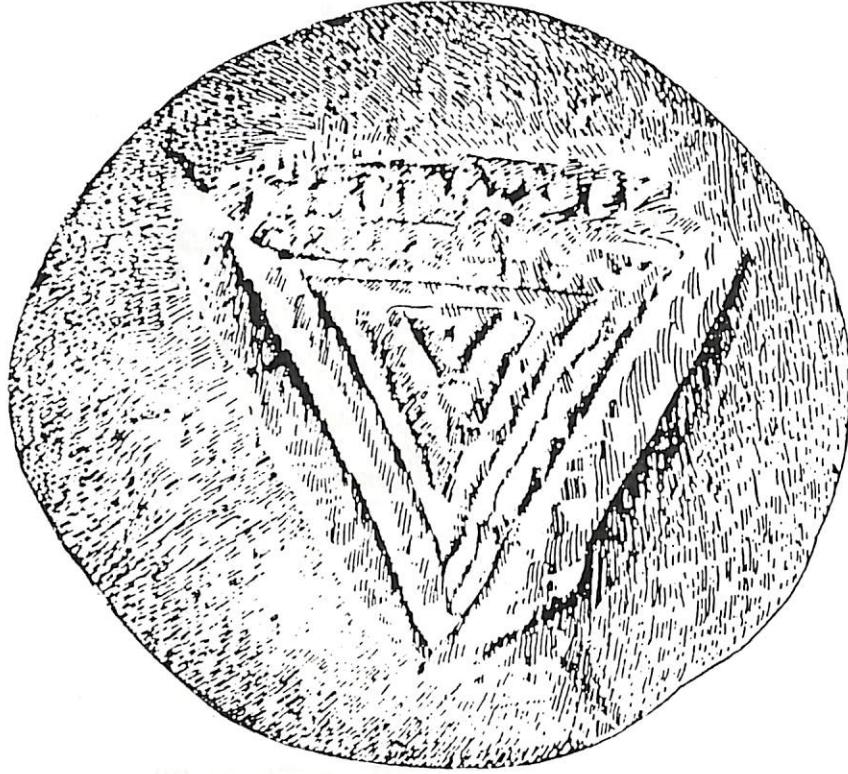
टिप्पणी—नीचे के दो नाम भी शक्ति पीठों में गिने जाते हैं।



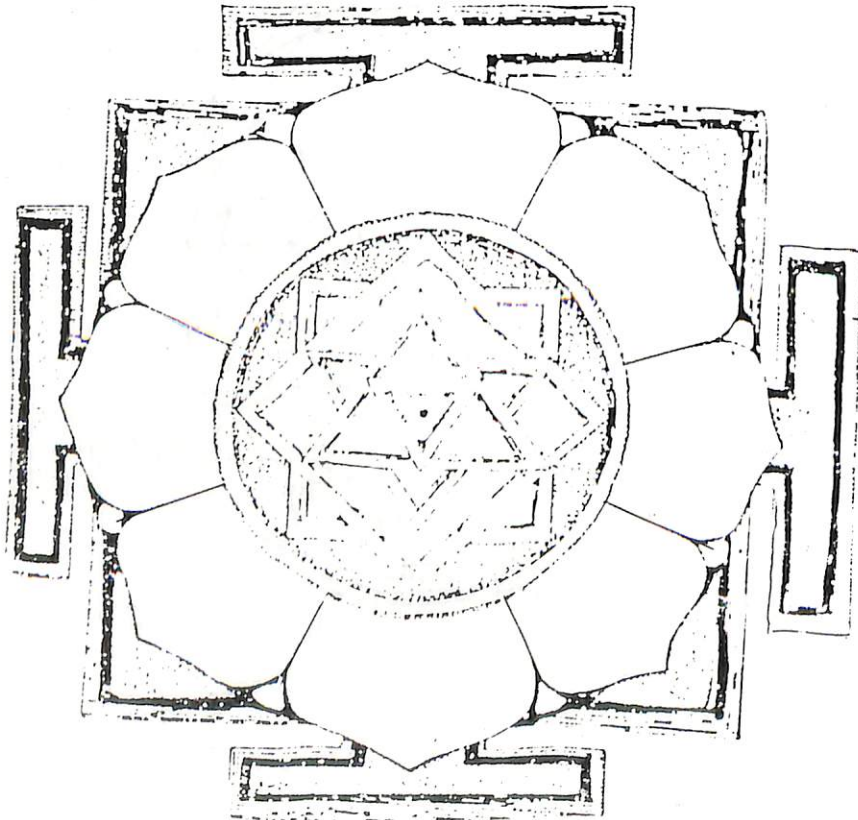
काली यंत्र
[निक डगलस, तंत्र योग, से सामार]



श्रीयंत्र



अन्तिचक्र (त्रि. भागलपुर, बिहार) से प्राप्त
एक यंत्रांकित मुद्रा-छाप



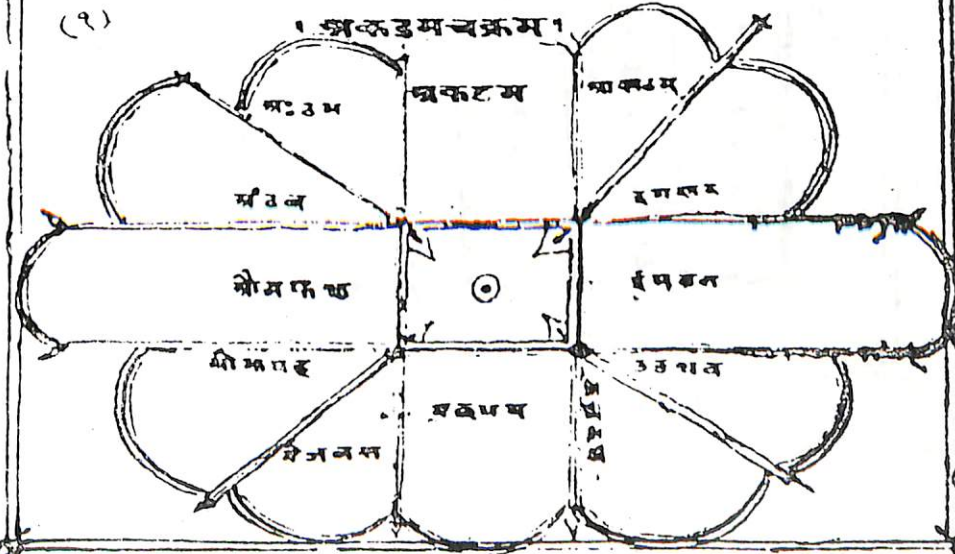
बगला यंत्र

रुद्रयामलतन्त्रम्

विष्णुपूर्व दिने कृष्णात् सुविचारं प्रयत्नतः ।
 तत्प्रकारं प्रयत्नेन कार्यं तर्ष्यत पूजितम् ।
 आकाशकर्मसिद्धिमन्त्रं संचारयेत्तत्तमः ।
 देव्याङ्गं पूर्वपदे मध्ये देवाङ्गं लिखेत् ।
 चतुकोशे चतूरेसा कर्म वक्ष्यमस्तस्य ।
 आभयित्वा मन्त्रपत्रं निर्माय नर्यमा लिखेत् ।
 अकारादि क्षकारास्तान् वर्णांश्च लिखेत्ततः ।
 एकैकक्रमतो लेख्यान् मेधादिबुद्ध्यास्तकम् ।
 आभाचर्त्तम गणयेत्तत्क्रमणो वीर्यवत्तम ।
 मन्त्रमार्गं गन्तयेत् नानादिवर्णकारिकाम् ।
 विष्णुदितोऽपि मीनाक्षं क्रमशः शास्त्रमण्डितः ॥ १ ॥

(१)

१ अक्षरक्रमः



रुद्रयामल तन्त्रम्

कादयः पञ्चशः बह्वलसहस्रताः समीदिताः ।

साधकस्याक्षरं पूर्वं मन्त्रस्वापि तथाक्षरम् ।

पञ्चैकभूतदेवतं ज्ञानी पातस्वकुलं सितम् ।

श्रीमस्य वाक्यं गिर माग्नेयस्यापि माकृतम् ।

प्राकृतं पार्थिवानां च शत्रुमाग्नेयस्य साम् ।

देववाक्ययोः शत्रुमाकृतः परिसीतितः ।

पार्थिवे वाक्यं गिरं तेजसं शत्रुशीरितं ।

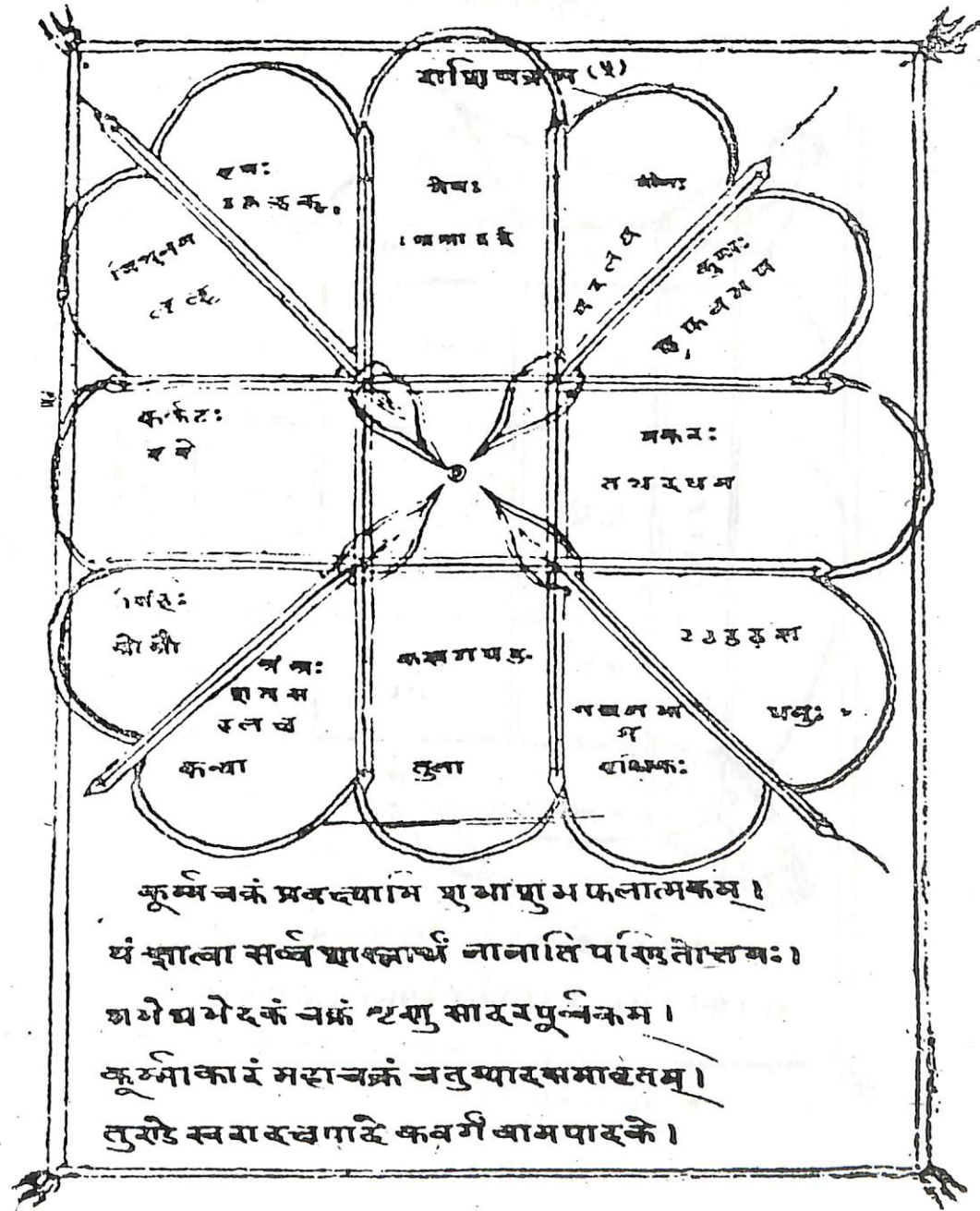
वायसं सर्वमित्रं स्याद्विकुलं नैव शीलयेत् ।

देववाक्यं हि पूर्वाख्यं देवैकादशमध्यतः ।

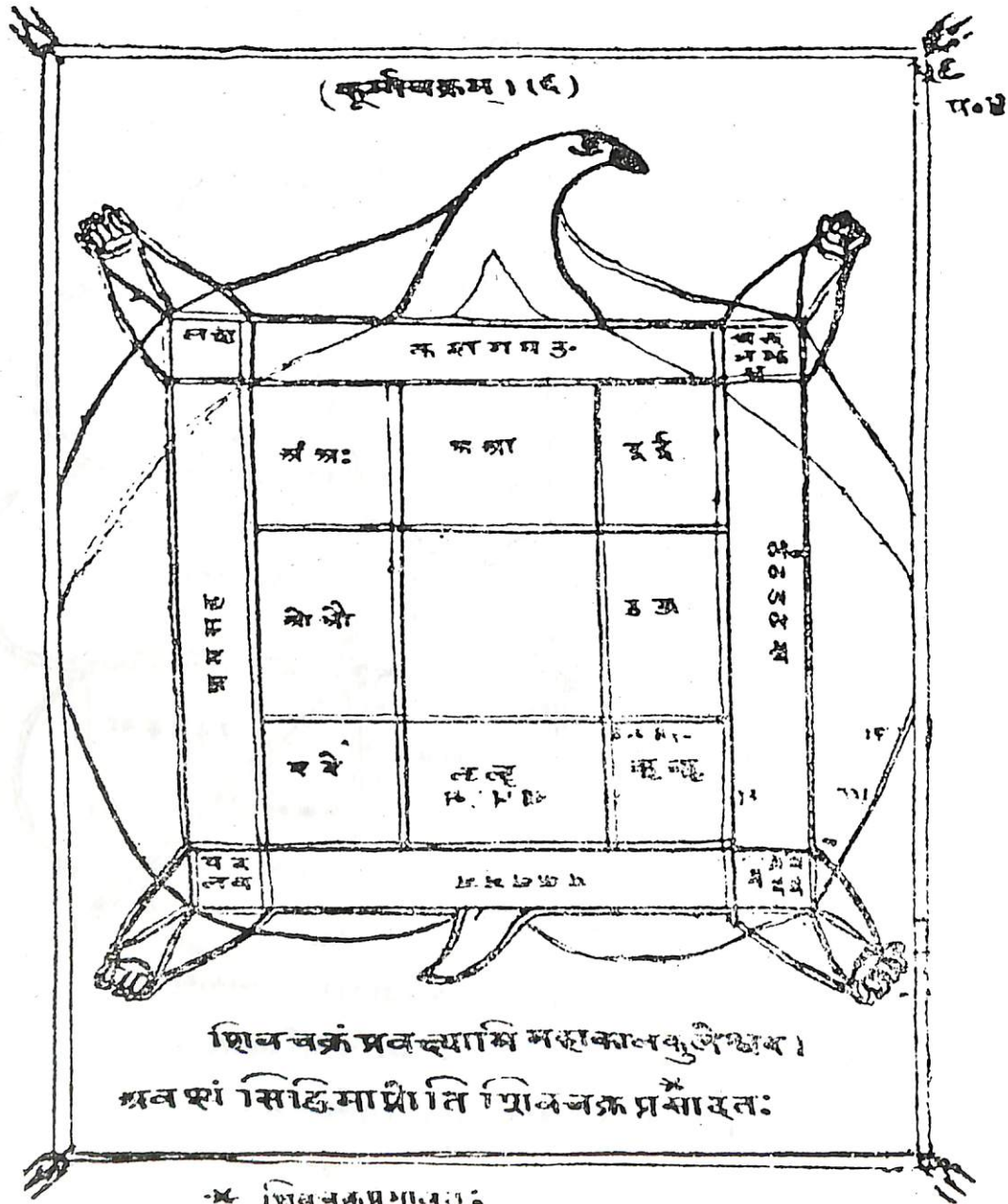
वक्षिणोत्तरभागेन दक्षिणानधिमानिखेत् ।

कुलाकुलचक्रम् ॥ ३

तामः	माग्नेयः	भूमिः	वायुः	अकाशः
म	३	५	७	९
वा	६	४	८	१०
भ	९	३	१	७
व	१२	२	६	४
अ	१५	१	५	३
स	१८	४	८	६
य	२१	७	१	९
र	२४	१०	४	१२
क	२७	१३	७	१५
ख	३०	१६	१०	१८
ग	३३	१९	१३	२१
घ	३६	२२	१६	२४
ङ	३९	२५	१९	२७
च	४२	२८	२२	३०
छ	४५	३१	२५	३३
ज	४८	३४	२८	३६
झ	५१	३७	३१	३९
झ	५४	४०	३४	४२
ट	५७	४३	३७	४५
ठ	६०	४६	४०	४८
ड	६३	४९	४३	५१
ण	६६	५२	४६	५४
त	६९	५५	४९	५७
थ	७२	५८	५२	६०
द	७५	६१	५५	६३
ध	७८	६४	५८	६६
न	८१	६७	६१	६९
प	८४	७०	६४	७२
फ	८७	७३	६७	७५
ब	९०	७६	७०	७८
भ	९३	७९	७३	८१
म	९६	८२	७६	८४
य	९९	८५	७९	८७
र	१०२	८८	८२	९०
क	१०५	९१	८५	९३
ख	१०८	९४	८८	९६
ग	१११	९७	९१	९९
घ	११४	१००	९४	१०२
ङ	११७	१०३	९७	१०५
च	१२०	१०६	१००	१०८
छ	१२३	१०९	१०३	१११
ज	१२६	११२	१०६	११४
झ	१२९	११५	१०९	११७
झ	१३२	११८	११२	१२०
ट	१३५	१२१	११५	१२३
ठ	१३८	१२४	११८	१२६
ड	१४१	१२७	१२१	१२९
ण	१४४	१३०	१२४	१३२
त	१४७	१३३	१२७	१३५
थ	१५०	१३६	१३०	१३८
द	१५३	१३९	१३३	१४१
ध	१५६	१४२	१३६	१४४
न	१५९	१४५	१३९	१४७
प	१६२	१४८	१४२	१५०
फ	१६५	१५१	१४५	१५३
ब	१६८	१५४	१४८	१५६
भ	१७१	१५७	१५१	१५९
म	१७४	१६०	१५४	१६२
य	१७७	१६३	१५७	१६५
र	१८०	१६६	१६०	१६८
क	१८३	१६९	१६३	१७१
ख	१८६	१७२	१६६	१७४
ग	१८९	१७५	१६९	१७७
घ	१९२	१७८	१७२	१८०
ङ	१९५	१८१	१७५	१८३
च	१९८	१८४	१७८	१८६
छ	२०१	१८७	१८१	१८९
ज	२०४	१९०	१८४	१९२
झ	२०७	१९३	१८७	१९५
झ	२१०	१९६	१९०	१९८
ट	२१३	१९९	१९३	२०१
ठ	२१६	२०२	१९६	२०४
ड	२१९	२०५	१९९	२०७
ण	२२२	२०८	२०२	२१०
त	२२५	२११	२०५	२१३
थ	२२८	२१४	२०८	२१६
द	२३१	२१७	२११	२१९
ध	२३४	२२०	२१४	२२२
न	२३७	२२३	२१७	२२५
प	२४०	२२६	२२०	२२८
फ	२४३	२२९	२२३	२३१
ब	२४६	२३२	२२६	२३४
भ	२४९	२३५	२२९	२३७
म	२५२	२३८	२३२	२४०
य	२५५	२४१	२३५	२४३
र	२५८	२४४	२३८	२४६
क	२६१	२४७	२४१	२४९
ख	२६४	२५०	२४४	२५२
ग	२६७	२५३	२४७	२५५
घ	२७०	२५६	२५०	२५८
ङ	२७३	२५९	२५३	२६१
च	२७६	२६२	२५६	२६४
छ	२७९	२६५	२५९	२६७
ज	२८२	२६८	२६२	२७०
झ	२८५	२७१	२६५	२७३
झ	२८८	२७४	२६८	२७६
ट	२९१	२७७	२७१	२७९
ठ	२९४	२८०	२७४	२८२
ड	२९७	२८३	२७७	२८५
ण	३००	२८६	२८०	२८८
त	३०३	२८९	२८३	२९१
थ	३०६	२९२	२८६	२९४
द	३०९	२९५	२८९	२९७
ध	३१२	२९८	२९२	३००
न	३१५	३०१	२९५	३०३
प	३१८	३०४	२९८	३०६
फ	३२१	३०७	३०१	३०९
ब	३२४	३१०	३०४	३१२
भ	३२७	३१३	३०७	३१५
म	३३०	३१६	३१०	३१८
य	३३३	३१९	३१३	३२१
र	३३६	३२२	३१६	३२४
क	३३९	३२५	३१९	३२७
ख	३४२	३२८	३२२	३३०
ग	३४५	३३१	३२५	३३३
घ	३४८	३३४	३२८	३३६
ङ	३५१	३३७	३३१	३३९
च	३५४	३४०	३३४	३४२
छ	३५७	३४३	३३७	३४५
ज	३६०	३४६	३४०	३४८
झ	३६३	३४९	३४३	३५१
झ	३६६	३५२	३४६	३५४
ट	३६९	३५५	३४९	३५७
ठ	३७२	३५८	३५२	३६०
ड	३७५	३६१	३५५	३६३
ण	३७८	३६४	३५८	३६६
त	३८१	३६७	३६१	३६९
थ	३८४	३७०	३६४	३७२
द	३८७	३७३	३६७	३७५
ध	३९०	३७६	३७०	३७८
न	३९३	३७९	३७३	३८१
प	३९६	३८२	३७६	३८४
फ	३९९	३८५	३७९	३८७
ब	४०२	३८८	३८२	३९०
भ	४०५	३९१	३८५	३९३
म	४०८	३९४	३८८	३९६
य	४११	३९७	३९१	४००
र	४१४	४००	३९४	४०३
क	४१७	४०३	३९७	४०६
ख	४२०	४०६	४००	४०९
ग	४२३	४०९	४०३	४१२
घ	४२६	४१२	४०६	४१५
ङ	४२९	४१५	४०९	४१८
च	४३२	४१८	४१२	४२१
छ	४३५	४२१	४१५	४२४
ज	४३८	४२४	४१८	४२७
झ	४४१	४२७	४२१	४३०
झ	४४४	४३०	४२४	४३३
ट	४४७	४३३	४२७	४३६
ठ	४५०	४३६	४३०	४३९
ड	४५३	४३९	४३३	४४२
ण	४५६	४४२	४३६	४४५
त	४५९	४४५	४३९	४४८
थ	४६२	४४८	४४२	४५१
द	४६५	४५१	४४५	४५४
ध	४६८	४५४	४४८	४५७
न	४७१	४५७	४५१	४६०
प	४७४	४६०	४५४	४६३
फ	४७७	४६३	४५७	४६६
ब	४८०	४६६	४६०	४६९
भ	४८३	४६९	४६३	४७२
म	४८६	४७२	४६६	४७५
य	४८९	४७५	४६९	४७८
र	४९२	४७८	४७२	४८१
क	४९५	४८१	४७५	४८४
ख	४९८	४८४	४७८	४८७
ग	५०१	४८७	४८१	४९०
घ	५०४	४९०	४८४	४९३
ङ	५०७	४९३	४८७	४९६
च	५१०	४९६	४९०	५००
छ	५१३	४९९	४९३	५०३
ज	५१६	५०२	४९६	५०६
झ	५१९	५०५	४९९	५०९
झ	५२२	५०८	५०२	५१२
ट	५२५	५११	५०५	५१५
ठ	५२८	५१४	५०८	५१८
ड	५३१	५१७	५११	५२१
ण	५३४	५२०	५१४	५२४
त	५३७	५२३	५१७	५२७
थ	५४०	५२६	५२०	५३०
द	५४३	५२९	५२३	५३३
ध	५४६	५३२	५२६	५३६
न	५४९	५३५	५२९	५३९
प	५५२	५३८	५३२	५४२
फ	५५५	५४१	५३५	५४५
ब	५५८	५४४	५३८	५४८
भ	५६१	५४७	५४१	५५१
म	५६४	५५०	५४४	५५४
य	५६७	५५३	५४७	५५७
र	५७०	५५६	५५०	५६०
क	५७३	५५९	५५३	५६३
ख	५७६	५६२	५५६	५६६
ग	५७९	५६५	५५९	५६९
घ	५८२	५६८	५६२	५७२
ङ	५८५	५७१	५६५	५७५
च	५८८	५७४	५६८	५७८
छ	५९१	५७७	५७१	५८१
ज	५९४	५८०	५७४	५८४
झ	५९७	५८३	५७७	५८७
झ	६००	५८६	५८०	५९०
ट	६०३	५८९	५८३	५९३
ठ	६०६	५९२	५८६	५९६
ड	६०९	५९५	५८९	५९९
ण	६१२	५९८	५९२	६०२
त	६१५	६०१	५९५	६०५
थ	६१८	६०४	५९८	६०८
द	६२१	६०७	६०१	६११
ध	६२४	६१०	६०४	६१४
न	६२७	६१३	६०७	६१७
प	६३०	६१६	६१०	६२०
फ	६३३	६१९	६१३	६२३
ब	६३६	६२२	६१६	६२६
भ	६३९	६२५	६१९	६२९
म	६४२	६२८	६२२	६३२
य	६४५	६३१	६२५	६३५
र	६४८	६३४	६२८	६३८
क	६५१	६३७	६३१	६४१
ख	६५४	६४०	६३४	६४४
ग	६५७	६४३	६३७	६४७
घ	६६०	६४६	६४०	६५०
ङ	६६३	६४९	६४३	६५३
च	६६६	६५२	६४६	६५६
छ	६६९	६५५	६४९	६५९
ज	६७२	६५८	६५२	६६२
झ	६७५	६६१	६५५	६६५
झ	६७८	६६४	६५८	६६८
ट	६८१	६६७	६६१	६७१
ठ	६८४	६७०	६६४	६७४
ड	६८७	६७३	६६७	६७७
ण	६९०	६७६	६७०	६८०
त	६९३	६७९	६७३	६८३
थ	६९६	६८२	६७६	६८६
द	६९९	६८५	६७९	६८९
ध	७०२	६८८	६८२	६९२
न	७०५	६९१	६	



५०५

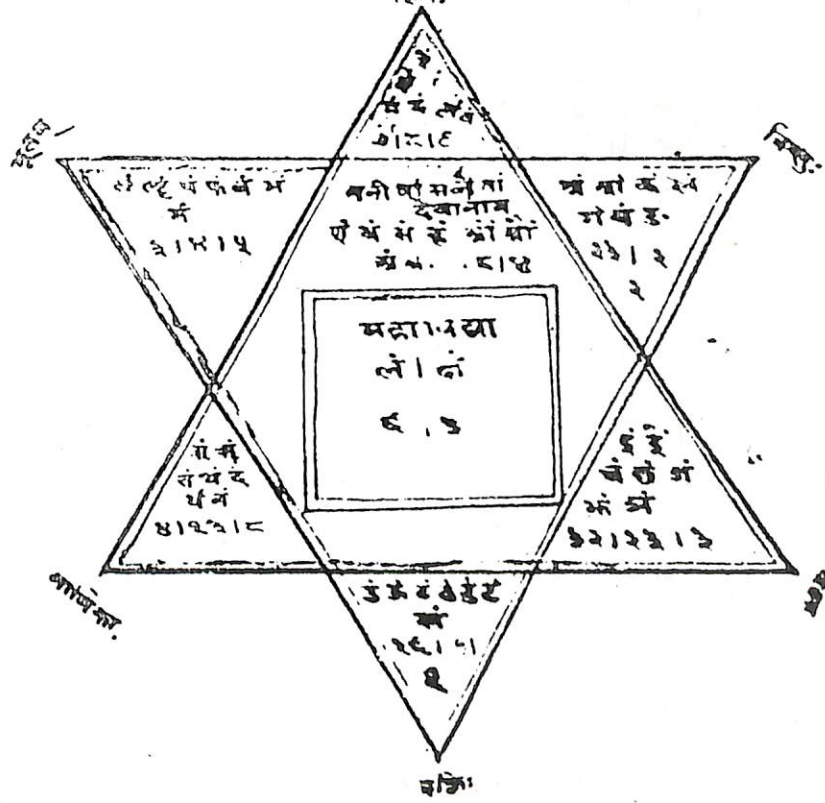


•X 1234567890

सूर्यामलनन्त्रम्

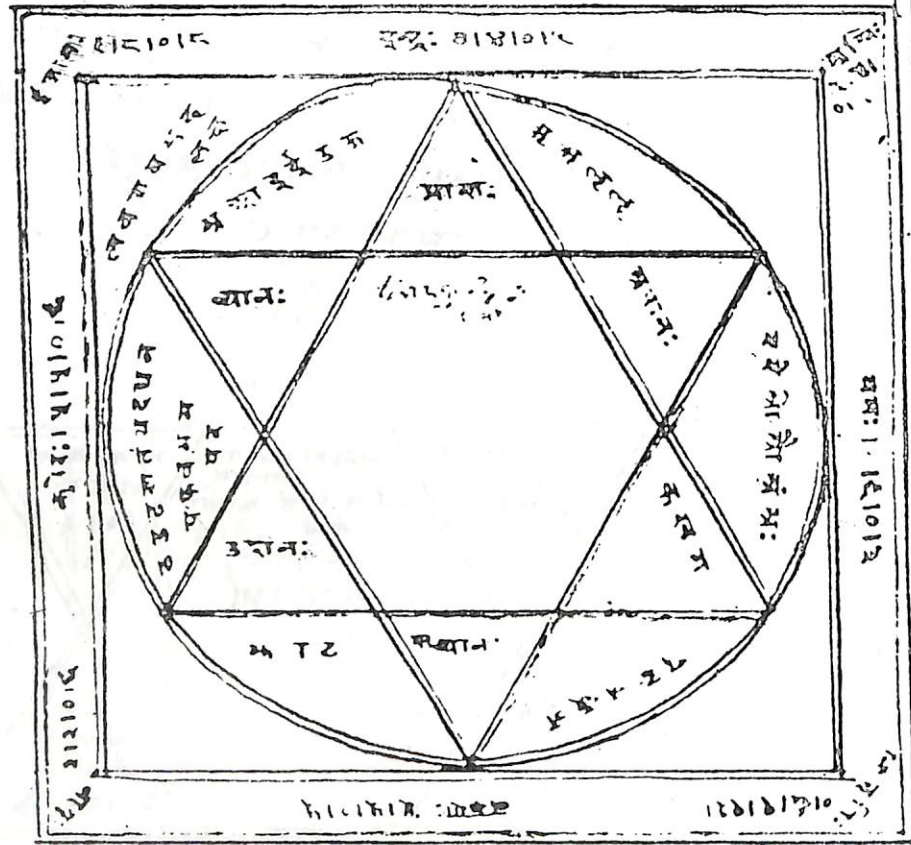
अक्षं अक्षरं या ह्यं साभक्तस्य सुखावहम् ।
 न ग्राह्यं साध्यं विस्तीर्णं निशास्त्रार्थनिष्ठम् ।
 विद्याशक्तस्य चक्रस्य राजत्वं लभते श्रुतम् ।
 राजानाङ्गं न गृहीयात् शून्याङ्गं न ज्ञेयेदिह ।
 अक्षं ध्यायेच्चक्रं गोपनीयं सुरासुरैः ।

शिवचक्रम् (७)



रुद्रयामल तन्त्रम्

(विष्णुचक्रम्)
(८)



महा गौरव्युत्तम ।

सद्यवध्यामि चक्रं चक्रं यैव साधयम् ।

येन हीना नास्यन्ति महावधावरप्रदा ।

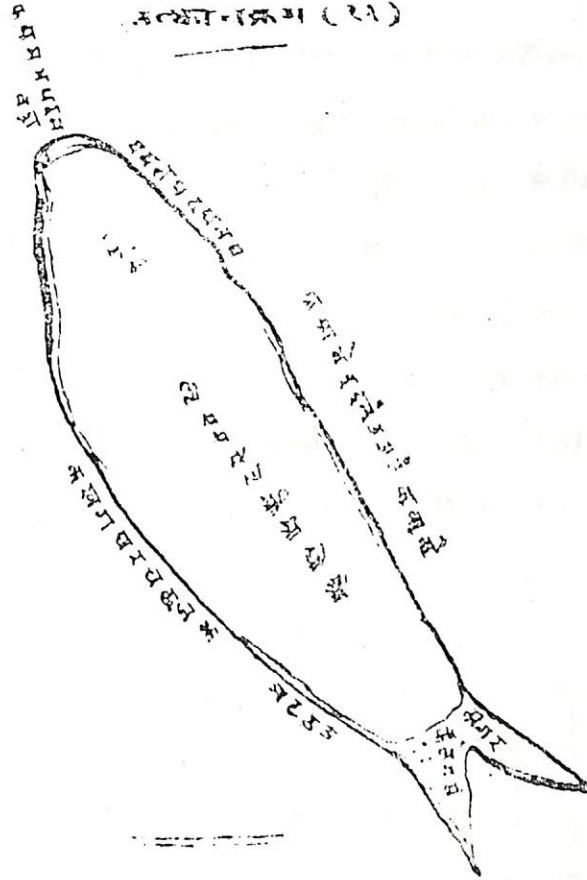
अक्षरक्रम । (८)

व. अ. १	वा. ८ । १३ । १६ । १८ । १९ वृत्तसंज्ञकनक्षत्राणि मेषः ३५ । म. ३५ ।	१ । ५ । १६ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ म. ३६ । म. ३६ । म. ३६ । म. ३६ ।	३६ ५६
व. म. २	क. ८ । म. ३६ । प. ३५ वृत्त.	ख. ८ । म. ३६ । प. ३५ वृत्त.	३६ ५६
व. म. ३	प. ३५ । त. ३५ । म. ३५ वृत्त.	ग. ८ । म. ३६ । प. ३५ वृत्त.	३६ ५६
व. म. ४	ग. ८ । म. ३६ । प. ३५ । त. ३५ म. ३६ । म. ३६ । म. ३६ । म. ३६ ।	३६ । म. ३६ । म. ३६ । म. ३६ ।	३६ ५६

सदैवो अक्षरवर्णकं तद्वतो क्षोड्गं अक्षरम् ।
 पूरकाक्षाः तले लिख्या इन्द्राक्षरश्च दक्षतः ।
 इन्द्रगेहे च शतकं विधिविद्याफलप्रदम् ।
 धर्मगेहे पुण्यसप्तयुगलं विलिखेदुधः ।
 अनन्तमन्त्रिदेनाथ पुण्याष्टवसुदेवच ।
 कालीगेहे पुण्यवेदसामाङ्गं विलिखेत्ततः ।
 भूमावतीमन्त्रिदेव पुण्यखेसु निशापतिम् ।
 इन्द्रोद्वतो लिख्या अक्षरश्चादिदेवताः ।
 पुण्यवर्णं चन्द्रयुक्तं सर्वत्र दक्षतो लिखेत् ।

ततोऽन्यदेव यत्कानां शक्तिवृत्तिप्रदं वृत्ताम् ।

कल्याण-वृत्तम् (२१)



अथ वक्ष्ये महादेव चक्रसारं सुदुर्लभम् ।

बालाचक्रं महाविद्या सर्वभक्तिरमेव च ।

सर्वसिद्धिप्रदं यन्त्रं निजनामस्वयाश्रयेत् ।

तदैव सिद्धिमाप्नोति बालं बालमहेश्वर ।

रुद्रयामलतन्त्रम्

येषां भवति काविद्या सदा तिष्ठति भावने ।
 तामाश्रित्य नपे द्विज्ञान तदा सिध्यति विधितम् ।
 स्वनामदेवता नाम पूजयेत् षोडशाक्षरैः ।
 हरेक्षित्वा हरेस्त्वेव चाक्षरेण साधकोत्तमः ।
 हुतशेषं बहुतवं शुभं देवस्य निश्चितम् ।
 अल्पाक्षं साधकस्यापि सौख्यमेव व संशयः ।
 उक्तक्रमेण गणयेत् साधकः स्थिरमानसः ।
 महाविद्यानायिकादि यत्तुभूतादि साधने ।
 सम्प्रोक्तं चक्रसारञ्च सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
 शतचक्रविचारेण सिद्धिमाप्नोति साधकः ।

(२२)

सू.	सं.	मौ.	श्री	ये	य	॥	ॐ	सू.	पु.	ऊ.	उ.	इ.	इ.	आ	अ
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३
२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६
२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८
२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९	२९
३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०

। अल्पादेवक्रमः ॥

अन्नदामंगल ग्रन्थ में वर्णित शक्तिपीठस्थल

ईश्वर उवाच।

मातः परात्परे देवि सर्वज्ञानमयौश्वरि।
काथ्यतां में सर्वपीठशक्तिभैरवदेवताः ॥१॥

देव्युवाच।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि दयाल भक्तवत्सल।
याभिर्विना न सिध्यन्ति जयसाधनसत्क्रियाः ॥२॥
पञ्चाशदेकपौठानि एवं भैरवदेवताः।
च्छङ्गप्रत्यङ्गयातेन विषाचक्रक्षतेन च ॥३॥
ममादावपुषो देव हिताय त्वयि कथ्यते।
ब्रह्मारन्ध्रं हिङ्गुलायां भैरवो भौमलोचनः ॥४॥
कोट्टरी सा मक्षादेवी चिगुणा या दिगम्बरौ।
शर्करारे चिनेत्रं में देवौ महिषमर्दिनौ ॥५॥
क्रोधीशे भैरवस्तत्र सुगन्धायाञ्च नासिका।
देवस्त्यम्बकनामा च सुनन्दा तत्र देवता ॥६॥
काश्मीरे कण्ठदेशद्य चिनभ्येश्वरभैरवः।
महामाया भगवती गुणतीता वरप्रदा ॥७॥
ज्वालामुख्यां तथा जिह्वा देव उन्मत्तभैरवः।
अम्बिका सिंहदा देवी स्तनं जालन्धरे मम ॥८॥
भीषणे भैरवस्तत्र देवो चिपुरन्माशिनी।
हार्दपौठं वैद्यनाये वैद्यनाथस्तु भैरवः ॥९॥
देवता जयदुर्गाख्या नेपाले जानु में शिव।
कपालौ भैरवः श्रीमान् महामाया च देवता ॥१०॥
मानसे दक्षहस्तो मे देवौ दाक्षायणी हरः।
विरजा चोत्कूले ख्याता नाभिर्मे जयभैरवः ॥११॥
गगहस्यां गण्डकञ्चण्डौ जगन्नाथस्तु भैरवः।
बद्धधायां वामवाऽद्धर्बऽहलाख्या च देवता ॥१२॥
भौरवो भैरवस्तव सर्वसिद्धिप्रदायकः।
उज्जयिन्धां कूर्परञ्चमङ्गला कमिलाम्बरः ॥१३॥
चट्टले दक्षवाऽडर्मे भैरवञ्चन्द्रशेखरः।
व्यक्तरूपा भगवती भवानी तत्र देवता ॥१४॥
विशेषतः कलियुगे वसामि चन्द्रशेखरे।
त्रिपुरायां दक्षपादो देवता त्रिपुरा नलः ॥१५॥
चिस्त्रोतायां वामपादो खमरी भैरवोम्बरः।
योनिपीठं कामरूपे कामाख्या तत्र देवता ॥१६॥
यत्रास्ते त्रिगुणतीता व्यक्ता पाषाणरूपिनी।
यत्रास्ते माधवः माक्षाच्छिवानन्दोऽथ भैरवः ॥१७॥

तत्र श्रोभैरवो देवी तत्र च क्षेत्रदेवता।
प्रचण्डचण्डिका तत्र मतङ्गो त्रिपुराम्बिका ॥१८॥
बगला कमला तत्र भुवनेशे सधूमिनी।
एतानि दशापीठानि शंसन्ति दशभैरवाः ॥१९॥
क्षीरग्रामे महादेव भैरवः क्षीरकण्टकः।
युगाद्या सा महाकाया दक्षाङ्गुष्ठं पदो मम ॥२०॥
नकुलीषः कालीपीठे दक्षपादाङ्गुलीषु मे।
अङ्गुलीषु च हन्तस्य प्रयागे ललिता भवः ॥२१॥
जयन्त्यां वामनङ्गा च जयन्ती क्रमदीश्वरः।
भुवनेशी निडिरूयः किरोटाख्ये किरीटकः ॥२२॥
कन्याश्रमे च पृष्ठं मे निमिधो भैरवस्तथा
सर्वाङ्गी देवता तत्र कुरुक्षेत्रे च गुल्फतः ॥२३॥
स्थाणुर्नासा च सावित्री देवता मणिवेदके।
मणिबन्धे च गायत्री सर्वान्दस्तु भैरवः ॥२४॥
श्री हट्टे च मम ग्रीवा महालक्ष्मीस्तु देवता।
भैरवः सम्बरानन्दो देशे देशे व्यवस्थितः ॥२५॥
काञ्चीदेशे च कङ्कालो भैरवो रुरुनामकः।
देवता देवगर्भाख्या नितम्बः कालमाधवे ॥२६॥
भैरवोऽवामिताद्रश्च देवी काली समिहिदा।
दृष्टा दृष्टा नमस्कृत्य मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२७॥
शोणाख्या मद्रसेनस्तु नर्मदाख्ये नितम्बकः।
रामगिरौ स्तनान्धञ्च शिवानी चण्डभैरवः ॥२८॥
उमावने केशजालं भूतेशः परभैरवः।
संहाराख्य ऊर्ध्वदन्तेऽनले नारायणी शुचौ ॥२९॥
अधोदन्ते महारूद्रो वाराहो पञ्चसागरे।
करतोयातटे कर्णे वामे वामनभैरवः ॥३०॥
अपर्णा देवता तत्र ब्रह्मरूपाकरोद्भवा।
श्रीयर्वते दक्षकर्णस्तत्र श्रीसुन्दी परा ॥३१॥
सर्वसिद्धीश्वरी देवी सुन्दरा नन्दभैरवः।
कपाली च भीमरूपा वामगुल्फो विभाषके ॥३२॥
अधरञ्च प्रभासे में चन्द्रभागा यशखिनी।
वक्रतुण्डो भैरवद्य

ओष्ठो भौरवपर्वते ॥३३॥

अवन्ती च महादेवी लम्बकर्णस्तु भैरवः।
चिवुके सामरी देवी विकृताख्यो जनस्थाने ॥३४॥

गण्डो गोदावरीतीरे विश्वेशो विश्वमातृका।
 रत्नवत्यां दक्षस्कन्धः कुमारो भैरवी शिवा ॥३५॥
 मिथिलायां महादेवी वामस्कन्धो महोदरः।
 एतास्ते कथिताः पुत्र पीठनाथाधिदेवताः ॥३६॥
 क्षेत्राधीशं विना देव पूजयेत्पीठदेवताम्।
 भैरवैर्जिह्यते सर्व जपपूजादिसाधनम् ॥३७॥

अज्ञात्वा भैरवं पीठे पीठशक्तिञ्च शङ्कर।
 प्राणनाथ न सिध्येत्तु कल्पकोटिजपादिभिः ॥३८॥
 न देयं परशिष्याय निन्दकाय दुरात्मने।
 शठाय क्रूरकार्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥३९॥
 दद्याच्छान्ताय शिष्याय मन्त्रौ मन्त्रार्थसिद्धये ॥४०॥

परिशिष्ट-११

वृहन्नील नामक बंगला ग्रन्थ में शक्ति पीठों की सूची

कामेशा कामरूपे त्वं पूर्णा काश्यां विमुक्तिदा।
 नेपाले पुण्यदा पुण्या सुवेशा पौण्ड्रवर्धने
 धर्मबुद्धिः सुधा चैव सुखदा पापमोचनी।
 पारस्ये परमानन्दा ब्रह्माधी मान्यकुनके॥
 पुण्याद्रौ च महापुण्या पूर्णा यज्ञफलेश्वरी।
 कात्यायन्यर्बुदे देवि धनदा शिववक्षभा।
 एकाचैकासके देशे सुरूपेशासकेश्वरे।
 त्रिपुरे सुन्दरौ दिव्यरूपाखिलमनोहरा॥
 कामकोटे महापीठे प्रमदा मदनक्षसा।
 कामेश्वरी रतिश्चैव भृगुपुर्थ ब्रजेश्वरी॥
 ब्रह्मेशा च तपोलक्षीः कैलासे भुवनेश्वरी।
 केदारे वरदा चैवासृता चन्द्रपुरे मिता॥
 कलावती प्रभेशा च श्रीपुर श्रीरमा प्रिया।
 बुमारो ब्रह्मचर्या च कन्या च कन्यकापुरे॥
 जालन्धरे महापीठे नामर्याग्रिमुखी शुभा।
 ज्वालामुखौ लोलजिह्वा सुदेशा च सुरङ्गिणौ॥
 मालवे च महाविद्या विल्वपीठे च रूपिणी।
 रूपवती महादेवी देवीकोटेऽक्षिलेश्वरी॥
 गोकर्णे प्रियपीठे त्वं रुद्राणी सर्वमङ्गला।
 पवने हरपीठे च गन्धश्रीथ सुगन्धिका।
 अट्टहासे महापीठे भीमकाली च कालिका।
 विरजे मुक्तिचेतुश्च नमःखस्ताखधामयी॥
 नयश्रीराजलक्ष्मीय सुवेशा राजपर्वते।
 एलापुरे महासम्पत् माहेश्वरी महापथे॥

गायत्री ब्रह्मरूपा च वत्सदोङ्गारपीठके।
 नया जयपुरे देवी जयदा जयमङ्गला॥
 विजया मङ्गला गौरी उज्जयन्यां सदाशिवा।
 गौरीश्वरो महादेवी हरिद्रापोहके शिवा॥
 क्षीरपीठे युगाद्या च चीराख्या नियमप्रभा।
 राजेश्वरी महालक्ष्मीर्हस्तिनापुरवासिनी॥
 कमला विमला भक्ती रौद्री च भीमपर्वते।
 यागेश्वरी त्रिवेणी च चिखोना ब्रह्मरूपिणी॥
 सिन्धुम्यली कामधेनु षष्ठी षष्ठीपुरे प्रिये।
 माया मायापुरे देवी सुरभी सौरभेश्वरी॥
 विलासिनी महानन्दा प्रियचन्दनपर्वते।
 महाब्रजेश्वरी श्रेष्ठा शमनेश्वर पीठके॥
 भवानी भवभक्ता च वीमैले शिववक्षभा।
 देवता या स्वर्गलक्ष्मीः कनकामरपर्वते॥
 उमा गौरी सती सत्या पार्वती हिमपर्वते।
 इन्द्रेश्वरी सुराराध्या माहेन्द्रे जगदीश्वरी॥
 चल्ला भोगेश्वरी नित्या श्रीमहलिपुरे शिवा।
 सुवर्णा कनका रामा हिरणपुरपीठके॥
 महालक्ष्मीर्महेशानी महालक्ष्मीपुरेऽमिबका।
 चण्डपुरे प्रचण्डा च चण्डा चण्डवती शिवा॥
 छत्रे मेघस्वना चैव मायाश्चेश्वरी (छाया?) तथा।
 कालीघट्टे महापीठे काली कालात्मिका तथा॥
 लिङ्गाखधे भैरवी विद्या विजया जाकवीतटे।
 इति ते कथिनं दिव्यं पीठक्रममुदाहृतम्॥

पीठनिर्णय (महापीठ निरूपणम्) के शक्ति पीठ स्थल

ईश्वर उवाच।

मातः परात्परे देवि सर्वज्ञानमयीश्वरि।
कथ्यतां मे सर्वपीठशक्तिभैरवदेवताः ॥१॥

देव्युवाच।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि दयाल भक्तवत्सल।
यरभिर्विना न सिध्यन्ति जयसाधनसत्क्रियाः ॥२॥
पञ्चाशदेकयीठानि एवं भैरवदेवताः।
अङ्गप्रत्यङ्गयातेन विष्णुचक्रक्षतेन च।
ममाद्यवयुषो देव हिताय त्वयि कथ्यते ॥३॥
ब्रह्मरन्ध्रं हिङ्गुलायां भैरवो भीमलोचनः।
कोट्टरी सा महादेव त्रिगुणा या दिगम्बरौ ॥४॥
करवीरे त्रिनेत्रं मे देवी महिषमर्दिनी।
क्रोधोशो भैरवस्तत्र
सुगन्धायाञ्च नासिका ॥५॥
देवख्यम्बकनामा च सुनन्दा तत्र देवता ॥६॥
काश्मीरे कण्ठेदशञ्च त्रिसन्ध्येश्वरभैरवः।
महामाया भगवती गुणतीता वरप्रदा ॥७॥
ज्वालामुख्यां तथा जिह्वा देव उन्नतभैरवः।
अम्बिका सिद्धिदा नास्रौ (देवी)
स्तनं जालन्धरे मम ॥८॥
भीषणो भैरवस्तत्र देवी त्रिपुरमालिनी ॥९॥
हार्दपीठं वैद्यनाथे वैद्यनाथस्तु भैरवः।
देवता जयदुर्गाख्या नेपाले जानु मे शिव ॥१०॥
कपाली भैरवः श्रीमान् महामाया च देवता ॥११॥
मानसे दक्षहस्तो मे देवी दक्षायणी हर (हरः)।
(अमरो भैरवस्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकः) ॥१२॥
(उत्कले नाभिदेशञ्च विरजाक्षेत्रमुच्यते)।
विमला सा महादेवी जगन्नाथस्तु भैरवः ॥१३॥
गण्डक्यां गण्डपातश्च तत्र सिद्धिर्न संशयः।
तत्र सा गण्डकी चण्डी चक्रपाणिक्तु भैरवः ॥१४॥
बद्धकयां वामबाडडर्बडलाख्य च देवता।
भीरूको भैरवस्त्र सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥१५॥
उज्जयिन्धां कूर्परञ्च माङ्गल्य-कपिलाम्बरः (मङ्गला कपिलाम्बरः) ॥
(भैरवः सिद्धिदः साक्षाद्देवी मङ्गलचण्डिका) ॥१६॥
चट्टले दक्षबाडडर्मे भैरवश्चन्द्रशेखरः।
व्यक्तरूपा भगवती भवानी यत्र देवता।

विशेषतः कलियुगे वसामि चन्द्रशेखरे ॥१७॥
त्रिपुरायां दक्षपादो देवी त्रिपुरसुन्दरी (देवता त्रिपुरा नलः)।
(भैरवस्त्रिपुरेशश्च सर्वाभीष्टप्रदायकः) ॥१८॥
त्रिस्तोतायां वामपादो भ्राभरी भैरवेश्वरः ॥१९॥
योनिपीठं कामगिरौ कामाख्या तत्र देवता।
यत्रास्ते त्रिगुणतीता रक्तपाधारूपिणी ॥२०॥
यत्रास्ते माधवः साक्षादुआनन्दोऽथ भैरवः।
सर्वदा विहरेद्देवी तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥२१॥
तत्र श्रीभैरवी देवी तत्र च क्षेत्रदेवता।
प्रचण्डचण्डिका तत्र मातङ्गी त्रिपुराम्बिका।
वगला कमला तत्र भुवनेशी सधूमिनी ॥२२॥
एतानि परपीठानि शंसन्ति वरभैरवाः।
(एवं तु देवताः सर्वा एवं तु दश भैरवा ॥२३॥
सर्वत्र विरला चाहं कामरूपे गृहे गृहे।
गौरीशिखरमारुह्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥२४॥
करतोयां समारभ्य यावदित्तरवासिनीम्।
शतयोजनविस्तीर्णं त्रिकोणं सर्वसिद्धिदम्।
देवा मरणमिच्छन्ति किं पुनर्मानवादयः ॥२५॥
भूतधात्रौ (क्षीरग्रामे) महामाया (देव) भैरवः क्षीरखण्डकः।
युगाद्या सा महामाया दक्षाङ्गुष्ठं पदो मम ॥२६॥
नकुलीशः कालीपीठे दक्षपादाङ्गुली च मे।
(सर्वसिद्धिकरी देवी कालिका तत्र देवता) ॥२७॥
अङ्गुलीवृन्दं हस्तस्य प्रयागे ललिता भवः।
जयन्त्यां वामजङ्घा च जयन्ती क्रमदीश्वरः ॥२८॥
भुवनेशी सिद्धिरूपा (सिद्धरूपः) किरीटस्था किरीटतः
(किरीटाख्ये किरीटकः)
(देवता विमला नामनी संवर्तो भैरवस्तथा) ॥२९॥
(वाराणस्यां विशालाक्षी देवता कालभैरवः।
मणिकर्णैति विख्याता कुण्डलं च मम श्रुतेः ॥३०॥
कन्याश्रमे च पृष्ठं मे निमिषो भैरवस्तथा)।
सर्वाणी देवता तत्र कुरुक्षेत्रे च गुल्फतः ॥३१॥
स्थाणुर्नास्ना च सावित्री देवता
मणिवेदके।
मणिबन्धे च गायत्री सर्वानन्दस्तु भैरवः ॥३२॥
श्रीशैले (श्रीहट्टे) च मम ग्रीवा महालक्ष्मीस्तु देवता।
भैरवः सम्बरानन्दो देशे देशे व्यवस्थितः ॥३३॥

काञ्चीदेशे च कङ्कालो भैरवो रुरुनामकः।
देवता देवगर्भाख्या

नितम्बः कालमाधवे ॥३४॥

भैरवश्चासिताङ्गश्च देवी काली सुसिद्धिदा।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा नमस्कृत्य मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३५॥

(कुजवारे भूततिथौ निशाङ्गे यस्तु साधकः।

नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात् ॥३६॥)

शोणाख्या भद्रसेनस्तु नर्मदाख्ये नितम्बकः।

रामगिरौ स्तनान्यञ्च शिवानी चण्डभैरवः ॥३७॥

(वृन्दावने केशजालमुमा नामनी च देवता)।

(भूतेशो भैरवस्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकः) ॥३८॥

संहाराख्य ऊर्ध्वदन्तो देवी (ऽनले) नारायणी शुचौ।

अधोदन्तो महारुद्रो वाराही यञ्चसागरे ॥३९॥

करतोयातटे तल्पं (कर्णे) वामे वामनभैरवः।

अपर्णा देवता यत्र ब्रह्मरूपाकरोद्भवा ॥४०॥

श्रीपर्वते दक्षगुल्फ (कर्ण) स्वत्र श्रीसुन्दरी परा।

सर्वसिद्धीश्वरी सर्वा सुन्दरानन्दभैरवः ॥४१॥

कपालिनी (कपाली च) भीमरूपा वामगुल्फो विभाषके।

(भैरवश्च महादेव सर्वानन्दः शुभप्रदः) ॥४२॥

उदरञ्च (अधरञ्च) प्रभासे मे चन्द्रभागा यशखिनी।

वक्रतुण्डो भैरव-

द्योद्धोष्ठो भैरवपर्वते ॥४३॥

अवन्ती च महादेवी लम्बकर्णस्तु भैरवः ॥४४॥

चिवुके भ्रामरी देवी विकृताक्षो जले स्थले (जनस्थाने)।

गण्डो गोदावरीतीरे विश्वेशी (विश्वेशो) विश्वमाटका ॥४५॥

(दण्डपाणिभैरवस्तु वामगण्डे तु राकिणी।

भैरवो वत्सनाभस्तु तत्र सिद्धिर्न संशयः ॥४६॥)

रत्नावाल्यां (रत्नवत्यां) दक्षस्कन्धः कुमारी भैरवः शिवः।

मिथिलायामुमा देवी वामस्कन्धो महोदरः ॥४७॥

(नलाहार्था नलापातो योगीशो भैरवस्तथा।

तत्र सा कालिका देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका ॥४८॥

कालीघटे मुण्डपातः क्रोधीशो भैरवस्तथा।

देवता जयदुर्गाख्या नानायोगप्रदायिनी ॥४९॥

वक्रेश्वरे मनःपातो वक्रनाथस्तु भैरवः।

नदी पापहरा तत्र देवी महिषमर्दिनी ॥५०॥

यशोरे पाणिपद्मञ्च देवता यशोरेश्वरी।

चण्डञ्च भैरवो यत्र तत्र सिद्धिर्न संशयः ॥५१॥

अट्टहासे चोष्ठपातो देवी सा पुल्लरा स्मृता।

विश्वेशो भैरवस्तत्र सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥५२॥

हारपाती नन्दिपुरे भैरवो नन्दिकेश्वरः।

नन्दिनी सा महादेवी तत्र सिद्धिमवाप्नुयात् ॥५३॥

लङ्कायां नूपुरञ्चैव भैरवो राक्षसेश्वरः।

इन्द्राक्षी देवता तत्र इन्द्रेणोपासिता पुरा ॥५४॥

विराटदेशमध्ये तु पादाङ्गुलिनिपातनम्

भैरवश्चमृताश्वयश्च देवी तत्राम्बिका स्मृता ॥५५॥

एतास्ते कथिताः पुत्र पीठनाथाधिदेवताः।

क्षेत्राधियं विना देव पूजयेत् पीठदेवताम्।

भैरवैर्जिह्यते सर्वं जयपूजादिसाधनम् ॥५६॥

अज्ञात्वा भैरवं पीठे पीठेशक्तिञ्च शङ्कर।

प्राणनाथ न सिध्येतु कल्पकोटिजपादिभिः ॥५७॥

न देयं प्ररशिष्याय निन्दकाय दुरात्मने।

शठाय क्रूरकार्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्।

दद्याच्छान्ताय शिष्याय मन्त्री मन्त्रार्थसिद्धये ॥५८॥

परिशिष्ट-१३

पीठ निर्णय का संशोधित स्वरूप

श्रीशिव उवाच।

षट्कर्मसाधनं देवि कस्मिन् स्थाने प्रशस्तकम्।

मातः परावरे नित्ये सर्वज्ञानमहेश्वरि॥

कथ्यतां मे सर्वपीठं तथा षट्कर्मसाधनम्।

शक्तिभैरवदेव्यश्च साधूनां हितकाम्यया॥

श्रीदेव्युवाच।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि दयाल भक्तवत्सल।

यानि विना न सिध्यन्ति जयसाधनसत्क्रियाः॥

पञ्चाशदेकपीठानि चैवं भैरवदेवताः।

प्रधानं पीठकं देव तथा भैरवदेवताः॥

यत्र साधनं प्रशस्तं तथा षट्कर्म भैरव॥

गङ्गाद्याः सततं सर्वाः समुद्राश्च तथा नदाः।

सर्वतीर्थानि सर्वत्र ममाङ्गे शृणु भैरव॥

अङ्गप्रत्यङ्गपातेन विष्णुचक्रक्षतेन च।

ममास्य वपुषो देव हिताय च नृणां शृणु॥

ब्रह्मरन्ध्रं हिङ्गुलायां भैरवो भीमलोचनः।

कुटवी सा महाकाली त्रिगुणा या दिगम्बरी॥
 शङ्कर्यां दक्षनेत्रं मे देवी महिषमर्दिनी॥
 क्रोधीशो भैरवस्तत्र सुगन्धनामकाननः॥
 ताराद्यायां वामनेत्रं ताराख्या तारिणी परा॥
 उन्मत्तो भैरवस्तत्र सर्वलक्षणसंयुतः॥
 मानसे दक्षहस्तो मे तत्र दाक्षायणी हरः॥
 विजये उत्कले ख्याते नाभिर्मे अम्बभैरवः॥
 सोऽयश्च सिद्धिदः साक्षाद् देवी मङ्गलचण्डिका॥
 सदनं दक्षकूर्प (?) मे भैरवश्चण्डसंज्ञकः॥
 व्यक्तरूपा भगवती भवानी यत्र देवता॥
 सुगन्ध (?) नासिका यत्र देवस्त्यम्बकभैरवः॥
 आनन्दा देवता तत्र सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥
 काश्मीरे कण्ठदेशश्च त्रिसन्ध्येश्वरभैरवः॥
 महामाया भगवती गुणातीता वरप्रदा॥
 ज्वालामुख्यां तथा जिह्वा भैरवो वटकेश्वरः॥
 अम्बिका सिद्धिदा नाम्नी स्तने जालन्धरे मम॥
 भीषणो भैरवस्तत्र देवी त्रिपुरमालिनी॥
 वामस्तनं वक्त्रेश्वरे भैरवश्चन्द्रशेखरः॥
 देवता भैरवी तत्र सर्वपीठेषु नायिका॥
 नासा मे नवखण्डे च वैद्यनाथश्च भैरवः॥
 देवता दुर्गाख्या च मा सर्वमहिषमर्दिनी॥
 नेपाले जयदुर्गाख्या तत्र वै तालुकं शिव॥
 कपाली भैरवस्तत्र महामारी च देवता॥
 विशेषतः कलियुगे वसामि चन्द्रशेखरे॥
 त्रिपुरायां दक्षपादो देवी त्रिपुरसुन्दरी॥
 भैरवस्त्रिपुरो देवः सर्वसम्पत्प्रदायकः॥
 त्रिस्तोत्रायां वामपादो देवता भ्रामरी स्वयम्॥
 योनिपीठं कामगिरौ कामाख्या देवता स्वयम्॥
 यत्रास्ते त्रिगुणत्मिका व्यक्तपाषाणरूपिणी॥
 यत्र श्रीभैरवी देवी यत्र नक्षत्रदेवता॥
 प्रचण्डचण्डिका चैव मातङ्गी त्रिपुरात्मिका॥
 वगला कमला तत्र भवानी हरनायिका॥
 महाकाली स्वयं तत्र भद्रकाली तथापरा॥
 सर्वशक्तिः स्वयं तत्र सर्वभैरवदेवताः॥
 महाकालः स्वयं तत्र सर्वदेवसमन्वितः॥
 सर्वत्र विरला चाहं कामरूपे गृहे गृहे॥
 एतानि वरपीठानि प्रशंसन्ति च भैरवाः॥
 एषां ते देवताः सर्वास्तथा क्षेत्राधिदेवताः॥
 अङ्गुलीषु च सर्वेषु प्रयागे ललिता स्वयम्॥

कुरूक्षेत्रे तथा देवा भैरवाः पुण्यभाजनाः॥
 क्षेत्रेशी देवता तत्र सर्वपापविनाशिनी॥
 विन्ध्यशेखरमासाद्य पतिता चाङ्गुली मम॥
 सर्वेशो भैरवो नामा तत्र तिष्ठति नित्यशः॥
 जयन्त्यां वामजङ्घा मे जायन्ती कुमुदेश्वरी॥
 कोंकें कोंकेश्वरी देवी भैरवी रुरुनामकः॥
 मेखले मेखली देवी वामाङ्गुली प्रभेदतः॥
 (तत्र च भैरवश्चण्डनामकः स महाबलः)॥
 गौरीशिखरमारुह्य पुनर्जन्म न विद्यते॥
 तत्राहं भवता सार्द्धं वसामि नियतं शिव॥
 भूतधात्री महादेवी भैरवः क्षीरखण्डभाक्॥
 युगाधा सा महाविद्या विख्याता भुवनत्रये॥
 नकुलीशः कालीघटे कालिका तत्र देवता॥
 तत्र मे पतिता वत्स केशा मस्तकसंयुताः॥
 करतोयां समारज्य यावद्विकरवासिनीम्॥
 शतयोजनविस्तोर्णं योगिचक्रं महेश्वर॥
 देवा मरणमिच्छन्ति किं पुनर्मानुषादयः॥
 भुवनेशी सिद्धिरूपा किरीटाख्यायां किरीटिका॥
 देवेशो भैरवस्तत्र सर्वमङ्गलदायकः॥
 फुल्लरायामाभरणं देवता विमला च वै॥
 संवर्तो भैरवो देव सर्वदेवनमस्कृतः॥
 धाराणस्यां विशालाक्षी देवता कालभैरवः॥
 तत्र मे पतितं लिङ्ग (!) स्वयमेव सदाशिव॥
 मणिकर्णिकेति विख्याता कुण्डले च मम श्रुतेः॥
 अयोध्यायाश्च मे हारो भैरवो हरिहरात्मकः॥
 तत्र सा देवता पूर्ण महालक्ष्मीः सुखप्रदा॥
 कल्पास्तु मे (कन्याश्रमे?) कात्यायनी वामदेवश्च भैरवः॥
 तत्र मे पतितं चर्म नमीषो नाम एव च॥
 कुमारी देवता तत्र सर्वाणः सर्व भैरवः॥
 तत्र मे पतितं रोम तस्माद् भैरवदेवता॥
 स्थाननामा च सावित्री देवता मणिवेदका (वेदके?)॥
 मणिबन्धे च गायत्री सर्वानन्दश्च भैरवः॥
 श्रीशैले च मम ग्रीवा महालक्ष्मीग्रीश्च देवता॥
 भैरवः संभृतानन्दो देशे देशे व्यवस्थितः॥
 काञ्चीदेशे च कङ्काली भैरवो मदनः स्वयम्॥
 तत्र मे पतिते देव नितम्बे देववल्लभा॥
 देवता वेदगर्भाख्या माधवो भैरवः स्वयम्॥
 तत्र मे पतिता विद्या तथा च कालमाधवे॥
 भैरवः शुङ्गनामा च देवी काली सुसिद्धिदा॥

मणिद्वीपे महाबाहो पतितं से सुवत्त्रकम्।
 दृष्ट्वा स्मृत्वा महादेव मन्त्रसिद्धिमवापुनयात्॥
 कुजवारे भूततिथौ निशाद्धं यस्त साधकः।
 नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य मन्त्रसिद्धिमवापुनयात्॥
 सोमाख्ये भद्रसेनश्च तत्र भद्रा च देवता।
 वामपार्श्वे शुभाख्या च नर्तकी दण्डभैरवः॥
 उमानान्मो केशपाशो भूतेशः पूर्णभैरवः।
 संहाराख्ये चोर्द्धदन्तो देवी नारायणी शुचौ॥
 अधोदन्तो महारुद्र वाराही सप्तसागरा (सागरे ?) ॥
 करतोयातटे शूय्या तत्र वामनभैरवः॥
 अपर्णा देवता तत्र सर्वेशो भैरवः स्वयम्
 श्रीपर्वते नूपुरश्च सुन्दरी तत्र देवता।
 सुन्दरी भैरवो देव योगिनीवभ्रभुः॥
 सिद्धेश्वरी महाविद्या समुद्री भैरवः स्वयम्।
 दन्तावलीषु मे देव जाता भैरवदेवताः॥
 प्रभासे धर्मकं देव तत्र कपालिनी परा।
 भैरवः सर्वदेवश्च सर्वभैरवनायकः॥
 गोदावरीमहातीर्थे हरिहारे च विभ्यसे।
 वक्रेशो भैरवस्तत्र भैरवी देवता स्वयम्॥
 ओष्ठं वैवस्यते तीर्थे हरिता त्रिपुटा तथा।
 भैरवः सोमहन्ता च सर्वदेवी तथापरा॥
 चिवुके डामरी (भ्रामरी) देवी विकटाख्या जले स्थले॥
 गण्डे गर्गा सुपर्वा च विश्वेशी विश्वमाटका।
 दण्डपाणिभैरवश्च वामगण्डे च राकिणी॥
 शैलखण्डस्थखण्डे मे सर्वभौतिकदेवताः।
 रत्नावल्यां स्कन्धदेशः कुमारो भैरवः स्वयम्॥
 देवता च शिवा देवी भैरवश्च स्वयं शिवः॥

मिथिलायां वामदेशे उग्रदेवी महोदरी।
 सेतुबन्धे महाभीमो भैरवो देवता जया।
 लोमखण्डे च देवेशस्तैलाङ्गे (तैलङ्गे?) चण्डनयिका॥
 चण्डेशो भैरवस्तत्र नित्यं तत्र वसाम्यहम्॥
 भैरवो दीर्घदर्शो च चक्रपाणिश्च भैरवः।
 क्षेत्रवती महादेवी सर्वसम्पत्प्रदायिनी॥
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि याश्च भैरवदेवताः।
 पर्वतेषु शाशानेषु गङ्गासागरसङ्गमे॥
 वैष्णवी सा महादेवी माधवो भैरवः स्वयम्।
 महाकायो महायोगो भैरवः सर्वविप्रकृत् (हत्)॥
 कलौ नीलाचलक्षेत्रं तथा च भुवनेश्वरः।
 विमला विरजा भद्रा जगन्नाथश्च भैरवः॥
 तत्र मे परितं देव उच्छिष्टं शृणुडता तथा।
 भुवनेशो भैरवस्तत्र वसामि च ह्या सदा (त्वाया सह?)॥
 उच्छिष्टचण्डालिनी देवी सर्वपीठेश्वरी परा॥
 चक्रद्वीपे शूलपाणिर्देवता चक्रधारिणी।
 तत्र में पतितश्चास्त्रं तेन जातो महोरगः॥
 एतत्ते कथितं देव पीठनाथादिदैवतम्।
 क्षेत्राधीशं विना देव पूजयेत् पीठदेवताम्।
 भैरवीरहितं सर्वं जपसाधनकं क्रियाः (?)॥
 अज्ञात्वा भैरवं पीठं शक्तिञ्च कुलभैरवम्।
 प्राणनाथ न सिध्यन्ति कल्पकोटिजपादिभिः॥
 न देयं परशिष्याय निन्दिताय दुरात्मने।
 शठाय वञ्चकाया शु दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्॥
 देयं शिष्याय शान्ताय नैष्ठिकाय ममाज्ञया।
 एषु स्थानेषु देवेश षट्कर्मसाधनं चरेत्॥
 साधकाय कुलीनाय मन्त्री मन्त्रार्थसिद्धये।
 दधाच्चैव महादेव अन्यथा पतनं भवेत्॥

परिशिष्ट-१४

देवी के पुराणों में वर्णित १०८ नाम

वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी॥
 प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमारने ॥१॥
 मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथाम्बरे।
 गोमन्ते गोमती नाम सन्दरे कामचारिणी ॥२॥
 मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे।
 कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते ॥३॥

एकाम्रके कीर्तिमती विश्वां विश्वेश्वरे विदुः।
 पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी ॥४॥
 नन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका।
 स्थाण्वीश्वरे भवानी तु विल्वके विल्वपत्रिका ॥५॥
 श्रीशैले माधवो नाम भद्रा भद्रेश्वरे तथा।
 जया वराहशैले तु कमला कमलालये ॥६॥

रुद्रकाट्याञ्च रुद्राणी काली कालञ्जरे गिरौ।
 महालिङ्गे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी ॥७॥
 शालग्रामे महादेवी शिवलिङ्गे जलप्रिया।
 मायापुर्यां कुमारी तु सन्ताने ललिता तथा ॥८॥
 उत्पलाक्षी सहस्राक्षे कमलाक्षे महोत्पला।
 गङ्गायां मङ्गला नाम विमला पुरुषोत्तमे ॥९॥
 विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्द्धने।
 नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे भद्रसुन्दरी ॥१०॥
 विपुले विपुला नाम कल्याणी मानसाचले।
 कोटवी कोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने ॥११॥
 गोदाश्रमे त्रिसन्ध्या तु गङ्गाहारे रतिप्रिया।
 शिवकुण्डे शिवानन्दा नन्दिनी देविकातटे ॥१२॥
 रुक्मिणी हारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने।
 देवकी मथुरायान्तु पाताले परमेश्वरी ॥१३॥
 चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी।
 सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका ॥१४॥
 रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती।
 करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके ॥१५॥
 अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी।
 अभयेत्युष्णतीर्थे तु चामृता विन्ध्यकन्दरे ॥१६॥
 मारण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरे पुरे।
 छागलाण्डे प्रचण्डा तु चण्डिकामरकण्टके ॥१७॥

सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती।
 देवमाता सरस्वत्यां पारावारतटे माता ॥१८॥
 महालये महाभागा पयोष्णां पिङ्गलेश्वरी।
 सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिकेये यशस्करो ॥१९॥
 उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसङ्गमे।
 माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे ॥२०॥
 जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्ध्यपर्वते।
 देवदारुवने पुष्टिर्मेघा काश्मीरमण्डले ॥२१॥
 भीमादेवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्वस्त्रेश्वरे तथा।
 कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ॥२२॥
 शङ्खोद्गारे ध्वनिर्नाम धृतिः मिण्डारके तथा।
 काला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवकारिणी ॥२३॥
 वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा।
 औषधी चोत्तरकुरौ कुशहीपे कुशोदका ॥२४॥
 मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी।
 अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिवैश्रवणालये ॥२५॥
 गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ।
 देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती ॥२६॥
 सूर्यविम्बे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी मता।
 अरुन्धती सतीनान्तु रामासु च तिलोत्तमा।
 चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥२७॥
 एतदुद्देश्यतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम्।
 अष्टोत्तरञ्च तीर्थाणां शतमेतदुदाहृतम् ॥२८॥

परिशिष्ट-१५

विभिन्न ग्रन्थों में दक्ष प्रजापति के आख्यान का विकास

दक्षयज्ञकथामूलम्

(a) प्रथिष्ठ यस्य वीरकर्ममिष्णुदनुष्टितं नु नयो अपौहत्।
 पुनस्तदा वृहति यत् कनाया दुहितुरा अनुभूतमनर्वा।।
 मध्याबन्धात्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम्।
 मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ।।
 पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् क्षमया रेतः संजग्मानो निषिञ्चयत्।
 स्वांध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्।।

(ऋग्वेद, १०/६१।५-७)

(b) प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया
 स्यामिति। तां सम्बभूव। तद्वै देवानामाग आस य इत्थं स्वां
 दुहितरमस्माकं स्वसारं करोतीति। ते ह देवा उचुः। योऽयं देवः
 पशूनामीष्टेऽतिसंधं वा अयं चरति य इत्थं स्वां दुहितरमस्माकं

स्वसारं करोति विध्येममिति। तं रुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध। तस्य सामि
 रेतः प्रचस्कन्द। तथेन्नूनं तदास। तस्मादेतदूषिणाभ्यनूक्तम्। पिता
 यत्स्वां दुहितरमधिष्कन् क्षमया रेतः संजग्मानो निषिञ्चयति।
 तदाग्रिमरुतमित्युक्तं तस्मिंस्तद्वाख्यायते यथा तद्देवा रेतः प्राजनयन्।
 तेषां तदा देवानां क्रोधो व्यैदथ प्रजापतिमभिषज्यस्तस्य तं शल्यं
 निरकृन्तन्। स वै यज्ञ एव प्रजापतिः। ते होचुः। उपजानीत यथेदं
 नामुयासत्कनीयो हाऽडतेर्यथेदं स्यादिति। ते होचुः। भगायैनपद्दक्षिणत
 आसीनाय परिहरत तद्भगः प्राशिष्यति तद्यथाऽडतमेवं भविष्यतीति।
 तद्भगाय दक्षिणत आसीनाय पर्याजङ्गु तद्भगोऽवेक्षां चक्रे। तस्याक्षिणी
 निर्ददाह। तथेन्नूनं तदास। तस्मादाऽडरन्धो भगइति। ते होचुः नो
 न्वेवात्राशमत्पूष्णाऽएनत् परिहरतेति। तत्पूष्णे पर्याजङ्गुः। तत्पूषा प्राश।
 तस्य दतो निर्जवान। तथेन्नूनं तदास। तस्मादाऽहरदन्तकः पूषेति।

(शतपथब्राह्मण-माध्विनशाखा। १।७।४।१-७।)

(c) प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यव्यायद्विमित्यन्य आऽहरुषसमित्यन्ये।
तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैतु तं देवा अपश्यन् न कृतं वै
प्रजापतिः करोतीति। ते तमैच्छन् एनमारिव्यत्येतमन्योन्यमिन्नाविन्दन्।
तेषां या एव घोरतमासान्व व्यासस्ता एकधा समभरस्ताः संमृता एष
देवोऽभवत्तदस्यै तद्भूतवन्नाम भवति वै स योऽस्यै तदेवं नाम वेद।
तं देवा अब्रुवन्नयं वै प्रजापतिरकृतमकरिमं विध्येति। स तथेत्यब्रवीत्
स वै वो वरं वृणा इति वृणीष्वोति। स एतमेव वरमवृणीत
पशूनामाधिपत्यम्। तदस्यैतत्पशुमन्नाम पशुमान् भवति योऽस्यै तदेवं
नाम वेद। तमाभ्यायत्याविध्यत्। स विद्व ऊर्ध्व उदप्रपततमेतं मृग
इत्याचक्षते। य उ एव मृगव्याधः स उ एव स या रोहित्सा रोहिणी
य एवेषुस्त्रिकाण्डा स एवेषुस्त्रिकाण्डा। तहा इदं प्रजापते रेतः
सिक्कमधावत्तत्सरोऽभवत्। ते देवा अब्रुवन् मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति।
यदब्रुवन् मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति तन्मादुषम भवत्।

(ऐतरेयब्राह्मण। ३।३३)

(d) प्रजापतिर्वै रुदं यज्ञान्निरजत्। सोऽकामयत मेऽयमस्मा आकूति
समृद्धिर्था मत्र यज्ञान्निरमाक्षीदिति। स यज्ञमभ्यायम्याविध्य तदाविद्धं
निरकृन्तत्। तत् प्राशित्रसभवत्तदुदयकृत्तद्भगाय पर्यहरंस्तत्प्रतीक्षेत। तस्य
चक्षुः परापतत्तस्मादाङ्गरन्धो वै भग इत्यपिहतं नेच्छेद्यमिच्छति तत्
सवित्रे पर्यहरंस्तत्प्रत्यगटङ्कात् तस्य पाणी प्रतिच्छेद तस्मै हिरण्यमयौ
प्रत्यदधुस्तस्माहिरण्यपाणिरिव स्तुतस्तत् पूषो पर्यहरंस्तत् प्रात्रात्तस्य
दन्ताः परोप्यन्त तस्मादाङ्गरदन्तकः पूषा पिष्टभाजन इति। ***

(गोपथब्राह्मण। २/१)।

(E) कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षनामा प्रजापतिः।

पूर्वोक्तेन विधानेन यक्षमाणेऽन्वपद्यत।
ततस्तस्य मस्वं देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः।
गमवाय सामागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा।
ते विमानैर्महात्मानो ज्वलनार्कसमप्रभैः।
देवस्यानुमते गच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः।
अस्थिता देवता दृष्ट्वा शैलराजसुता तदा।
उवाच वचनं साध्वी देवं यशुयतिं पतिम्।
भगवन् वक्नु याक्येते देवाः शक्तपुरोगमाः।
ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशूयो मे महानयम्।

महेश्वर उवाच॥

दक्षो नाम महाभागे प्रज्ञानां पतिरुत्तमः।
हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवनैकसः॥

उमोवाच॥

यज्ञमेतं महादेव किमर्थं नाधिगच्छसि।
केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते॥

महेश्वर उवाच॥

सुरैरेव महाभागे पूर्वमेतदनुष्ठितम्।
यज्ञेषु सर्वेषु मम न भाग उपकल्पितः॥
पूर्वोपायोपपन्नेन मार्गेण वरवर्णिनि।
न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्मतः॥

उमोवाच॥

भगवन् सर्वभूतेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः।
अजय्यद्याप्यष्टयस्त्र तेजसा यशसा श्रिया॥
अनेन ते महाभाग प्रतिषेधेन भागतः।
अतीव दुःखमुत्पन्नं वेपयञ्च ममानध॥

भीष्म उवाच॥

एवमुत्तवा तु सा देवी तदा पशुपतिं पतिम्।
तुष्णीम्भूताभवद्राजन् दह्यमानेन चेतसा॥
अथ देव्या मतं ज्ञात्वा हृदगतं यञ्चिकीर्षितम्।
स समाज्ञापयामास निष्ठ त्वमिति नन्दनम्॥
ततो योगबलं कृत्वा सर्वयोगेश्वरेश्वरः।
तं यज्ञं स महातेजा भीमैरनुचरैस्तदा॥
सहसा घातयामास देवदेवः पिणकधृक्॥ ***

(महाभारत १२।२८३।१९-३३)

(f) ***केचिद्भञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे।

सद आग्नीध्रशालाञ्च तहिहारं महानसम्॥
रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तत्रैकेऽग्नीननाशयन्।
कुण्डेय्वमूत्रयन् केचिद्भिदुर्वेदिमेखलाः॥
अवाधन्त मुनीनन्ये एके पत्नीरतर्जयन्।
अपरे जगृददेवान् प्रत्यासन्नान् पलायितान्॥
भृगुं बबन्ध मणिमान् वीरभद्रः प्रजापतिम्।
चण्डेशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत्।
सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः।
तैरर्घ्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाद्रवन्॥
जुह्वतः सुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान् भवः।
भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसत् श्मश्रु दर्शयन्॥
भगस्य नेत्रे भगवान् पातितस्य रुषा भुवि।
उज्जहार सदस्योऽक्ष्ण यः शपन्तमसूसुचत्॥
पूष्णो ह्यपातयदन्तान् कलिङ्गस्य यथा बलः।
शप्यमाने गरिमणि योऽहसदर्शयन् दतः॥ ***

(भागवतपुराण १४।५।१४-२१)।

(G) *** वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्यैवोद्यतं करम्।

व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम्॥
भगस्य नेत्रे चोत्पाथ करजाग्रेण लीलया।
निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत्॥
तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया।
धर्धयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः॥
वञ्चेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाथ लीलया।
जघान मुद्भिर् पादेन मुनीनपि मुनीश्वराः॥
तथा विष्णु सगरुडं समायान्तं महाबलः।
विव्याध निशितैर्वाणैः स्तम्भयित्वा सुदर्शनम्॥ ***

(कूर्मपुराण ११।१५।६०-६४)।

देवी प्रतिमा लक्षण-विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित

(१) पौराणिक साहित्य

(१) अग्नि पुराण

चण्डी विंशतिबाहुः स्याद्विभ्रती दक्षिणैः करैः।
शूलासिञ्चितचक्राणि पाशखेटा युधाभवम्॥
डमरु शक्तिकां वामेर्नागपाशं च खेटकम्।
कुठारांकुशपाशाश्च घण्टायुधगदा स्तथा॥
आदर्श मुद्गरान्हस्तैश्चण्डी वा दशबाहुका।
तदधो महिषश्छिन्नमूर्ध्ना पातितमस्तकः॥
शस्त्रोद्धतकरः क्रुद्धस्तदग्रीवासंभवः पुमान्।
शूलहस्तो वमद्रक्तो रक्तस्रग्मूर्धजेक्षणः॥
सिंहेनास्वाद्यमानस्तु पाशबद्धो गले भृशम्।
याम्याङ् ध्रुवाक्रान्तसिंहा च सब्याङ् घ्निनीचंगासुरे
चण्डिकेयं त्रिनेत्रा च सशस्त्रा रिपुमर्दिनी।
नवपद्मात्मके स्थाने पूज्या दुर्गा स्वमूर्तिर्ततः॥
आदौ मध्ये तथेन्द्रा नवतवात्मभिः क्रमात्।
अष्टादशभुजैका तु दक्षे मुण्डे च खेटकम्॥
द्विबाहवो लोकपाला विश्वकर्मा क्षसूत्रभृत्।
हनूमान्वज्रहस्तः स्यात्पद्भ्यां संपीडितासुरा॥
वीणाहस्ताः किनराः स्यार्मुलाविधाधराश्च स्वे।
दुर्बलांगाः पिशाचाः स्युर्वेताला विकृताननाः
क्षेत्रपालाः शूलवन्तः प्रेता महोदराः कृशाः॥

(२) कालिका पुराण

जटाजूट समायुक्तामर्द्धेन्दु कृत शेखराम्।
लोचनत्रय संयुक्तां पुष्पेन्दु सदृशाननाम्॥
तप्तकांचन वर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्।
नवयौवन सम्पन्नां सर्वाभरण भूषिताम्॥
सुचारु दर्शनां तीक्ष्णां पीनोन्नत पयोधराम्।
खिन्नभंगस्थान संस्थानां महिषासुरमर्दिनीम्॥
मृणालायत संस्पर्श दशबाहु समन्विताम्।
त्रिशूलं दक्षिणे देयं खड्गं चक्र क्रमादयः॥
तीक्ष्णवाणं तथा शक्ति बाहु सधोषु सङ्गताम्।
खेटकं पूर्णचापं च पाशं चाङ्कुशमूर्धतः॥
घण्टां च परशुं चापि वामेऽधः प्रतियोजयेत्।
अधस्तान्महिष तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥
शिरश्छेदोद्भवं तद्वददानवं खड्गं पार्णिनम्।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्र विभूषितम्॥

रक्त रक्तीकृताङ्गं च रक्त विस्फुरितेक्षणम्।
वेष्टितं नाग पाशेन भृकुटि कुटिलाननम्॥
सपाशं वाम हस्तेन धूत केशं च दुर्गया।
वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्या सिंह प्रदर्शयेत्॥
देव्यास्तु दक्षिण पाद सम सिंहोपरि स्थितम्
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि॥

(३) देवी भागवत पुराण

अष्टादश भुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नां वरायुधधरां शुभाम्॥
सिंहासुद्धां युधधरा चाष्टादशं करां वरा॥

(४) भविष्यत्पुराण

अष्टादशभुजैका तु पीनवक्षोरुहोरुहा।
सर्वालङ्कारसंयुक्ता सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥
मूर्धजं खेटकं घण्टासादर्शं तर्जनीं धनुः।
ध्वज डमरुक पाशं बिभ्रती वामपाणिभिः॥
शक्तिमुद्गरशूलानि वज्रं शङ्खमथाङ्कुशम्॥
शलाकां मार्गणं चक्र दधाना दक्षिणैः करैः॥
जयमिच्छद्भिरित्येताः पूजनीया महात्मभिः॥
शेषाष्णोडशहस्ताश्च शलाकां मार्गणं बिना॥
रुद्राचण्डा प्रचण्डा च चण्डीग्रा चण्डनायिका।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका॥
नवमी चीग्रचण्डा च मध्यस्था वह्निस्निभा।
रोचनाभारुणा कृष्णा नीला शुक्ला च धूम्रिका॥
पीता च पाण्डुरा ज्ञेया आलीढस्था हरिस्थिता।
महिषस्था सशस्त्रीका दैत्यमूधजमुष्टिका॥
पद्ममाकृतिरथस्थाप्या इत्युक्तं स्कन्दयामले॥

(५) मत्स्य पुराण

लोचनत्रयसम्पन्नां पद्मेन्दुसदृशाननाम्।
अतसीपुष्पसंकाशां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्॥
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्।
सुचारुदर्शनान्तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम्॥
त्रिभंगस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम्।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं तथैवच॥
तीक्ष्णबाणं तथाशक्ति वामतोऽपिनिबोधत।
खेटकं पूर्णचापं च पाशमङ्कुशमेव च॥
घण्टां वा परशुं चापि वामतः सन्निवेशयेत्॥

अधस्तान्महिषन्तद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥
 शिरच्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्ग पाणिनम्।
 रक्तरक्तीकृतागं च रक्ता विस्फारतेक्षणम्॥
 वेष्टितं नागपाशेन भृकुटी भीषणाननम्।
 वमद्गुधिरवक्त्रं च दव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्॥
 देवयास्तु दक्षिण पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
 किञ्चिद्दूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि॥
 स्तूयमानं च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्॥

(६) वामन पुराण

तस्माच्च जाता तरलायताक्षी, कात्यायनी योग विशुद्ध देहा॥
 माहेश्वराद् वक्त्रमथोवभूव नेत्रत्रयं पावक तेजसा च।
 याम्येन केशा हरितेजसा च, भुजास्तथाष्टादश प्रजज्ञिरे॥
 सौम्यं युग्मं स्तनयोः सुसंहतं मध्यं तथैन्द्रेण च तेजसा भवत्॥
 ऊरु जंघे च नितम्बसंयुते जाते जलेशस्य तु तेजसाहि॥

(७) मार्कण्डेय पुराण

अक्षम्रक् परशुं गदेषु कुलिशं पद्म धनुष्कुण्डिकां।
 दण्ड शक्तिमसिंच चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
 शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननाम्।
 सेवे सैरिभमर्दिनीमहिं महालक्ष्मी सुरोजस्थिताम्॥

(८) विष्णुधर्मोत्तर

निगद्यते ह्यथो चण्डी हेमाभा सा सुरुषिणी।
 त्रिनेत्रा यौवनस्था च क्रुद्धा चोर्ध्वस्थिता मता॥
 कृश्मध्या विशालाक्षी चारुपीनपयोधरा।
 एकवक्त्रा तु सुग्रीवा बाहुविंशतिसंयुता॥
 शूलासिशङ्खचक्राणि बाणशक्तिपवीनपि।
 अभयं डमरुं चैव छत्रिकां दक्षिणे करे॥
 ऊर्ध्वादिक्रमयोगेन विभ्रती सा सदा शुभा।
 नागं पाशं तथा खेटं कुठाराङ्कुशकार्मुकम्॥
 घण्टाध्वजगदादर्श मुद्गर वाम एव च।
 तदधो महिषश्छिन्नमूर्धा पतितमस्तकः॥
 शस्त्रोद्यतकरस्तब्धस्तद्ग्रीवासंभवः पुमान्।
 शूलभिन्नो वमद्रवक्तो रक्तभ्रूमूर्धजेक्षणः॥
 सिंहेन खाद्यमानश्च पाशवद्धो गले भृशम्।
 याम्याङ्ध्र्याक्रान्तसिंहा च सव्याङ्ध्रुरालीढगासुरे॥
 चण्डी चोद्यतशस्त्रेय त्राशेषरिपुनाशिनी॥

(९) वराह पुराण

ततस्तेषां त्रिधा दृष्टिर्भूत्वैका समजायत।
 तस्याः दृष्ट्या समुत्पन्ना कुमारी दिव्य रूपिणी॥
 नीलोत्पलदल श्यामा नीलक चितमूर्द्धजा॥

सुनासा यदग्निजिहवं लक्षणं परिभाषितम्।
 तत्सर्वमेकतः संस्थं कन्यायां सप्रदृशते॥

२. अन्य साहित्य

(१) मयदीपिका

कात्यायिन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा।
 त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम्॥
 जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतलक्षणाम्।
 लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसद्रशाननाम्॥
 अतसीपुष्पसङ्काशां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्।
 नवयौवनसमपत्रां सर्वाभरणभूषिताम्॥
 सुचारुदर्शनां तद्वत्पीनोन्नतपयोधराम्।
 त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दनीम्॥
 त्रिशूलं दक्षिणे दध्यात्खड्गं चक्रं तथैव च।
 तीक्ष्णबाणं तथा शक्ति वामतो विनिबोधत॥
 खेटकं पूर्णपात्रं च पाशमङ्कुशमेव च।
 घण्टां च परशु चापि चामरं सन्निवेशयेत्॥
 अधस्तान्महिषं विद्याद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥
 शिरच्छेदोद्भवं तद्वद्दानवं खड्गपाणिकम्॥
 हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषणम्।
 रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्तारितेक्षणम्॥
 वेष्टितं नागपाशेन भृकुटीभीषणाननम्।
 सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया॥
 वमद्गुधिरवक्त्रं च देव्यास्सिंहं प्रदर्शयेत्॥

(२) अपराजितपृच्छा

कात्यायनीमतो वक्ष्ये क्षत्रयोदगतशासनी।
 तेजः प्रतापदा नित्यं नृपाणां मुखबोधिनी॥
 शूलखड्गौ वज्रचक्रे बाणो दक्षिणबाहुषु।
 चापखेटकपाशाश्च घण्टा वामेषु चाङ्कुशम्॥
 अधस्तान्महिषं कुर्याद् विशिरस्कं च पादयोः।
 विद्यादक्षिणपादं तु महिषस्योपरिष्ठितम्॥
 पादपद्माय पादौ च वामपादं प्रदापयेत्।
 तथा दित्रिशिरस्कं च दैत्यन्तं रक्तवाससम्॥
 गृहीत्वा चैव केशाग्रे वामकेन तथेश्वरी।
 हृदि शूलेन निर्भिन्नं महिष-कुक्षौ सुदर्शनम्॥
 देव्यास्तु वाहनं सिंहः संलग्नो महिषोपरि।
 कात्यायनी नामिका च कर्तव्या चैवमेव हि॥

(३) रूपमण्डन

कात्यायनीं तता वक्ष्ये दशहस्तां महाभुजाम्।
 तेजः प्रतापदा नित्यं नृपाणां मुखबोधिनी॥

त्रिभङ्गिस्थानसंस्थाना महिषासुर्मदनी।
दक्षे त्रिशूलं खड्गं च चक्रं बाणं च शक्तिकाम्॥
खेटकं पूर्णचापं च पाशमङ्कुशमेव च।
घण्टा च वामतो दध्यादैत्यमूर्धजधृक्करी॥
अधस्तान्महिषं तद्वद्विशिरस्कं प्रदर्शयेत्।
शिरश्छेदोद्भवं तद्वद्वानवं खड्गपाणिनम्॥
हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम्।
रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविष्कारितेक्षणम्॥
देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि।

(४) मानसोल्लास

चतुर्भुजा द्विनेत्रां च श्यामवर्णाङ्गशोभिताम्।
किरीटमुकुटोपेतां सर्वाभरणभूषिणीम्।
पूर्वेऽभयं करे सव्ये चक्रं चापरदक्षिणे॥
ऊरुमूलाश्रितं वामवरदं वा करपूर्वके।
वामे चान्यकरे शङ्खं पीताम्बरधरं भवेत्॥
एवं कात्यायनीं प्रोक्ता शेषं प्रागुक्तवन्नयेत्॥

(५) शिल्परत्न

वक्ष्ये कात्यायनीं देवीं शिवनारायणान्विताम्।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तां जटामकुटमण्डिताम्॥
लोचनत्रयसंयुक्तामर्धेन्दुकृतशेखराम्।
अतसीपुष्पसंकाशामिन्दीवरदलेक्षणां॥
पीनोन्नकुचाम्भोजां तनुमध्येन शोभिताम्।
त्रिभङ्गिस्थानसंस्थानां महिषासुर्मदनीम्॥
त्रिशूलं दक्षिणे खड्गं शक्तिं चक्रधरं (?) तथा।
अधिर्यं कार्मुकं वामे पाशमङ्कुशखेटकम्॥
घण्टां च परशुं चापि धारयन्तीं समालिखेत्।
अधस्तान्महिषं चास्याश्छिन्नग्रीवं समालिखेत्॥
छिन्नस्थाने समुत्पन्नं खड्गखेटकधारिणम्।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं रुधिरारुणविग्रहम्॥
प्रबद्धं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणेक्षणम्।
नाभेरूर्ध्वं विनिष्क्रान्तं दानवं दारुणं लिखेत्॥
दक्षिणं चरणं देव्यास्सिंहपृष्ठे प्रतिष्ठितम्।
उत्तुङ्गमञ्चितं वामं महिषस्योपरि स्थितम्॥

(६) समराङ्गण सूत्रधार

गृहीतशूलपरिघपाहिका? पट्टिसध्वजा।
विभ्राणा खेटकोपेतलघुखड्गं च पाणिना॥
घण्ट मेकां च सौवर्णीं दधती घोररूपिणी।
कौशिकी पीतकौशेयवसना सिंहवाहना॥

सेचोष्ठी? विधातव्याः शुक्लाम्बरधराः।
शोभमानाश्च मुकुटैर्नारत्नविभूषितैः॥

(७) मानसार

भद्र पीठोपरि देशे महिष्य (षो) हतः शिरः (राः)।
तदूर्ध्वं तारकां देवीं स्थानकां ऋजुं भावयेत्॥
चतुर्भुज (जा) द्विनेत्रं (त्रां) च श्याम वर्णाङ्गशोभिताम्।
किरीट मुकुटोपेतां सर्वाभरणभूषिणीम्॥
पूर्वेऽभयं करे सव्ये चक्रं चापर दक्षिणे।
ऊरुमूलाश्रितं वामवरदं वा कर पूर्वके॥
वामे चान्य करे शंखं पीताम्बर धरं भवेत्।
एवं कात्यायनीं (नी) प्रोक्तं (क्ता) शेषं प्रागुक्तवन्नयेत्॥

४. आगम साहित्य

(१) अंशुभेदागम

चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च सा स्याम्पामनिभावरा।
सौमयापाताम्बरीपेता पीनोरुजधनस्तना॥
करण्डमुकुटोपेता सर्वाभरण भूषिता।
अभयं दक्षिणहस्तं वरद वाम हस्तकम्॥

(२) पूर्वकारणगम

(क) द्विभुजा च द्विनेत्रा च किञ्चित्प्रहसितानना।
करण्डमुकुटोपेता सर्वाभरण भूषिता॥
दकूलवसनोपेता सर्वा वयवसुन्दरी।
दक्षिणे कटकं हस्तं वागहस्तं प्रलम्बितम्॥
पीनोरुः पीनगण्डा च पीनस्तनसमन्विता।
द्विबा द्विनेत्रा च श्यामाभा कमलेक्षणा॥
दक्षिणे चोत्पलं हस्ते वामहस्तं प्रलम्बितम्।
भवान्याकृतिरेवं स्याद्वागीश्याकृति रुच्यते॥
(ख) ललाट लोचनं तस्यास्तिलकं च शिखामणिः।
शशिखण्ड किरीटं वां मुकुटं सकरण्डकम्॥
सनक्रकुण्डल रत्नमण्डनं कर्ण मण्डनम्।
कर्णावतंसका कणचूलिका पालिकान्विताम्॥
चतुर्भुज समायुक्तामष्टभिर्दोभिरन्विताम्।
शूलं खड्गं शरं चक्रं दक्षिणेषु करेषु च।
पाश खेटकशाङ्गश्च शरं दाम करेषु च।
चतुर्भुजे च वामे तु शरं वरदहस्तकम्॥
चक्रं चाभयहस्तं च दक्षिणे तु समायुतः।
द्विनेत्रा सौम्यवदना महिषस्य शिरस्स्थिता॥

(३) सुप्रभेदागम

आदि शक्तिस्समुद्भूता विष्णु प्राणानुजा शुभा।
शंख चक्रधरा देवी धनुस्सायकधारिणी॥

खड्गखेटकसंयुक्ता शूल-पाश-समायुता।
चतुर्भुजा वा कुर्वीत सर्वाभरणभूषिताम्।
श्यामवर्णा सुवदनां महिषस्य शिरस्स्थिताम्।
सिंहारुढा च वा कुर्यात्पद् मासनसमागताम्॥

(३) चण्डी स्वरूप

(१) विष्णु धमोत्तर

निगद्यते ह्यथो चण्डी हेमाभा सा सुरपिणी।
त्रिनेत्रा यौवनस्था च क्रुद्धा चोर्ध्वस्थिता मता॥
कृशमध्या विशालाक्षी चारुपीनपयोधरा।
एकवक्त्रा तु सुग्रीवा बाहुविंशतिसयुता॥
शूलासिशङ्खचक्राणि बाणशक्तिपवीनपि।
अभयं डमरुं चैव छत्रिकां दक्षिणे करे॥
ऊर्ध्वादिक्रमयोगेन विभ्रती सा सदा शुभा।
नागं पाशं तथा खेट कुठाराङ्कुशाकार्मुकम्॥
घण्टाध्वजगदादर्श मुद्गर वाम एव च।
तदधो महिषश्छिन्नमूर्धा पतितमस्तकः॥
शस्त्रोद्यतकरस्तब्धस्तदग्रीवासंभवः पुमान्।
शूलभिन्नो वमद्रक्तो रक्तभूमूर्धजेक्षणः॥
सिंहेन खद्यमानश्च पाशबद्धो गले भृशम्।
याम्याङ्ग्राक्रान्तसिंहा च सव्याङ्ग्रालीढगासुरे॥
चण्डी चोद्यतशस्त्रेयं चाशेषरिपुनाशिनी॥

(२) रूपमण्डन

चण्डिका क्रूररूपा च पिङ्गकेशा कृशादरी।
रक्ताक्षी भगनेत्रा च निर्मासा विकृतानना॥

व्याघ्रचर्मपरीधाना भुजङ्गाभरणान्विता।
कपालमालिना कृष्णा शवारूढा भयावहा॥
त्रिशूलं खेटकं खड्गं धनुः पाशाङ्कुशे शरः।
कुठारो दर्पणं घण्टा शङ्खश्चक्रं गदा पविः॥
दण्डो मुद्गर इत्यैतैर्यथास्थानायुधैर्युता।
बाहुषोडशसंयुक्ता चण्डमुण्डविघातिनी॥

(३) अपराजितपृच्छा

चण्डिकायास्तथैवोक्तान् कथयिष्याम्यनुक्रमात्।
वेतालः कोटरश्चैव पिङ्गाक्षो भृकुटिस्तथा॥
धूम्रकः कंकटश्चैव रक्ताक्षश्च सुलोचनः।
दंष्ट्रास्यविकटाः कोपे स्फुरद्गहनकोज्ज्वलाः॥
वर्वरीकाश्च कृष्णाङ्गा मरक्ताक्षा महाबलाः।
तर्जनी चैव खट्वाङ्गो डमरूडण्ड आयुधम्॥
वैतालः स समाख्यातो ह्यपसव्ये तु कोटरः।
अभयखड्गखेटकं दण्डः पिङ्गाक्ष एव च॥
अभयापसव्ययोगे भवेत् भृकुटिनामकः।
तर्जनी वज्राङ्कुशा वै दण्डो धूम्रकनामकः।
सव्यापसव्ययोगेन भवेत् कंकटनामकः।
तर्जनी च त्रिशूलं च खट्वाङ्गो दण्ड एव च॥
रक्ताक्षस्स च नाम्ना वै वामे दक्षे त्रिलोचनः।
दिशाद्वारपक्षयुग्मो स्थिता विघ्नविनाशनाः॥
इत्थै च प्रतिहाराः देवीनां सर्वसम्मताः॥

परिशिष्ट-१७

कालिका पुराण में वर्णित देवी पूजा विधि

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ततो लमिति मन्त्रेण अर्धपात्रस्य मण्डलम्।
चतुष्कोणं विधायाशु द्वारपद्मविवर्जितम् ॥१॥
ओं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण अर्धपात्रं तु मण्डले।
विनयसेत् प्रथमं तत्र पूजयित्वा समिध्यति ॥२॥
ओं ह्रीं ह्रौमिति मन्त्रेण गन्धपुष्पे तथा जलम्।
अर्धपात्रे क्षिपेत् तत्र मण्डलं विनयसेत् ततः ॥३॥
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा अर्धपात्रे ततो जलैः।
त्रिभागैः पूरयेत् पात्रं पुष्पं तत्र विनिःक्षिपेत् ॥४॥
ततो क्षौमिति मन्त्रेण आसनं पूजयेत् स्वकम्।
ततः क्षौमिति मन्त्रेण आत्मानं पूजयेद् बुधः ॥५॥

गन्धैः पुष्पैः शिरोदेशे ततः पूजां समाचरेत् ।
ओं ह्रींसमिति मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम् ॥६॥
संमृज्य सव्यहस्तेन घ्रात्वा वामकरेण तु।
ऐशान्यां निक्षिपेदेतत् पूर्वमन्त्रेण कोविदः ॥७॥
रक्तं पुष्पं गृहीत्वा तु कराभ्यां पाणिकच्छपम्।
बध्वा कुर्यात् ततः पश्चाद् दहनप्लवनादिकम् ॥८॥
वामहस्तस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् ।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठं नियोजयेत् ॥९॥
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥१०॥
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा।
अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ॥११॥

कूर्मपृष्ठसमं पृष्ठं कुर्याद् दक्षिणहस्ततः।
 एवं बद्धः सर्वसिद्धिं ददाति पाणिकच्छपः ॥१२॥
 कुर्यात् तद्धृदयासत्रं नीमीत्य नयनद्वयम्।
 समं कायशिरोग्रीवं कृत्वा स्थिरमना बुधः ॥१३॥
 ध्यानं समारभेद् देव्या दाहप्लवनपूर्वकम्।
 अग्निं वायौ विनिक्षिप्य वायु तोये जलं हृदि ॥१४॥
 हृदयं निश्चले दत्त्वा आकाशे निक्षिपेत्स्वनम्।
 ॐ हूँ फडिति मन्त्रेण भित्त्वा रन्ध्रं तु मस्तके ॥१५॥
 शब्देन सहितं जीवमाकाशे स्थापयेत् ततः।
 बाह्यग्नियमशक्रणां बीजेन वरुणस्य च ॥१६॥
 परास्थानपराश्रितैः सार्धचन्द्रैः सबिन्दुकैः।
 शोषं दाहं तथोच्छादं पीयूषासेवनं परम् ॥१७॥
 यथाक्रमेण कर्तव्यं चिन्तामात्रं विशुद्धये।
 ततस्तु देवीबीजेन अणु जांबूनदाकृतिम् ॥१८॥
 तत्रासाद्य द्विधा कुर्यात् उम् ह्रीं श्रीमिति मन्त्रकाः।
 तदूर्ध्वभागेषु हृदलोकं स्वर्गां च खं तथा ॥१९॥
 निष्ठाद्य शेषभगेन भुवं पातालवारिणि।
 चिन्तयेत्तत्र सर्वाणि सप्तद्वीपां च मेदिनीम् ॥२०॥
 तत्तेषु सागरास्तास्तु स्वर्णद्वीपं विचिन्तयेत्।
 तनमध्ये रत्नपर्यंकं रत्नमण्डपसंस्थितम् ॥२१॥
 आकाशगङ्गातोयोधैः सदैव सेवितं शुभम्।
 तत्पर्यंके रक्तपद्मं प्रसन्नं सर्वदाशिवम् ॥२२॥
 चिन्तयेत् स्वर्णमानांकं सप्तपातालनालकम्।
 आब्रह्मभुवनस्पर्शिं सुवर्णाचलकर्णिकम् ॥२३॥
 तत्रस्थितां महामायां ध्यायेदकाग्रमानसः।
 शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलम्बिनीं ॥२४॥
 चलत्काश्चनामारुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम्।
 सुवर्णरत्नसम्पन्न किरीटद्वयधारिणीम् ॥२५॥
 शुक्लकृष्णारुणैर्नैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम्
 सन्ध्याचन्द्रसमप्रख्य-कपोलां लोललोचनाम् ॥२६॥
 विपङ्कदाडिमीबीजदन्तान् सुभ्रूयोगोज्ज्वलाम्।
 बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम् ॥२७॥
 कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रनाम्।
 चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ॥२८॥
 दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशत्परेण सिद्धसूत्रकम्।
 विभ्रतीं वामहस्ताभ्यामभीतिं वरदायिनीम् ॥२९॥
 निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम्।
 आनमन्नागपाशोरुं गुप्तगुल्फां सुपाष्णिकाम् ॥३०॥
 बद्धपर्यङ्कसंकल्पां निवीरासनराजिताम्।
 गात्रेण रत्नसंस्तम्भं सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥३१॥

किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्तीं मुहुर्मुहुः।
 पञ्चाननां पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं सुवाहनाम् ॥३२॥
 मुक्तवली स्वर्णरत्नहारकङ्कणादिभिः।
 सर्वैरलङ्कारगणैरुज्ज्वलां सस्मिताननाम् ॥३३॥
 सूर्यकोटिप्रतीकाशां सर्वलक्षणसंयुताम्।
 नवयौवनसम्पन्नां तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥३४॥
 ईदृशीमम्बिकां ध्यात्वा नमः फडिति मस्तके।
 स्वकीये प्रथमं दद्यात् सोऽहमेव विचिन्त्य च ॥३५॥
 अङ्गन्यासकरन्यासौ ततः कुर्यात् क्रमेण च।
 एभिर्मन्त्रैः स्वरैः सह सुमीसूमैः क्रमान्वितैः ॥३६॥
 ओम् क्षौम् चैते सप्रणवां रक्तवर्णां मनोहराम्।
 अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमन्त्रसंबेष्टनं फट् ॥३७॥
 प्रान्तेन कुर्याद् विन्यासं पूर्वं करतलद्वये।
 हृच्छिरःशिखाकवचनेत्रेषु क्रमतो न्यसेत् ॥३८॥
 ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथादरे।
 बाह्योर्गुह्ये पादयोश्च जङ्घयोर्जघने क्रमात् ॥३९॥
 विन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओंकारं च तथा स्मरन्।
 एभिः प्रकारैरतिशुद्धदेहः पूजां सदैवार्हति नान्यथा हि।
 शरीशुद्धिं मनसो निवेशं भूतप्रसारं कुरुते नृणां तत् ॥४०॥

चतुःपञ्चाशोऽध्यायः

भगवानुवाच

ततोऽर्धपात्रे तन्मन्त्रमष्टधाकृत्य संजपेत्।
 तेन तोयानि पुष्पाणि स्वं मंडलमथासनम् ॥१॥
 आशोधयेत् ततः पश्चात् पूजोपकरणं समम्।
 ॐ ऐं ह्रीं ह्रौमिति मन्त्रेण शब्दप्रांशुविर्वर्जितम् ॥२॥
 द्वारपालं ततो देव्या आसनानि च मध्यतः ॥३॥
 आधारशक्तिप्रभृति हेमघ्नान् प्रपूजयेत्।
 प्रसिद्धान् सर्वतन्त्रेषु पूजाकल्पेषु भैरव ॥४॥
 दशदिक्पालसहितान् धर्माधर्मादिकास्तथा।
 मण्डलाग्न्यादिकोणेषु पूजयेत् पार्श्वदेशातः ॥५॥
 सूर्याग्निसोममरुतां मण्डलानि च पद्मकम्।
 रजस्तथा तमः सत्तवं योगपीठं गुरोः पद्म ॥६॥
 सारादीन् भद्रपीठान्तान् सांगोपांगान् प्रपूजयेत्।
 ब्रह्माण्डं स्वर्णडिम्बं च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥७॥
 ससागरान् सप्तद्वीपान् स्वर्णद्वीपं समण्डपम्।
 रत्नपद्मं समर्यङ्कं रत्नस्तम्भं तथैव च ॥८॥
 पञ्चाननं मण्डलस्य मध्येऽवश्यं प्रपूजयेत्।
 ह्रीं मन्त्रेण ततः कूर्मपृष्ठं पाणयोर्निबध्य च ॥९॥

ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीमासाद्यासनमुत्तमम्।
 हन्मध्ये चिन्तयेत् स्वर्णद्वीपं पर्यङ्कसंभृतम् ॥१०॥
 पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा स्मरेत्।
 प्रत्यक्षीकृत्य हृदये मानसैरुपचारकैः ॥११॥
 षोडशानां प्रकारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्चिद्वाम्।
 ततस्तु वायुबीजेन दक्षिणे च पुटेन च ॥१२॥
 नासिकाया विनिःसार्य क्रीं मन्त्रेण च भैरव।
 स्थापयेत् पद्ममध्ये तु तद्धस्तं न वियोजयेत् ॥१३॥
 कृते वियोग हस्तस्य पुष्पत् तस्माच्च भैरव।
 गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकैर्नाप्यते फलम् ॥१४॥
 आवाहनं ततः कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह ।
 महामायायै विद्महे त्यां चण्डिकाख्यां धीमहिं ॥१५॥
 एतदुक्त्वा ततः पश्चाद् धियो यो नः प्रचोदयात् ।
 स्नानीयं देवि ते तुभ्यं ॐ ह्रीं श्रीं नाम इत्यतः ॥१६॥
 स्नानीयं च ततो देव्यै दद्याल्लक्षणलक्षितम् ।
 ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पं सदीपकम् ॥१७॥
 धूपादिकं प्रदक्षात् तु मोदकं पायसं तथा।
 सितां गुडं दधि-क्षीरं सर्पिर्नानाविधैः फलैः ॥१८॥
 रक्तपुष्पं पुष्पमालां सुवर्णरजतादिकम्।
 नैवेद्यमुत्तमं देव्या लाङ्गलं मोदकं सिताम् ॥१९॥
 शाण्डिल्यकरताम्राख्य-कूष्माण्डानां फलानि च।
 हरीतकीफलं चापि नागरङ्गकमेलकाम् ॥२०॥
 बालप्रियं च यर्दं द्रव्यं कसेरुकबिसादिकम्।
 तोयं च नारिकेलस्य देव्यै देयं प्रयत्नतः ॥२१॥
 रक्तं कौशेयवस्त्रं च देयं नीलं कदापि न।
 देव्याः प्रियाणि पुष्पाणि बकुलं केशरं तथा ॥२२॥
 माध्यं कल्लारवज्रणि करवीरं कुरुण्टकान्।
 अर्कपुष्पं शाल्मलकं दूर्वाङ्कुरं सुकोमलम् ॥२३॥
 कुमञ्जरिका दर्भा बन्धूककमले तथा।
 मालूरपत्रं पुष्पं च त्रिसन्ध्यारक्तपर्णके ॥२४॥
 सुमनांसि प्रियाण्येतान्यम्बिकायाश्च भैरव।
 बन्धूकं बकुलं माध्यं बिल्वपत्राणि सन्ध्यकम् ॥२५॥
 उत्तमं सर्वपुष्पेषु द्रव्ये पायसमोदकौ।
 माल्यं बन्धूकपुष्पस्य शिवायै बकुलस्य वा ॥२६॥
 करवीरस्य माध्यस्य सहस्राणां ददाति यः।
 स कामान् प्राप्य चाभीष्टान् मम लोके प्रमोदते ॥२७॥
 चन्दनं शतलं चैत्र कालीयकसमन्वितम्।
 अनुलेपनमुख्यं तु देव्यै दद्यात् प्रयत्नतः ॥२८॥
 कर्पूरं कुङ्कुमं कूर्चं मृगनाभि सुगन्धिकम् ।
 कालीयकं सुगन्धेषु देव्याः प्रीतिकरं परम् ॥२९॥

यक्षधूपः प्रतीवाहः पिण्डधूपः सगोलकः ।
 अगुरुः सिन्धुवारश्च धूपाः प्रीतिकरा मताः ॥३०॥
 अंगरागेषु सिन्दूरं देव्याः प्रीतिकरं परम्।
 सुगन्धि शालिजं चान्नं मधुमांससमन्वितम् ॥३१॥
 अपूपं पायसं क्षीरमन्नं देव्याः प्रशस्यते।
 रत्नोदकं सकर्पूरं पिण्डीतककुमारकौ ॥३२॥
 रोचनं पुष्पकं देव्याः स्नानीयं परिकीर्तितम्।
 घृतप्रदीपो दीपेषु प्रशस्तः परिकीर्तितः ॥३३॥
 पुष्पाञ्जलित्रयं दद्याद् मूलमन्त्रेण शोभनम्।
 दत्त्वोपचारानखिलन्मध्ये चैताः प्रपूजयेत् ॥३४॥
 कामेश्वरीं गुप्तदुर्गां विन्ध्यकन्दरवासिनीम्।
 कोटेश्वरी दीर्घिकाक्ष्यां प्रकटीं भुवनेश्वरीम् ॥३५॥
 आकाशाङ्गा कामाख्यां यदा दिक्करवासिनीम् ।
 मातङ्गी ललितां दुर्गां भैरवीं सिद्धिदां तथा ॥३६॥
 बलप्रमथिनीं चण्डीं चण्डोग्रां चण्डनायिकाम्।
 उग्रां भीमां शिवां शान्तां जयन्तीं कालिकां तथा ॥३७॥
 मङ्गलां भद्रकालीं च शिवां धात्रीं कपालिनीम् ।
 स्वाहां स्वधामपर्णां च पंचपुष्करिणीं तथा ॥३८॥
 दमनीं सर्वभूतानां मनःप्रोत्साहकारिणीम् ।
 दमनीं सर्वभूतानां चतुःषष्टि च योगिनीः ॥३९॥
 एताः सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणाङ्गानि पूजयेत्।
 हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रबाहुपदानि च ॥४०॥
 मूलमन्त्राद्यक्षरैस्तु त्रिभिराद्यङ्गपूजनम्।
 एकैकं वर्द्धयेत् पश्चान्मन्त्राण्यङ्गौघपूजने ॥४१॥
 सिद्धसूत्रं च खड्गं च खड्गमन्त्रेण पूजयेत्।
 ततोऽष्टपत्रमध्ये तु पूजयेदष्टयोगिनीः ॥४२॥
 शैलपुत्रीं चण्डघण्टां स्कन्दमातरमेव च।
 कालरात्रिं च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ॥४३॥
 चण्डिकामथ कूष्माण्डीं तथा कात्यायनीं शुभाम्।
 महा गौरीं चाग्निबोणे नैऋत्यादिषु पूजयेत् ॥४४॥
 महामायां क्षमस्वेति मूलमन्त्रेण चाष्टधा।
 पूजयेत् पद्ममध्ये तु बलिदानं ततः परम् ॥४५॥
 एवं यदा कल्पविधानमानैः

सम्पूज्यते भैरव कामदेवी।

तदा स्वयं मण्डलमेत्य देयं
 गृह्णाति कामं च ददाति सम्यक् ॥४६॥
 इति श्रीकालिकापुराणे अष्टादशपटलोद्भारे महामाया-
 कक्षश्चतुः पञ्चाशोऽध्यायः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

बलिदानं ततः पश्चात् कुर्याद् देव्याः प्रमोदकम् ।
 मोदकैर्गजवक्त्रं च हविषा तोषयेद्रविम् ॥१॥
 तौर्यत्रिकैश्च नियमैः शंकरं तोषयेद्धरिम् ।
 चण्डिकां बलिदानेन तोषयेत् साधकः सदा ॥२॥
 पक्षिणः कच्छपा ग्राहाश्छागलाश्च वराहकाः ।
 महिषो गोधिकाशेषा तथा नवविधा मृगाः ॥३॥
 चामरः कृष्णसारश्च शशः पञ्चाननस्तथा ।
 मत्स्याः स्वगात्ररुधिरैश्चाष्टधा बलयो महाः ॥४॥
 अभावे च तथैवैषां कदाचिद्धयहस्तिनौ ।
 छागलाः शरभाश्चैव नरश्चैव यथाक्रमात् ॥५॥
 बलिर्महाबलिरिति बलयः परिकीर्तिताः ।
 स्नापयित्वा बलिं तत्र पुष्पचन्दन धूपकैः ॥६॥
 पूजयेत् साधको देवीं बलिमन्त्रैर्मुहुर्मुहुः ।
 उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ॥७॥
 निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
 बरस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ॥८॥
 प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलरूपिणम् ।
 चण्डिका प्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनः ॥९॥
 वैष्णवीबलिरूपाय बले तुल्यं नमो नमः ।
 यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥१०॥
 अतस्त्वां घतयाम्यद्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः ।
 ओं ऐं ह्रीं श्रीं इति मन्त्रेण तं बलिं कामरूपिणम् ॥११॥
 चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्ध्नि तस्य च भैरव ।
 ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः ॥१२॥
 अभिषिच्य बलिं पश्चात् करवालं प्रपूजयेत् ।
 रसना त्वं चण्डिकायां सुरलोकप्रसाधक ॥१३॥
 ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं प्रपूजयेत् ।
 कृष्णं पिनाकपाणिं च कालरात्रिस्वरूपिणम् ॥१४॥
 उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
 रक्ताम्बरधरं चैकं पाशहस्तं कुटुम्बिनम् ॥१५॥
 पीयमानं च रुधिरं भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम् ।
 असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥१६॥
 श्रीगर्वो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते ।
 पूजयित्वा ततः खड्गं ऊँ आं ह्रीं फडितिमन्त्रकैः ॥१७॥
 गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद् बलिमुत्तमम् ।
 ततो बलीनां रुधिरं तोयसैन्धवसत्फलैः ॥१८॥
 मधुभिर्गन्धपुष्पैश्च अधिवास्य प्रयत्नतः ।
 ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकीति रुधिरं दापयामि ते ॥१९॥

स्थाने नियोजयेद्रक्तं शिरश्च सप्रदीपकम् ।
 एवं दत्त्वा बलिं पूर्णं फलं प्राप्नोति साधकः ॥२०॥
 हीनं स्याद्धीनतामूलं निष्फलं स्याद् विपर्ययात् ।
 बलिदाने तु दुर्गाया अन्यत्रापि विधिः सदा ॥२१॥
 अयमेव प्रयोक्तव्यः सद्भिर्वेतालभैरवौ ।
 जपं समारभेत् पश्चात् पूर्ववद्ध्यानमास्थितः ॥२२॥
 हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।
 चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णदिकं भवेत् ॥२३॥
 स च कण्ठतो ध्यात्वा सितवर्णं हिरण्यमम् ।
 महामायां च हृदये आत्मानं गुरुपादयोः ॥२४॥
 आचक्षेत् ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ।
 देव्याश्चाप्येकतां ध्यात्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः ॥२५॥
 तत्त्वस्वरूपमेकं तु षट्चक्रं प्रति लम्बयेत् ।
 षट्चक्रेऽपि महामायां क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ॥२६॥
 लम्बयेन्मूलमात्रेण वादिषोडशचक्रकम् ।
 आदि षोडशचक्रस्थां साधकानन्दकारिणीम् ॥२७॥
 चिन्तयन् साधको देवीं जपकम्र समारभेत् ।
 भ्रवोरुपरि नाडीनां त्रयाणां प्रान्त उच्यते ॥२८॥
 तत्प्रान्तं त्रिपथस्थानं षट्कोणं चतुरङ्गुलम् ।
 रक्तवर्णं तु योगज्ञैराज्ञाचक्रमितीर्यते ॥२९॥
 कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम् ।
 सुषुम्नेडापिङ्गलानां षट्कोणं तत्पङ्कजुलम् ॥३०॥
 तत् षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम् ।
 त्रयाणामथ नाडीनां हृदये चैकता भवेत् ॥३१॥
 तत्स्थानं षोडशारं स्यात् सप्ताङ्गुलप्रमाणतः ।
 तत्प्रयुक्तं तु योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम् ॥३२॥
 ध्यानानामथ मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च ।
 यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादीति गद्यते ॥३३॥
 जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युच्य यत्नतः ।
 निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा ॥३४॥
 ऊँ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
 चतुर्वर्गस्त्वयि नयस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥३५॥
 पूजयित्वा ततो मालां गृहीयाद् दक्षिणे करे ।
 मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वाथ तर्जनीम् ॥३६॥
 अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युताया नम्रभागतः ।
 स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ॥३७॥
 प्रत्येकं बीजमादाय जप्यादर्धेन भैरव ।
 प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठं च चालयेत् ॥३८॥
 मालाबीजं तु जप्यं स्पृशेन्नहि परस्परम् ।
 पूर्वजापप्रयुक्तेन नैवाङ्गुष्ठेन भैरव ॥३९॥

पूर्वबीजं जमन् यस्तु परबीजं च संस्पृशेत्।
 अंगुष्ठेन भवेत् तस्य निष्फलस्तस्य तज्जपः ॥४०॥
 मालां स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना।
 देवीं विचिन्तयन् जप्यं कुर्याद् वामेन न स्पृशेत् ॥४१॥
 स्फटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः।
 सुवर्णमणिभिः सम्यक् प्रवालैरथवाब्जजैः ॥४२॥
 अक्षमाला तु कर्तव्या देवीप्रीतिकरी परा।
 भेदुपांशु सततं कुशग्रन्थ्याथ पाणिना ॥४३॥
 मालाबीजेषु सर्वेषु रुद्राक्षो मत्प्रियाप्रियः।
 रुद्रप्रीतिकरी यस्मात् तेन रुद्राक्षरोचनी ॥४४॥
 प्रवालैरथवा कुर्यादष्टाविंशतिबीजकैः।
 पंचपंचाशता वापि न न्यूनैरधिकैश्च वा ॥४५॥
 रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षैः स्फटिकैस्तथा।
 नान्यं मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिदिकं च यत् ॥४६॥
 यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालायां जपकर्मणि।
 तस्य कामं च मोक्षं च ददाति न प्रियंकरी ॥४७॥
 मिश्रीभावं ततो याति चाण्डालैः पापकर्मभिः।
 जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारगः ॥४८॥
 एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थूलसम्भवः।
 आद्यं स्थूलं ततस्तस्माद् न्यूनं न्यूनतरं तथा ॥४९॥
 विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा हि सा यतः।
 ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् प्रतिबीजं यथास्थितम् ॥५०॥
 अथवा ग्रन्थिरहितं दृढरज्जुसमन्वितम्।
 द्विरावृत्याथ मध्येन चार्धवृत्त्यान्तदेशतः ॥५१॥
 ग्रन्थिः प्रदक्षिणावर्तः स ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञकः।
 आत्मना योजयेन्मालां नामन्त्रो योजयेन्नरः ॥५२॥
 दृढं सूत्रं नियुज्जीत जपे त्रुट्यति नो यथा।
 यथा हस्तात्र च्यवेत जपतः स्रक् तमाचरेत् ॥५३॥
 हस्तच्युतायां विघ्नं स्याच्छिन्नायां मरणं भवेत्।
 एवं यः कुरुते मालां जपं च जपकोविदः ॥५४॥
 स प्राप्नोतीप्सितं कामं हीने स्यात् तु विपर्ययः।
 अन्यत्रापि जपेन्मालां जप्यं देवमनोहरम् ॥५५॥
 तादृशः साधकः कुर्यान्नान्यथा तु कदाचन।
 यथाशक्ति जपं कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नतः ॥५६॥
 असंख्यातं च यज्जपतं तस्य तन्निष्फलं भवेत्।
 जप्त्वा मालां शिरोदेशे प्रांशुस्थानेऽथ वा न्यसेत् ॥५७॥
 स्तुतिपाठं ततः कुर्यादिष्टं कामं निवेद्य च।
 स्तुतिश्चापि महामन्त्रं साधनं सर्वकर्मणाम् ॥५८॥
 वक्ष्ये युवां महाभागौ सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
 सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥५९॥

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।
 सप्तधावर्तनं कृत्वा स्तुतिमेनां च साधकः ॥६०॥
 पञ्चप्रणामान् कृत्वाथ ऐं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रकैः।
 अन्त्रेषां पुरतश्चैव अधिकं अधिकं यथेच्छया ॥६१॥
 योनिमुद्रां ततः पश्चाद् दर्शयित्वा विसर्जयेत्।
 द्वौ पाणी प्रसूतीकृत्य कृत्वा चोत्तानमञ्जलिम् ॥६२॥
 अंगुष्ठाग्रद्वयं न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वयोस्ततः।
 अनामिकायां वामस्य तत्कनिष्ठां पुरो न्यसेत् ॥६३॥
 दक्षिणस्यानामिकायां कनिष्ठां दक्षिणस्य च।
 अनामिकायाः पृष्ठे तु मध्यमे द्वे निवेशयेत् ॥६४॥
 द्वे तर्जन्यौ कनिष्ठाग्रे तदग्रेणैव योजयेत्।
 योनिमुद्रा समाख्याता देव्याः प्रीतिकरी मता ॥६५॥
 त्रिवारं दर्शयेत् तां तु मूलमन्त्रेण साधकः।
 तां मुद्रां शिरसि नयस्य मण्डलं विन्यसेत् ततः ॥६६॥
 ऐशान्यामग्रहस्तेन द्वारपद्मविवर्जितम्।
 तत्र नत्वा रक्तचण्डां ह्रीं श्रीं मन्त्रेण साधकः ॥६७॥
 रक्तचण्डायै नम इति निर्माल्यं तत्र निक्षिपेत्।
 उदके तरुमूले वा निर्माल्यं तत्र संत्यजेत् ॥६८॥
 एवं यः पूजयेद् देवीं विधानेन शिवां नरः।
 सोऽचिरेण लभेत्कामान् सर्वानेव मनोगतान् ॥६९॥
 अर्धलक्षजपं जप्त्वा प्रथमं चैव साधकः।
 पुरश्चरेद् विशेषेण नानानैवेद्यवेदनैः ॥७०॥
 कुण्डं मण्डलवत् कृत्वा चाष्टम्यां समुपोषितः।
 नवम्यां शुक्लपक्षस्य रजोभिः पञ्चभिनरः ॥७१॥
 पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा गुरुपित्रोश्च सन्निधौ।
 अनेनैव विधानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ॥७२॥
 सहितैर्विल्वपत्रैश्च अष्टोत्तरशतत्रयम्।
 तिलैर्होमं चरेत् तस्यां सहस्रत्रितयं जपेत् ॥७३॥
 नैवेद्यं गन्धपुष्पे च वस्त्रं दद्याच्च यत्प्रियम्।
 पूर्वोक्तं चान्यदप्यस्यै प्रदद्यात् पायसं तथा ॥७४॥
 पूजावसाने देयं स्यात् तज्जातीयं बलित्रयम्।
 सिन्दूरं स्वर्णरत्नानि यद्यत् स्त्रीणां विभूषणम् ॥७५॥
 निवेदयेद् यथाशक्त्या पुष्पमाल्यं च भूरिशः।
 महाशक्तुं सशाल्यन्नं गव्यवयञ्जनसंयुतम् ॥७६॥
 देव्यै नवम्यां सम्पूर्णं बलिं दद्याद् घृतादिभिः।
 दक्षिणां गुरवे दद्यात् सुवर्णं गां तथा तिलम् ॥७७॥
 अभिशप्तमपुत्रं च सावद्यं कितवं तथा।
 क्रियाहीनमकल्पज्ञं वामनं गुरुनिन्दकम् ॥७८॥
 सदा मत्सरसंयुक्तं गुरुं मन्त्रेषु वर्जयेत्।
 गुरुर्मन्त्रस्य मूलं स्थान्मूलशुद्धौ तदुद्गतम् ॥७९॥

सफलं जायते यस्मान्मन्त्रं यत्नात्परीक्षयेत्।
 शाठ्यात् क्रोधात् मोहाद्वा नास्मत्त्या गुरोर्मुश्वात् ॥८०॥
 कल्पेषु दृष्ट्वा मन्त्रं गृहीयाच्छब्दनाऽथ वा।
 स मन्त्रस्तेय पापेन तामिषे नरके नरः ॥८१॥
 मन्वन्तरत्रयं स्थित्वा पापयोनिषु जायते।
 शठे क्रूरे च मूर्खे च छद्मकारिण्यभक्तिके ॥८२॥
 तन्त्रं न दूषिते दद्यात् सुबीजं विपिने तथा।
 लक्षणे साधयेत कामं पुरश्चरणपूर्वकम् ॥८३॥
 पापक्षयो भवेद् यस्मात् पुरश्चरणकर्मणा।
 लक्षद्वयेन मन्त्रस्य जपेन नरसत्तमौ ॥८४॥
 त्रिसन्ध्यासु प्रतिदिनं बीजसंघातकेन च।
 कविर्वाग्मी पण्डितश्च यशस्वी च प्रजायते ॥८५॥
 साधकः साधकश्रेष्ठ पूजास्थानं ततः शृणु।
 यत्र यत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते च यः ॥८६॥
 तस्यादत्ते स्वयं देवी पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
 शिला प्रशस्ता पूजायां स्थण्डिलं निर्जनं तथा ॥८७॥
 जपश्चोपांशु सर्वेषामुत्तमः परिकीर्तितः।
 अशुचिर्न महामायां पूजयेत् तु कदाचन ॥८८॥
 अवश्यं तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो नरः।
 दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणं च न विद्यते ॥८९॥
 सर्वेषामेव मन्त्राणां स्मरणान्नरकं व्रजेत्।
 जानूर्ध्वं क्षतजे जाते नित्यं कर्म न चाचरेत् ॥९०॥
 नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत्।
 सूतके च समुत्पन्ने क्षुरकर्मणि मैथुने ॥९१॥
 धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि संत्यजेत्।
 द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च न वै भुक्त्वा च किञ्चन ॥९२॥

कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा।
 पत्रं पुष्पं च ताम्बूलं भेषजत्वेन कल्पितम् ॥९२॥
 कणादिपिप्पल्यन्तं च फलं भुक्त्वा न चाचरेत्।
 जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद् भेषजादृते ॥९४॥
 नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकैः सदा।
 जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम् ॥९४॥
 कामाद्भस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत्।
 विशेषतः शिवापूजां प्रमीतपितृको नरः ॥९६॥
 यावद् वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत्।
 महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चित् चाचरेत् ॥९७॥
 आर्त्तिज्यं ब्रह्मयज्ञं च श्राद्ध देवयजं च यत्
 गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना ॥९८॥
 न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतः पाते च भैरव।
 आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्न तु ॥९९॥
 ऊपरे कृमिसंयुक्ते स्थाने मृष्टेऽपि नार्चयेत्।
 नीचैरासनमासाद्य शुचिः प्रयतमानसः ॥१००॥
 अर्चयेच्चण्डिकां देवीं देवमन्यं च भैरव।
 दिग्विभागे तु कौबेरीदिक्छिन्ना प्रीतिदायिनी।
 तस्मात् तन्मुख आसीनः पूजयेच्चण्डिकां सदा।
 पुष्पं च कृमिसंमिश्रं विशीर्णं भग्नमृद्गते ॥१०२॥
 सकेशं मुषिकोद्धूतं यत्नेन परिवर्जयेत्।
 याचितं परकीयं च तथा पर्युषितं च यत्।
 अन्त्यसृष्टं पदा स्पृष्टं यत्नेन परिवर्जयेत् ॥१०३॥
 इदं शिवायाः परमं मनोहरं
 करोति योऽनेन तदीयपूजनम्।
 स वाञ्छितार्थं समवाप्य चण्डिका-
 गृहं प्रयाता नचिरेण भैरव ॥१०४॥

परिशिष्ट-१८

तन्त्र-विज्ञान (भाग-२) में वर्णित दुर्गा पूजन विधि

दुर्गा-पूजन विधि

मंत्र—

इसका मन्त्रेद्वार इस तरह से है—
 मायाद्रिकर्णविन्दाढयो भूयोऽसो सर्गवान भवेत्।
 पञ्चान्तकः प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासनः।
 तारादि हृदयान्तोऽयं मन्त्रो वस्वक्षरात्मकः॥
 माया (ह्रीं)+अहि(द)+कर्ण(उ)—बिन्दु (अनुस्वार)=दुं, पुनः यह

वर्ण विसर्ग युक्त (दः) पञ्चान्तक (ग), प्रतिष्ठा (आ), मारुत (य), भौतिक (ए)=दुर्गायें और इनके आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में हृदय (नमः) अर्थात् “ॐ ह्रीं दुं दुर्गायें नमः” यह आठ अक्षरों वाला दुर्गा का मंत्र है।

पद्धति—

ॐ शृणु पार्वति! वक्ष्यामि पद्धतिं गद्यरूपिणीम्।
 यस्याः श्रवणमात्रेण कोटियज्ञफलं लभेत्॥

ॐ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय बद्धपद्मासनः स्वशिरस्थसहसत्राधो मुखकमलकर्णिकान्तर्गतं निजगुरुं श्वेतवर्णं श्वेतालंकारलंकृतं द्विभुजं स्वशक्त्या श्वेताम्बरभूषितया वामेऽङ्गं सहितं ध्यात्वा मानं सैरुपचारैः सम्पूज्य दण्डवत् प्रणमेत्।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इति ध्यात्वा तदाज्ञां गृहीत्वा बहिरागत्य मलमूत्रादि सन्त्यज्य वर्णांकं शौचमादाय नद्यादौ गत्वा स्वकूर्चं द्वादशाङ्गुलम् ॐ क्लीं कामदेवाय सर्वजनमनोहरीय नमः॥ इति दन्तान् विशोध्य चाक्रिकबीजेन गण्डूषपट्कं विधाय प्रणवेन मुखं त्रिः प्रीक्ष्य। ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि शिखापरिसरे रक्ष २ हूं फट् स्वाहेति शिखां बद्ध्वा तत्त्वलयेणाचम्य मूलेन प्राणायामं विधाय मलापकर्षणं स्नानं कुर्यात्। ततो मूलेन मृदमानीय जलं प्रोक्षयेत्। मन्त्रमृदा सूर्यमण्डलं विचिन्त्य।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।

नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥

इति तीथान्यावाह्य॥ जले यन्त्रं त्रिभाष्यं सनीलकण्ठां दुर्गामावाहयेत् तत्र षडङ्गं विधाय देवीं सशिवां ध्यात्वा मूलं यथाशक्ति जप्त्वा उन्मज्जेत्॥ तत्र कुम्भमुद्रां बद्ध्वा स्वमूर्ध्नि देवदेव्यौ जलेन स्नापयित्वा॥

ॐ ह्रां ह्रीं सः मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय एष तेऽर्घ्यो नम इति सूर्ययार्धत्रयं दत्त्वा वासः परिधाय तत्त्वत्रयेणचम्य त्रिः प्राणायामं विधाय पूर्वसन्ध्यां कृत्वा षडङ्गं कृत्वा चुलुकेन जलमादाय तत्त्वमुद्रायाच्छाद्य। हं यं वं रं लं इति त्रिरभिभन्त्य मूलमुच्चरन्तद्गलितदकविन्दुभिः सप्तधा स्वशिरस्यभ्युक्ष्य। सव्यहस्ते शेषमुदकं धृत्वा इडयान्तर्नीत्वा देहान्तःपापं प्रक्षाल्य पिङ्गलया विरेच्य। पुरः कल्पितवज्रशिलायां वामे फडिति निक्षिपेत्। इत्यधमर्षणं विधाय पूर्ववादाचम्य जले यन्त्रं ध्यात्वा मूलं यथाशक्ति जप्त्वा। मूलविद्यान्ते सायुधे सवाहने सपरिच्छदे श्रीनीलकण्ठसहिते मातदुर्गे तृप्यताम् इत्यष्टवारं सन्तपर्य। नीलकण्ठं त्रिः सन्तपर्य।

एकैकाङ्गलिना परिवारदेवताः सन्तपर्य॥ देवदेव्यौ हृदि ध्यात्वा जले चतुरस्रं विधाय। तत्रेशानादिक्रमेण गुरुपंक्तिं सन्तपर्यं देवीं गायत्रीं जपेत्॥ ॐ ह्रीं दुन्दुर्गायै विद्महे अष्टाक्षरायै धीमहि सन्नो चण्डि प्रचोदयात्। इति यथाशक्ति प्रजप्य गायत्र्यानया देवदेव्योर्ध्वत्रयं दत्त्वा। जप समर्थं यागमण्डपमागच्छेत्। इति विधिः।

ततो गृहमागत्य पादौ प्रक्षाल्य द्वारदेवीः। ॐ गुं गणेशाय नमः नमः पूर्व। ॐ क्षां क्षीं ह्रीं वटुकाय नमः दक्षिणे। ॐ क्षां क्षं क्षेत्रपालाय नमः पश्चिमे। ओं यां यूं योगिनाभ्यो नमः उत्तरे गङ्गायै नमो देहल्याम्। यं यमुनायै नमः अधः॥ सं सरस्वत्यै नमः मध्ये इति सम्पूज्य गृहानतः प्रविश्य। यथोपचितमासनं शोधयेत् ॐ आं आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतल छन्दः कूर्मो देवता आसनशोधने विनियोगः ॐ पृं पृथिव्यै नमः।

महि त्वया धृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता।

त्वं च धारय मां देवि! पवित्रं कुरु चासनम्।

ॐ आं शक्तये नमः मूलप्रकृत्यै नमः। अं अनन्ताय नमः।

पद्माय नमः पद्मनालये नमः। तत्रोपविश्य तालत्रयं कुर्यात्।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।

ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।

इति तालत्रयं दत्त्वा वामपार्श्वे वातत्रयेण विघ्नानुत्सायं

नाराचमुद्रां प्रदर्श्य गुरुं प्रणमेत्।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

ॐ स्वगुरुभ्यो नमः। परमगुरुभ्यो नमः परापरगुरुभ्यो नमः।

परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। इति गन्धाक्षतैरभ्यर्च्य न्यासपूर्वं सङ्कल्पं कुर्यात्।

अस्य श्रीदुर्गामन्त्रस्य महेश्वर ऋषिः अनुष्टुपछन्दः श्रीदुर्गा देवता दुर्गा बीजं ह्रीं शक्तिः ओं कीलकं नम इति दिग्बन्ध धर्मार्थं काममोक्षार्थं दुर्गापूजायां विनियोगः।

न्यास

अथान्तरमातृका न्यास मन्त्रस्य ब्रह्मऋषिः—

गायत्रीछन्दः मातृकासरसरस्वतीदेवता हलो बीजानिस्वराः शक्तयः क्षं कीलकं अखिलाप्तये न्यासे विनियोगः।

इति जलं भूमौ निक्षिप्य प्राणायामं कुर्यात्। तथा च इड्या॥

अ इ उ ऋ ए ऐ ओ और अं अः एभिः स्वरैः पूरयेत्।

पुनः कु चु डु तु पु इति पञ्चवर्गकेन कुंभयेत्॥

पुनः य र ल व श ष स ह एभिः षट्ठवर्गैः रेचयेत्।

इति प्राणायामं कृत्वा ऋष्यादि न्यासं कुर्यात्। तथा च॥

ॐ अं ब्रह्मणोऋषये नमः आंशिरसि।

ॐ इं गायत्री छन्दसे नमः ईं मुखे॥

ॐ उँ सरस्वती देवतायै नमः ऊं हृदये॥

ॐ एं हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः ऐं गुह्ये॥

ॐ ओं स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः औं पादयोः॥

ॐ अं क्षं कीलकाय नमः अः सर्वाङ्गे॥

इति ऋष्यादि न्यासः, ॐ अं कं खं गं घं ङं औं अंगुष्ठाभ्यां नमः।

ओं इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः।

ओं उं टं ठं डं ढं णं मध्याभ्यां नमः॥

ओं एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां।

ओं ओं पं फं बं भं मं औं लनिष्ठकाभ्यां नमः॥

ओं अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलं करं पृष्ठाभ्यां नमः।

इति करन्यासः एवं हृदयादि, ओं अं कं ५ आं हृदयाय नमः॥

आं इं चं ५ ईं शिरसे स्वाहा।

ओं उं टं ५ ऊं शिखायैवषट्॥

आं एं तं ५ ऐं कवचाय हुँ॥

ओं ओं पं ५ औं नेत्रत्रयायवौष्ट्॥

ओं अँ यँ रँ लँ वँ शँ षँ सं हँ लँ क्षँ अः अस्त्रायफट्॥ इति हृदयादि
न्यासः॥ ततः कण्ठस्थ षोडश दल पद्ममे (ओं अं नमः एव क्रमेण
सर्वत्र) ओं आं ईं ईं उँ ऊँ ऋँ ऋँ लृँ लृँ ऐं ऐं अः इति
षोडशस्वरान्यसेत्॥ पुनः हृदिस्थ द्वादशदले ओं कं नमः एवं खं
गं घं ङं चं छं जं झं जं टं ठं नमः॥ इति द्वादश वर्णान् विन्यसेत्॥
तथा नाभौ दशदले ओं ङं नम इति एवं ढं णं दं धं नं पं फं नमः
इति दशवर्णा नन्सेत् तद्धोलिगे षड्दिले तं थं नमः एवं ओं यं मं
यं रं लं इति षड्वर्णानि आधारे ओं बं-ओं वं ममः त्व श षं सं
इति चतुर्वर्णन्य-सेत्॥ चर्तुदले ललाटे द्विदले ओ हं नमः ओं क्षं
नमः॥ द्वौवर्णन्यसेत्॥ पनः कृत्वा ध्यायेत्॥ आधारेत्॥ लिंगनाभौ
प्रकटित इति न्यास ललाटे द्वेपत्रे षड्दशारे द्विदश दले द्वादशार्द्धचतुष्के॥
तालुमूले बाल-मध्ये डफकर सहिते कंठदेशेस्वराणां हंसतत्त्वर्थ
युक्तं वासन्ते दलगत वर्णरूपं नमामि॥ इत्यंतर्मातृका न्यासः॥

अथ बहिर्मातृका न्यासः॥

जयार्थं सर्वदेवानां विन्यासे च लिपेर्विना।

कृतेतद्विफलं विद्यातदादौतु लिपिन्सेत्॥

ओं अस्यश्री बहिर्मातृकान्यास मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषिः छन्दः मातृका
सरस्वती देवीदेवता हलोबीजानि स्वराः क्षं कीलकं अखिलाप्तये
न्यासे विनियोगः। प्राणायामं कुर्यात् तथा च इड्या अ इ उ ऋ लृ
ए ओ अ अः एभिः स्वरैः पूरेव।

पुनः कु चु डु तु पु एभिः पंचवर्णान् कुम्भयेत्॥

पुनः अष्टभिः। य र ल व श ष स ह आदिना रेचयेत्॥

इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्॥

तथा च ओं अं ब्रह्मणे ऋषये नमः आं शिरसि॥

ओं इं गायत्री छन्दसे नमः ईं मुखे॥

ओं उं सरस्वती देवतायै नमः ऊं हृदि॥

ओं एं हल्भ्यो वीजेभ्यो नमः ऐं गुह्यो॥

ओं स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः औ पादयोः॥

ओं अं क्षं कीलकाय नमः अः सर्वांगे॥

इति ऋष्यादि न्यासः॥

ओं अं कं ५ आं अंगुष्ठाभ्यां नमः हृदयाय।

ओं इं चं ५ ईं तर्जनीभ्यां शिरसे स्वाहा॥

ओं उं टं ५ ऊं मध्यमाभ्यां शिखायैवषट्॥

ओं एं तं ५ ऐं अनामिका कवचायहुँ॥

ओं पं ५ औं कनिष्ठिकाभ्यां नेत्रत्रयाय वौष्ट्॥

ओं अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतल कर पृष्ठाभ्या
अस्त्रायफट्॥

मृगवालं वरं विद्यामक्ष सूत्रं दधात् करै॥

माला-विद्या लसद्द स्तां वहन् ध्येयः शिवो गिरः॥

ततः-बहिर्मातृकान्यासं कुर्यात्॥ अं नमः शिरसि।

ओं आं नमः मुखे। ओं इं नमः दक्षिण नेत्रे॥

ओं ईं नमः वामनेत्रे। ओं उं नमः दक्षिण कर्णे॥

ओं नमः वामकर्णे। ओं ऋ नमः दक्षिणनासा पुटे॥

ओं ऋ नमः वाम नासा पुटे। ओं लृ नमः दक्षिण कपोले॥

ओं लृ नमः वामकपोले ओं एं नमः। ओं ऐ नमः अधरोष्ठे॥

ओं नमः ऊर्ध्वदन्त पंक्तौ। ओं नमः अधोदन्त पंक्तौ॥

ओं अं नमः मूर्द्धि ना ओं ओं नमः मुखवृत्ते॥

ओं अं नमः दक्षिण बाहुमूले। ओं ख नमः द० कूर्परे॥

ओं ओं गं नमः द० मणिबंधे। ओं घं नमः द० हस्तांगुलिमूले॥

ओं ङं नमः द० हस्तांगुल्यग्रे ओं चं नमः वाम बाहु मूले॥

ओं छ नमः वा० कूर्परे। ओं जं नमः वा० मणिबंधे॥

ओं झ नमः वा० हस्तांगुलिमूले॥

ओं जं नमः वाम हस्तांगुल्यग्रे। ओं टं नमः दक्षिणपाद मूले॥

ओं ठं नमः द० जानुनि। ओं डं नमः द० गुल्फे॥

ओं णं नमः द० पादांगुल्यग्रे॥

ओं तं नमः वाम पाद मूले। ओं थं नमः वाम जानुनि॥

ओं दं नमः वाम गुल्फे। ओं धं नमः वा० पादांगुलिमूले॥

ओं नं वा० पादांगुल्यग्रे। ओं पं नमः दक्षिण पाश्वे॥

ओं फ नमः वाम पाश्वे। ओं बं नमः पृष्ठे॥

ओं भं नमः नाभौ। ओं मं नमः उदरे॥

ओं यं त्वगात्मने नमः हृदि। ओं रं असृगात्मने नमः दक्षांसे॥

ओं लं मांसात्मनेनमः ककुदि। ओं वं मेदात्मने नमः वामांसे॥

ओं शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्ष हस्तांतम्॥

ओं षं भज्जात्मनेनमः हृदयादि वाम हस्तांतम्॥

ओं संशुक्रात्मनेनमः हृदयादि वाम पादान्तम्॥

ओं तं आत्जने नमः हृदयादि वाम पादान्तम्॥

ओं लं परमात्मने नमः जठरे॥

ओं क्षं प्राणात्मने नमः मुखे, इति विन्यस्य॥

अथ सृष्टिन्यास क्रमः

तल तु विसर्गान्वितः प्रणवपुटितो वा माया लक्ष्मी

वीजपुटितो वा वाम्भवाद्योवा न्यस्तब्यः ध्यानम्॥

पञ्चाशदणैर चिताङ्ग भागां धृतेन्दु खण्डा कुमुदावदाताम्

वराभये पुस्तकमक्षसूत्रं भजेगिरं संदधतीं-त्रिनेत्राम्॥१॥

तत्र वाग्भवाद्यो यथा ऐं अं नमः ललाटे।

ऐं आं नमः मुखवृत्ते ऐं इं नमः दक्ष नेत्रे।

ऐं ईं नमः वाम नेत्रे॥ ऐं उँ नमः दक्ष कर्णे॥

ऐं ऊं नमः वाम कर्णे। ऐं ऋं नमः दक्ष नासायां॥

ऐं ऋ नमः वाम नासायां॥

ऐं लृ नमः दक्ष गंडे॥ ऐं लृ नमः वाम गंडे॥

ऐं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे॥ ऐं ऐं नमः अधरोष्ठे॥

ऐं ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ!!
 ऐं औ नमः अधोदन्त पंक्तौ!!
 ऐं अं नमः मूर्द्धिना!! ऐं अः नमः मुखे!!
 ऐं कं नमः द० बा० मूले!! ऐं खं नमः द० कूपरे!!
 ऐं गं नमः द० मणिबन्धे!! ऐं घं नमः द० हस्तांगुलि मूले
 ऐं ङ नमः द० हस्तां गुल्यग्रे!! ऐं चं नमः वाम बाहु मूले
 ऐं झं नमः वाम कूपरे!! ऐं जं नमः वाम मणिबन्धे
 ऐं ञं नमः कूपरे!! ऐं जं नमः वाम मणिबन्धे
 ऐं झं नमः वाम हस्तां गुलि मूले!!
 ऐं जं नमः वाम हस्तांगुल्यग्रे!!
 ऐं टं नमः दक्षिणपाद मूले!! ऐं ठं नमः दक्षिण जानुनि
 ऐं डं नमः दक्षिण गुल्फे!! ऐं ढं नमः द० पा० गुलि मूले
 ऐं णं नमः द० पा० गुल्यग्रे!! ऐं तं नमः वाम पाद मूले!!
 ऐं थं वाम जानुनि। ऐं दं नमः वाम गुल्फे।
 ऐं थं नमः वाम पा० गु० मूले। ऐं नं वाम पादांगुल्यग्रे।
 ऐं पं नमः दक्षिण पार्श्वे ऐं फं नमः वाम पार्श्वे।
 ऐं बं नमः पृष्ठे। ऐं भं नमः नाभौ।
 ऐं मं नमः उदरे। ऐं यं त्वगात्मने नमः हृदि।
 ऐं रं असृगात्मने नमः दक्षौ से।
 ऐं लं मांसात्मने नमः ककुदि।
 ऐं लं मांसात्मने नमः ककुदि।
 ऐं वं मेदात्मने नमः वामांसे।
 ऐं शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्ष भुजान्तम्।
 ऐं षं मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम भुजान्तम्।
 ऐं सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम्।
 ऐं हं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम्।
 ऐं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम्।
 ऐं लं परमात्मने नमः हृदयादि मस्तकान्तम्।

इति सृष्टिकम न्यासः।

श्रथ स्थिति न्यास। ऋषिश्छन्द पूर्ववत्।

ध्यानम्। सिंदूर कान्ति मसिताभरणां त्रिनेत्रां विद्याक्षसूत्र
 मृगापोतवरंदधानां। पार्श्वस्थितां भगवतीमपि काँचनांगी ध्याये करारब्ज
 धृत पुस्तक वर्णमालाम्
 ओं टं टं डं नमः ललाटे।
 ओं ठं ठं डं नमः मुख वृत्ते।
 ओं टं टं इं नमः दक्ष नेत्रे।
 ओं टं टं डं नमः वाम नेत्रे
 ओं टं टं डं नमः दक्षिण कर्णे।

ओं टं टं डं नमः वाम कर्णे।
 ओं टं टं डं नमः दक्षिणनासायां।
 ओं टं टं डं वाम नासायां नमः।
 ओं टं टं डं नमः दक्षिणगण्डे।
 ओं टं टं डं नमः वाम गण्डे।
 अं टं टं डं नमः ऊर्ध्वोष्ठे।
 ओं टं टं डं नमः अधरोष्ठे।
 ओं टं टं डं नमः ऊर्ध्व दन्त पंक्तौ।
 ओं टं टं डं नमः अधो दन्त पंक्तौ।
 ओं टं टं डं नमः शिरसि।
 ओं टं टं डं नमः मुखे।
 ओं टं टं डं नमः जिह्वाग्रे।
 ओं टं टं डं कण्ठ देशे।
 ओं टं टं डं नमः दक्ष बाहु मूले।
 ओं टं टं डं नमः दक्ष कूपरे।
 ओं टं टं डं नमः दक्षिण मणिबन्धे।
 ओं टं टं डं नमः दक्षिण हस्तेगुल्य मूले।
 ओं टं टं डं नमः दक्षिण हस्तेगुल्यग्रे।
 ओं टं टं डं नमः बाहु मूले।
 ओं टं टं डं नमः कूपरे।
 ओं टं टं डं नमः वाम मणि बन्धे।
 ओं टं टं डं नमः वाम हस्तां गुल्यग्रे।
 ओं टं टं डं नमः दक्ष पाद मूले।
 ओं टं टं डं नमः दक्ष जानुनि।
 ओं टं टं डं नमः दक्ष गुल्फे।
 ओं टं टं डं नमः नमः पादांगुल्यग्रे।
 ओं टं टं डं नमः वाम पाद मूले।
 ओं टं टं डं नमः वाम जानुनि।
 ओं टं टं डं नमः वाम गुल्फे।
 ओं टं टं डं नमः वाम पादांगुलि मूले।
 ओं टं टं डं नमः वाम पा० गुल्यग्रे।
 ओं टं टं डं नमः दक्ष पार्श्वे।
 ओं टं टं डं नमः पृष्ठे।
 ओं टं टं डं नमः हृदये।
 ओं टं टं डं नमः दक्षांसे।
 ओं टं टं डं नमः ककुदि।
 ओं टं टं डं नमः वामांसे।
 ओं टं टं डं नमः हृदयादि दक्षहस्तान्तम्।
 ओं टं टं डं नमः हृदयादि वाम हस्तान्तम्।

ओं टं ठं डं नमः ॐ हृदयादि दक्ष पादान्तम्।
 ओं टं ठं डं नमः हृदयादि वाम पादान्तम्।
 ओं टं ठं डं नमः हृदयादि मस्तकान्तम्।

इति स्थिति क्रमः

अथ संहार क्रम न्यासः।

ध्यानम्! अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटकं विद्यांकरैरविरतधतीं त्रिनेत्रां
 अर्द्धेन्दुमौलिभरणामरविन्दवासां वर्णेश्वरी च प्रणुमः स्तनभारखिन्नाम्।
 पूर्वोक्तं स्थानेषु विलोम मातृकांन्यसेत्।

ओं क्षं नमः ललाटे
 ओं हं नमः मुखवृत्ते। सं नमः दक्ष नेत्रे।
 ओं षं नमः वाम नेत्रे।
 ओं शं नमः दक्ष कर्णे।
 ओं वं नमः वाम कर्णे।
 ओं लं नमः दक्ष नासायां।
 ओं रं नमः वाम नासायां।
 ओं यं नमः दक्ष गंडे।
 ओं मं नमः वाम गंडे।
 ओं भं नमः ऊर्ध्वोष्ठे।
 ओं बं नमः अधरोष्ठे।
 ओं फं नमः ऊर्ध्व दन्त पंक्तौ।
 ओं पं नमः अधो दन्त पंक्तौ।
 ओं नं नमः मूर्द्धनि।
 ओं धं नमः मुखवृत्ते।
 ओं दं नमः दक्ष बाहु मूले।
 ओं यं नमः दक्ष कूपरे।
 ओं तं नमः दक्ष मणिबन्धे।
 ओं णं नमः दक्ष हस्तांगुलि मूले।
 ओं ढं नमः दक्ष हस्तांगुल्यग्रे।
 ओं डं नमः वाम बाहु मूले।
 ओं ठं नमः वाम कूपरे।
 ओं टं नमः वाम मणिबन्धे।
 ओं जं नमः वाम हस्तांगुलि मूले।
 ओं झं नमः वाम हस्तांगुल्यग्रे।
 ओं ञं नमः दक्ष पाद मूले।
 ओं छं नमः दक्ष जानुनि।
 ओं चं नमः दक्ष गुल्फे।
 ओं ङं नमः दक्ष पादांगुलि मूले।
 ओं घं नमः दक्ष पादांगुल्यग्रे।
 ओं गं नमः वाम पाद मूले।
 ओं खं नमः वाम जानुनि।
 ओं कं नमः वाम गुल्फे।
 ओ अः नमः वाम पादांगुलि मूले।
 ओं घं नमः वाम पादांगुल्यग्रे।
 ओं गं नमः वाम पाद मूले।
 ओं खं नमः वाम जानुनि।

ओं कं नमः वाम गुल्फे।

ओं अः नमः वाम पादांगुलि मूले।

ओं अं नमः वाम पादांगुल्यग्रे।

ओं औं नमः दक्षिण पाश्वे।

ॐ ओं नमः वाम पाश्वे।

ॐ ऐं नमः पृष्ठे।

ॐ एं नमः नाभौ।

ॐ लृं नमः उदरे।

ॐ लृं त्वगात्मने नमः हृदि।

ॐ ऋं असृगात्मने नमः दक्षांसे।

ॐ ॠं मांसात्मने नमः ककुदि।

ॐ ऊं मेदात्मने नमः वामांसे।

ॐ उ अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्ष हस्तान्तम्।

ॐ ई मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम हस्तान्तम्॥

ॐ इ शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम्।

ॐ आं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम्।

ॐ अं परमान्मने नमः हृदयादि मस्तकान्तम्।

॥ इति संहार क्रम न्यास कृत्वा॥

अथ शक्ति कला न्यासः।

अस्य श्री शक्तिकला मातृका न्यासस्य प्रजापति गायत्री
 छन्दः श्री मातृका शारदा देवता हलोबीजानिसवर शक्तयः सप्तशती
 पाठाङ्ग त्वेन मातृका न्यसे विनियोगः।

ओं प्रजापति ऋषये नमः शिरसि,

ओं गायत्री छन्दसे नमः मुखे।

ओं श्री मातृका शारदा देवतायै नमः हृदि,

ओं हल्भ्योबीजेभ्यो नमः गुह्ये।

ओं स्वरेभ्योशक्तिभ्यो नमः पादयो।

ओं विनियोगाय नमः सर्वांगे।

॥ कर न्यासः॥

ओं अं उं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः (हृदयाय नमः)

ओं ईं उं ईं तर्जनीभ्यां नमः (शिरसे स्वाहा)

ओं उं उं ऊं मध्यमाभ्यां नमः (शिरवायेवष्ट्)

ओं एं उं ऐं अनामिकाभ्यां नमः (कवचायहूँ)

ओं औं उं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः (नेत्र त्रयाय वौषट्)

ओं अं उं अः करतल करपृष्ठाभ्यां नमः (अस्त्रायफट्)

॥अथ हृदयादि न्यासः॥

ॐ ह्रं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। हृदयाय नमः।

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। शिरसे स्वाहा।

ॐ ह्रसू मध्यमाभ्यां नमः। शिखायै वषट्।

ॐ ह्रसै अनामिकाभ्यां नमः। कवचाय हुम्।

ॐ ह्रसौ कनिष्ठिकाभ्यां नमः। त्रयायवौषट्।

ॐ ह्रसः करतल कर पृष्ठाभ्यां नमः। अस्त्रायफट्॥

षोढान्यास प्रकारः

तत्र प्रथम शुद्ध मातृकाः न्यासः

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लुं नमो हृदि।
 एं ऐं ओं औं अंः कं खं गं घं नमो दक्ष भुजे।
 ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमो वाम भुजे।
 णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्ष पादे।
 मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमो वाम पादे।
 इति शुद्ध मातृका न्यासः प्रथमः।

अथ द्वितीय न्यासः

श्रीं अं श्रीं अं श्रीं अं नमो ललाटे।
 श्रीं आं श्रीं आं श्रीं आं नमो मुख वृत्ते।
 श्रीं इं श्रीं इं श्रीं इं नमो दक्ष नेत्रे।
 श्रीं ईं श्रीं ईं श्रीं ईं नमो वाम नेत्रे।
 श्रीं उं श्रीं उं श्रीं उं नमो दक्ष कर्णे।
 श्रीं ऊं श्रीं ऊं श्रीं ऊं नमो वाम कर्णे।
 श्रीं ऋं श्रीं ऋं श्रीं ऋं नमो वाम नासायां।
 श्रीं ॠं श्रीं ॠं श्रीं ॠं नमो वाम नासायां।
 श्रीं लृं श्रीं लृं श्रीं लृं नमो दक्ष कपोले।
 श्रीं लृं श्रीं लृं श्रीं लृं नमो वाम कपोले।
 श्रीं एं श्रीं एं श्रीं एं नमो उध्वोष्ठे।
 श्रीं ऐं श्रीं ऐं श्रीं ऐं नमो अधरोष्ठे।
 श्रीं ओं श्रीं ओं श्रीं ओं नमो ऊर्ध्व दन्त पंक्तौ।
 श्रीं औं श्रीं औं श्रीं औं नमो अधः दन्त पंक्तौ।
 श्रीं अं श्रीं अं श्रीं अं नमो मूर्द्धनि।
 श्रीं अः श्रीं अः श्रीं अः नमः मुखे।
 श्रीं कं श्रीं कं श्रीं कं नमो दक्षिण बाहु मूले।
 श्रीं खं श्रीं खं श्रीं खं नमो दक्षिण कूर्परे।
 श्रीं गं श्रीं गं श्रीं गं नमो दक्षिण मणि बन्धे।
 श्रीं घं श्रीं घं श्रीं घं नमो दक्षिण हस्तांगुलि मूले।
 श्रीं ङं श्रीं ङं श्रीं ङं नमो दक्षिण हस्तांगुल्यग्रे।
 श्रीं चं श्रीं चं श्रीं चं नमो वाम बाहु मूले।
 श्रीं छं श्रीं छं श्रीं छं नमो वाम कूर्परे।
 श्रीं जं श्रीं जं श्रीं जं नमो वाम मणि बन्धे।
 श्रीं झं श्रीं झं श्रीं झं नमो वाम हस्तांगुलि मूले।
 श्रीं ञं श्रीं ञं श्रीं ञं नमो वाम हस्तांगुल्यग्रे।
 श्रीं टं श्रीं टं श्रीं टं नमो दक्षिण पाद मूले।
 श्रीं ठं श्रीं ठं श्रीं ठं नमो दक्ष जानुनि।
 श्रीं डं श्रीं डं श्रीं डं नमो दक्ष गुल्फे।
 श्रीं ढं श्रीं ढं श्रीं ढं नमो दक्ष पादाङ्गुलि मूले।
 श्रीं णं श्रीं णं श्रीं णं नमो दक्ष पादाङ्गुल्यग्रे।
 श्रीं तं श्रीं तं श्रीं तं नमो वाम पाद मूले।
 श्रीं थं श्रीं थं श्रीं थं नमो वाम जानुनि।
 श्रीं दं श्रीं दं श्रीं दं नमो वाम गुल्फे।

श्रीं धं श्रीं धं श्रीं धं नमो वाम पादांगुलि मूले।
 श्रीं नं श्रीं नं श्रीं नं नमो वाम पादांगुल्यग्रे।
 श्रीं पं श्रीं पं श्रीं पं नमो दक्ष पाश्वरे।
 श्रीं फं श्रीं फं श्रीं फं नमो वाम पाश्वरे।
 श्रीं बं श्रीं बं श्रीं बं नमो पृष्ठे।
 श्रीं भं श्रीं भं श्रीं भं नमो नाभौ।
 श्रीं मं श्रीं मं श्रीं मं नमो उदरे।
 श्रीं यं श्रीं यं श्रीं यं त्वगात्मने नमः हृदि।
 श्रीं रं श्रीं रं श्रीं रं अमृगात्मने नमः दक्षांसे।
 श्रीं लं श्रीं लं श्रीं लं मांसात्मने नमः ककुदि।
 श्रीं वं श्रीं वं श्रीं वं मेदात्मने नमः वामांसे।
 श्रीं शं श्रीं शं श्रीं शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्ष हस्तान्तम्।
 श्रीं षं श्रीं षं श्रीं षं मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम हस्तान्तम्।
 श्रीं सं श्रीं सं श्रीं सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम्।
 श्रीं हं श्रीं हं श्रीं हं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम्।
 श्रीं लं श्रीं लं श्रीं लं परमात्मने नमः जडरे।
 श्रीं क्षं श्रीं क्षं श्रीं क्षं प्राणात्मने नमः हृदयादि मस्तकांतम्।

॥ इति द्वितीय न्यासः ॥

॥ अथ तृतीय न्यासः ॥

क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो ललाटे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो मुख वृत्ते।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष नेत्रे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम नेत्रे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष कर्णे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम कर्णे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष नासायाम्।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम नासायाम्।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष कपोले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम कपोले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो ऊध्वोष्ठे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो अधरोष्ठे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो ऊर्ध्व दन्त पंक्तौ।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं अधो दन्त पंक्तौ।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो मूर्द्धनि।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो मुखे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षिण बाहु मूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष कूर्परे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो मणि बन्धे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष हस्तांगुलि मूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष हस्तांगुल्यग्रे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम बाहु मूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम कूर्परे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम मणि बन्धे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम हस्तांगुलि मूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम हस्तांगुल्यग्रे।

क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्षिण पाद मूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो दक्ष जानुनि।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं दक्ष गुल्फे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो पादांगुलि मूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो पादांगुल्यग्रे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम पाद मूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम जानुनि।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम गुल्फे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम पादांगुलिमूले।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम पादांगुल्यग्रे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम दक्ष पार्श्वे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो वाम पार्श्वे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो पृष्ठे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो नाभौ।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो उदरे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं त्वगात्मने नम हृदि।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं आसृगात्मने नमः दक्षासे।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं मांसात्मने नमः ककुदि।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं मेदात्मने नमः वामासे॥
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं अस्ययात्मने नमः हृदयादि दक्ष
 हस्तान्तम्।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं मज्जात्मने नमः हृदयादि वामहस्तान्तम्॥
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम्॥
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम्।
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं परमात्मने नमः जठरे॥
 क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं हृदयादि मस्तकान्तम्।

॥इति तृतीय न्यासः॥

अथ चतुर्थ न्यास

ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं ह्रीं श्रीं नमः ललाटे।
 सृष्टिन्यास के अनुसार स्थानों पर पंचम न्यास तथा मुद्रा भी वही।

पंचमः

ए ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ह्रां ह्रां ऋ ऋ ल्कू नमः ललाटे।
 सृष्टि न्यास ने अनुसार तथा मुद्रा भी वहीं

षष्टि अनुलोमः

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः ललाटे।
 उन्हीं स्थान तथा मुद्रा से

विलोम न्यासः

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः हृदयादि मस्तकान्तम्।
 पूर्व लिखे हुए संहार न्यास के अनुसार होगा मुद्रा सहित।

तत्त्वन्यासः

ऐं ह्रीं क्लीं आत्म तत्त्वाय नमः पाददि नाभिपर्यन्तम्।
 चामुण्डायै विद्यातत्त्वाय नमः नाभ्यादि हृदय पर्यन्तम्।
 विच्चे शिव तत्त्वाय नमः हृदयादि शिरः पर्यन्तम्।

अक्षर न्यास

ऐं नमः ब्रह्मरंध्रे। ह्रीं नमः भ्रुवोर्मध्ये।

क्लीं नमः ललाटे चां नमः हृदि। मुन्नमोकुक्षौ।
 डां नमः नाभौ। यैं नमः लिंगे। विनमो गुह्ये।
 च्चेनमोवक्त्रे। इति
 ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥
 ततो नवधा सप्तधा पञ्चधा वा मूल मुच्चरन् व्यत्य हस्ताभ्यां व्यापक
 न्यास विधाय।
 ततो यथोक्त विधिना बिन्दु त्रिकोण षट् कोण अष्ट दल चतुर्विंशति
 दल भूपर्युतं यंत्रनिर्माय पीठे धृत्वा।
 पीठ न्यास कुर्यात्।
 ओं आधार शक्त्यै नमः।
 ओं प्रकृत्यै नमः।
 ओं कूर्माय नमः।
 ओं सुधां बुधये नमः।
 ओं मणिद्वीपाय नमः।
 ओं चिन्तामणि गृहाय नमः।
 ओं श्मशानाय नमः।
 ओं पारिजाताय नमः।
 ओं तन्मूले। ओं रत्नवेदिकायै नमः।
 ओं मणिपीठाय नमः। एतावद्ब्रुवि न्यसेत्। चतुर्दिक्षः॥
 ओं नाना मुनिभ्यो नमः।
 ओं नाना देवेभ्यो नमः।
 ओं शवेभ्यो नमः।
 ओं शनमुण्डे ज्योनमः।
 ओं बहुमांसास्थि मोदमान शवेभ्यो नमः।
 ओं धर्माय नमः दक्षांसे।
 ओं ज्ञानाय नमः वामांसे।
 ओं वैराग्याय नमः वामोरी।
 ओं ऐश्वर्याय नमः दक्षोरौ।
 ओं अज्ञानाय नमो वाम पार्श्वे।
 ओं अवैराग्याय नमः नामौ।
 ओं अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे। ततो हृदिया
 ओं आनन्द कन्दाय नमः।
 ओं सेविन्नालय नमः।
 ओं सर्व तत्त्वात्मक पद्याय नमः।
 ओं प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नमः।
 ओं विकार मय केसरेभ्यो नमः।
 ओं पञ्चाशद्दीजाद्य कर्णिकायै नमः।
 ओं अंदादश कलात्मने सूर्य मण्डलाय नमः।
 ओं षोडश कलात्मने सोममण्डलाय नमः।
 ओं मन्दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः।
 ओं सं सत्त्वाय नमः।
 ओं रं रजसे नमः।
 ओं तम् तमसे नमः।
 ओं आं आत्मने नमः।
 ओं आं आत्मने नमः।

ओं पं परमात्मने नमः।
 ओं ही ज्ञानात्मने नमः। अष्टदिक्षु।
 ओं इं इच्छायै नमः।
 ओं ज्ञां ज्ञानायै नमः।
 ओं किं किपायै नमः।
 ओं कां कामिन्यै नमः।
 ओं कां कामदायिन्यै नमः।
 ओं रं रत्यै नमः।
 ओं रं रति प्रियायै नमः।
 ओं आं आनन्दायै नमः। मध्ये।
 ओं मं मनोन्मन्यै नमः।
 ओं ऐं परायै नमः।
 ओं पं परायण्ये नमः।
 ओं हसौः ब्रह्मा विष्णु रुद्र महाप्रेत पद्मासनाय नमः।
 इति पीठ न्यास कत्वा तत्र दुर्गाध्यायेत्।
 ओं शंखं चक्रं गदां बाणान् चाप परिघ शूलके।
 भुशुण्डीं च शिरः खड्गं दधती दश वक्त्रकाम ॥१॥
 तामसौ श्यामलां नौमि महाकालीं दशाग्रिकाम्।
 मालाञ्च परशुं बाणान् गदां कुलिशमेवच ॥२॥
 पद्म धनुः कुण्डिकां च दंडं शक्तिमसिं तथा।
 खेट कंजलजं घण्टां सुरपात्रं च शूलकम् ॥३॥
 पाशं सुदर्शनं चैव दधतीं लोहित प्रभाम्।
 पद्मे स्थितां महालक्ष्मीं भजे महिष मर्दिनीम् ॥४॥
 घटां शूलं हल शश्वं मुसलारिधनु शरान्।
 दधतीभुज्ज्वालां नौमि देवीं गौरी समुद्रवाम् ॥५॥
 इति ध्यात्वा मानसै रूप चारैरभ्यर्च्यं प्रणमेत्।
 मन-सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भर्धजैः शंखं चक्र
 धनुः शराश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता। आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणर-
 त्कञ्चीक्वणनूपुरा दुर्गा दुर्गति हारिणी भवतु वो रत्नोल्लसत्कृण्डला।

अथ देव्या, कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः
 चामुण्डा अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम् दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजदम्बा
 सप्तशती पाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः
 ओं नमश्चण्डिकायै।
 मर्कण्डेय उवाच० यदुगुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
 यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥
 धोवाच-अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतपकारकम् ।
 देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥२॥
 प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
 तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्मा डेति चतुर्थकम् ॥३॥
 पञ्चमं सक्तन्दमातेति षष्ठं काल्यायनीति च।
 सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टकम् ॥४॥
 नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिता।

उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्माणैव महात्मना ॥५॥
 अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे।
 विषमे दुर्गमे चैव भायर्ताः शरणं गताः ॥६॥
 न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसंकटे।
 नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥७॥
 यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते।
 ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ॥८॥
 प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना।
 ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥९॥
 माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना।
 लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्ममहस्ता हरिप्रिया ॥१०॥
 श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना।
 ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥११॥
 इत्येता मातरः सर्वा सर्वयोगसमन्विताः।
 नानाभरणशोभादया नानारत्नोपशोभिताः ॥१२॥
 दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः।
 शंख चक्र गदां शक्ति हलं च मुसलायुधम् ॥१३॥
 खेटकं तोमरं चैव परशु पाशमेव च।
 कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥१४॥
 दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च।
 धारयन्त्यायुधानीर्थं देवानां च हिताय वै ॥१५॥
 नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाधोरपराक्रमे ।
 महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ॥१६॥
 त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।
 प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नैव्यामग्निदेवता ॥१७॥
 दक्षिणीऽवतु वाराही नैऋत्यां खड्गधारिणी।
 प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥१८॥
 उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्या शूलधारिणी।
 ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥१९॥
 एवं दशा दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना।
 जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥२०॥
 अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता।
 शिरवामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥
 मालाधरी ललाटे च भ्रुवो रक्षेद् यशस्विनी।
 त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२॥
 शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोद्गारवासिनी।
 कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ॥२३॥
 नासिकायां मुग्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका।
 अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥२४॥
 दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेते तु चण्डिका।
 घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥
 कामाक्षी चिबुक रक्षेद् वाच मे सर्वमङ्गला।
 ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवशे धनुर्धरी ॥२६॥

नीलग्रीवा बहिः कण्ठे नलिकां नलकूबरी।
 स्कन्धयोः खङ्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
 हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चांगुलीषु च।
 नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८॥
 स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकबिनाशिनी।
 हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९॥
 नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्य गुह्येश्वरी तथा।
 पूतना कामिका मेढूं गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
 कट्यां भगवती रक्षेद्भ्रानुनी विन्ध्यवासिनी।
 जङ्घा महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥३१॥
 गुल्फयोनरिसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी।
 पादांगुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥३२॥
 नाखन् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी।
 रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥३३॥
 रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती।
 अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥३४॥
 पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा।
 ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥३५॥
 शुक्र ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा।
 अहंकार मनो बुद्धि रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥३६॥
 प्राणपानी तथा व्यानमुदानं च समानकम्।
 वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणकल्याण शोभना ॥३७॥
 रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी।
 सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नरायणी सदा ॥३८॥
 आयू रक्षतु वाराही धर्म रक्षतु वैष्णवी।
 यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धन विद्यां च चिक्रिणी ॥३९॥
 गोत्रमिन्द्राणि से रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके।
 पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्या रक्षतु भैरवी ॥४०॥
 पन्थानं सुपथा रशेन्मार्गं क्षेमकरी तथा।
 राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥४१॥
 रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु।
 तत्सर्व रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥४२॥
 पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
 कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥४३॥
 तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकाः।
 यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।
 परमैश्वर्यतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥४४॥
 निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः।
 त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥४५॥
 इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम्।
 यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयानिवतः ॥४६॥
 देवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः।
 जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥४७॥
 दृश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः।
 स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥४८॥

अभिचारिणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले।
 भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥४९॥
 सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा।
 अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥५०॥
 ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
 ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥५१॥
 दृश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते।
 मानोन्नतिर्भवेद् राजस्तेजोबृद्धिकर परम् ॥५२॥
 दृश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते।
 यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले।
 जपेत्सप्तशती चण्डी कृत्वा तु कवचं पुरा ॥५३॥
 यावद्भ्रमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम्।
 तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ॥५४॥
 देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
 प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥५५॥
 लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥५६॥

देवी सुक्तम्

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
 नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्मताम् ॥१॥
 रात्राय नमो नित्यायै गौयै धात्र्यै नमोनमः।
 ज्योत्स्नायै चेन्दु रूपिण्यै सुखार्य सततं नमः ॥२॥
 कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
 नैर्ऋत्यै भूमतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥३॥
 दुर्गायै दुर्गपारायै सरायै सर्वकारिण्यै।
 ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥४॥
 अति सौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
 नमो जगत्प्रणिण्यै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥५॥
 या देवो सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥६॥
 या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
 नामस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥७॥
 या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥८॥
 या देवी सर्वभूतेषु निद्रा रूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नामस्तस्यै नमो नमः ॥९॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१०॥
 या देवी सर्वभूतेषु छाया रूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥११॥
 या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२॥
 या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३॥
 या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५॥
 या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६॥
 या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७॥
 या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिताः
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८॥
 या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिताः
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९॥
 या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०॥
 या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१॥
 या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२॥
 या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३॥

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४॥
 या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५॥
 या देवी सर्वभूतेषु भ्रातिरूपेण संस्थिता।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६॥
 इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
 भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥२७॥
 चित्तिरूपेण या कृत्स्नभेदद्वयाप्य स्थिता जगत्।
 नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥
 स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण।
 दिनेषु सेविता।
 करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥
 या सांप्रतं चोद्धतदैत्यता-पितैरस्माभिरीशाच सुरैर्नमस्य ते।
 य च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति न सर्वापदो भक्ति विनम्रमूर्तिभिः ॥३०॥

॥ इति देवीसूक्त ॥

आठ लाख मन्त्र जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है। जप के बाद त्रिमधु युक्त तिल अथवा दूध मिले अन्न से आठ हजार आहुतियों का हवन करना चाहिए। इसमें दशांश हवन का नियम नहीं है।

BILIOGRAPHY

१. संस्कृतसाहित्य

१. वेदिक वाङ्मय
ऋग्वेद With commentary of Sayana, Bombay, 1889, 1890
अथर्ववेद With commentary of Sayana, Bombay, 1895, 1898
२. ब्राह्मण ग्रन्थ
ऐतरेय ब्राह्मण Anandasrama Sanskrit Series, Poona, 1896
गोपथ ब्राह्मण Srivenkatesvara Press, Bombay, 1942
३. आश्रण्यक
ऐतरेय आरण्यक A.S. B, Calcutta 1876
तैत्तिरीय आरण्यक A.S. B, Calcutta 1872
४. उपनिषद्
५. केन उपनिषद्
कठ उपनिषद्
श्वेताश्वतार उपनिषद्] Ed. by Bahadur, K. P., New Delhi- 1962
६. रामायण (वाल्मीकि) Translated by Griffith, R. T. H., Varanasi, Poona, 1948
७. महाभारत Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1948
८. पौराणिक साहित्य
अग्नि पुराण Translated by M. N. Dutta, 1903-04
भागवत पुराण Geeta Press, Gorakhpur.
भविष्य पुराण Srivenkateshvara Press, Bombay, 1910
ब्रह्माण्ड पुराण Srivenkateshvara Press, Bombay, 1923
ब्रह्मवैवर्त पुराण A.S.S. Poona, 1935
देवी पुराण Srivenkateshvara Press, Bombay
गरुड पुराण Calcutta, 1890
हरिवंश पुराण Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1988
कालिका पुराण Srivenkateshvara Press, Bombay
लिङ्ग पुराण Calcutta, 1985
मार्कण्डेय पुराण A. S.B., Calcutta, 1862
मत्स्य पुराण A.S.S. Poona, 1907
शिव महापुराण Calcutta, 1893
स्कन्द पुराण Nag Publishers, Delhi, 1981
वायु पुराण Srivenkateshvara Press, Bombay, 1910

- वामन पुराण
वराह पुराण
विष्णु पुराण
विष्णु धर्मोत्तर
९. आगम साहित्य
अंशु भेदागम
पूर्वकारणागम
कामिकागम
सुप्रमेदागम
उत्तर कामिकागम
१०. शिल्पशास्त्र/ वास्तु शास्त्र
ईशान शिवगुरुदेवपद्धति
अपराजित वस्तु शास्त्र (विश्वकर्मा)
बृहतसंहिता (वराहमिहिर)
चतुर्वर्ग चिन्तामणि (हेमाद्रि)
हरिभक्ति विलास
मानसार
मानसोल्लास (भट्ट सोमेश्वर)
मयदीपिका
हयशिरसापञ्चरात्र
प्रीरामा लक्षण
प्रपञ्चसार तन्त्र
रूप मण्डन
समराङ्गण सूत्रार
शिल्परत्न
शिल्पशास्त्र (नारदीय)
शार्दातिलक
११. तन्त्र ग्रन्थ
ज्ञानार्णव तन्त्र
कुलार्णवन तन्त्र
गन्धर्वतन्त्र
महानिर्वाण तन्त्र
मेरु तन्त्र
पुरश्चयीर्णव तन्त्र
तन्त्रलोक
तन्त्रराज तन्त्र
बृहत तन्त्र सार
तन्त्र समुच्चय
तन्त्रसार
- A.S. S. Poona, 1906
All India Kashinath Trust, Varanasi.
do
Srivenkateshvara Press, Bombay, 1921

Aquoted by T. A. Gopinatha Raso,

In Elements of Hindu/ conography.

T.S.S. Trivandrum, 1920-24
Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta. (Mss. No. III. I. 63)
As quoted by D. N. Shukla and T. A. Gopinatha Raso,

Ed: P. K. Acharya, 1932
Govt. Oriental Series, Mysore, 1926.
Asquoted by D. N. Shukla and
T. A. Gopinatha Raso

MSS. No. 6050, Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta.
Gaekwad Oriental Series, Baroda, 1924-25
T. S. S Trivandrum, 1922
Ed. V. Raghavan, JISOA, III
T. T. S. Calentta, 1933

A. S.S. Poona, 1912.
Tantric Texts Series, Calcutta-1917
Chaukhambha Sanskrit Sereis, Varanas, 1986
T.S.S. Calcutta, 1919
N. S. P. Bombay, 1908
Kashmir Sanskrit Series, 1901-04
Kashmir Sanskrit Series, 1918
T.T. S., Calcutta, 1919
Prachya Prakashan, Varanasi, 1985
T.S.S. Trivandrum, 1919-21
T.T.S Calcutta, 1918

- प्रपञ्चसार तन्त्र
प्रपञ्चसार संग्रह
रुद्रयामलतन्त्र
१२. स्तोत्र
देवी माहात्म्य
लीलता सहस्र नाम
सौन्दर्य लहरी
१३. अन्य संस्कृत ग्रन्थ एवं काव्य
मृच्छकाटिकम्
वासवदत्ता
दशकुमारचरित
हर्ष चरित
कादम्बरी
नागनन्द
भोज प्रबन्ध
चण्डीशतक
१४. जैन ग्रन्थः
प्रतिष्ठा विधि
प्रतिष्ठासाहोद्वार
आचार दिनकर
निर्वाण कालिका
१५. बौद्धग्रन्थ
साधनमाला
निष्पन्न योगावली
२. आधुनिक ग्रन्थः
Acharya, P. K.
Agrawala, P. K.
Agrawal R. C.,
Agrawala, V.S.
As quoted by T. A. Gopinatha Raso.
T. T.M. S. Library, Thanjavur, 1963
Ed. Rama Shankar Mishra, Delhi, 1989
Chaukhamba Sanskrit Series, 1968
Ed. V. S. Agrawala.
Vanivilasa Press, Srirangam, 1918.
Vanivilasa Press, Srirangam, 1918.
Ed. Chaukhambha Sanskrit Series, Varanasi, 1962
Ed. Motilal Banarasidas, Delhi, 1962.
Ed. Munshi Ram Manoharlal, Delhi, 1983.
Ed. Chaukhambha Sanskrit Series, Varanasi, 1956
Ed. Royal Asiatic Society, London, 1896.
Ed. Motilal Banarasidas, Lahor, 1935
Ed. Chaukhambha Vidya Bhawan, Varanasi, 1961.
As quoted by
B.C. Bhattacharya.
As quoted by B.C. Bhattachaya.
Ed. Bansyotsh Bhattacharya.
As quoted by Bhattacharya Bensytors.
Dictionary of Hindu Architecture, Reprint, Delhi, 1978
Goddesses in Ancient India, New Delhi, 1984.
(i) "Goddess Mahishasuramardini in Early Indian Art," *Artibus Asiae*, Vol. XXI, 1958.
(ii) "Mahishasuramardini in Early Indian Art", *The Researcher*, Vol. VI, 1964-65.
(iii) "Khajuraho of Rajasthan-she temple of Ambita at Jagat," *Arts Asiateques*, Vol. X, 1964.
(iv) "A Rare Mahishasuramardini Relafe in the Natimal Museum," *East and West*, XVI, 1966.
(v) "Devi cult at Jagat", *Visvesvarananda Indological Journa*, Hoshiarpur, Sept, 1965.
(vi) "A Trracotta plaque of mahishasurmondini from Nagar Rajasthan", *Lalita kala*, Nos. 1 & 2, pp72-74.
Devīmāhātmya- The Glorification of the greaat Goddess, Varanasi, 1963.
Vamana Purana-A Study, Varanasi, 1964.
हर्ष चरित - एक सांस्कृतिक अध्ययन।

- Aini-Akbari
 Alhiruni's India,
 Alkazi, Roshan,
 Allan, J.,
 Altekar, A.S.,
 Archer, W. G.,
- Aryan K. C.
 Ashton, L.,
 Awasthi, A.B. L.,
 Bajpai, K. D.,
 Bakshi, D.N.,
 Balasubramaniam,
 Banerjea AK.,
- Banerji, R.D.,
 Barrett, A.,
- Barua, B. M.,
 Barnatt, Kempers,
 Basu, B. D.,
 Beal, Samuel,
 Bhattacharya, A,
 Bhattacharya, A.K.,
 Bhattacharya, B.C.,
 Bhattacharya, N. N.,
 Bhandarkar, R.G.,
 Bhattasli, N.K.,
 Biswas, S. S.,
 Boner, Alice.,
 Bosch, F. D. K.,
 Bose, M. M.,
 Bose, P.N.
 Briget & Roymond Alchin,
- Ed. Edward Sachau, London, 1887.
Ancient Indian Costumes, New Delhi, 1983.
Catalogue of Coins of Ancient India, London, 1983.
Corpus of Indian Coin, IV, Varanasi, 1957.
Indian Paintings in Punjab Hills, London, 1952.
Paintings of the Sikhs, London, 1968.
Wall Paintings of the Western Himalayas, London, 1952.
Rural Art of the Western Himalayas, Delhi-1985.
The Art of India of Pakistan, London, 1997-68.
Studies in Skanda Purana, Lucknow, 1966.
Archaeology in Uttar Pradesh, Lucknow, 1959.
Hindu Divinities in Japanese Buddhist Pantheon, Calcutta, 1979.
Early Chola Art, Bombay, 1963.
Discourses on Hindu Spiritual Culture.
Ramasaran Satsang, Sikanderabad, (U.P.) 1971.
Eastern School of Medieval Senlpture, A. S. I, New Impereal Series, Vol. XLVII, Delhi-1952.
 "A Terracotta Plaque of Mahishasuramardini" *Oriental Art*, XXI, 1975-76.
-Early Chola Architecture and Sculpture, 806-1014, AD. London, 1974.
 A Cultural History of Assam, Calcutta, 1951.
Ancient Indian Art, Hasachusetts, 1959.
Cultural History of Assam, Nowgong, Assam, 1951.
Chinese Account of India, Calcutta, Reprint, 1958.
 Iconos and Sculptures of Early and Medeival Assam, Delhi, 1978.
A Corpus of Dedicatory Inscreptions from Temples of of west Bengal, Calcutta, 1982
Jain Iconography, Lahore, 1939.
History of Sakta Religion, New Delhi, 1977
History Tantric Religion, New Delhi, 1977.
Indian Mother Goddess, New Delhi, 1974.
Vaishnavam, Saivism and other Tinor Religious Systems, Poona, 1925
 -"Vasantgarh Inscription of Varalat", *Epigraphia Indica*, XIX-XXIII, 1936
Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures in Decca Museum, Decca, 1929.
Terracottas of Bengal, Delhi, 1981.
Principles of Composition in Hindu Sculptures Leiden, 1962.
Remarques Surles Influencess reciproques del, Amasterdam, 1952.
Post Chaitanya Cults of Bengal, Calcutta-1930.
Principles of Silpasastra, Delhi, 1978.
The Birth of Indian Civilization, Victoria, Austratra, 1968

- Burgess, J., *Ancient Monuments, Temples and Sculptures of India*, I & II, London, 1897-1911.
- Camplesll, Joseph., *-Architectural Antiquities of Western India*, London, 1903.
- Chanda, R. P., *The Art of Indian Asia I & II*, New York, 1955.
- Chaudhary, R. K., *Medival Indian Sculptures in British Musum*, London, 1937
- Chopra, A., *Kautilya's Political Ideas and Instructrons*,
"The Temples of Himachal", *The Indian Magazine* II, No. 2, 1982.
- Chowdhary, H. Roy, *Political History of Ancient India*, Calcutta, 1938.
- Coomaraswamy, A.K., *Art of India and Ceylon*, New York, 1905.
"Early Indian Iconography", *Eastern Art*, Philadalphia, 1928.
History of Indian and Indonesian Art, London, 1927.
- Cousen, H., *Chalukyan Architecture of Canarese Districts*, Calcutta, 1926.
- Crooke, H., *Popular Religions and folklores in Northern India*, Westminster, 1896.
- Cunningham, A., *Coins of Indo Scythians and Kushanas*
- Dalton, E. T., *Descriptive Ethnology of Bengal*, Calcutta, 1872
- Dasgupta, C. C., *Paharpur and its Monuments*, Calcutta, 1961
- Dasgupta, S. B., *Religious cults as Background of Bengal Culture*, Calcutta, 1946.
- Deva, K., *Images of Nepal*, New Delhi, 1984.
"Temples of Northern India", New Delhi, 1969.
- Dhavalokar, M. K., *Masterpicus of Indian Terracottas*, Bombay, 1977.
- Dikshit, S.K., *Mother Goddess*, Poona, 1943.
- Dorson, John, *Classical Dictionary of Hindu Mythology*, London, 1879.
- Eliot and Dowson, *History of India as told by its own Historians*, Calcutta, 1955.
- Elirabatha and Richard Barlet, *A Hand Book of Styles and Forms*, London.
- Fabri, Charles, *A History of Indian Dress*, Calcutta 1960.
- Fausball, V., *Indian Mythology*, London, 1902.
- Frecric, L., *Indian Temples and Sculptures*, London, 1959.
Temple Gateways in Sonth India, Oxford, 1963.
- Fergusson, James, *Tree and Serpent Worship in Anceint India*, London, 1868.
- Fergusson and Burgess, *History of Indian and Eastern Architecture*, London, 1876.
- French, J. C., *The Art of Pala Empire of Bengal*, Oxford, 1928.
- Ganguly, O.C., *Indian Terracotta Art*, New York, 1959.
- Goswamy, *Classical Dictionary of India*, Madras, 1871.
- Garett, J., *Jain Art and Architecture*, Vols.1-3, New Delhi, 1974.
- Ghorh, A., *Early Wooden Temples of Chamb*, Leiden, 1955.
- Goetz, Herman, *The Art & Architecture of Bikaner State*, Oxford, 1950.
- Gopinatha Rao, T.A., *Elements of Hindu Iconography*, Madras, 1914.
- Gowswamy, A., *Indian Temple Sculpture*, Calcutta, 1926.
- Grunwedel, *Mythologic des Buddhismus in Tibet*,
- Gupta Parmeshwarilal, *Gangetic Valley Terracsotta Art*, Varanasi, 1972.
- Gupta, R. S., *Iconography of Hindu, Buddhist & Jains*, Bombay, 1972.
- Gupta, S.L., *Roots of Indian Art*, Delhi, 1980.
"Costumes, Textiles and Coiffcure in Ancient and Medieval India", Delhi, 1972

- Handa, D.,
 Harle, J. C.,
 Hastings, J.,
 Havell, E.B.,
 Iyer K. Bhartha,
 James, E.D.,
 Joshi, Munish Chandra,
 Kala, S. C.,
 Kalhana
 Khandalavala, Karl,
 Keith, A.B.,
 ford,
 Kennedy, Col.,
 Kielhorn, F.,
 Kosambi, D. D.,
 Kramrisch. Stella,
 Kumar, Pushpendra,
 Kuwayama, S.,
 Lalve, P. G.
 Law, B.C.,
 Leadbeater, C.W.,
 Maedonnel, A. A.,
 Mackay, E.F. C.,
 Majumdar, R. G.,
 Margabandhu, C.,
- Some Unpublished Sculptures from pirjour," *Visvesvarananda Indological Journal*, XIV, 1976.
Gupta Sculpture, Oxford, 1974.
 -"On a disputed element in the Iconography of Early Mahishasuramardini images," *Arts Orientalis*, 1970.
 -" On the Mahishasuramardini Images of Udaigiri Hills, *Journal of Indian Society of Oriental Art*, 1971-72.
Encyclopaedia of Religion and Ethics, V, Edinburgh, 1967.
Ancient and Medieval Architecture, New Delhi, 1972.
 -*A Hand Book of Indian Art*, London, 1920.
 -*Ideals of Indian Art*, London, 1911.
 -*Indian Sculptures and Paintings*, London, 1908.
 " An early seal of Mahishasuramardine," *Artibus Asiae*, XXXI, 1969.
Prehistoric Religion, New York, 1969.
 -The cult of Mother Godeless, London, 1959.
 ऐतिहासिक संदर्भ में शाक्त तन्त्र, नई दिल्ली, १९८९
 भारतीय मूर्तिकला, इलाहाबाद, १९७२.
 -*Terracotta Figures from Kosamlu*, Allahabad, 1950.
 -*Terracottas in Allahabad Museum*, Allahabad, 1980.
 राजतरङ्गिणी, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७०
Indian Sculptures & Paintings, Bombay, 1987.
Black Yajurveda, Vol. II
 -*Religion and Philosophy of the Vedas and Upanishads*, Oxford, 1925.
 -*History of Vedic Literature*, London, 1950.
Ancient Hindu Mythology, London, 1831.
Katyayana and Patanjali, Bombay, 1976.
Cultural Outlines of Ancient India, London, 1965.
 " Pala and Sena Art", *Roopam*, Calcutta, October, 1929.
 -*Indian Sculpture*, Pennsylvania, 1960.
 -*Hindu Temples*, Vols. I & II, Calcutta, 1946.
 -*Survey of Paintings in Deccan*, Hyderabad, 1937.
Sakti cult in Ancient India, Varanasi, 1974.
 "The Turki Sahis and Relevant Sculptures in Afghanistan," *East and West*, 26, 2-3, 1976.
Studies in Devi Bhagvata, Bombay, 1973.
Historical Geography of India, Paris, 1954.
The Chakras-A Monograph, Madras, 1979.
Vedic Mythology, Delhi, 1961.
Early Indus Civilization, New Delhi, 1976.
 -*Further Excavations at Mohanjodaro*, New Delhi, 1937-38.
History and Culture of Indian People, Vols. I-IV, Bombay, 1954-70
 -*Classical Accounts of India*, Calcutta, 1960.
Archaeology of the Satvahana Kshatrapa Times, Delhi, 1986.

- Marshall, John,
 Mehta, R.N.,
 Meister Michael, W.,
 Mishra, Umesh,
 Mishra, V.,
 Mitra, D.,
 Mittal, A.C.,
 Monier Williams,
- Moor, Edward,
 Mukerjee, Ajit,
 Munshi, K. M.,
 Nagar, S. L.,
 Nagaswamy, R.,
 Newman, Erich,
 Ohri, V. C.,
 Pande, Susmita,
 Pandit, M. P.,
 Panigrahi, K. C.,
 Pāṇini
 Patil, D.R.,
 Picron, C.,
- Piggot, S.,
 Radha Krishnan, S.,
 Rambach, P.,
 Ray, Nihar Ranjan,
 Rowland, B.,
 Roychowdhary, HC.
 Sachau, Edward. C.,
 Sankalia, H.D.,
- Sarkar, D.C.,
- Sarkar, J. N.,
 Sarasvati, S. K.,
- Sastri, Hirananda
- Sastri, Hari Krishna,
 Sastri, H. P.,
- Sastri, Nilakantha, K. A.,
- Sastai, Ganapati, T.,
- Mohenjodaro and Indus Civilization*, London, 1931.
Excavations at Nagara, Baroda, 1968.
Jain Temples in Central India,
History of Indian Philosophy, I-III, Allahabad, 1966.
Mahishasuramardini, Delhi, 1984.
Bronzes from Achyutrajpur, Delhi, 1978.
Inscriptions of the Imperial Paramaras, Ahmedabad, 1979.
Hindu Religious Thought and Literature, London, 1874.
-Indian Wisdom, London, 1875.
-Sanskrit-English Dictionary, Reprint, N. Delhi, 1960.
Hindu Pantheon 1810.
Kundalini, Delhi, 1982.
Saga of Indian Sculpture, Bombay, 1957.
Mahishasuramardini in Indian Art, New Delhi, 1988.
Tantric Cults of South India, Delhi, 1982.
The Great Mother,
Art of Himachal Pradesh, Simla, 1975.
Birth of Bhakti in Indian Religion and Art, New Delhi, 1982.
Studies in Tantras and Vedas, Madras, 1963.
Achaeological Remains of Bhubaneshwar Bombay, 1961.
Ashtadhyāyī, Trs. S.C. Vasu, Calcutta, 1968.
Monuments of Udaigiri, Gwalior, 1948.
 "De Rambha a Lalita Devi dans la Statuaire Pala-Sena en pierre", *Artibus Asiae*, XLIII, 4.
Prehistoric India, London, 1950.
Indian Philosophy, London, 1927.
The Golden Age of Indian Art, London, 1955.
Maurya and Sunga Art, Calcutta, 1965.
Art and Architecture of India, London, 1953.
Studies in Indian Antiquities, Calcutta, 1982.
Albiruni's India, Delhi, 1964.
Aspects of Indian Archaeology, Delhi, 1977.
-Excavations at Maheshwar and Nevadatoli, Poona, 1971
Sakti Cult and Tara Cult
-Studies in Indian Coins, Delhi, 1968.
History of Aurangzeb, Calcutta, 1967
Early Sculptures of Bengal, Calcutta, 1937.
-Survey of Indian Sculptures, Calcutta, 1957.
 "The Ruined Temple of Nurpur" *ASIAR*, 1904-05.
 "-Origin of Tara Cult", *MASI*, No. 20, Delhi, 1925.
South Indian Images of Gods and Goddesses, Madras, 1916
Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in Govt. Collection under A.S.B. Calcutta, 1917
A History of South India, Madras, 1976.
-Comprehensive History of India, I & II, Bombay, 1957.
Srikumara's Silparatna, T. S.S. XCVIII

- Satyananda, Swami
Schlumbergre, D.,
Seffest, O.,
Seshadri, N.,
Vol.
Seth, Mira,
Shah, U.P and Dhakey, M. A.
Sharma, R. K.,
Sharma, B.N.,
Shukla, D. N.,
Singh, Latan Prasad,
Singh, Mian Gorardhan,
Sivaramamurti, C.,
Smith, Danial,
Saundrarajan, K. V.,
Srinevasan, P. R.,
Srivastava, H.L.,
Taddie, M.,
Thakore, S.H.,
Thaplujal, K.K.,
Tiwari, J. N.,
Tod, J.,
Vaidya, Kishore Lal and others.
Vats, M. S.,
Viennot, O.,
Veronica, Jons,
Voghal, J. Ph.,
Word, W.,
Silkins, W. J.,
Willams, Monier,
Whitehead, H.,
Whitehead, R. B.
Woodroff, John,
Zimmer, H.R.,
Tantra of Kundaliniyoga, Mongher, 1973.
"Le marbre Scorette", *Arts Asiatiques* Vol. II, 1955.
Dictionary of Classical Antiquities, London, 1864.
"Mahishasuramardini", *Journal of Myrore University*, (Arts) XXII, 2, 1963.
Wall Paintings of Western Himalayas, Delhi, 1976.
Aspect of Jain Art and Architecture, Ahmadabad, 1975.
The Temple of Chausath Yogini at Bheraghat, Delhi-1978.
"Sakti Sculptures from Central India", *Journal of Indian Society of oriental Art* II, 1967-68.
Hindu Canons of Iconography and Paintings Gorakhpur, 1958.
भारतीय वास्तु शास्त्र, गोरखपुर, १९५८.
Tantra, Delhi, 1976.
Art and Architecture of Himachal Pradesh, Delhi, 1983.
Indian Bronzes, Bombay, 1962.
Rishis in Indian Art and Literature, Naw Delhi, 1981.
-*South Indian Bronzes*, Bombay, 1963.
Vaishnava Iconography, Madras, 1940.
"Devi Cult Nucleus at Jagat-Rajasthan", *Vishvesvarananda Indological Journal*, Hoshiarpur, March, 1963.
Bronzes of South India", *Bulletin of Madras Government Museum*, Madras, 1963.
"Excavations at Agroha-Punjab", MASI-61, Delhi, 1952.
"Mahishasuramardini Images from Tapa Sadar, Gazni", *South Asian Archaeology*, London, 1973.
Catalogue of Sculpture in Archaeological Museum, Gwalior.
Studies in Ancient Indian Seals, Lucknow, 1972.
Goddess Cults in Ancient India, New Delhi, 1985.
Annals and Antiquities of Rajasthan, London, 1829.
Pahari Chitra Kala, (Hindi) Delhi, 1969
Excavations at Harappa, Vols. I & II, Delhi, 1940.
"The Goddess Mahishasuramardini in Kushana Art," *Artibus Asiae*, XIX, 1956.
-"Mahishasuramardini from Siddhi Ki Gupha, Deogarh, "
Journal of Indian Society of Oriental Art, 1971-72.
Indian Mythology, London, 1967.
Antiquities of Chamba State, Vol. I Calcutta-1911.
On Yuan Chwang's Travels in India, Delhi, 1961.
Hindu Mythology, Calcutta, 1882.
Religious Thought and Literature, London, 1874.
-*Indian Wisdom*, London, 1875.
Sanskrit English Dictionary, Delhi. 1960.
Village Gods of South India, Calcutta, 1916
Some Rare Indo Greck and Scythian Coins, N.S. XIV, 1910.
Sakti and Sakta, Madras, 1951.
Art of Indian Asia, New york, 1960.

Acharological Journals and Periodicals

Ancient India No. 4.*ASIAR*, 1929-27*C.I.* I, III, V*Epigraphia Indica*,Nos. I, II, III, IV, IX, X, XII, XIV, XV, XVI, XVII, XVIII,
XIX, XX, XXI, XXVI,*Indian Archaeology-A Review*, 1978-79*JRAS*, 1910*MASI*, No. 66*S. I. I*, VOL. I, (Pallava Period).

शुद्धि-पत्र

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धि	शुद्धि	पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धि	शुद्धि
५.	३३	यह देवी	देवी	२७.	१२	Beldraef	Beldraf
६.	१	माकण्डेय	मार्कण्डेय	३०.	१०	हस्तलेखा	हस्तरेखा
६.	१	पराण	पुराण	३०.	१७	प्रतिष्ट	प्रतिष्ठा
६.	६	महात्म्य	माहात्म्य	३०.	३३.	लोग को	लोग उनको
६.	१३	त्र्यम्बकेश्वर	त्र्यम्बकेश्वर	३०.	३६.	घोषण	घोषणा
६.	२२	मन्दाकिनी	मन्दाकिनी की भान्ति	३०.	३६.	ब्रह्म	ब्रह्म
६.	२५	ब्रह्म	ब्रह्मा	३०.	३९	समत्र	समक्ष
६.	३३	निर्यन्त	नियन्त्रित	३१.	३४	शकुम्भरी	शाकम्भरी
६.	३४	रहती	To be deleted	३२.	३८	व्यापू	व्याप्त
७.	४	रूपवन्दन	रूप में वन्दन	३३.	८	निम्बों	नितम्बों
७	२७	पश्चिम भी	पश्चिम	४७.	१	पर्वक्षण	पर्यवेक्षण
७.	२९	उसके उसके	उसके	४७.	२	थ भी	साथ ही
८.	२०	गोस्वाम	गोस्वामि	४७.	३	रित में	भारत में'
८.	२९.	गोस्वामी	गोस्वामि	४७.	३	क	के।
८.	३६	जिन्हों	To be deleted	४७.	४	कल	काल
९.	५	वनाश	विनाश	५३.	६	शामहिनी	अम्भरिणी
१०.	१०	महिष्मदी	महिष्मती	५३.	१६	पर्थवलोकन	पर्यावलोकन
१०.	१७	माहात्म्य	माहात्म्य	५३.	२४	माहात्म्य	माहात्म्य
१०.	१८	विभिन्न	विभिन्न	६४.	२९	के	को
१२.	१०	जट	नट	६४.	३२	मार	मारा
१३.	१८	माहात्म्य	माहात्म्य	६४.	४१	रिक्त बीज	रक्तबीज
१४.	२	परब्रह्म	परब्रह्म	६५.	३०	हि ध्रुवं	हिध्रुवं मृत्यु
१४.	२३	रिद	रिदं	६५.	३७	मविष्यति	भविष्यति
१५.	३३	तू	ही	६७.	१५	रूप,	रूप हे जो,
१६.	२५	शक	To be deleted	६७.	४१	नारदेव	नादेन
१६.	२९	परिणाम चाट	परिणत हुआ	६७.	४२	परमार	परमा
१७.	१	ब्रह्मण	ब्रह्म	७०.	७	दैत्यन्द्र	दैत्येन्द्र
१८.	७	आध्यात्मिकता	आध्यात्मिकता	७०.	८	अधिकारोचक	अधिक रोचक
१९.	११	एतिहासिक	एतिहासिक'	७२.	१४	महासुरऽम्	महासुरम्
२१.	३५	एन्दी	ऐन्द्री	७६.	१४	एवं	एव
२१.	४४	देत्वन	देखना	७८.	१९	द्वितीय	द्वितीयं
२३.	संदर्भ-(५)	M	Mohenjadaro and Indus civilisation pp.56-74.	८२.	६	ब्रह्म	ब्रह्मा
२४.	२१	devese	diveese	८४.	२	धर्मावलवियों	धर्मावलंबियों
				८४	१४	caolesee	coalesce
				८४.	१८	to a his	to his

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धि	शुद्धि
८४.	१८	when	who
८५.	१७	दोन	दोनों
८६.	४	काल तेरह	काली तथा तेरह
८६.	२२	करूँगा	करूँगी
९२.	२९	कोप	कोप
१०४.	२	टोस	ठोस
१०६.	७	मगस्थ	मृगस्थ
१०९.	२३	विलाड	बिलाव
११०.	२४	वृषभ	वृषभ
११०.	३३	अपवन	अषावन
१११.	३	मजेदहि	महेदहि
११३.	७	प्राप्त	प्राप्ति
११३.	७	पाशै	पाश
११३.	१८	Sivaramamurte C Sivaraamurti C	

पृ० सं०	पंक्ति सं०	अशुद्धि	शुद्धि
११६.	१	कसिद्ध	सिद्ध
११६.	६	प्रजा कि	प्रजापति की
११६.	१२	पूषण का	पूषण की
११६.	१७	अपेन	अपने
११६.	३१	ज्येष्ठ	ज्येष्ठा
११६.	३३	कुधितहारे	कुधित हो
११७.	१०	देवानाङ्ग	देवानां
११७.	१९	पुराणिक	पौराणिक
११७.	२८	योनी	योनि
१२६.	४०	ब्रह्म	ब्रह्मा
१२६.	४३	दक्षिण	दक्षिण से
१२७.	१	से हा सकता है	से हो सकता है।
१२७.	१५	त्रिषि	ऋषि

रुद्रयामलतन्त्रम्

नकावच हकावच तनीव्य गृहमे स्थितम् ।
 नकावच तकावच तनीव्य गृहमे स्थितम् ।
 नकावच तकावच तनीव्य गृहमे स्थितम् ।
 नकावच तकावच तनीव्य गृहमे स्थितम् ।
 नकावच तकावच तनीव्य गृहमे स्थितम् ।

चतुष्टयम् । (२४)

श्री १७ ६	कर्म म म	लोहिक भ २ म	गृह ब ह
श्री १७ ६	मृतात उ प ह	लोहिक भ २ म	गृह ब ह
श्री १७ ६	मृतात मृतात	लोहिक भ २ म	गृह ब ह
श्री १७ ६	मृतात मृतात	लोहिक भ २ म	गृह ब ह

सूच्य चक्रं प्रवक्ष्यामि हिताहित फलप्रदम् ।
 इतदुक्तं चक्रं प्रवक्ष्यामि गृहीत्वा जपमाचरेत् ।
 वागदक्षिणं चक्रं सप्तरेखाः समालिखेत् ।
 भिक्षा तर्पणं चक्रं सप्तरेखाः समालिखेत् ।



Fig 1



Fig. 3



Fig. 2

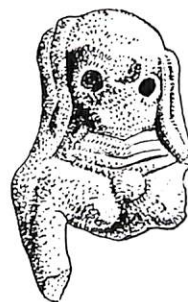
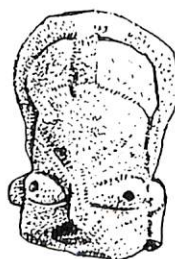


Fig. 4

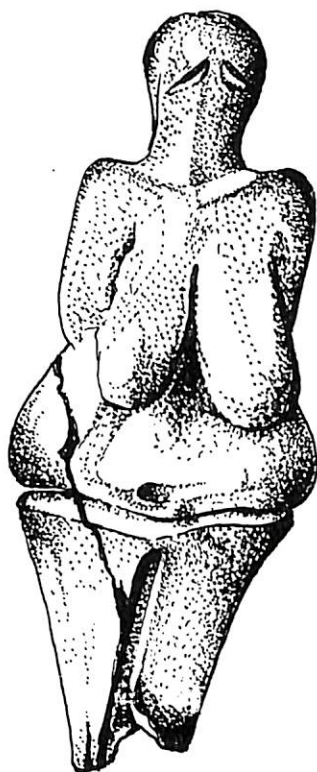


Fig. 5



Fig. 7



Fig. 6



Fig. 8

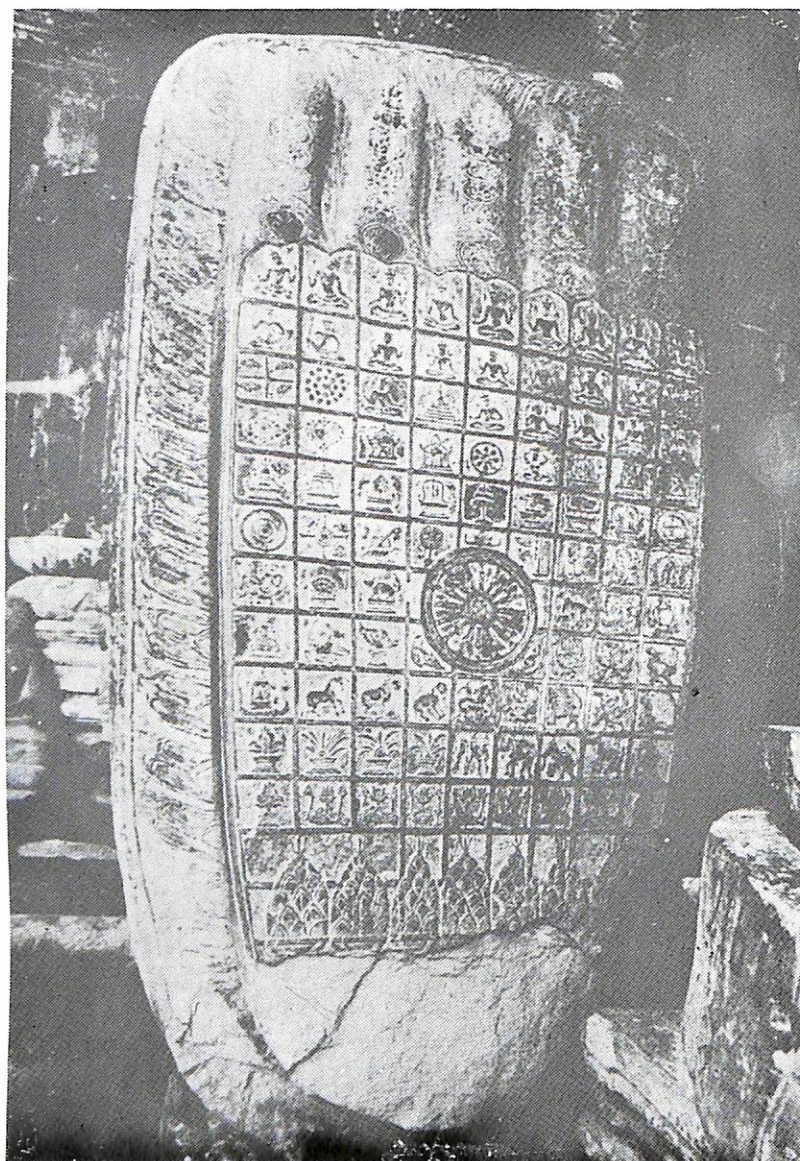
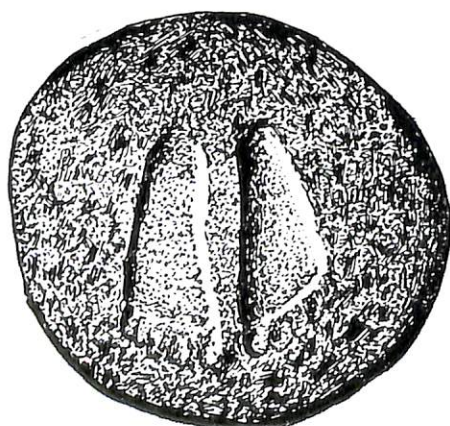
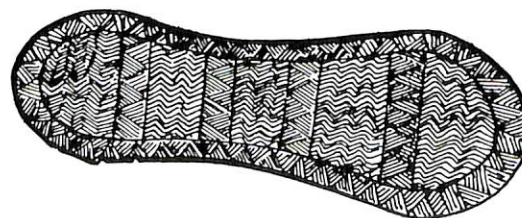


Fig. 9



Carving of foot prints from a slab at
Bunsoh.



Sandle-shaped idol, 2400 B.C., Portugal,

Fig. 10

यत्तवान् । मावर्षिः
मागानुनात्वनय्य
शस्युद्रवः । सुनय्य
ननुवः शतवानुपा
ननुवः



सृष्टयन्त्रेण यामनुः कथा ।
मन्त्रेण च विपः । मन्त्रेण च
नामनाम्ना च मन्त्रेण च
। कालादिः । सिद्धिस्तथा ।
निर्दिष्टः । ततः त्वत्तु च मन्त्रः

9.

[illegible]

Fig 11

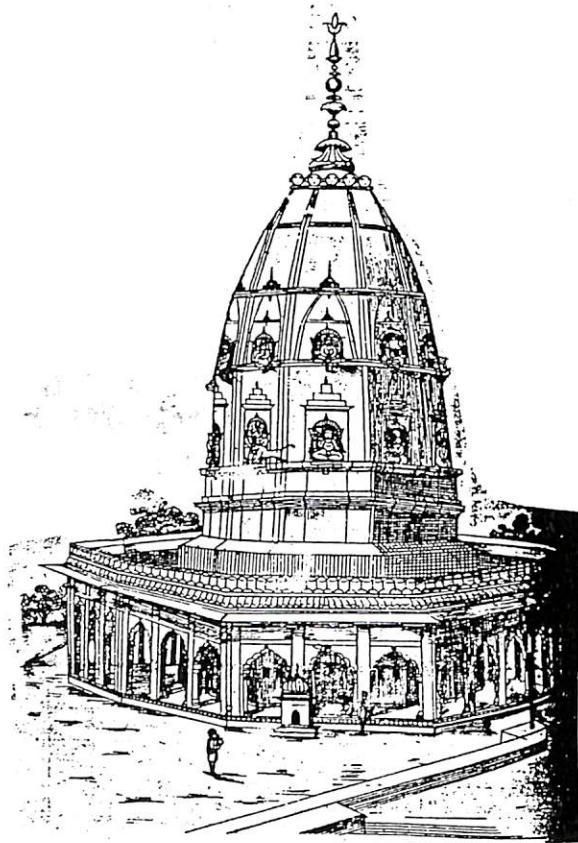
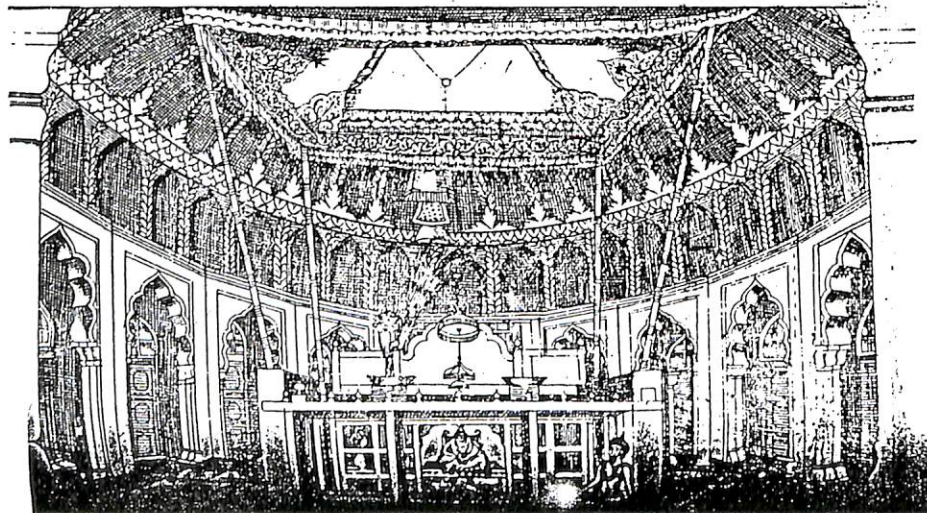


Fig. 12 (क)



12 (ख)



Fig. 13

JATA



Fig. 15

KIRITA



Fig. 14

MAYURA



Fig. 16

KARANDA

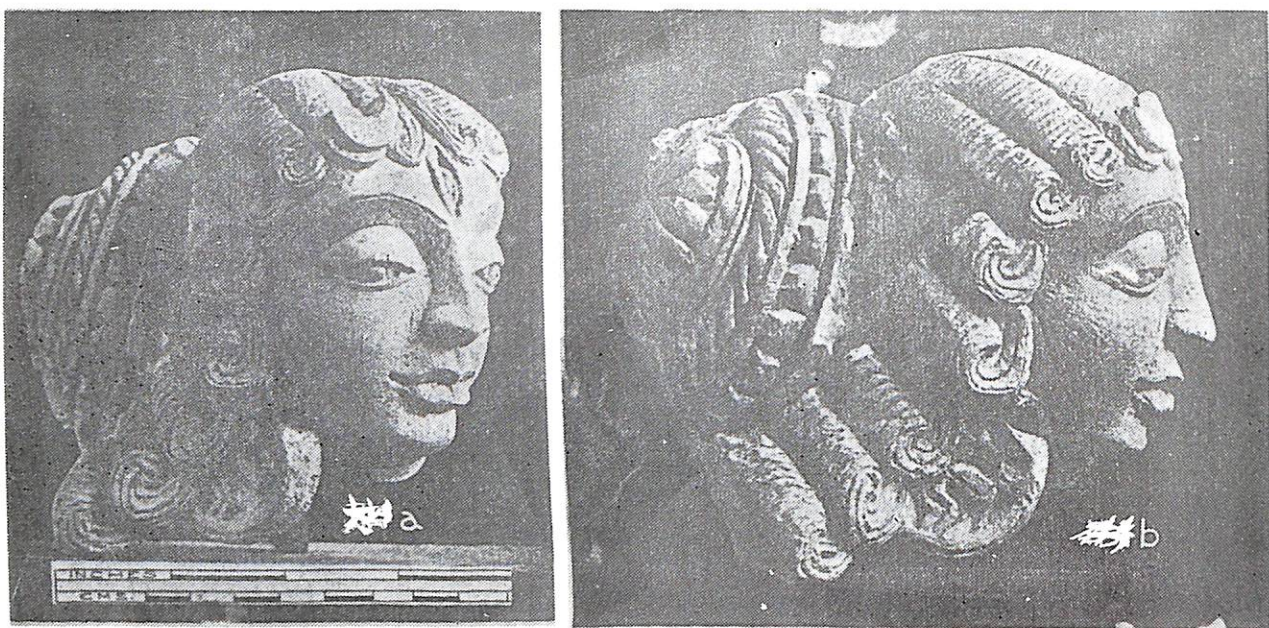


Fig. 17

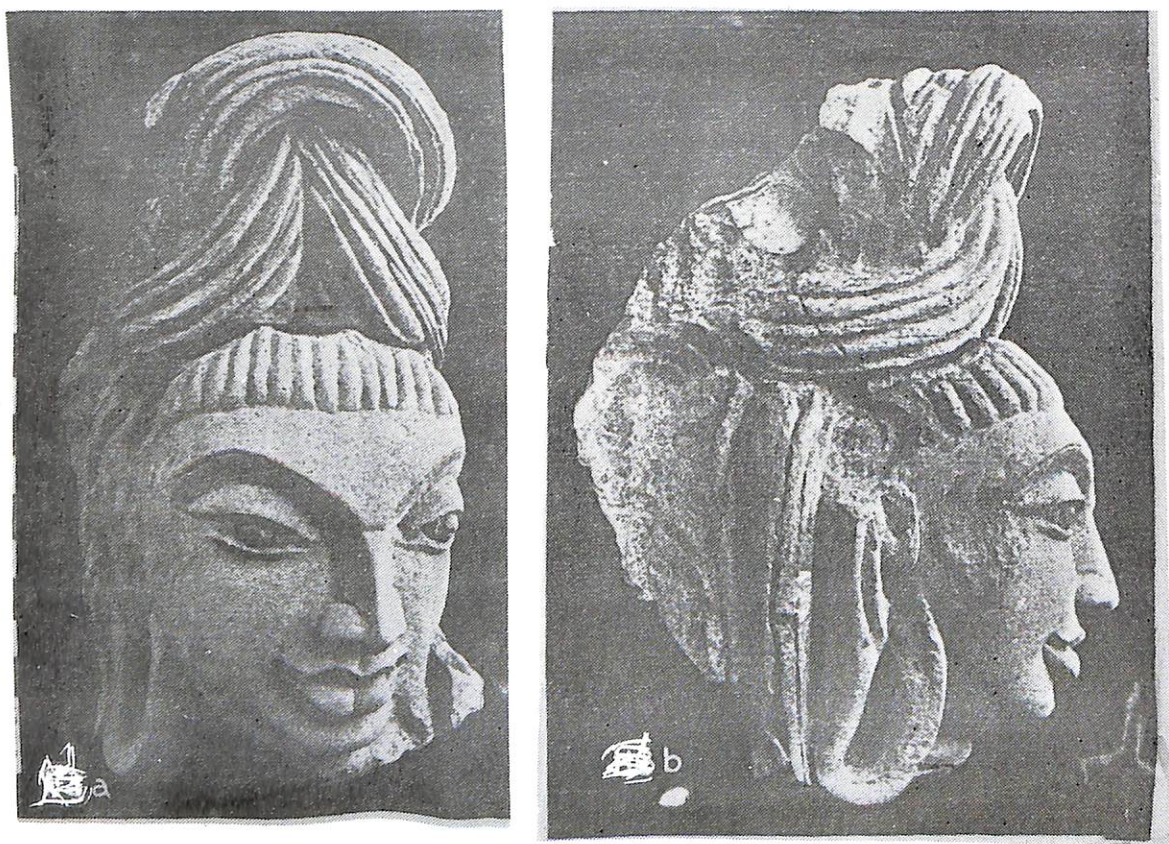


Fig. 18



Fig. 19

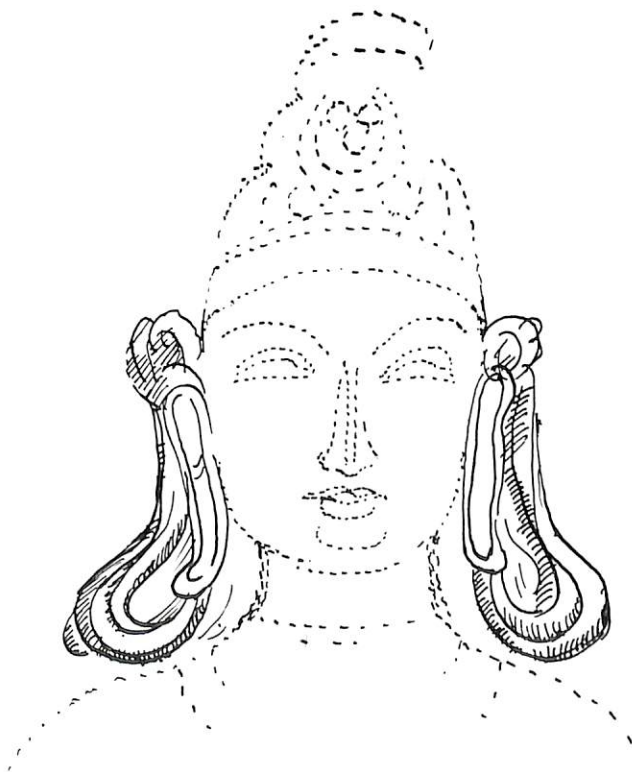


Fig. 20

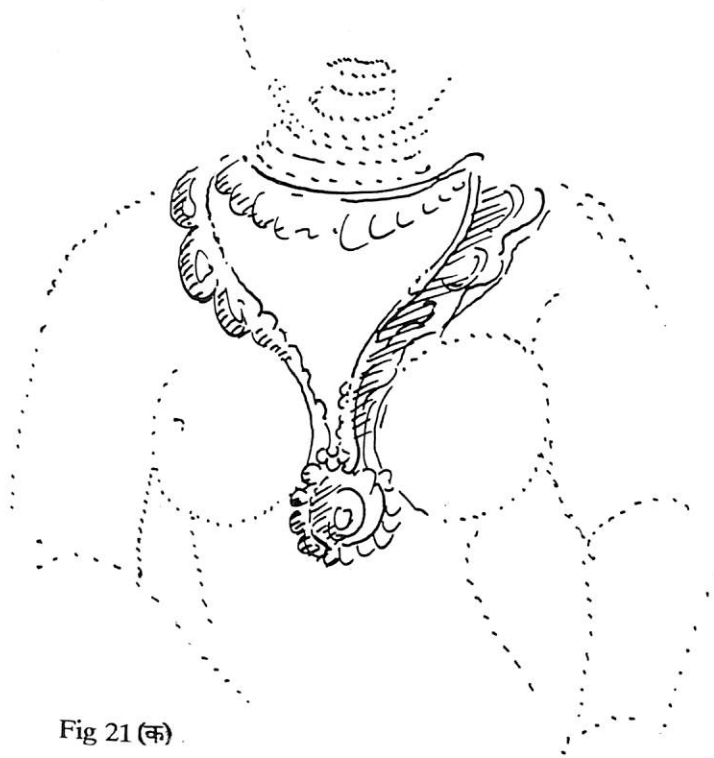
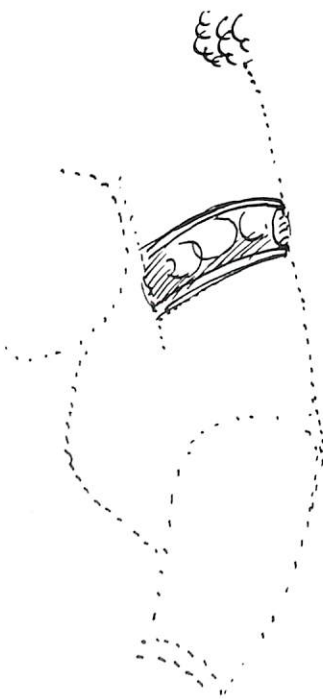


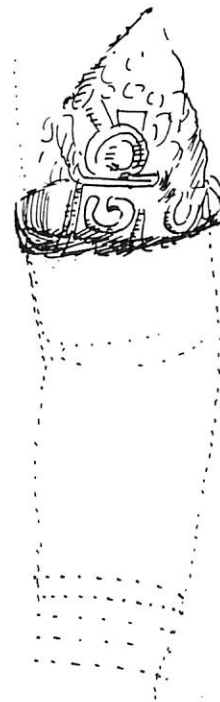
Fig 21 (क)



21 (ख)



21 (ग)



21 (घ)

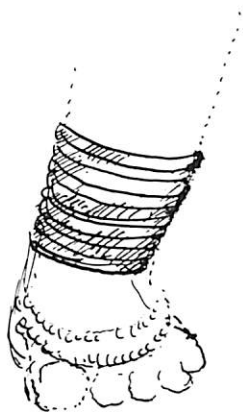


Fig. 22

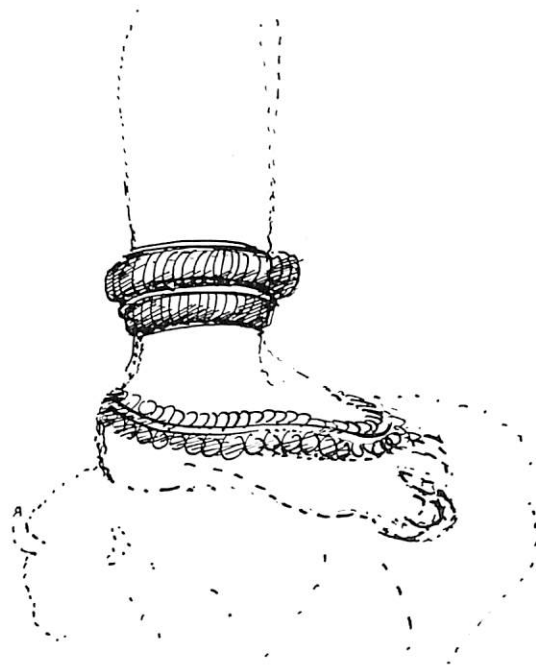


Fig. 23

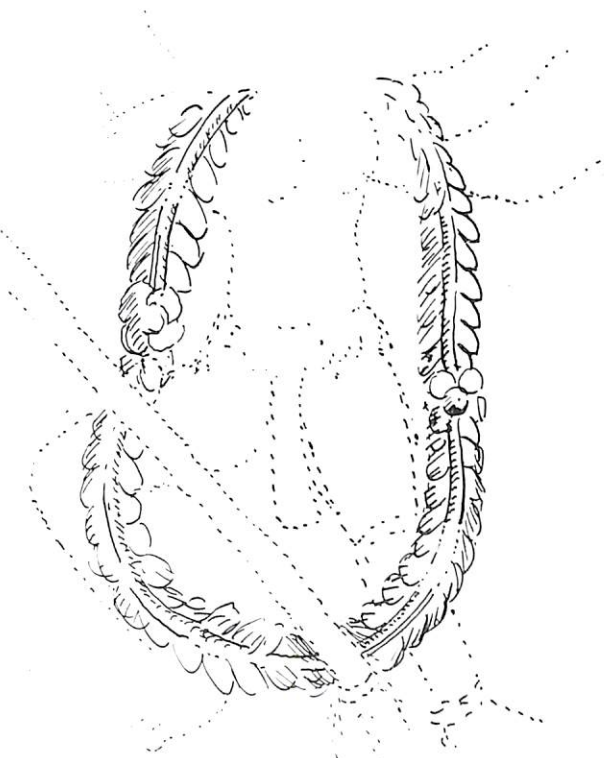


Fig. 24

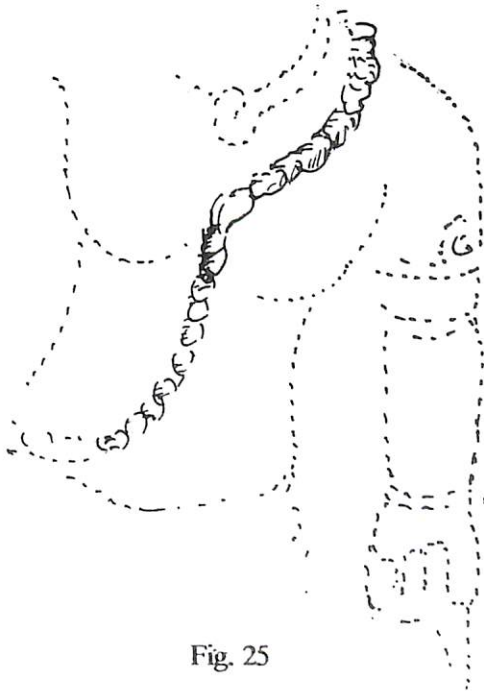


Fig. 25

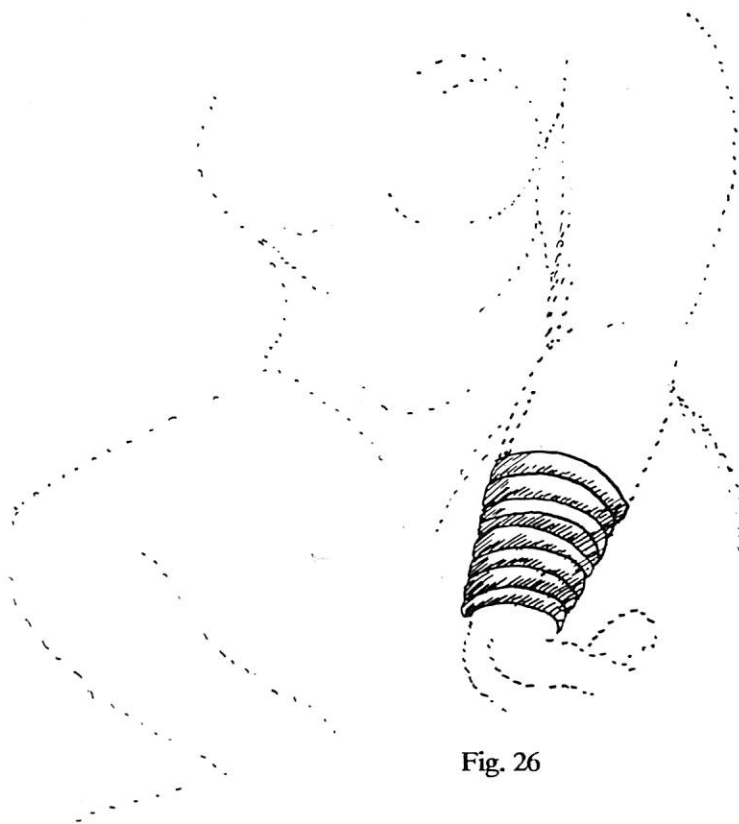


Fig. 26

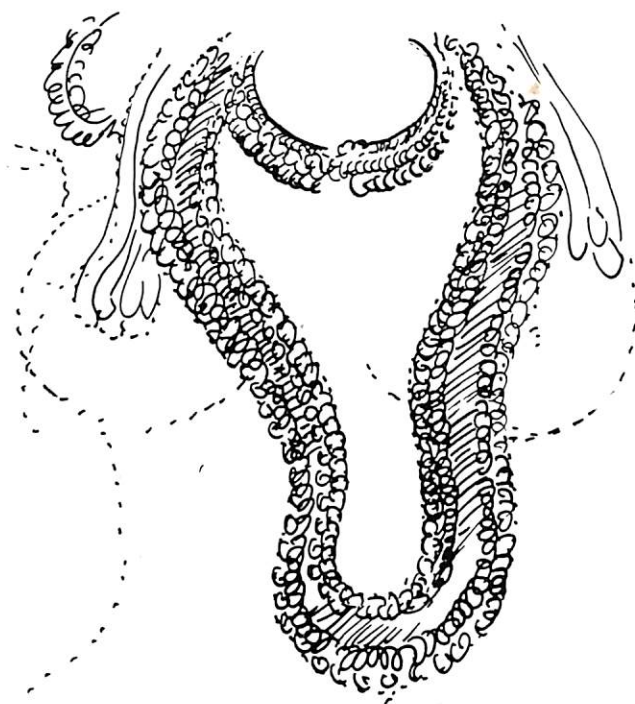


Fig. 27

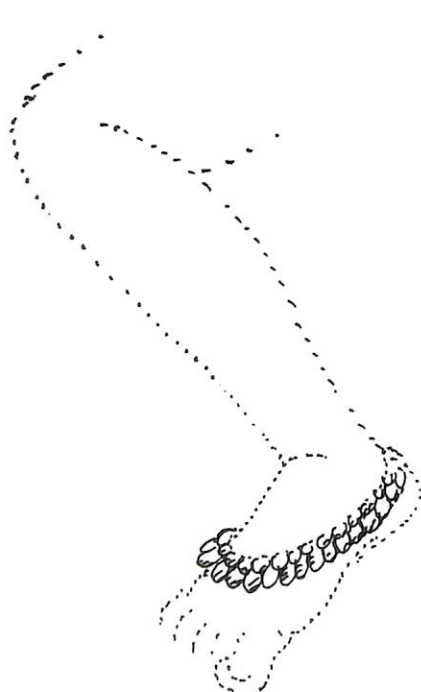


Fig. 28

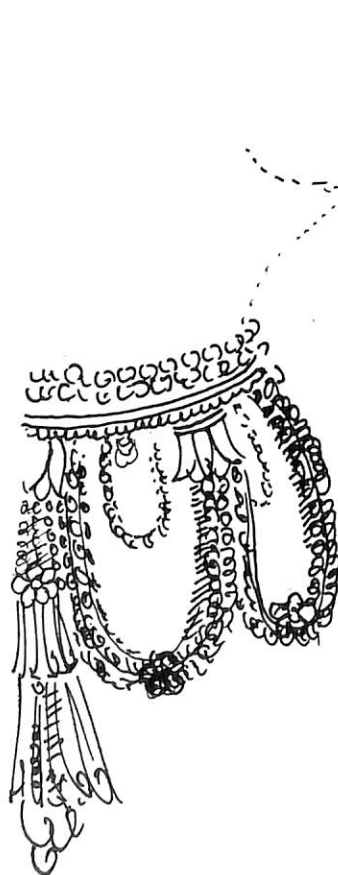


Fig. 29

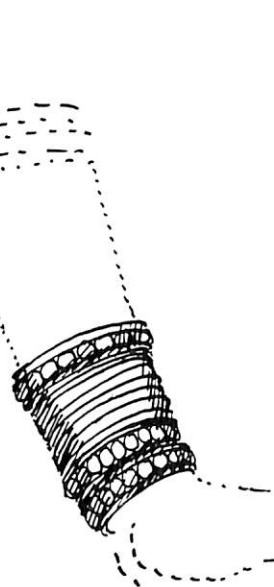




Fig. 30



Fig 31

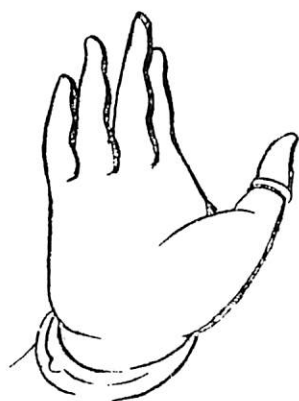


Fig. 32



Fig.33



Fig. 34

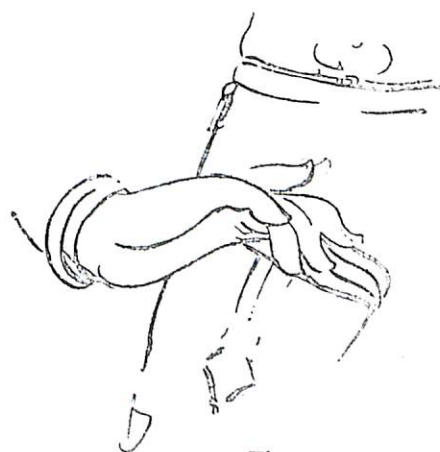
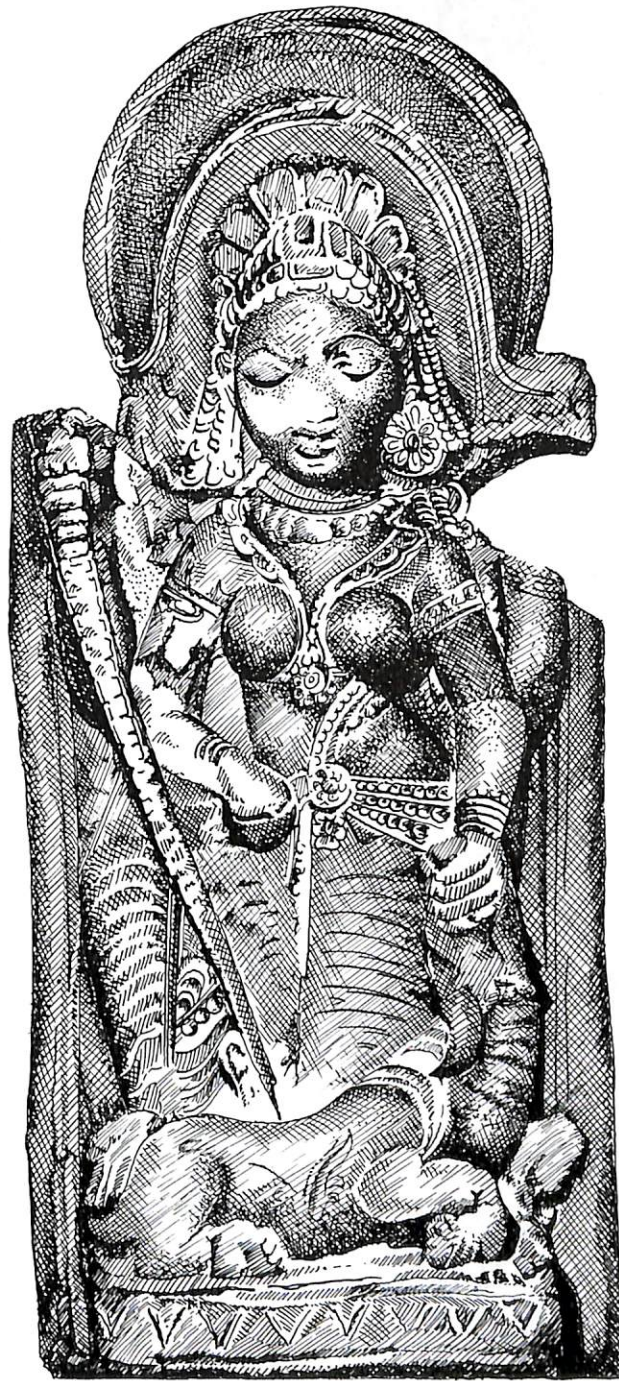


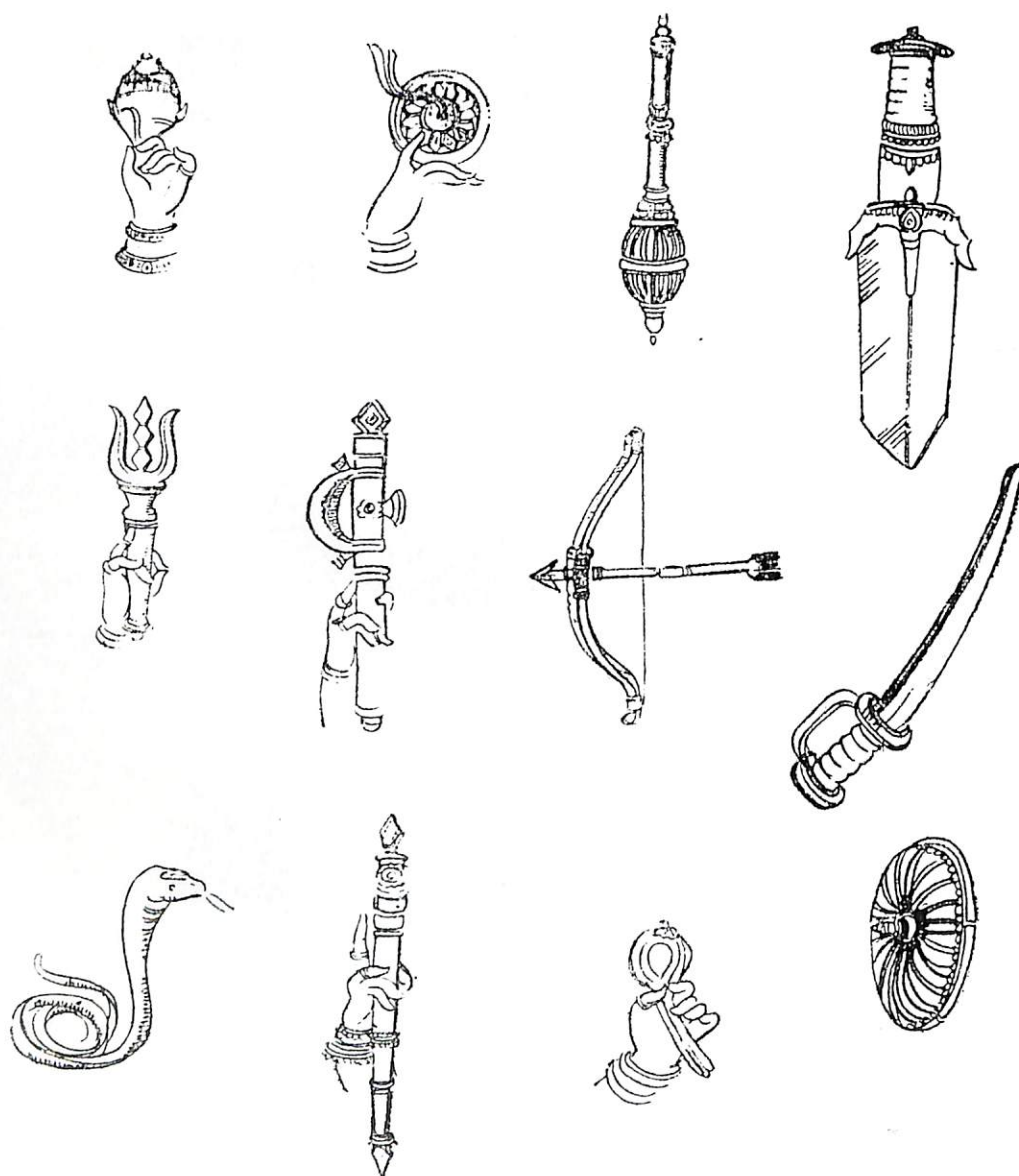
Fig. 35



Fig. 36



| Fig. 37



7
Fig. 38

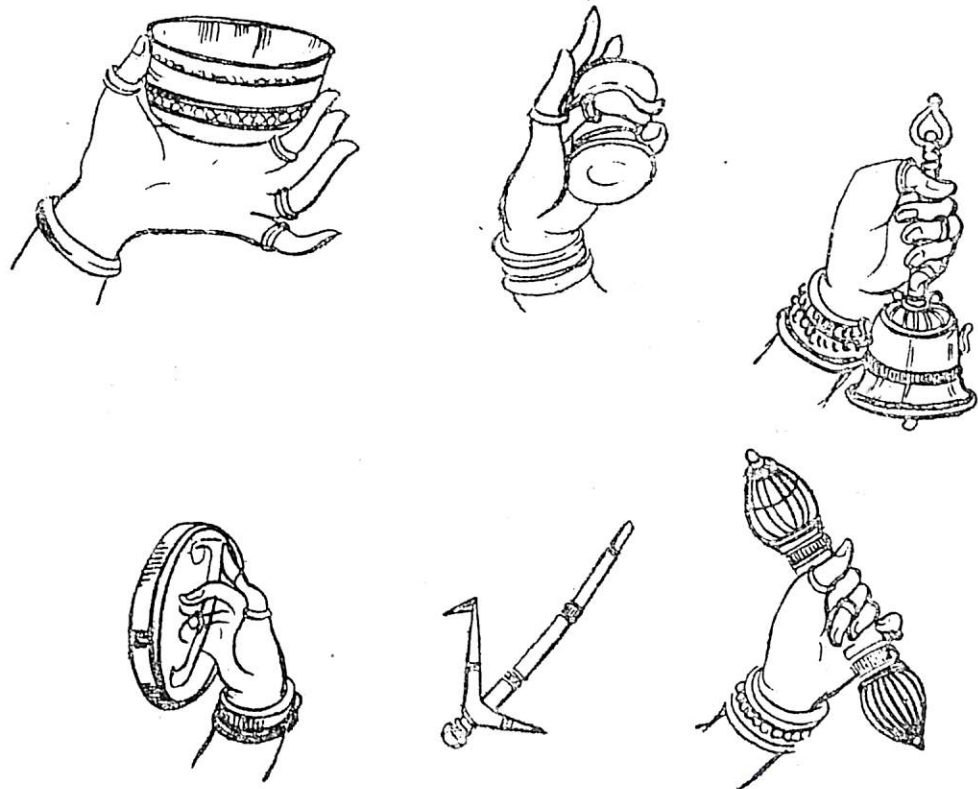


Fig. 39

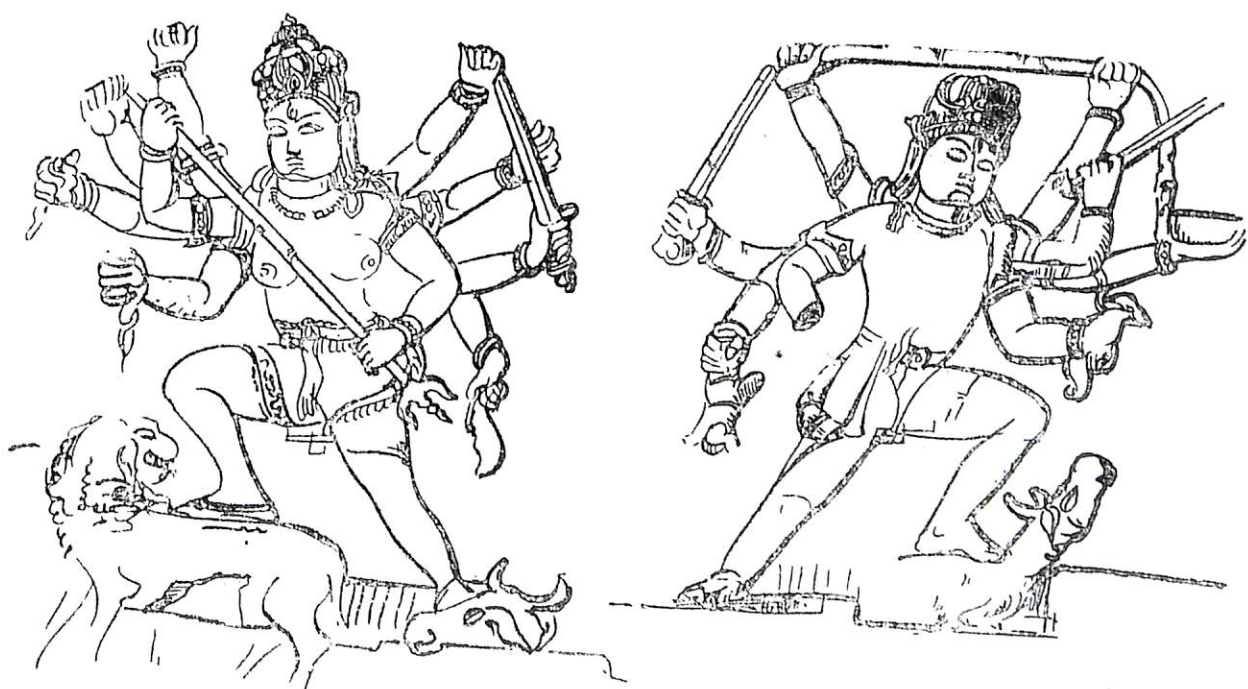


Fig. 40



| Fig 41 |



Fig. 42



Fig. 43



Fig. 44



| Fig. 45 |

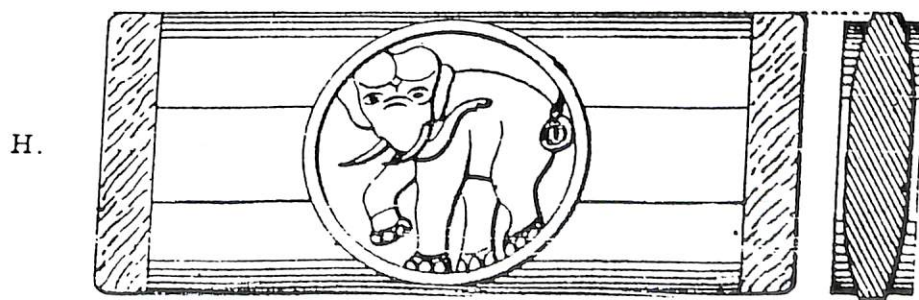
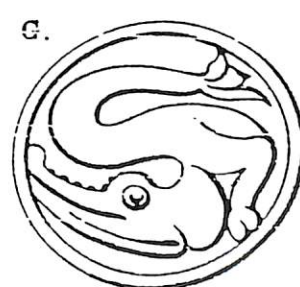
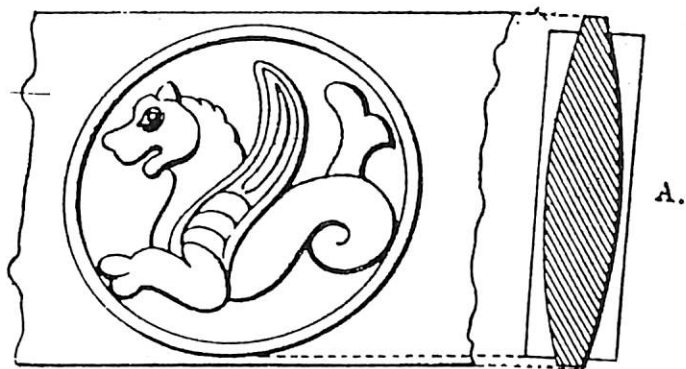


Fig. 46

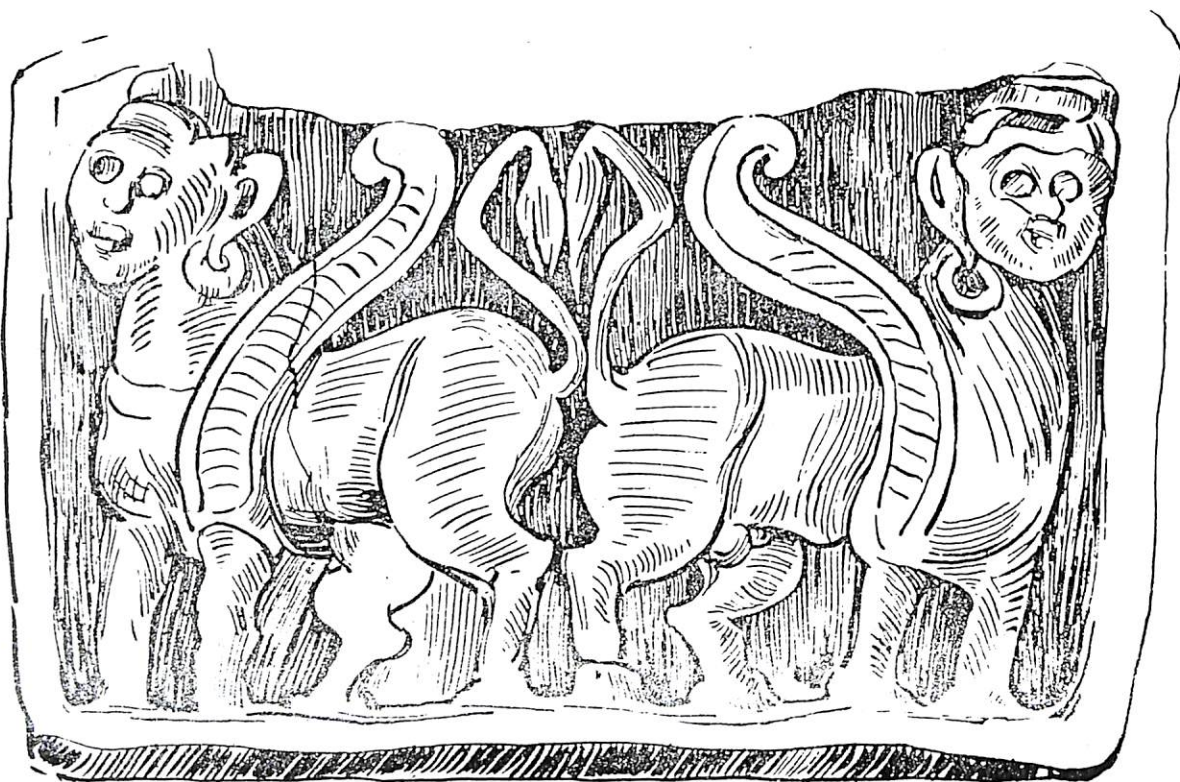


Fig. 47

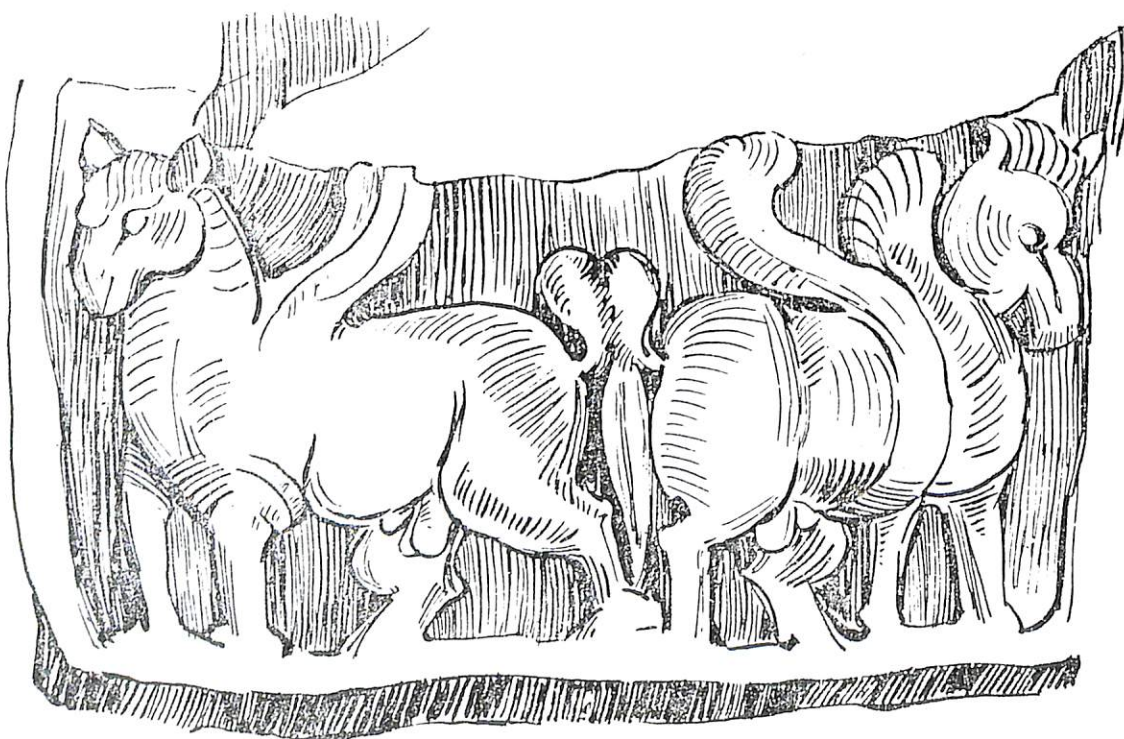


Fig.48



Fig. 49

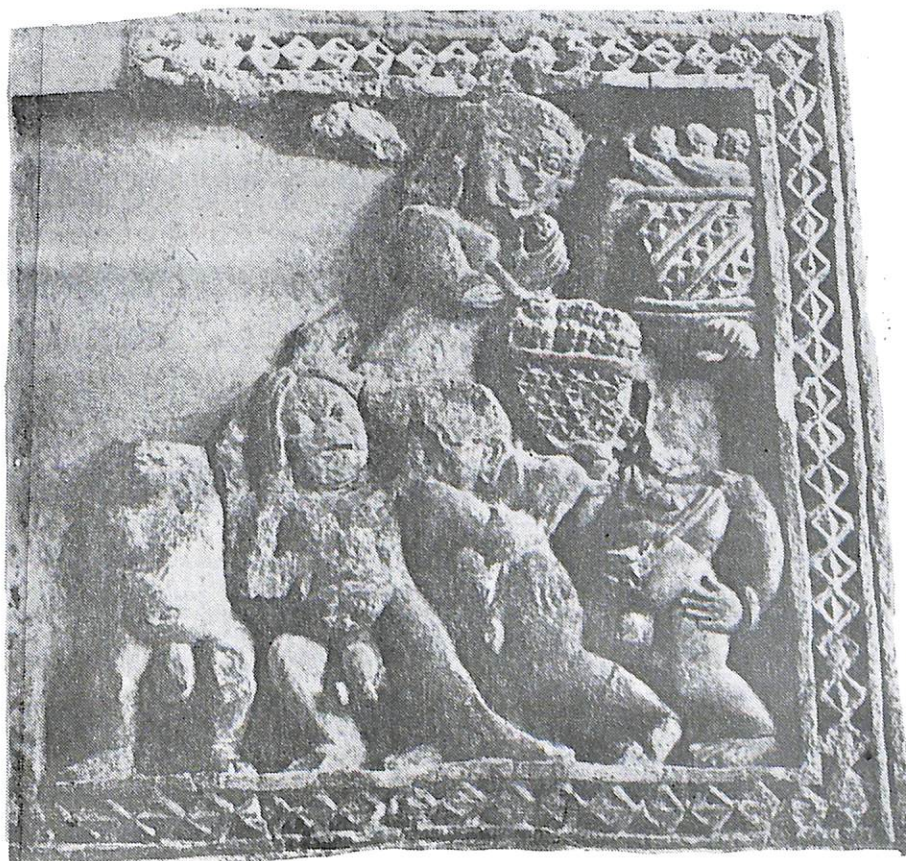


Fig. 50

Fig 51



Fig. 52

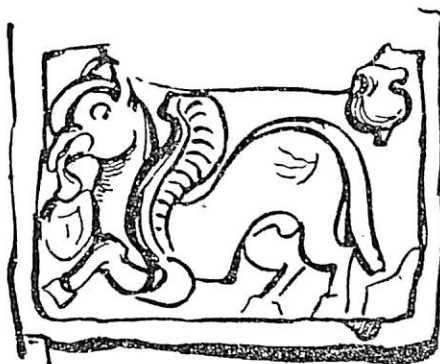
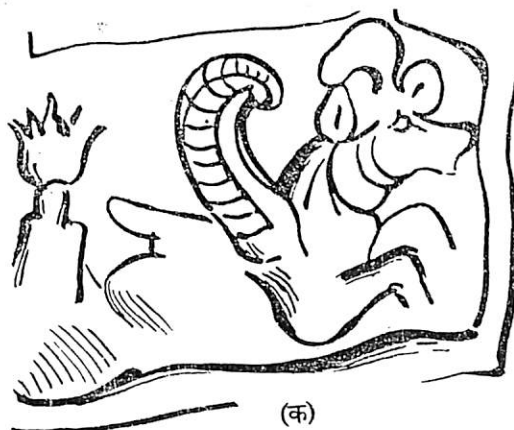


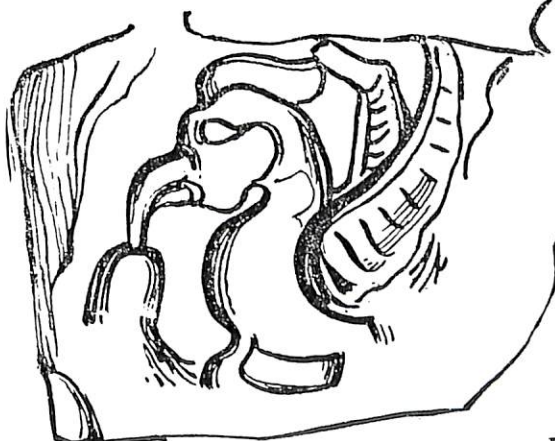
Fig. 53|



(क)



(ग)



(ख)

Fig. 54

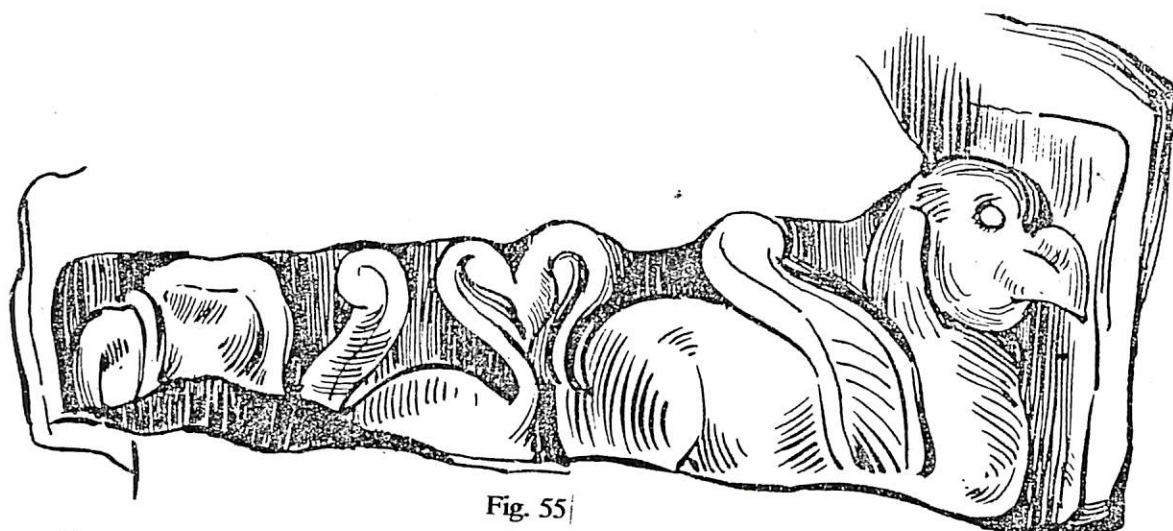


Fig. 55

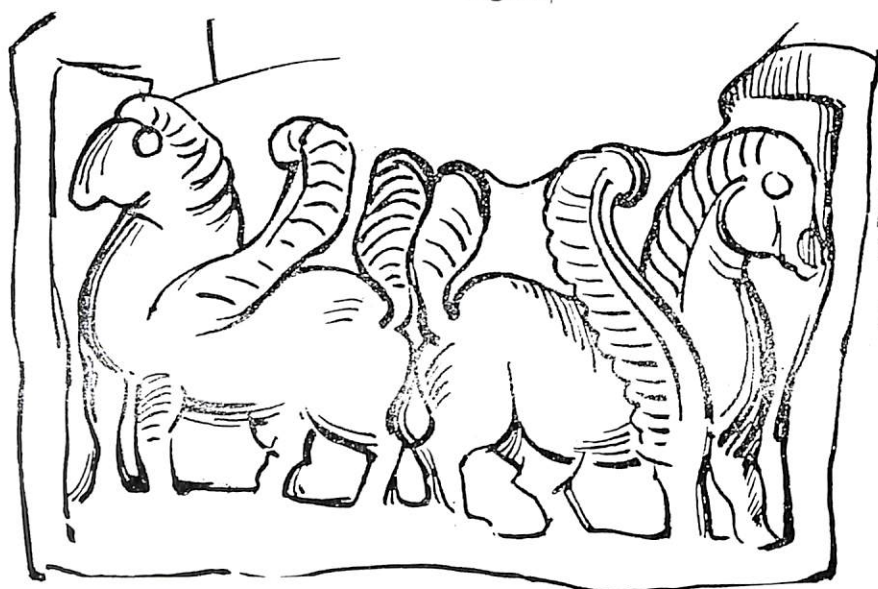


Fig. 56

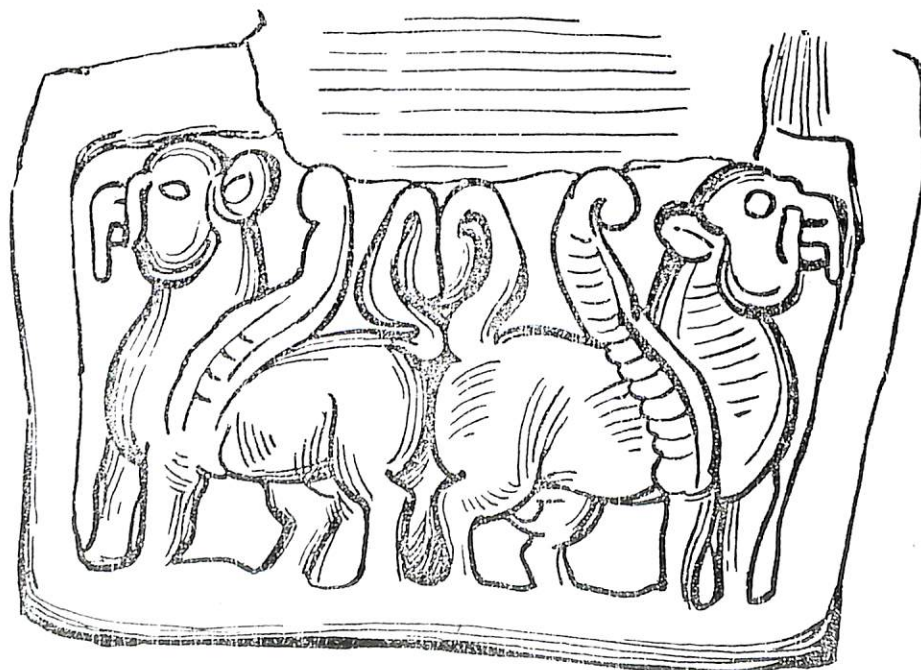


Fig. 57

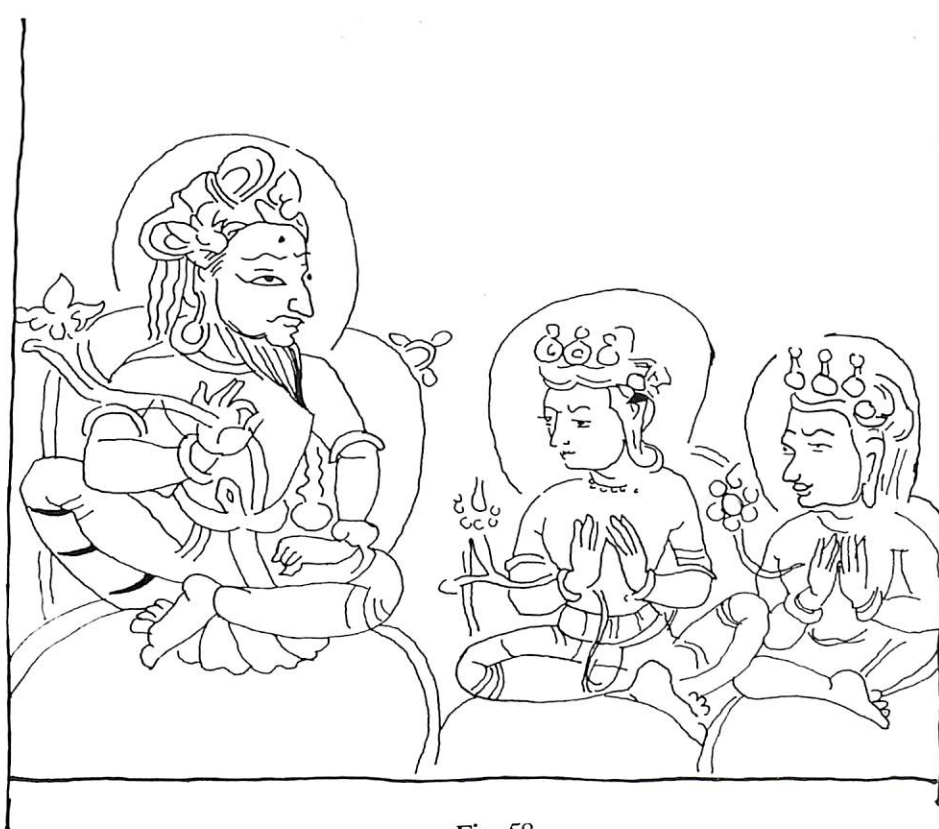


Fig. 58



1

Fig. 59



| 59 (क)



59 (ख)



Fig. 60



Fig 61

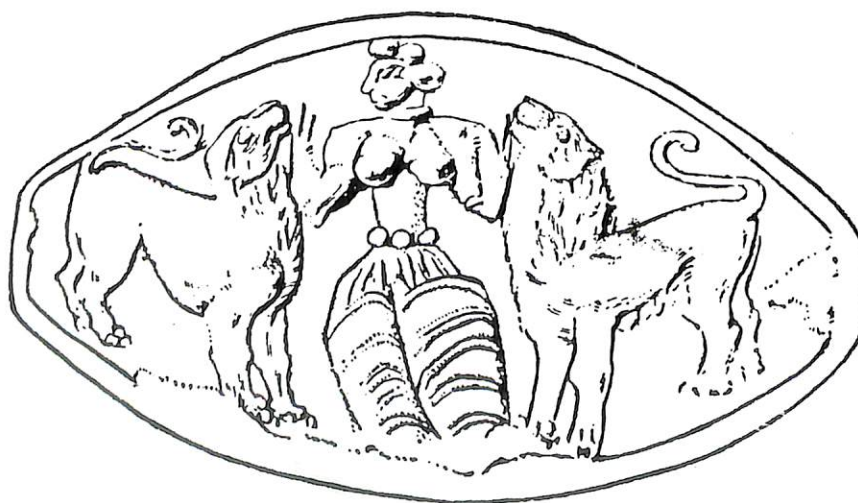


Fig. 62



Fig. 63









१(क)



१(ख)



१(ग)



१ (घ)















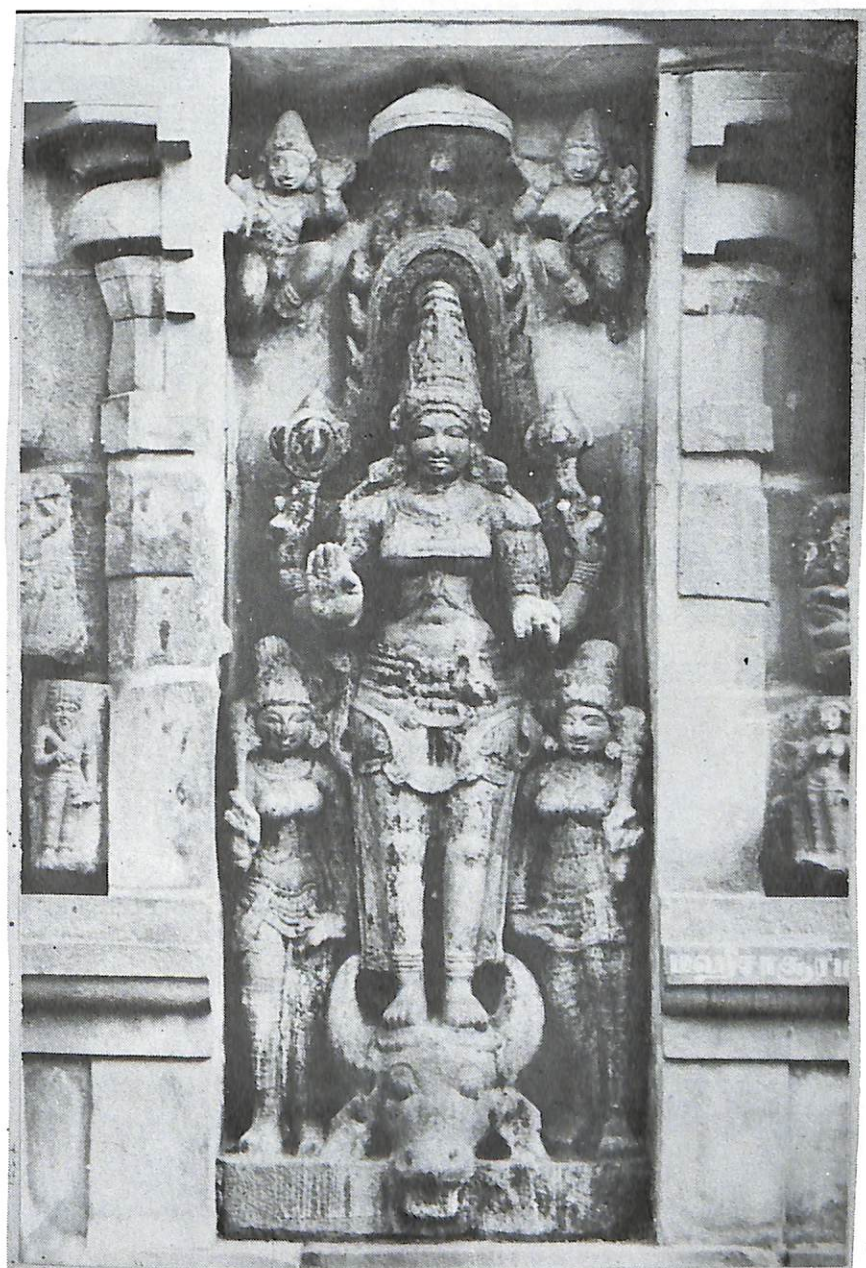


























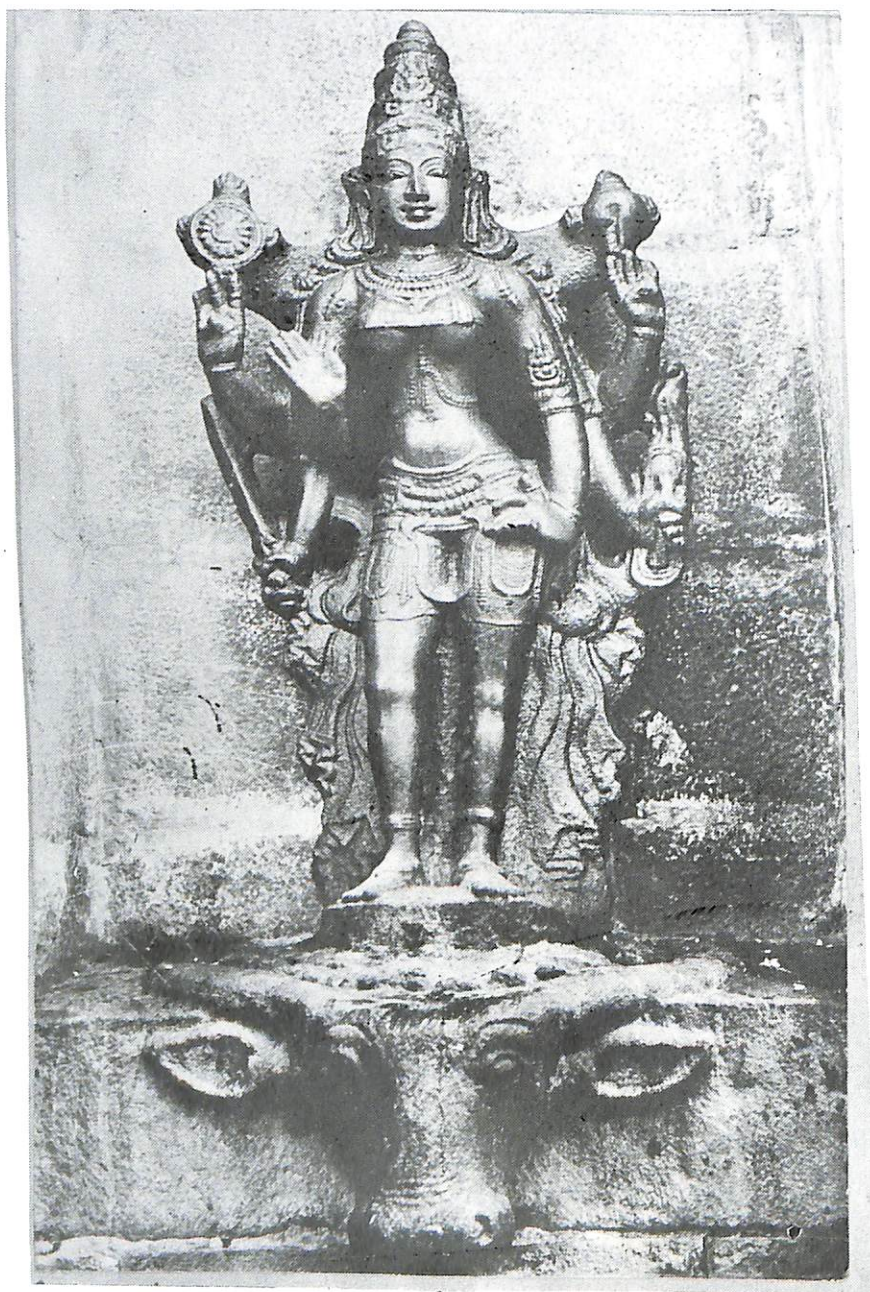


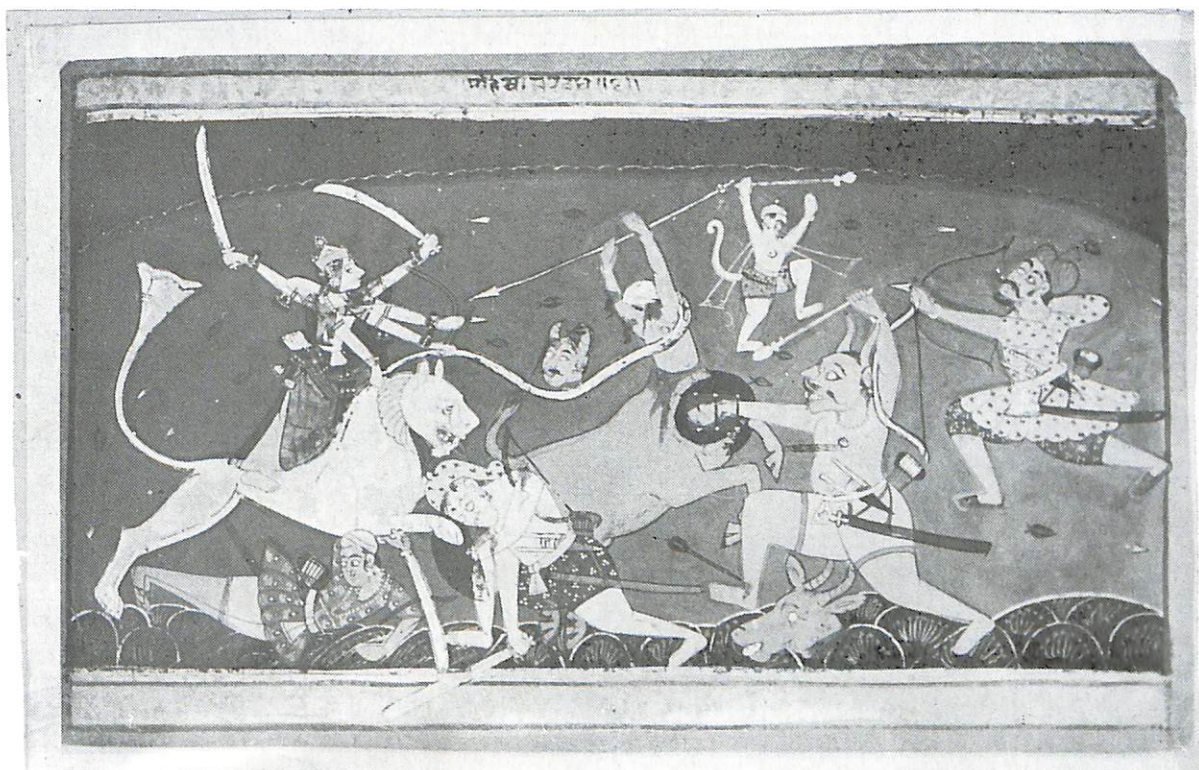


















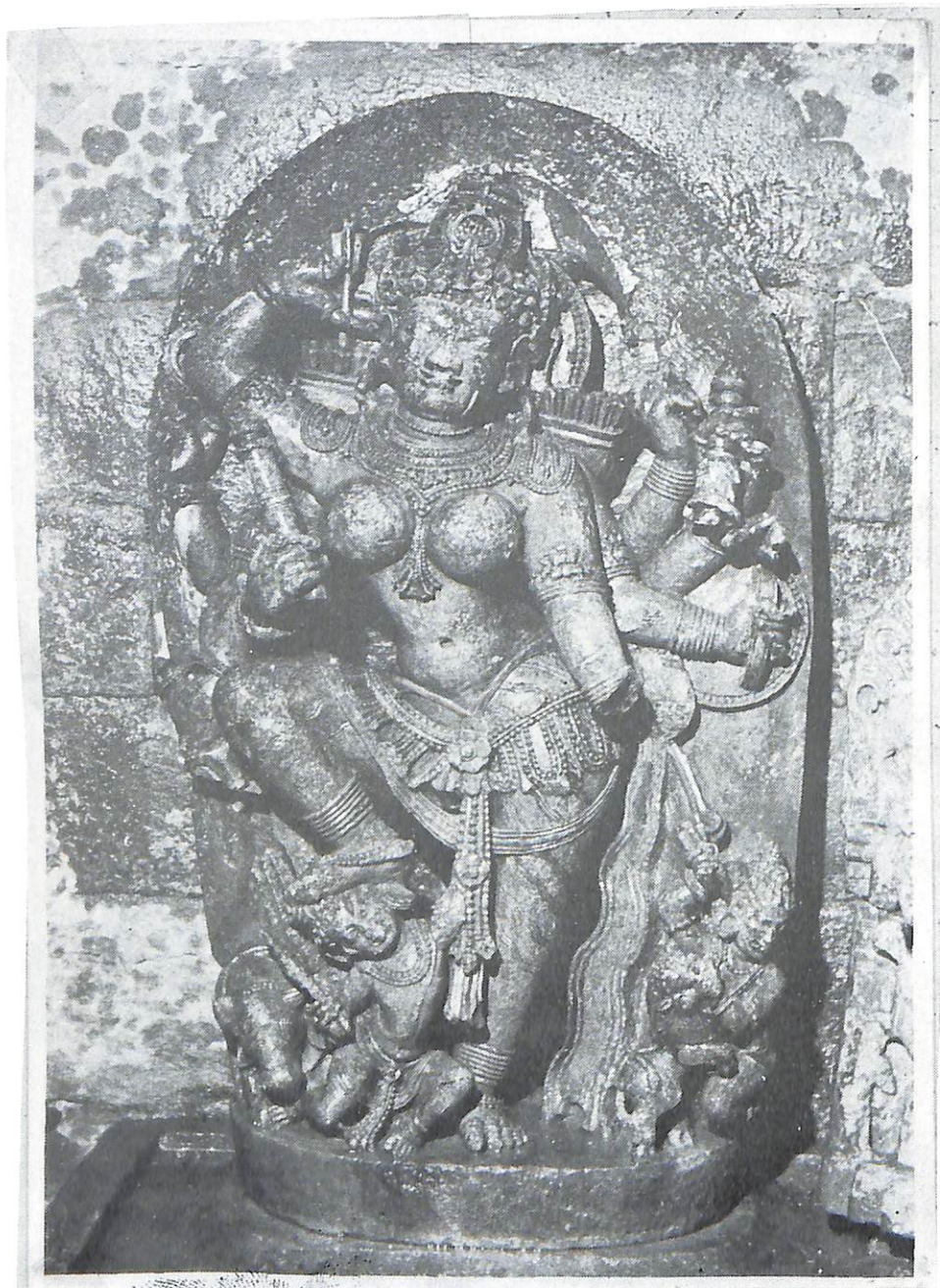












































































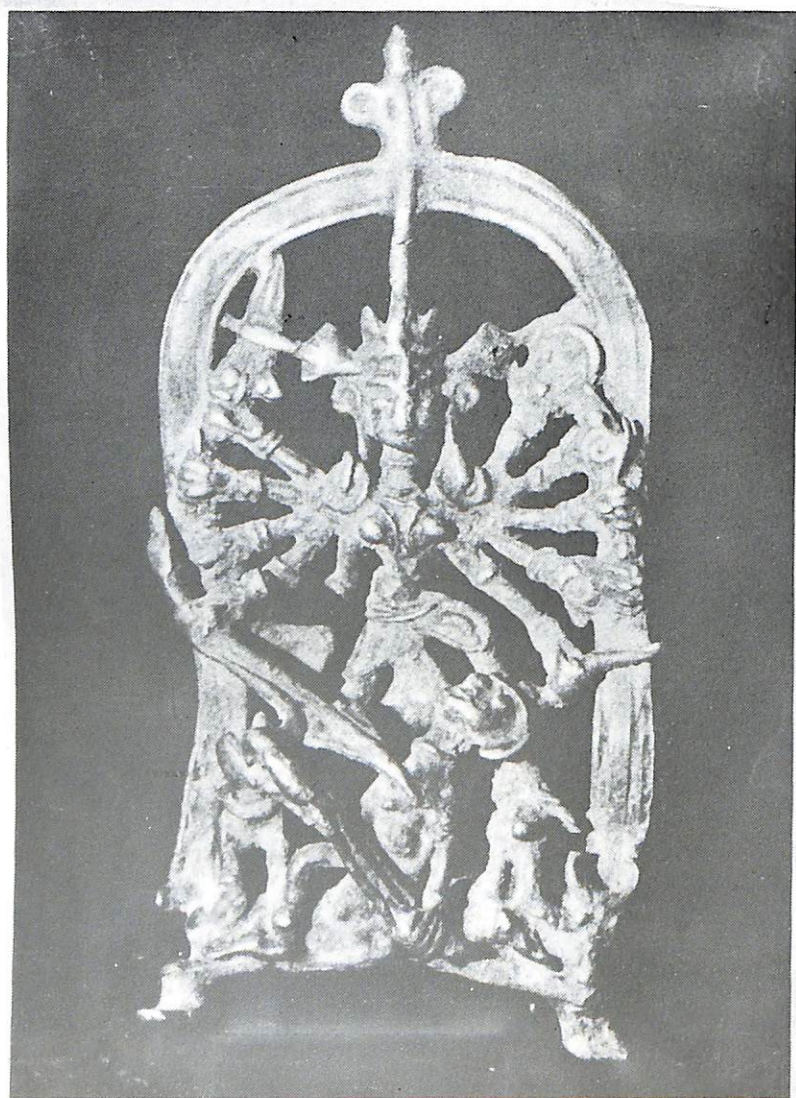












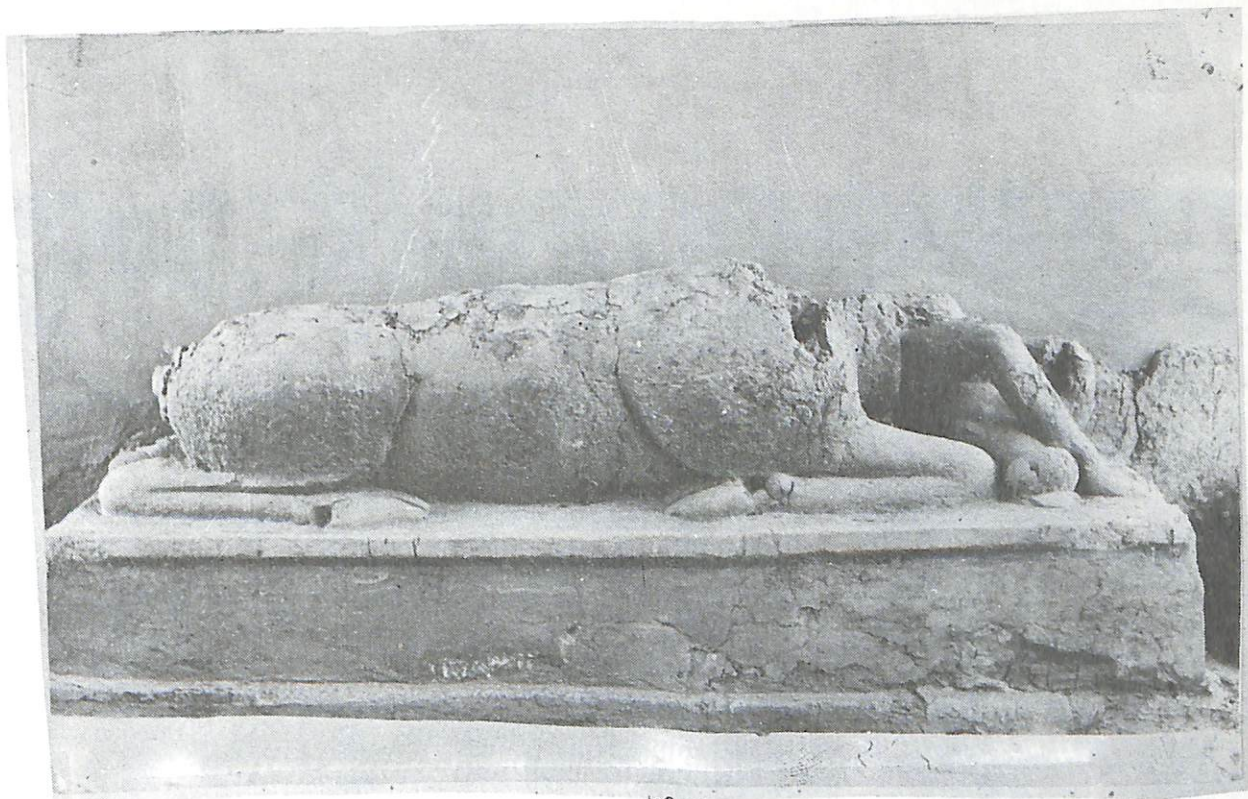




৩৩



৩৬



69



70











EASTERN BOOK LINKERS
(Indological Publishers & Book Sellers)
5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar,
Delhi-110 007. Phone : 2520287

S
S
S
S